श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्

श्रीश्रीकृष्णचैतन्य चरितामृतम् महाकाव्यम्

श्रील कवि कर्णपूर विरचितम्

श्रीवृन्दावनधामवास्तव्येन न्यायवैशेषिकशास्त्रि, नव्यन्यायाचार्य्य,
काव्यव्याकरणसांख्यमीमांसा वेदान्ततर्कतर्कतर्क
वैष्णवदर्शनतीर्थाद्युपाध्यलङ्कृतेन
श्रीहरिदासशास्त्रिणा
सम्पादितम् ।

सद्ग्रन्थ प्रकाशक :—
श्रीहरिदासशास्त्री
श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस,
श्रीहरिदास निवास, कालीदह, पो० वृन्दावन ।
जिला—मथुरा (उत्तर प्रदेश)

सङ्गणकसंस्करणं दासाभासेन हरिपार्षददासेन कृतम्

प्रकाशक :—
श्रीहरिदासशास्त्री
श्रीहरिदास निवास।
पुराणा कालीदह।
पो०—वृन्दावन।
जिला—मथुरा। (उत्तर प्रदेश)

प्रकाशनतिथि—
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत
श्री-श्रील विनोदविहारी गोस्वामी प्रभु विरह तिथि
पौष कृष्णा द्वितीया २१।१२।८३

श्रीगौराङ्गाब्द ४९७

प्रथम संस्करण—१०००

प्रकाशनसहायता—७५.००

मुद्रकः—
श्रीहरिदास शास्त्री
श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस,
श्रीहरिदास निवास, कालीदह,
पो० वृन्दावन, जिला—मथुरा,
(उत्तर प्रदेश) पिन—२८११२१

❋ श्रीश्रीगदाधरगौराङ्गौ जयतः ❋

विज्ञप्ति



"श्रीचैतन्यचरितामृतम् महाकाव्यम्" नामक ग्रन्थ उपस्थापित हुआ, ग्रन्थ विरचयिता स्वनामधन्य कवि कर्णपूर गोस्वामिपाद हैं, आपके द्वारा रचित—चैतन्यचन्द्रोदय नाटक, आनन्द वृन्दावनचम्पू, अलङ्कार कौस्तुभ, श्रीगौरगणोद्देश दीपिका प्रभृति ग्रन्थ सुप्रसिद्ध हैं। विविधच्छन्दोबद्ध विंशति सर्ग में पूर्ण १९११ श्लोक सान्वित अति उपादेय "श्रीचैतन्यचरितामृतम् महाकाव्यम्" है श्रीमन्महाप्रभु के अन्तर्द्धान के ९ वर्ष पश्चात् अर्थात् १४६४ शकाब्दा में प्रस्तुत ग्रन्थ रचना की समाप्ति हुई है।

आशैशव प्रभु चरित्र विलासविज्ञ—श्रीमुरारि गुप्त रचित श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थावलम्बन से ही प्रस्तुत ग्रन्थ के त्रयोदश सर्ग पर्यन्त रचित हुआ है, विंशति सर्ग के ४२।४३ श्लोक में उसका उल्लेख है—"आशैशवं प्रभुचरित्रविलासविज्ञैः

केचिन्मुरारिरितिमङ्गलनामधेयैः।
यद् यद्विलासललितं समलेखि तज्ज्ञै
स्तत्तद्विलोक्य विलिलेख शिशुः स एष।
बद्धाञ्जलिः शिरसि निर्भरकाकुवादे
भूयो नमाम्यहमसौ स मुरारिसञ्ज्ञम्।
तं मुग्धकोमलधियं ननु यत्प्रसादा
च्चैतन्यचन्द्रचरितामृतमक्षिपीतम्"

श्रीचैतन्यचरितामृत महाकाव्य का नायक — महत्तम गुणनिधि धीरोदात्त श्रीगौरचन्द्र हैं।

प्रथम सर्ग में—वन्दना, दैन्योक्ति, एवं श्रीगौराङ्गदेव के अन्तर्द्धान से भक्तवृन्द की अरुन्तुद विरह वर्णना है।

द्वितीय सर्ग में—नवद्वीपनगरी, श्रीवासपण्डित, श्रीजगन्नाथ मिश्र का परिणय, गर्भ, श्रीचैतन्य जन्म, बाल्यलीला, विद्यालाभ,

जननी के प्रति श्रीहरिवासर में भोजन निषेध, श्रीमिश्र पुरन्दर का अन्तर्द्धान वर्णित है।

तृतीय सर्ग में—श्रीलक्ष्मीप्रिया का दर्शन से स्वाभिलाष प्रकटन विवाह, लक्ष्मीविजय से शची का विलाप, श्रीविष्णुप्रिया परिणयादि वर्णित हैं।

चतुर्थ सर्ग में—अध्यापना, गयायात्रा, गृहगमनादि लिखित हैं।

पञ्चम सर्ग में—प्रेमचेष्टा, एवं नवद्वीप विहार उक्त है।

षष्ठ सर्ग में—नाम महिमा प्रचार, नित्यानन्द मिलन, श्रीमुरारि के समीप में श्रीरामाष्टक श्रवणादि, षड्‌भुजमूर्त्ति प्रकटन लिखित है

सप्तम सर्ग में—स्वप्न में श्रीकृष्ण दर्शन, नित्यानन्दादि मिलन, भक्तिशिक्षा विस्तारादि हैं।

अष्टम सर्ग में—श्रीवासविद्वेषी ब्राह्मण के प्रति क्रोध, श्रीकृष्ण भावप्रकटन, श्रीवृन्दावन स्मरणादि उक्त हैं।

नवम सर्ग में—श्रीवृन्दावन में श्रीगोपिका के सहित श्रीकृष्ण विलासादि का स्मरण वर्णित है।

दशम सर्ग में—गोपी प्रेमचेष्टादि का आस्वादन उक्त है।

एकादश सर्ग में—श्रीराधा-कृष्ण विलासादि स्मरण पूर्वक तद्भावभावित हृदय से आस्वादन, नीलाचल यात्रा, कटक में श्रीविग्रह दर्शनादि वर्णित हैं।

द्वादश सर्ग में—सार्वभौम गृह में गमन एवं शास्त्र-विचार, सार्वभौमके परिवर्त्तन सम्पादन, रामानन्द विवरण, कूर्मक्षेत्र गमन, दाक्षिणात्य भ्रमण उक्त है।

त्रयोदश सर्ग में—त्रिमल्लादि तीर्थ दर्शन, रामभक्त मिलन, एवं भक्तिप्रसङ्गादि, नीलाचल में आगमन, भक्तमिलनादि लिखित है।

चतुर्दश सर्ग में—सार्वभौम की काशीयात्रा, भक्तगण का नीलाचल गमन, स्नानयात्रा।

पञ्चदश सर्ग में—वृन्दावन लीलास्मरण से प्रभु का विरह वर्णन है, गुण्डिचा मार्जन, रथयात्रा विहार वर्णन है।

षोड़श सर्ग में—गुण्डिचा मन्दिर में नृत्य कीर्त्तनादि वर्णित है।

सप्तदश सर्ग में—नृत्यान्त में स्नान-भोजनादि, पुरुषोत्तम विहार, उपवन विलासादि लिखित है।

अष्टादश सर्ग में—नरेन्द्र सरोवर में जल-क्रीड़ा, द्वादश यात्रा दर्शन, मकर यात्रा में गोपवेश धारण, दोलयात्रा विलासादि उक्त है।

ऊनविंश सर्ग में—वृन्दावन में गमनागमन, प्रेमविह्वलादि, भक्त मिलनादि हैं।

विंश सर्ग में—गौड़मण्डल में आगमन, राघव पण्डित के आश्रम में, श्रीवासगृह में, शान्तिपुर में अवस्थान, शचीदेवी मिलन, नवद्वीप के पारस्थित कुलिया ग्राम में आगमन एवं पाँच-छः दिन अवस्थान, नीलाचल में पुनर्बार आगमनादि वर्णित हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ की भाषा प्राञ्जल है, प्रसाद गुणयुक्त एवं विविध अलङ्कारालङ्कृत है, ऊनत्रिंश सर्ग में वर्णित चित्र कवित्व अति प्रशंसनीय है।

श्रीचैतन्यचरितामृत के १।१०।६० में लिखित है—

शिवानन्देर उपशाखा ताँर परिकर।
पुत्र भृत्य आदि चैतन्येर अनुचर॥
चैतन्यदास, रामदास आर कर्णपूर।
तिनपुत्र शिवानन्देर-प्रभुर भक्तशूर॥

भक्तशूर कवि कर्णपूर ही **श्रीचैतन्यचरितामृत महाकाव्य रचयिता** हैं, आप तीन नाम से प्रसिद्ध हैं—कवि कर्णपूर, पुरीदास एवं परमानन्ददास।

श्रीशिवानन्द सेन—श्रीमन्महाप्रभु के नीलाचल में अवस्थान के समय गौड़देशस्थ भक्तवृन्द के नीलाचल गमनागमन के पाथेय प्रभृति की समस्त व्यवस्था करते थे।

शिवानन्द सेन प्रभुर भृत्य अन्तरङ्ग।
प्रभु स्थाने याइते सभे लयेन यार सङ्ग॥
प्रतिवर्ष प्रभुर गण सङ्गेते लइया।
नीलाचल चलेन पथे पालन करिया॥ (चैचः १।१०।५२।५३)

स्त्री-पुत्र के सहित ही श्रीशिवानन्द सेन श्रीप्रभु दर्शन हेतु नीलाचल गमन करते थे। कनिष्ठ पुत्र का आयुष्काल जिस समय ७ वर्ष था, उस समय ही उस पुत्र के प्रति श्रीमन्महाप्रभु की करुणा वर्षित हुई थी, श्रीचैतन्यदयाम्बुधि-बालक को "पुरीदास" नाम से सम्बोधन करते थे। विमलमति पुरीदास श्रीचैतन्य चरण में प्रणत होने पर श्रीप्रभु कहे थे—"कृष्ण कह" चैतन्यचरितामृतकार की उक्ति यह है—

'कृष्ण कह बलि प्रभु बोले बार बार।
तभु कृष्णनाम बालक ना करे उच्चार॥
शिवानन्द बालकेर बहु यत्न कैला।
तभु से बालक कृष्णनाम ना कहिला॥
प्रभु कहे आमि नाम जगते लओयाइल।
स्थावर पर्यन्त कृष्णनाम कहाइल॥
इहारे नारिल कृष्णनाम कहाइते।
शुनिया स्वरूप गोसाञि कहेन हासिते॥
तुमि कृष्णनाम मन्त्र कैले उपदेशे।
मन्त्र पाञा कारो आगे ना करे प्रकाशे॥
मने मने जपे, मुखे ना करे आख्यान।
एइ मनःकथा इहार करि अनुमान॥

प्रभु पदाङ्गुष्ठ स्पर्श प्रदान किये थे उससे सद्यः बालक की दिव्यरस सम्पुट श्लोक आर्या छन्द से सुप्ता वाणी जाग्रत हुई।

श्रवसोः कुवलयमक्ष्णोरञ्जनमुरसो महेन्द्रमणिदाम।
वृन्दावनरमणीनां मण्डनमखिलं हरिर्जयति॥

व्रजबाला के नीलोत्पल रूप कर्ण भूषण, नयनाञ्जन, कण्ठस्थ नीलमणि हार, एतद्व्यतीत अखिल मण्डन सामग्री, चित्तमनोहरणकारी श्रीहरि ही हैं।

श्रीचैतन्य कृपा से स्फुरित चमत्कार काव्यरचना शक्ति समन्वित कवि के द्वारा रचित यह **श्रीचैतन्यचरित महाकाव्य** है।

महाकाव्य के २० सर्ग के ४२ श्लोक में लिखित है—

आशैशवं प्रभुचरित्रविलासविज्ञैः
केचिन्मुरारिरिति मङ्गलनामधेयैः।
यद्यद् विलासललितं समलेखि तज्ज्ञै
स्तत्तद्विलोक्य विलिलेख शिशुः स एषः॥

शैशवावधि श्रीप्रभु चरित्र विलासाभिज्ञ श्रीमुरारि—श्रीप्रभु के विलास लालित्य का वर्णन निज श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थ में किये हैं, मैं उसका सम्यक् अध्ययन कर ही यह ग्रन्थ लिख रहा हूँ। इससे सुस्पष्ट ज्ञात होता है कि—अध्ययनादि के पश्चात् प्रौढ़ अवस्था में ही यह ग्रन्थ रचित हुआ है।

श्रीचैतन्यदेव की साक्षात् कवित्व कृपा सञ्चारित कर्णपूर में प्रभु का दर्शन एवं स्पर्श होने के कारण ही श्रीचैतन्य जीवनी रचना में कर्णपूर वास्तवपन्थी हुये हैं, एवं महाकाव्य के उपयोगी विषय समूह का निर्वाह भी उक्त चरित्र में उत्तम रूप से हुआ है।

महाकाव्य के सम्बन्ध में मनीषिवृन्द की उक्ति इस प्रकार है—

"सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः॥
एक वंश भूषाः कुलजा बहोऽपिवा।
शृङ्गार वीर शान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते॥
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्॥
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकञ्च फलं भवेत्।
आदौ नमष्क्रियाशीर्वा वस्तु निर्देश एववा॥
क्वाचिन्निन्दा खलादीनां सताञ्च गुणकीर्त्तनम्।
एक वृत्तमयैः पद्यै रवसानेऽन्यवृत्तकैः॥
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते॥
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।
सन्ध्या-सूर्येन्दु-रजनी-प्रदोष-ध्वान्त-वासराः॥

प्रातर्मध्याह्न-मृगया-शैलर्त्तु वन सागराः ।
सम्भोग-विप्रलम्भौ च मुनि-स्वर्ग-पुराध्वराः ॥
रणप्रयाणोपयम-मन्त्रा पुत्रोदयादयः ।
वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अभी इह ॥
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।
नामास्य सर्गोपादेय कथया सर्गनाम तु ॥"

अतएव प्रस्तुत महाकाव्य में वन, उपवन, शैल, सागर, नगर, प्रभात, सन्ध्या, युद्ध, मन्त्रणादि का वर्णन भी श्रीचैतन्यदेव के देश भ्रमण व्यपदेश से हुआ है ।

इस काव्य का नायक–धीरोदात्त गुणविशिष्ट श्रीजगन्नाथ मिश्र पुरन्दर के पुत्र श्रीचैतन्यदेव हैं । धीरोदात्त का लक्षण यह है—

अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः ।
स्थेयान् निगूढ़ मानो धीरोदात्तो दृढ़व्रतः कथितः ।

आत्मश्लाघा रहित हर्ष शोकादि से अनभिभूत स्वभाव, विनयाच्छादितगर्व एवं अङ्गीकृत परिपालक को धीरोदात्त नायक कहते हैं, प्रस्तुत महाकाव्य में उक्त सद्गुणावली का प्रकटन श्रीचैतन्य चरित्र में सुन्दर रूप से हुआ है ।

रस दृष्टि से ही काव्य सफल होता है ।

रसभूतवाक्यं काव्यं रस आत्मा वाक्यमस्ययद्देहः ।
सर्वं रसमद्भुतता व्याप्नोत्यत्रहि चमत्कृतिः सारः ॥
तस्माद‌द्भुत एकः सर्वत्रात्मा यथा ब्रह्म ।
एवं शब्देनार्थेणाद्भुततास्पृशि काव्यता वाक्ये ॥

(भक्तिरसामृतशेष)

रसपूर्ण वाक्य ही काव्य है, रस काव्य की आत्मा है, वाक्य काव्य का देह है, समस्त रसों में अद्भुतता व्यापक रूप से रहती है, और उसका सार चमत्कार अर्थात् चित्त का विस्कार है, अतएव परमप्रिय आत्मा ब्रह्म जिस प्रकार सर्वत्र अद्भुत रूप में अवस्थित हैं, इस प्रकार सर्वत्र काव्य में अद्भुतता रहती है, वाक्यस्थ शब्द एवं अर्थ में यदि अद्भुतता का स्पर्श हो, तो वह ही उत्तम काव्य होगा ।

"रस्यते आस्वाद्यते इति रसः" इस रीति से स्वानुभूतविषयास्वादन ही रस है, प्राकृत जनगण भङ्गुर बीभत्स इन्द्रियजानुकूल्यात्मकवृत्ति को रस कहते हैं, किन्तु श्रीकृष्णभक्ति विबुधगण उस रस को प्राकृत एवं भगवद् विषयकरम रूप से विभक्त करते हैं—

एव सति रसमात्रे वैशिष्ट्यात् कृष्णभक्ति विबुधैः।
प्राकृत विषया भगवद् विषयाश्चास्मिन् मता भेदाः॥
पूर्वे पुरुबीभत्साः स्फुटमपरे सर्वशर्मदातारः।
श्रीमद्भागवताख्यः पञ्चमवेदः प्रमाणं हि॥

यथा—न यद्वच श्चित्रपदं हरेर्यशो
जगत् पवित्र प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा
न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः॥
नून दैवेन निहता ये चाच्युतकथा सुधां
हित्वा श्रृण्वन्त्यसद्गाथां पुरीषमिवविड्भुजः।
त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्त
र्मांसास्थिरक्तकृमिविट् कफपित्तवातम्
जीवच्छवंभजति कान्तमति र्विमूढ़ा
याते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती स्त्री॥
निवृत्ततर्षैरूपगीयमानाद्भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात्।
क उत्तमः श्लोकगुणानुवादात् पुमान्विरज्येतविनापशुघ्नात॥
(इत्यादि)

तत्काव्यं पुम्वदुद्दिष्टं दोषाद् दुष्टं गुणाद्गुणि
अलङ्कारादलङ्कारि क्रमाद् दोषाद् विनश्यति॥
रसा भागवतास्ते तु विज्ञातव्या रसामृतात्।
ते गम्या व्यञ्जनावृत्त्या या गम्याशब्दवृत्तिषु॥

प्राकृत विषयों में रस शब्द का प्रयोग होने से उससे निविड़ बीभत्स रसास्वादन का बोध होता है। श्रीमद्भगवद् विषयक रस तो अनन्त कल्याण प्रदान करता है, इस विषय में श्रीमद्भागवताख्य पञ्चम वेद ही प्रमाण है। सर्वसुलक्षणान्वित हृदयहारिणी वाणी भी

जगत् पावन श्रीहरि के यश: वर्णन में यदि रत नहीं होती है तो, उसको वायसतीर्थ कहते हैं, उच्छिष्ट गर्त्त में काक की समधिक प्रीति होती है, किन्तु कमनीय मानस सरोवर में विहरणरत हंसगण उसका सेवन नहीं करते हैं, अर्थात् श्रीहरिगुण वर्णन में रतमन कभी भी नायिका वर्णन में रत नहीं होता है।

जो लोक विष्ठा भजनकारी पशु के समान असत् वार्त्ता को सुनते रहते हैं, उनसब को दैव ने विनष्ट किया है, कारण—अमृतमय अच्युत की चरित्र कथा को परित्याग उन्होंने किया है।

स्त्रीगण, त्वक्, श्मश्रु, रोम, नख केशयुक्त मांस, अस्थि, रक्त, क्रमि, विट् कफ, पित्त, वायुपूर्ण जीवितशव का भजन, कान्तमति से करती रहती हैं, वे सब ही विमूढ़ा हैं, किन्तु जिन्होंने आपके (श्रीकृष्ण के) चरणारविन्द की सौरभ को प्राप्त किया है, वे वैसा नहीं करती हैं।

पशुहत्याकारी निर्द्दय व्यक्ति, एवं आत्मघाती व्यक्ति व्यतीत उत्तम श्लोक के गुणानुवाद से कोई भी व्यक्ति विरत नहीं होता है। क्योंकि तृष्णाशून्य व्यक्तिगण उसका गान करते हैं, वह चरित्र भवौषध होते हुये भी श्रवण मन को मुग्ध करता है

पुरुष के समान पुरुष रचित काव्य भी दुष्ट होता है, और गुण से गुणी होता है, अलङ्कार से भूषित होता है, अन्यथा क्रूरतादि दोष से वह व्यक्ति विनष्ट हो जाता है, उसका परिज्ञान भक्तिरसामृतसिन्धु से करना आवश्यक है, उसका जो अंश, शब्द सङ्केत से ज्ञात नहीं होता है, वह भी व्यञ्जना वृत्ति से परिज्ञात होता है, अप्राकृत रसास्वादन की प्रक्रिया इस प्रकार है—

अथास्या: केशवरते र्लक्षिताया निगद्यते।
सामग्री परिपोषेण परम रसरूपता॥
विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकै र्व्यभिचारिभि:।
स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभि:॥
एषा कृष्णरति: स्वायी भावो भक्तिरसो भवेत्।
प्राक्तान्याधुनिकी चास्तियस्य सद्भक्ति वासना॥

एष भक्तिरसाखादस्तस्यैव हृदि जायते।
भक्ति निर्धूत दोषाणां प्रसन्नोज्ज्वल चेतसाम्॥
श्रीभागवतरक्तानां रसिकासङ्ग रङ्गिणाम्।
जीवनीभूत गोविन्द पादभक्ति सुखश्रियाम्॥
प्रेमान्तरङ्गभूतानि कृत्यान्येवानुतिष्ठताम्।
भक्तानां हृदिराजन्ति संस्कारयुगलोज्ज्वला॥
रतिरानन्दरूपैव नीयमाना तु रस्यताम्।
कृष्णादिभिर्विभावाद्यै र्गतैरनुभवाध्वनि॥
प्रौढ़ानन्द चमत्कारकाष्ठामापद्यते पराम्।

विभाव, अनुभाव, सात्त्विक एवं व्यभिचारि प्रभृति भावकदम्ब के द्वारा श्रवणादि सम्पन्न भक्तजन के हृदय में स्थायिभाव श्रीकृष्णरति चमत्कार विशेष पुष्ठा—आस्वादनीयता प्राप्त होने से भक्तिरस होता है। जन्मान्तरीय अथवा आधुनिक भगवद्भक्ति वासना सम्पन्न भक्तहृदय में भक्तिरसास्वाद का उदय हो सकता है। यद्यपि रति का अस्तित्व में आधुनिक वासना की विद्यमानता उपलब्ध होती है, तथापि रस निष्पत्ति हेतु प्राक्तनी वासना भी अपेक्षित है। यदि निरपराध व्यक्ति श्रीगुरुपादाश्रय पूर्वक साधनानुष्ठान करते-करते वर्त्तमान जन्म में श्रीकृष्णरति प्राप्त करते हैं, तथापि जन्मान्तर में ही उनका रसास्वादन होगा, इस जन्म में नहीं, यह ही तात्पर्य है।

रसोत्पत्ति का साधन इस प्रकार है—भक्ति के प्रभाव से निखिल दोष उन्मूलित होकर जिनका चित्त प्रसन्न अर्थात् शुद्ध सत्त्वाविर्भाव योग्य एवं उज्ज्वल-तज्जन्य सर्वज्ञान सम्पन्न हुआ है, जो श्रीभागवत में अनुरक्त हैं, भगवद्रसिक जन का नित्यसङ्ग ही जिनका उल्लासातिरेकदायक है, श्रीगोविन्द चरणारविन्द भक्ति सुख-समृद्धि को जिन्होंने जीवातु किया है, एवं प्रेम के अन्तरङ्ग भावोत्थ एवं अति प्रमावोत्थ श्रवण कीर्त्तनादिका प्रतिनियत अनुष्ठान भी करते रहते हैं।

रसोत्पत्ति का सहाय यह है—भक्तवृन्द के हृदय में विराजमाना अथच प्राक्तनी एवं आधुनिकी वासनाद्वय से उज्ज्वलारति।

रसोत्पत्ति का प्रकार—आनन्दरूपारति ही लौकिक रसवत्

सत्कवि निबद्धता की अपेक्षाशून्य होकर अनुभववेद्य श्रीकृष्णादि विभावादि के साहचर्य्य से आस्वादनीयता प्राप्त होकर परम प्रौढ़ानन्द की चरम सीमारूप प्रेम को प्राप्त करती है, किन्तु उक्त प्रेम अत्यल्प विभावादि युक्त होकर अल्पतर विभावादि आस्वाद विशेष योग्य अवस्था को प्राप्त कर भी सद्य ही आस्वादनीय होता है।

रति के कारण श्रीकृष्ण—भक्त एवं मुरली निनादादि, रति के कार्य हास्यादि स्तम्भादि आठ, एवं निर्वेदादि तेत्तिश सहाय—ये सब रसास्वादन के समय क्रमशः विभाव, अनुभाव, सात्त्विक एवं व्यभिचार नाम से अभिहित होते हैं, मनीषिगण रसप्रक्रिया को सुव्यक्त करने के निमित्त जिस रीति को अवलम्बन करते हैं, उसे अलङ्कारिक रीति कहते हैं, तन्मध्य में शब्द एवं अर्थालङ्कारयुक्त वाक्य ही प्रशंसनीय है, जिस प्रकार निसर्ग सुन्दर रमणी भी स्वीय सौन्दर्य वृद्धि हेतु अलङ्कार की अपेक्षा करती है, उस प्रकार रसात्मक वाक्य भी अलङ्कार से अलङ्कृत होने से अधिकतर शोभित होता है, काव्य प्रतिभा तो स्वाभाविक रूप से ही काव्य शरीर को विविध प्रकार से अलङ्कृत करती रहती है, तज्जन्य प्रयत्न की अपेक्षा नहीं होती है।

सत् सिद्धान्त शिक्षा को ही रस कहते हैं, "उपनिषद् रस" "भागवत रस" "रसो वै सः" प्रभृति में रस शब्द उक्तार्थ का ही व्यञ्जक है, मुग्ध जनगण-जिस रस को सुनकर आनन्द प्राप्त करते हैं, वह जघन्य रस है। काव्य प्रणयन का उद्देश्य ही है-कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निरूपण पूर्वक हृदयहारि रूप से शिक्षा प्रदान करना, इससे मानव जीवन के सहित हार्दिक सम्बन्ध स्थापन होता है, एवं समधिक काव्य का उत्कर्ष साधित होता है, कारण—सत्शिक्षा सर्वजन सुखाय होती है, कर्णपूर की काव्य सृष्टि में उक्त गोपन रहस्य उद्भासित हुआ है, श्रीचैतन्यदेव की लीला कथा नीतिशिक्षा मूलक है, कारण—महद्वृन्द की चरित्र एवं सद्गुण की वर्णना नीति बोधोद्बोधक है, विशेषतः श्रीकृष्ण एवं तदीय अभिन्न हृदय जीव जगत् में निजाङ्गवत् ममत्व शिक्षा प्रदान हेतु ही श्रीचैतन्यदेव

का आविर्भाव है।

प्रस्तुत महाकाव्य में विभिन्न छन्द की संयोजना हुई है, दशम सर्ग के अन्तिम भाग से छन्द विचित्रता परिदृष्ट होती है, ११ सर्ग १–८७ में मन्दाक्रान्ता, १२ सर्ग के १–१३० में इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति एवं ४६ श्लोक में षटपदी, त्रिपदी, एकपदी का भी प्रयोग है, १३ के ७९–८० में रथोद्धता, ८१–१०८ में स्वागता-रथोद्धता है, १४ के १३३ में इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा–उपजाति है, १५ के १–१०४ में पुष्पिताग्रा, १६ के ३७–४७ में भुजङ्ग प्रयात्, १६ के १–१२२ में मञ्जुभाषिणी—२६–४० में चन्द्रवर्त्म—३०–३५ में मन्दाकिनी, ४४ में मत्तमयूर, ४५ में कलहंस, ४६ में भ्रमर विलसिता, ४७ में दोधक ४८–४९ में शालिनी, ५४ में शशिकला, ५६ में लीलाखेल, ५७–६२ में लीला है, एतद्व्यतीत स्रग्धरा, पृथ्वी, हर्षिणी, प्रभृति का प्रयोग भी है, एकाक्षर, द्व्यक्षर, एवं चक्रबन्ध प्रभृति काव्य कौशल भी दर्शनीय है।

एतादृश काव्य कौशल प्रदर्शन स्वल्प वयस एवं स्वल्प ज्ञान सम्पन्न का परिचायक कभी भी नहीं हो सकता है, अतएव "शिशु" शब्दोल्लेख के द्वारा अनधीत व्यक्ति के द्वारा रचित महाकाव्य है, इस प्रकार प्रशंसनीय वाक्य अ-मूलक है।

कतिपय व्यक्ति श्रीवृन्दावनीय श्रीरूपसनातनादि गोस्वामीवृन्द की भावधारा से पृथक् दृष्टि से श्रीकर्णपूर की भावधारा को देखते हैं, किन्तु वह भ्रान्ति-विलासपूर्ण है, कारण—महाकाव्य में लिखित है श्रीचैतन्य श्रीमद् व्रजवर बधू प्राणनाथ (१।८) त्रिविध ताप प्रतप्त जीवोद्धार हेतु अवतीर्ण १७-७ नाम सङ्कीर्त्तन का प्राधान्य, विविध भक्ति योगमाविर्भावयितुं श्रीचैतन्यरूपी भगवानाविरासीत्, कुलजाति निरपेक्षाय हरिदासाय ते नमः, १४।४८

प्रिया के आवेश से श्रीचैतन्य मनोरम मूर्त्ति धारण करते हैं, नृत्य समय में ११।२४, श्रीराधा भावविभावित श्रीचैतन्य का वर्णन है, "क्षणं गोपीभावैः क्षणमपि च दास्यैः" ११।६१ में गोपीभाव का उल्लेख भी है, १५।४ में वृन्दावन रमणीजन विप्रयोग दुःखदुःखी का प्रयोग है,

१५।५ में रससिन्धुशशी का उल्लेख है, श्रीचैतन्य—व्रजबाला के नागरेन्द्र हैं, वृन्दावनचन्द्र हैं, प्रियतैक सागर गौर हैं, गौर दर्शन से भक्तवृन्द अद्वितीय आनन्द समुद्र होते हैं, १४-३७।४१।
१६-१ में उक्त है — श्रीहरिनाम ही चैतन्यदेव का स्वनाम रत्न है, इससे कवि की हृदय निष्ठा सुपरिव्यक्त हुई है।

श्रीचैतन्यचरित में भक्त-भावना सम्पुटरूप श्रीचैतन्य भगवान् श्रीकृष्ण, करुणासागर, प्रियाभावविभावितान्त, स्वनामरत्न कीर्त्तन परायण एवं दानकुशली हैं, प्रेम ही एकमात्र काव्य है, भगवत् प्रिय पार्षद स्वरूप लाभ ही मुक्ति प्रभृति दार्शनिक तत्त्व समूह भी विन्यस्त हैं।

—चरित्र नायक सम्बन्धीय समय विवरणी—

श्रीचैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव शक संवत्—१४०७-१६ फाल्गुन शुक्रवार, मतान्तर में २२ फाल्गुन, २३ फाल्गुन, २५ फाल्गुन है।

तिरोधान—१४५५ शक के ३१ आषाढ़।

स्थिति-काल—४७ वत्सर ४ मास १२ दिन। कवि कर्णपूर—उक्त समय को ४७ वत्सर कहते हैं। कृष्णदास कविराज ४८ वत्सर कहते हैं।

सन्न्यास ग्रहण—१४३१ शक २९ माघ।

सन्न्यास जोवन—२३ वत्सर ५ मास २ दिन।

१४३० शक पौष मास के अन्त में श्रीचैतन्यदेव का गयाधाम से गृह प्रत्यावर्त्तन महाकाव्य (४।७६) माघ मास से कीर्त्तन एवं भाव-प्रकाश, महाकाव्य (४।७६) माघ से वैशाख पर्यन्त ४ मास अध्यापन ५।२४, ज्यैष्ठ से पौष प्रयंन्त नृत्य-कीर्त्तन (५।१२५ महाकाव्य)

चैतन्य-भागवत २।२।१७१ में उसका विवरण इस प्रकार वर्णित है—

"मध्यखण्ड कथा भाइ शुन एक चिते।
वत्सरेक कीर्त्तन करिला येन मते॥"

चैतन्यचरितामृत में उक्त है—

"तवे प्रभु श्रीवासेर गृहे निरन्तर।
रात्रे सङ्कीर्त्तन कैल एक संवत्सर॥"

१४३१ शक २६ माघ बुधबार शेषरात्रि में गृहत्याग।
२७ माघ वृहस्पतिबार काटोआ में उपस्थित।
२८ माघ शुक्रबार सन्न्यास हेतु प्रस्तुतिकरण एवं मुण्डन प्रभृति।
२९ माघ शनिबार सन्न्यास ग्रहण।

सन्न्यास ग्रहण के पश्चात् तीन दिन राढ़देश में भ्रमण (महाकाव्य ११।६१) श्रीअद्वैत मन्दिर में श्रीशचीदेवी पाचित अन्न भोजन (महाकाव्य ११।३४)

—गमनागमन विवरण—

सन्नयास के अनन्तर आठार दिन पुरीधाम में स्थिति (महाकाव्य १२।९४)

दाक्षिणात्य यात्रा। श्रीरङ्गक्षेत्र में चातुर्मास्य यापन (१३।३५)
सेतुबन्ध यात्रा, गोदावरी तीर में गमन एक वत्सर के पश्चात् प्रत्यावर्त्तन। (१३।३५)
स्नानयात्रा के पूर्व नीलाचल में प्रत्यावर्त्तन (१३।५०)
१४३२ एवं १४३३ शक की रथयात्रा में अनुपस्थित।
१४३३ की स्नानयात्रा के पश्चात् गोदावरी तीर में गमन एवं रामानन्द के सहित पुनर्मिलन। (१३।५७-१३।६०)
१४३४ शक के हेमन्त में रामानन्द के सहित श्रीचैतन्यदेव का श्रीक्षेत्र में प्रत्यावर्त्तन। (१३।६०)
श्रीचैतन्यदेव की परिचर्या करने के मानस से बहुतीर्थ भ्रमणकारी शुद्धमति सुमहान् पुण्यपयोनिधि महाशय गोविन्द का आगमन (१३।१३०-१३१)
सेन शिवानन्द एवं स्वरूपदामोदर (पुरुषोत्तम आचार्य का श्रीचैतन्यदेव के समीप में आगमन (१३।१३७-१४४)
१४३५ शक में अर्थात् सन्न्यास ग्रहण के पञ्चम वर्ष में विजयादशमी तिथि में गौड़मण्डल यात्रा (१६।५)

(महाकाव्य १६।६ से २०।३४ पर्यन्त
गौड़प्रदेश में गमनागमन वर्णन)

वृन्दावन गमन, नीलाचल में प्रत्यावर्त्तन (२०।३५-३७)

१४, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७ में गमनागमन।

श्रीचैतन्य महाप्रभु के सन्न्यास ग्रहण के ६-७ वत्सर पश्चात् कविकर्णपूर का आविर्भाव काल है, श्रीचैतन्यचरितामृत महाकाव्य प्रणयन के समय १७-१८ वयस्क आप थे। चैतन्य चन्द्रोदय नाटक रचना १४९४ में एवं गौरगणोद्देश दीपिका १४९८ में रचित हुई है।

बहरमपुरस्थ राधारमण यन्त्र से १२९१ साल में श्रीरामनारायण विद्यारत्न द्वारा प्रथम संस्करण एवं द्वितीय संस्करण श्रीवामदेवमिश्र द्वारा सन १३३२ में, श्रीप्राणकिशोर गोस्वामी कर्त्तृक १३३३ साल में प्रकाशित संस्करण एवं श्रीहरिदास निवासस्थ हस्त-लिखित ग्रन्थ के आदर्श से प्रस्तुत ग्रन्थ मुद्रित हुआ।



निताइ-गौर

* श्रीहरिदास शास्त्री *

※ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ※

सूची-पत्रम्



विषयाः **पृष्ठे**





श्रीश्रीगदाधरगौराङ्गौ जयतः

श्रीचैतन्यचरितामृत महाकाव्यम्

श्रीकविकर्णपूरप्रणीतम्

प्रथमः सर्गः

यः श्रीवृन्दावनभुवि पुरा सच्चिदानन्दसान्द्रो
गौराङ्गीभिः सदृशरुचिभिः श्यामधामा ननर्त ।
तासां शश्वद्दृढ़तरपरीरम्भसम्भेदतः किं
गौराङ्गः सन् जयति स नवद्वीपमालम्बमानः ॥१॥

यस्याङ्गश्रीमधुरिमपरीणाहपीयूषसेकै
र्भास्वच्चामीकरजलमयैः शान्तनिःशेषतापै
र्यस्य श्रीमत्पदजलरुहान्माकरन्दप्रवाहैः
साक्षात् प्रक्षालितमिव जगच्छरवदानम्यतां सः ॥२॥

सच्चिदानन्दसान्द्र श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण, पहले श्रीवृन्दावन में समवर्णा आनन्दचिन्मयरस प्रतिभावित गौराङ्गी रमणीवृन्दों के सहित नृत्य किये थे, आप ही क्या उन गौरकान्तिविशिष्ट गोपसुन्दरीवृन्द के निरन्तर निविड़ परिरम्भण जनित अङ्गमर्दन से श्रीगौराङ्ग होकर श्रीनवद्वीप धाम में विराजित हैं ? ।१।

जिनके श्रीअङ्ग के उज्ज्वल गलित सुवर्ण सदृश माधुर्य्यामृत सिञ्चन के द्वारा निखिल ताप निःशेष रूप से विदूरित होते हैं, मैं उन श्रीगौराङ्गदेव को नमस्कार करता हूँ ।२।

जानुप्रान्तप्रसृमरभुजादण्डमुच्चण्डचण्ड-
द्योतश्रेणीपटुतरमहोमण्डली मण्डिताङ्गम् ।
आकर्णान्तःस्खलित-ललितापाङ्गमत्यन्तरज्यद्-
गण्डाभोगं मृगपतिशताक्रीड़मानं भजामः ॥३॥
यस्य श्रीमन्नखमणिसुधारश्मिरम्यप्रकाशै-
स्त्रैलोक्यान्तर्जटितजड़िमक्षालनायोन्मिषद्भिः ।
स्वीयप्रेमाम्बुधिलहरिकापूरपूरेण भुयो
जाड्यं चक्रे तमिह तदहो सेवतां जीवलोकः ॥४॥
स्वीयैर्लीलाविलसितरसैः पादसेवाविलासै
र्लास्योल्लासैर्यदयमकरोत्पूर्णपूर्णां त्रिलोकीम् ।
मन्ये भूयस्तदिह करुणा सैव नित्यं नवीना
भूयो भूयः प्रणमतुतरां तामिमां जीवलोकः ॥५॥

जिनके आजानुलम्बित बाहुद्वय अतिमनोहर हैं, आकर्ण विस्तृत अपाङ्ग, अतिशय रक्तिमाभगण्डस्थल, प्रचण्ड मार्त्तण्ड की भाँति ज्योतिर्मण्डल से जिनका अङ्गविमण्डित है, शत शत सिंह विक्रम के समान क्रीड़ाशील उन श्रीगौराङ्ग देवका मैं भजन करता हूँ ।३।

जिनकी श्रीमण्डितपदनखमणि की अमृतमयीच्छटा के रमणीय प्रकाश से त्रिलोक के भोगजड़तारूप अज्ञान विदूरित होता है, निज प्रेमपारावार के तरङ्गाघात से लोकोत्तर जड़ता विहित हो रही है, अहो जीववृन्द ! उन श्रीगौराङ्ग प्रभु की सेवा करो ।४।

स्वयं भगवान् श्रीगौराङ्गदेव, निजलीलाविलासानन्द से पाद सेवाविलासरूप नृत्योल्लास के द्वारा लोकगण को परिपूर्ण किये हैं, वह उनकी अभिनव करुणा का ही प्रकाश है, जीवगण उनकी उन कृपा को प्रणाम करें ।५।

यत्र श्रीमन्मधुरिममयी कान्तिरेषा जगाम
व्याहारान्तं गुरुकरुणता पूर्णतामागतासीत् ।
वैदग्धीयं निखिलसुभगा हन्त निर्वाहमाप्ता
गौरांगस्य प्रणम तदिदं पादपाथोजयुग्मम् ॥६॥

चित्रं तावद्गुणजलनिधेस्तस्य लावण्यधाम्नो-
वैंदग्ध्यादेर्लवमपि सुधीर्भाषितुं कः समर्थः ।
स्त्रीयां शक्तिं द्विगुणगुणितां चेद्विधायैष वक्तुं
शक्तः शक्तः स्वयमपि नहि श्रीलगौरांगचन्द्रः ॥७॥

अस्य श्रीमद्व्रजवरबधूप्राणनाथस्य लीला-
लावण्याढ्यं तरुणिमसुधासम्भृतं तं विलासम् ।
ये तत् पादाम्बुजमधुकरा वक्त्रतो हन्त तेषां
श्रुत्वा कोपि प्रचलहृदयश्चापलादेष वक्ति ॥८॥

जिनको श्रीअङ्ग कान्तिमाधुरी अनुपम है, परम गरिष्ठकरुणा परिपूरित निःसीम वैदग्धी है, मानव ! उन श्रीगौराङ्ग देव के श्रीचरण युगल में प्रणाम करो ।६।

आश्चर्यगुणसागरलावण्यधाम श्रीगौराङ्ग देव की लीला वैदग्धी की लेशमात्र भी वर्णना करने में कौन पण्डित सक्षम होगा ? यदि श्रीगौराङ्ग देव स्वयं ही निज शक्ति को द्विगुणित करके वर्णना करने में प्रवृत्त होते हैं, तथापि आप स्वयं गुण वर्णन में समर्थ होंगे, ऐसा कहा नहीं जा सकता है ।७।

परम करुण श्रीगौराङ्ग देव के श्रीचरणकमल के भृङ्गगण के गुणगान श्रवण से चपल होकर व्रजवरबधु गणों के प्राणबन्धु श्रीकृष्ण के लीलालावण्याढ्यतारुण्यसुधासिक्त श्रीगौराङ्ग की विलास वर्णना में मैं प्रवृत्त हूँ ।८।

क्वासौ तत्तद्विबुधनगरीचक्रचूड़ामणीनां
ब्रह्मादीनां मुकुटपदवीरत्ननीराजितांघ्रिः ।
चापल्यैकप्रवणहृदयः क्वाहमत्यन्तमुग्ध
स्तत् कारुण्यं महदिति कदाप्येष सद्भि र्न हेयः ॥९॥

यद्यद्दृष्टं श्रुतमपि च यत्तस्य लीलाविलासै
स्तत्तत्प्राणैरतिशयमहामूढ़चित्ताय यन्मे ।
भूयो भूयः कथितमिति यत् यद्धृतं तत्र तत्र
क्षुद्रोयं तत् कथयति कियत्तत्कृपाया वशः सन् ॥१०॥

संपूर्णोयं भवति यदि वा नोद्यमस्तेन किं मे
यावत्तावत् प्रभुविलसितोत्कीर्त्तने भूरि भाग्यम् ।

निखिल देवगण के चूड़ामणिस्वरूप ब्रह्मादि देववृन्द, निज निज मुकुटमणि के द्वारा जिनके श्रीचरणकमलयुगल की निर्मञ्छन करते रहते हैं, उन दुर्लभ यदुकुलतिलक श्रीकृष्ण ही कहाँ? और स्वभावतः अतिचञ्चल अतिमूढ़मति मैं कहाँ? तब एक बात है, करुणा निधान के कारुण्य वशतः यह व्यक्ति कभी भी साधुजनगण के समक्ष में हेय नहीं होगा।९।

मैं अति क्षुद्र एवं अतिशय मूढ़मति हूँ, अतः श्रीप्रभु के लीला वर्णन में मेरी बिन्दुमात्र भी सामर्थ्य नहीं है। तब मैं उनकी कृपा से वशीभूत होकर दृष्टश्रुतचरित्रविषयों की किञ्चित् वर्णना कर रहा हूँ।१०।

यदि मेरा यह उद्यम निष्फल होता है, तो श्रीप्रभु का लीला-विलास वर्णन में प्रवृत्त होने के कारण परम सौभाग्य का ही उदय होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अथवा मैं यथाशक्ति श्रीगौराङ्ग चरित्र

यद्वा शक्तेः सममनुवदन् नैव हास्याय सोऽयं
यस्मान्नैतच्चरितमखिलं ब्रह्मणोपि प्रमेयम् ॥११॥
यद्येतस्मिन्निहह भविता दूषणं न प्रमादात्
किञ्चित्तस्मिन्न खलु सुधियामाग्रहो जातु भावी ।
यत्ते श्रीमच्चरणकमलद्वन्द्वगाथानुमत्ता
स्तस्मादेषु क्षणमपि न मे वर्त्तते काप्यपेक्षा ॥१२॥
श्रीमद्वृन्दावनवरबधूप्राणनाथः समस्तं
विश्वं प्रेमामृतलहरिभिर्निर्भरं प्लावयित्वा
तत्तल्लीलामृतमपि मुहुः स्वादयित्वा विशेषं
भूयस्तासां निकटमगमत्तद्वियोगाक्षमोऽसौ ॥१३॥
इत्थं तत्तद्विलसितसुधापूरमास्वाद्य भूयः
शिक्षाव्याजात् प्रथितकरुणे हन्त हान्तर्दधाने ।

वर्णन करने पर भी उपहासास्पद नहीं बनूँगा, कारण श्रीगौराङ्ग चरित्र की इयत्ता करने में ब्रह्मादि देवगण भी समर्थ नहीं हैं ॥११॥

श्रीगौराङ्ग प्रभु के लीलावर्णन में उद्यत होने से ग्रन्थ में यदि भूरि भूरि त्रुटि भी होती है, तथापि मनीषिगण उक्त दोष समुह का ग्रहण नहीं करेंगे, कारण सुधीगण श्रीभगवच्चरण कमल के कथारस से उन्मत्त हैं, अतएव उन सब को मेरी अपेक्षा ही क्या है ? ॥१२॥

गोपाङ्गनावृन्द के प्राणबन्धु श्रीकृष्ण, एकबार प्रेमामृत लहरी से जगत् को परिप्लुत करने के बाद पूर्वलीलामृत का आस्वादन उन सब को करवाकर उन सब का वियोग सहन में अक्षम होकर पुनर्बार उनसब के निकट आये थे ।१३।

उक्तरूप से श्रीहरि श्रीनवद्वीप में अवस्थान करके लोकशिक्षा के छल से धाराप्रवाहवत् विलाससुधास्वादन कर अन्तर्हित होने से

एतत्प्राणाः कथमपि इहा जीवनैः संविसृष्टाः
केचिद्भूमौ करुणकरुणाः सन्ति केचित् प्रयाताः ॥१४॥

हा गौरांग प्रियतम हहा हा प्रभो दीनबन्धो
हा हा कष्टं निज-धन-जन-प्राण-जाति-स्वरूप
इत्थं भूयः करुणकरुणः क्रन्दतां वाक्प्रबन्ध
श्चित्तं भित्तीरपिच शतधा हन्त सद्यः करोति ॥१५॥

केचित् केचिद्बहुविकलितास्तद्वियोगाग्नितापै-
र्दृष्ट्वा विश्वं प्रलयसमयप्रायशून्यातिशून्यम् ।
अर्न्तवाष्पव्रणशतकृतां वेदनां तैर्विलापै-
र्दूरीकर्त्तुं रुरुदुरसकृद्धाहहेत्युच्चनादैः ॥१६॥

हाहा लीना भवति सततं क्षोभशोकाग्निपूरे
हाहा प्राणप्रियतम भवद्विप्रयोगे धरित्री ।

तदीय भक्तगणों के मध्य में कोई तो जीवनावशेष में अवस्थित हो गये, कोई उनका अनुगमन करने में बाध्य होकर यह कहकर विलाप करने लगे—"हे प्राणप्रिय! हे दीनबन्धो! हे प्रभो! हे गौरांग! हे करुणामय! आप हमारे धन जन प्राण एवं जातिस्वरूप होकर हम सबको छोड़कर कहाँ चले गये ?" अनुचरवृन्द के यह निदारुण कण्ठस्वर मानो श्रोतृवर्ग की हृदयभित्ति को शतधा विदीर्ण करने लगा।१४-१५।

कतिपय व्यक्ति तदीय विरहाग्नि सन्ताप से तापित एवं विकलेन्द्रिय होकर प्रलय काल के समान जगत् को शून्य देखने लगे थे, कोई कोई व्यक्ति मर्म्मन्तुद वेदना के निमित्त अत्युच्चस्वर से हाहाकार शब्द से रोदन करने लगे थे।१६।

कुछ व्यक्ति कहने लगे—हे प्राणनाथ ! यह धरणी तुम्हारे चरण-

पूर्वं यासौ तव चरणयोः स्निग्धमुग्धै र्विहारैः
स्निग्धैरासीत सुकृतसुकृता धन्यधन्यातिपुण्या ॥१७॥
किं किं तस्मादहह सुकृतं दीर्घदीर्घं समन्ता-
च्चक्रे पृथ्वी तव पदरसैर्यत् प्रकृष्टा रसासीत् ।
हाहा संप्रत्यपि विरहिता हन्त सर्वं सहेति
स्वीयं नाम प्रकरणवशादन्वितार्थं चकार ॥१८॥

हाहा नाथ प्रियतम मनोनाथ कारुण्यसिन्धो
निःसीमागः शमनदयित प्रेष्ठ हाहा हताः स्मः
सर्वो लोकस्तव चरणयो र्विप्रयोगेऽति दुर्गे
लीनो दीनः श्वसति परमैर्दुष्कृतानां समूहैः ॥१९॥
ये ये स्निग्धाः परमसुहृदस्ते त एव प्रयाता-
स्ते ते धन्याः प्रभुचरणयोः प्रेममात्रैक साध्याः ।

स्पर्श से सुस्निग्ध, पुण्यवती एवं धन्या नाम से अभिहित हुई थी, सम्प्रति वह महीमण्डल तुम्हारे विरह से सर्वदा क्षुब्ध एवं शोकाग्नि प्रवाह में निमज्जित हो रहा है।१७।

कोई कोई कहने लगे कि—हे प्रभो ! और क्या कहें, देखो जो पृथ्वी इसके पहले प्राक्तन पुण्य से तुम्हारे चरण स्पर्श प्राप्त कर 'रसा' नाम धारण कर अब निज 'सर्वंसहा' नाम को सार्थक कर रही है।१८

कुछ व्यक्ति कहने लगे—हे नाथ ! हे प्रियतम ! हे करुणामय ! हे पुरुष श्रेष्ठ ! हे अपराध भञ्जन ! हे दयित ! हे प्रेष्ठ ! तुम क्या नहीं देख रहे हो, जनगण तुम्हारे चरण दर्शन से वञ्चित होकर दुष्कृतकारी व्यक्ति के समान सदैन्य दीर्घश्वास परित्याग कर रहे हैं।१९।

कुछ व्यक्ति यह भी कहे थे कि—जो जन प्रभु पादपद्म के प्रेम से अत्यन्त वशीभूत होकर श्रीप्रभुका अनुसरण किए हैं, वे सब ही

हा धिक् कष्टं प्रभुमपि च तं तं संगं समेत्य
प्राणान्तस्तद्विरहविकलाः सन्ति हाधिक् कठोराः ॥२०॥

ये तत्श्रीमतपदकमलयोः सौरभीं माधुरीं वा
तामासद्य क्षणमपि न यत् सर्वमेव त्यजन्ति ।
ते वा कष्टं किमुत पशवः किं नु वृक्षा विरूढ़ाः
किं ग्रावाणः शिव शिव नवा चेतनाभिर्विहीनाः ॥२१॥

यत् पादाम्भोरुहयुगरसास्वादनेनैव तृप्ता-
स्त्यक्त्वैकान्तं धनजनगृहं प्रेममात्रैक साध्याः ।
दीनाः सन्तः परमकृतिनो हन्त सन्तः समन्तात्
कान्तारान्तर्गिरिषु विपिनेष्वेवमेवं चरन्ति ॥२२॥

परमात्मीय, परम सुहृद् एवं वे सब ही परम धन्य हैं। और हम सब श्रीप्रभु के अदर्शन से विकलेन्द्रिय होकर भी मृत्युलाभ कर न सकें। अतएव हम समझ गये कि—प्राण की भांति कठोर और कुछ नहीं है ।२०।

जो लोक प्रभुपादपद्म की परिमलमाधुरी को प्राप्त करके भी क्षण कालके निमित्त भी विषय वासना को परित्याग करने में अक्षम रहे, हा कष्ट, उनसब को पशु, शुष्कवृक्ष, एवं चेतनाविहीन पाषाण कहने पर भी अत्युक्ति नहीं होगी ।२१।

प्रेमवशता हेतु प्रभुपादपद्म का मकरन्द पान से परम तृप्त होकर जो जन अकिञ्चन के समान कभी कान्तार में कभी गिरिगह्वर में कभी तो कानन में विचरण करते रहते हैं, वे सब ही परम कृती एवं विवेकी हैं ।२२।

श्रीमत्पादाम्बुजयुगरसं चक्षुषापीय गन्धं
तस्याघ्राय प्रणयमधुरं प्रेमसीधुञ्च पीत्वा।
आस्वाद्यै तद्वचनमधुरं हन्त को जीवलोक-
स्तद्विच्छेदं शिव शिव हहा हा कथं हन्त सोढ़ा ॥२३॥

अद्याप्येतच्चरणकमलद्वन्द्वगन्धेन सर्वे
त्यक्तासङ्गा निरवधिगलत् सर्वबन्धाः समन्तात्।
स्वैरं स्वैरं नटनरभसैः कीर्त्तनैः सञ्चरन्तो
वर्त्तन्ते तद्विरहदहनं कः सहेतास्य तस्य ॥२४॥

कथम्वा द्रष्टौ तौ परमकरुणौ हन्त चरणौ
कथं वा दम्भोलीप्रकरकठिनोयं वत जनः।
कथं वा तत्प्रेम्णः पदमयमहो तिष्ठति च वा
कथं तद्विच्छेदे शिव शिव विधेर्वैशसमिदम् ॥२५॥

जिन्होंने श्रीगौराङ्गदेव के पादपद्ममधु का पान नेत्रों के द्वारा, नासिका के द्वारा सौगन्ध्य का आघ्राण, कर्णों के द्वारा वाक्यामृत का आस्वादन एवं मनसा तदीय प्रणय मधुर प्रेमामृत पान किया है, उन सबको क्या किसी प्रकार विरह यन्त्रणा प्राप्त करना पड़ेगा।२३।

जिन्होंने श्रीगौराङ्ग देव की विरहवेदना को अति दुःसह अनुभव करके तदीय पादपद्म मकरन्द गन्ध से परितृप्त होकर सर्व सम्बन्ध त्याग किया है, वे सब ही जीवन्मुक्त के समान स्वच्छन्द चित्त से नृत्य एवं नाम सङ्कीर्त्तन करते करते विचरण करते रहते हैं, वे सब श्रीप्रभु विरहानल को कैसे सहन करेंगे ? ।२४।

श्रीगौराङ्गदेव के करुणाकर श्रीचरणयुगल का दर्शण कैसे कर सकूँगा ? मेरा हृदय वज्र तुल्य कठिन है, कैसे मैं उनका प्रिय बनूंगा ? और इनसब के अभाव से मैं कैसे जीवित रहूँगा? ।२५।

जगच्छून्यं मन्ये क्षितिरपिच दुःखाग्निनिवहे
विलीना लीयन्ते सकल मनुजास्तत्र विकलाः
तथाप्येते प्राणाः शिव शिव न गच्छन्ति विधुरा
अहो चित्रं शिव शिव विधिर्वामचरितः ॥२६॥

अहो अद्याप्यस्य प्रियगुणगणानां लवमपि
क्षणं संश्रृण्वन्तः कति कति न देहत्यज इह ?
सदा श्रुत्वा दृष्ट्वा सतत्मनुभूयापि च सुखं
विना तं जीवामः शिव शिव महद्दुष्कृतमिदम् ॥२७॥

अहो धन्यैवेयं क्षितिरतितरां श्रीचरणयो
रसैः पूर्णा नाम्ना गुणगणमहिम्ना च महता ।
तदेतद्विच्छेदानलविदलितेयं दलति नो
न जानीमः सीमां विधिविलसितस्य क्षणमपि ॥२८॥

हाय ! जगत् शून्य हो गया, मानवमण्डली भूमण्डल के सहित श्रीगौराङ्गदेव के विरहानल से दग्ध प्राय हो गई है, कठिन प्राण अवसन्न होकर भी निर्गत नहीं होता है, अतएव मैं समझ गया, विधाता प्रतिकूल होने पर इस प्रकार दारुण घटना उपस्थित होती है ।२६।

जो जन उन श्रीगौराङ्ग देवकी गुणावली का लेशमात्र भी श्रवण करते हैं, उन सबको मृत्युमुख दर्शन नहीं करना पड़ता है, हा धिक्, हम सब सर्वदा उनका गुणश्रवण एवं उनको सचक्षु से देखकर आनन्दित होने पर भी सम्प्रति उनको छोड़कर जीवित रह गये, हाय ! हम सब का यह कैसा सुमहापाप है ।२७।

पहले जो पृथ्वी श्रीगौराङ्गदेवके श्रीचरणमकरन्द से, गुणसमूह से, एवं महिमा से, परिपूर्ण होने पर लोक उनको धन्यवाद प्रदान

इतीहोष्णं दीर्घं श्वसितमिदमुच्चैः प्रलपितं
वपुः क्षीणं क्षीणं नयनजलमत्यन्तबहुलम् ।
वहन्तोऽमी स्मृत्वा प्रियगुणगणं भूरि करुणं
रुदन्तो विश्रान्तं वत मुमुहुराश्चर्यमिति तत् ॥२९॥

इति श्रीकृष्णचैतन्य चरितामृते महाकाव्ये प्रथमः सर्गः ।

करते थे, अद्य वह धरणी श्रीप्रभुविरहानल से हमारे समान दलिता होकर भी विदीर्ण नहीं हुई। अतएव विधाता का क्षण विलास की कथा को जानने में हमसब असमर्थ हैं ।२८।

करुणा निधान भगवान् श्रीगौराङ्गदेव का तिरोभाव होने से सबव्यक्ति दिन दिन क्षीण होने लगे, घन घन दीर्घश्वास त्याग करने लगे, अत्यधिक अश्रुपात एवं प्रियगुण स्मरण जनित विलाप से क्षण क्षण में वे सब मूर्च्छित होने लगे थे। अहो आश्चर्य ! ।२९।

इति–श्रीश्रीचैतन्य चरित महाकाव्ये प्रथमसर्गः ।



द्वितीयः सर्गः

इयं मही भाग्यवती महीयसी
दिवोपि दिव्यादपि निर्मलैर्गुणैः ।
महान्ति रत्नानि यदा दधात्यतो
दधौ नवद्वीपमतीव दुर्ल्लभम् ॥१॥

अनेकधा सञ्चित भाग्यसञ्चयं
समस्तमेकत्र विधाय सर्वतः ।
महीरुहैरुत्पुलकेयमुत्सुका
दधौ नवद्वीप इति प्रथां किमु ॥२॥

प्रभु कदा वावतरिष्यतीत्यदो
विचिन्तयन्त्या मनसि प्रफुल्लया ।
मनोरथाक्रान्तिवशादनेकशः
सतां पदाब्जानुगतिर्यया दधे ॥३॥

परमभाग्यवती वसुन्धरा देवता एवं स्वर्ग से भी गरीयसी है, नानाविध रत्न धारण से धरणी की जो गौरववृद्धि हुई थी, तदपेक्षा अधिक गौरववृद्धि-दुर्ल्लभ नवद्वीप धारण करने से हुई है ।१।

नाना स्थान से भाग्य समूह का समावेश होकर ही श्रीनवद्वीप नगरी हुई है, इसको धारण करने से ही क्या धरित्री वृक्ष धारण च्छल से पुलकित हुई है ।२।

प्रभु धरातल में अवतीर्ण होंगे, यह सुनकर धरा का मन आनन्द-पूर्ण हो उठा हैं, और सोचने लगी, प्रभु कब श्रीनवद्वीपमें उदित होंगे? कब मथुरा के समान नगरी पवित्र होगी, यह मानकर श्रीभगवत् पाद-पद्म स्पर्शानन्दसे विह्वल पृथ्वी के पुण्यसमूह का गान लोकसब करेंगे? धरणी इस प्रकार ध्यान करती रहती है, अपर दिक् में धूर्जटि के

इयं नवद्वीपमिषेण मेदिनी
दधार भूयो मथुरामिवापराम् ।
वदेदमुष्याः सुकृतानि कोनु वा
प्रभोः पदस्पर्शरसाकुलात्मनः ॥४॥

आप्लाव्य या धूर्ज्जटिसज्जटातटीं
कपालमालाच्छटया समन्विताम् ।
शशाङ्कलेखा प्रतिविम्ब रूपिणी—
मलब्धपूर्वा शफरीं समासदत् ॥५॥

प्रभोः पदाम्भोजयुगस्य पावनी
धारा मनोज्ञा मधुनो महीयसः ।
चकार यत्रास्पदमुत्सुका सती
समन्ततोऽसौ विमलाम्बुवाहिनी ॥६॥

द्रव स्वरूपापि भवाब्धिशोषिणी
शुभ्रापि यासीद्धृतकृष्णविग्रहा ।
क्षित्याश्रितापि द्युनदीति विश्रुता
भ्रमापहापि भ्रमिविभ्रमावहा ॥७॥

जटाजूट निवासिनी सुरधुनी, श्रीगौराङ्गदेव की आगमन वार्त्ता को सुनकर उनके पादपद्म का सौरभाघ्राण करने के निमित्त जो पहले कपालमाली महादेव के मस्तकस्थित चन्द्रलेखा स्वरूप शफरी को आश्रय कर थी, आज वह उसको छोड़कर नवद्वीप की शोभावृद्धि हेतु आ गई है, जो द्रव स्वरूप होकर भी संसार समुद्र का शोषण करती है, जो शुभ्रा होकर भी कृष्णरूप धारण कर चुकी है, जो वसुधाश्रिता होकर भी भ्रमी अर्थात् आवर्त्त विलास की रचना करती है ।

सेयं नवद्वीपभुवो महीयसीं
शोभामिवाधायत दन्तवासिनी ।
प्रभोः पदाम्भोजयुगस्य सौरभ-
प्राप्त्यै बभूवोत्कलिकाकुलीकृता ॥८॥
(चतुर्भिः कलापम्)

वसन्ति यत्र क्षितिदेवसत्तमाः
सदा सदाचारपराः परायणाः ।
निरन्तरं वेदविधान कर्म्मसु
श्रुतिस्मृतीनां विधयः शरीरिणः ॥९॥

प्रभावभाजां भिषजां महत्तमाः
स्वधर्म्मनिष्ठाश्च विशां वराः परे ।
प्रतिष्ठया निःसहशुभ्रया सदा
समन्विता यत्र वसन्ति मानवाः ॥१०॥

यमेतमद्वैतमहाशयः स्वयं
सतां महिम्ना महितो महीयसा ।
अलब्धकारैतत् यदीयभावतः
प्रभुर्धरण्यां मनुजैर्विलोकितः ॥११॥

वह विमलाम्बु वाहिनी श्रीनवद्वीप की शोभासमृद्धि हेतु नवद्वीप के प्रान्तभाग में पहले से ही प्रवाहित हो रही है ।३।४।५।६।७।८।

जिस नवद्वीप में श्रुति एवं स्मृति प्रभृति शास्त्र विहित मूर्त्तिमान् अनुष्ठानपरायण सदाचारसम्पन्न ब्राह्मणवृन्द निवास करते हैं, उत्तम चिकित्सक वैद्य, स्वधर्म निष्ठ वैश्य-शुद्र प्रभृति मानवगण स्व स्व जातीय स्वभाव एवं जातीय धर्म पालन पूर्वक नवद्वीप को सुशोभित करते हैं, अपार महिमा सम्पन्न श्रीअद्वैत महोदय भावविभोर होकर

उवास यत्रानिशमत्युदारधी—
रधीत सर्वागमवेद कोविदः ।
सतां वरिष्ठः परमो महाशयः
श्रीवासनामा द्विजवंश चन्द्रमाः ॥१२॥

बभौ महावंशसमुद्भवः सुधी
रनेकविद्याम्बुधिपारपण्डितः ।
द्विजातिवंशैकवतंसवद्यतः
श्रीमान् जगन्नाथ इतीह विश्रुतः ॥१३॥

गुणैः समस्तैरयमेव शुद्धधी—
रधीतवेदो वरणीय एव हि ।
इतीह नीलाम्बर चक्रवर्तीना
वराय यस्मै सुधिया सुतार्पिता ॥१४॥

शचीति नाम्नातिशुचेरचीक्लृपद्—
गुणेन सौशील्यरसेन तेऽनया ।
प्रतिष्ठया शुद्धतमां गरिष्ठतां
शची हि यां नाप पुरन्दरप्रिया ॥१५॥

स्वीय जन्म ग्रहण के द्वारा नवद्वीप को अलङ्कृत किए हैं। उदारचेता सर्वविद्या विशारद परम धार्मिक द्विजकुल तिलक श्रीवास का जहाँ पर निवास है, उस नवद्वीप में महावंशसम्भूत अनेक विद्याम्बुधिपारग, द्विजकुलावतंस-श्रीमान् जगन्नाथमिश्र निवास करते थे। निखिल-गुणाकर, शुद्धबुद्धि, वेदनिष्णात, महामान्यद्विजश्रेष्ठ, श्रीनीलाम्बर चक्रवर्त्ती, श्रीजगन्नाथमिश्र को विशुद्धमति सम्भ्रान्त कुलजात समस्त विद्यालङ्कृत एवं परम विद्वान् जानकर शचीनाम्नी निज

उपेत्य तं मिश्रपुरन्दराह्वयं
निसर्गयोग्यं पदवीमुपाश्रितम् ।
वभौ शची चन्द्रकलेव नित्यशः
शची समासाद्य पुरन्दरं यथा ॥१६॥

तयोर्गृहे संवसतोः सतोः सदा
गृहस्थधर्म्मः सदुदार सासदत् ।
क्रमेणचाष्टौ तनुजाः पुरोऽभवन्
तथैव पञ्चत्वमुपाययुश्च ताः ॥१७

ततश्च तौ सन्ततमेव दम्पती
बभूवतुर्दुःखितमौ महत्तमौ ।
प्रयत्नमाधाय सुतार्थमीयतुः
प्रभोः पदाब्जं शरणं कृपामयम् ॥१८॥

नन्दिनी सम्प्रदान किए थे, शची में सुशीलतादि जो सब गुण गौरव थे, उनकी विद्यमानता की सम्भावना पुरन्दर पत्नी शची में भी नहीं रही ॥६।१०।११।१२।१३।१४।१५॥

पुरन्दर पत्नी शची के समान-शचीदेवी भी उक्त सुपथावलम्वि जगन्नाथ पति प्राप्त कर चन्द्रकला के समान प्रतिदिन वर्द्धित होने लगीं ॥१६॥

दम्पती गृह में सर्वदा अवस्थित होने से उनके गृहस्थधर्म सुन्दर रूप से अनुष्ठित हुआ था, एवं क्रमशः उक्त दम्पती की आठकन्या उत्पन्न होकर पञ्चत्व प्राप्त हुई ॥१७॥

उक्त दम्पती तदनन्तर निरन्तर दुःखित होकर पुत्र कामना से कृपामय परमेश्वर के चरणाविन्द की शरण ग्रहण किए थे ॥१८॥

ततोऽतिभाग्येन तयोरभूत् सुतः
स विश्वरूपः शुभरूपशोभितः ।
मुदं ययौ सा सुमुखी पिताप्यसौ
व्यड़म्वयच्चाधनमात्त सद्वसुम् ॥१९॥

स विश्वरूपः शुभरूपगर्वितां
तनुं वहं श्चन्द्र इव प्रकाशवान् ।
निपठ्य कालेन लघीयसाप्यसौ
समस्तविद्याम्बुधिपारमाययौ ॥२०॥

शिशुः स आसीद्वयसा लघीयसा
सुधीरधीतागमवेदसञ्चयः ।
सरस्वतीयं रसनाग्रनर्त्तकी
बभूव वश्येव सदास्य निर्भरम् ॥२१॥

अनन्तर परमेश्वर की अनुकम्पा से परम रूपवान् विश्वरूप नामक एक पुत्र रत्न प्राप्त कर विपुल धन प्राप्त दरिद्र के समान ही दम्पती सन्तुष्ट हुये थे ॥१९॥

विश्वरूप-सुन्दर रूप गर्वित शरीर को अवलम्बन कर चन्द्र के समान शोभित होने लगे थे, अल्पकाल अध्ययन से ही समस्त शास्त्र में आप निष्णात हुये थे ॥२०॥

बुद्धिमान् विश्वरूप, वयस में शिशु होने पर भी समस्त वेदार्थ अवगत हुये थे, उनकी विद्वत्ता एवं वाक् पटुता को देख कर प्रतीत होता था कि-साक्षात् सरस्वती ही वशीभूता होकर उनकी जिह्वाग्र में नृत्य कर रही है ॥२१॥

ततश्च कालेन शुभेन सुन्दरी
शची विशेषं शुशुभे शुभेक्षणा ।
भविष्यदिन्दूदयशंसिनीं पुरः
पुरन्दराशां सदृशी चकार सा ॥२२॥

शची सती भाग्यमही महीयसी
सुकुक्षिपीयूषपयोनिधौ मुदा ।
मनोरमां दोहद लक्षणश्रियं
क्षपाकरस्येव नवां कलां दधौ ॥२३॥

क्रमेण मासा दश ते त्रयोधिकाः
समीयुरासन्नतरा समाप्तताम् ।
तपस्यमासश्चरमः सुमङ्गलो
बभुव तेषां जगतः सुखैकभूः॥२४॥

अनन्तर शुभदर्शना शची, कालक्रम से गर्भवती होकर उदयिष्यमाण चन्द्रगर्भा पूर्वदिक् बधू की भाँति अर्थात् चन्द्रोदय के पहले जिस प्रकार पूर्वदिक् प्रफुल्ल होता है, उस प्रकार परम शोभिता हुई ॥२२॥

इस प्रकार भाग्यवती शचीदेवी, स्वीय कुक्षिरूप अमृतसमुद्र में चन्द्र जिस प्रकार नवकला को धारण करता है, उस प्रकार मनोरम गर्भलक्षण धारण किये ॥२३॥

पश्चात् उस रीति से त्रयोदश मास अतीत होने पर सुमङ्गल एवं जगत् सुखकर फाल्गुन मास उपस्थित हुआ ॥२४॥

असावृतूनां पतिरग्रतस्तदा
प्रभोः प्रकाशो भवितेति हर्षितः।
स्वकालमुल्लङ्घ्य निजं पदं दधा–
वार्त्तिस्तथा तद्विषये हि शोभते ॥२५॥

उपैतुकामा सहकारनायकं
नवप्ररोहामवलम्ब्य वीरुधम्।
क्वणद्भ्रमद्भृङ्गसमूहनूपुरं
वसन्तलक्ष्मीर्विपिने पदं दधौ ॥२६॥

स्ववेशविन्यासमिवाकरोदियं
प्रभोः प्रकाशो भवितेति सन्ततम्।
वसन्तलक्ष्मीः सततोत्सुका सती
सतीव कान्तागमने शुचिस्मिता ॥२७॥

स्वभावमाद्यत्कलकण्ठकाकली–
कलाविलासं दधती शुभस्वरम्।

अनन्तर ऋतुराज वसन्त, प्रभु प्रकटित होने का विलम्ब नहीं है, जानकर समय से पहले ही उपस्थित हो गया, इस विषय में उत्कण्ठा ही शोभित हुई ॥२५॥

वसन्त ऋतुलक्ष्मी, सहकार वसन्त नायक निकट उपस्थित होने की अभिलाषिणी होकर नवपल्लव शोभित लतावलम्बि अलिकुल के झङ्कार रूपनूपुर से शोभिता हुई ॥२६॥

शुचिस्मिता कुल कामिनी पति के समीप में गमनरता होने से जिस प्रकार वेश विन्यास करती हैं, उसकी भाँति मधुश्री, पति वसन्त का प्रकाश होगा जानकर निज वेश विन्यास करने लगी ॥२७॥

नवं समुद्यन्मधुपुष्प मधुरी–
धुरीणमीषद्धसितञ्च कोमलम् ॥२८॥

तमालमालादलमाधुरीमयं
बबन्ध धम्मिल्लभरं मनोहरम् ।
मधुव्रतालीमयचिल्लीवल्लरीं
प्रनर्त्तयामास सुखं मदालसाम् ॥२९॥

उन्मीलयामास च वामलोचनं
कृत्वावतंसं नवचारुपल्लवै ।
लंवंगपुष्पावलिहारहारिणी
दधार वासो नवनालिकामयम् ॥३०॥

अशोकमालादलकुङ्कुमद्रवैः
सदंगरागं विदधेऽतिहर्षिता ।
समाधुरीपुष्पपरागचन्दनै–
र्मनोहरे केशरकुट्नलस्तने ॥३१॥ (पञ्चभिः कूलकम्)

वसन्तलक्ष्मी, स्वभावमत्त कोकिलकुल के मनोहर काकलीरव से शुभस्वर एवं मकरन्द पूर्ण नवकुसुम के माधुर्यातिशय रूप मधुर हास्य को प्रकट करने लगी ॥२८॥

निविड़ तमालदल को माधुरी रूप केशकलाप बन्धन एवं मधुप श्रेणीरूप भ्रूद्वय को नृत्य कराने लगी ॥२९॥

वसन्तलक्ष्मी, मनोहर नवपल्लव से कर्णभूषण निर्माण कर वामलोचन उन्मीलित एवं लवङ्ग कुसुम रूप विहार योग्य हार, तथा नवमल्लिका रूप वसन से सुशोभिता हुई ॥३०॥

पश्चात् अशोक कुसुम के कुङ्कुम द्वारा अङ्गराग एवं मनोहर

प्रसेदुराशा दश निर्मलं बभौ
नभो ववुः पुण्यतमाश्च मारुताः ।
मनांसि सर्वस्य जनस्य भेजिरे
प्रसन्नतां स्वच्छमभून्नदीजलम् ॥३२॥

तदा शशाङ्कः परिपूर्णमण्डलः
स पौर्णमासीपरिरम्भहर्षितः ।
व्यरोचतातीव जगन्मनोरम–
श्चुम्बन् मुहुः पूर्वदिगङ्गनामुखम् ॥३३॥

असावृतूनां पतिरग्रतोऽभव–
त्तथैव पक्षः सित एव सोऽभवत् ।
तथा तिथीनां प्रवरा च पूर्णिमा
गुणानुबन्धी खलु मंगलोदयः ॥३४॥

माधुर्यमय पुष्प पराग चन्दन से परिलिप्त केशर पुष्प कुट्नल रूप स्तन मण्डल धारण करके ही मानो हँसमुख से असीम सुषमा का विस्तार करने लगी ॥३१॥

अनन्तर दशदिक् में प्रसन्नता छा गई, आकाश निर्मल होकर शोभित हुआ, सुगन्ध गन्धवह मन्द-मन्द प्रवाहित होने लगा, मानव मण्डली का मन प्रफुल्ल हुआ एवं नदी का जल निर्मल हुआ ॥३२॥

उस समय परिपूर्ण मण्डल चन्द्र पौर्णमासी के आलिङ्गन से हर्षित होकर पूर्वदिग्बधू का मुख चुम्बन कर जगत का मनोहरण के द्वारा अतिशय शोभित हुआ ॥३३॥

वसन्त ऋतु, शुक्लपक्ष, तिथिश्रेष्ठ पूर्णिमा एवं गुणयुक्त मङ्गल का उदय हुआ ॥३४॥

वनप्रियास्तत् समये मधून्मदा–
स्तदादि चक्रू सकलं जयध्वनिम् ।
तदादि लास्यं विदधुर्मधुव्रताः
स दक्षिणस्तत् प्रथमं ववौ मरुत् ॥३५॥

स निर्भर स्तम्बभरेण मन्थरो
लतां लतां प्रत्युपगूहनै र्नवैः ।
पयोजमाध्वीक निदाघवारिभृ–
द्ववौ मरुच्चन्दनशैलनन्दनः ॥३६॥

ततो जगन्मङ्गलमङ्गलोदये
जगत् प्रसादः प्रबभूव निर्भरम् ।
अजस्रमेवाश्रमशून्यतां दधौ
तमिश्रमुच्छ्रायवता तदोजसा ॥३७॥

कोकिलकुल मदमत्त होकर तत्कालीन मधुर स्वर से मङ्गल-ध्वनि करने लगे, एवं भ्रमरगण भी जयध्वनि को सुनकर मङ्गल नृत्य करने लगे, तथा दक्षिणानल प्रवाहित होने लगा ॥३५॥

मलयाचल समीरण गुच्छ भर से एवं प्रत्येक लता के आलिङ्गन से मन्थर होकर पद्म मधु एवं निदाघकालीन वरिवहन से सौगन्ध्य एवं शैत्ययुक्त होकर प्रवाहित होने लगा ॥३६॥

अनन्तर जगन्मङ्गल चैतन्यदेव का आविर्भाव समय में जगत् प्रसन्न हुआ, उनका स्वीय तेजः से अन्धकार पदार्थ सम्पूर्ण रूप से विलुप्त हुआ ॥३७॥

ततः प्रभुर्भूमिगतो महौजसा
रराज सर्व्वाः ककुभः प्रकाशयन् ।
समं समुन्मील्य सुधांशुसञ्चयः
पपात भूमाविव विद्युतां चयैः॥३८॥

तदोपरागः समभूत्तथा मुहु-
र्हरिं वदेति ध्वनिरुच्चकैर्नृणाम् ।
स्वनाम संकीर्त्तनमन्यथा नहि
प्रकाशमात्रेण भवेत् प्रकाशितम् ॥३९॥

सुधानिधिं तत्समये विधुन्तुद-
स्तुतोद सानन्दमरुन्तुदो भृशम् ।
अलं त्वया संप्रति शीतदीधितिः
समुद्गतोऽन्योस्ति भुवीति भावयन् ॥४०॥

भगवान् श्रीगौराङ्गदेव भूमिष्ठ होकर अङ्गज्योतिः से दिक्समूह को उद्भासित किये, उस समय इस प्रकार बोध होने लगा, मानों चन्द्र उदित होकर विद्युत् समूह के सहित धरातल में गिरगया ॥३८॥

श्रीमन्महाप्रभु के आविर्भाव समय में मानवों की 'हरिबोल' ध्वनि के सहित चन्द्रग्रहण प्रारम्भ हुआ, यह क्यों नहीं होगा, कारण उनका आविर्भाव मात्र से ही तो जगत् में श्रीहरिनाम प्रकाशित होगा ॥३९॥

उस समय चन्द्रोपराग छल से विधुन्तुद राहु चन्द्रोविम्ब को ग्रास करने लगा, हे निशनाथ! तुम क्यों वृथा उदित हो रहे हो, देखो, अपर चन्द्रमा का उदय पृथिवी में हो रहा है ॥४०॥

प्रभु बुभूषुर्निज नामकीर्त्तने
निरन्तरप्रेमविलासलालसः ।
तदैव वीक्षध्वमथाकरोदसौ
जगत् स्वनामामृत पुरपूरितम् ॥४१॥

अथावलोक्य श्रिय एक विभ्रम-
प्रकाश-विश्राम-महीरुहाङ्कुरम् ।
पिताच माताच सुखाम्बुधौ मुहु-
र्बभूवतुर्मज्जनमात्रचेष्टितौ॥४२॥

ततः स मिश्रः कृतपुण्यसञ्चयैः
सुतं विलोक्यैव सुखैकभूरभूत् ।
इयत्तया वर्ज्जितमर्ज्जितं धनं
द्विजोच्चयेभ्यः समादात्तदैव हि ॥४३॥

प्रभु श्रीचैतन्यदेव निज नाम सङ्कीर्त्तन एवं कृष्णप्रेम वितरण में तत्पर होंगे, तज्जन्य ही अक्षुब्ध जगत् को आपने स्वीय प्रवाह से परिपूरित कर दिया ॥४१॥

अनन्तर शचीमाता-एवं पिता जगन्नाथ, निज पुत्र को लक्ष्मी के एकमात्र विभ्रम प्रकाश विश्रामरूप महीरुह का अङ्कुर जानकर एवं स्नेह की निविड़ता निबन्धन बारम्बार दर्शन करके आनन्द सागर में निमग्न हो गये ॥४२॥

श्रीजगन्नाथमिश्र महोदय-स्वकृत पुण्य सञ्चय के द्वारा पुत्र को अवलोकन कर आह्लाद के सहित ब्राह्मणवर्ग को स्वोपार्जित भूरि-भूरि धन प्रदान करने लगे ॥४३॥

प्रकाशमात्रेण सुदक्षिणा ग्रहा
बभूवुरस्य प्रथमं सुतुङ्गकाः ।
बभूव राशिः स तु सिंहसङ्गितो
नक्षत्रमुख्यापि च पूर्वफल्गुनी ॥४४॥

मनोरमं वस्तु जगद्विराजि यत्–
तदेव तस्मै यतुकत्वमाययौ ।
तमन्तरेण क्षितिमण्डले न यन्–
मनोज्ञतापात्रमिहास्ति कश्चन ॥४५॥

समाधवः पार्वण सर्वरीपतिः–
श्रियं समेत्य द्विगुणां मनोरमाम् ।
बभूव तस्याननचन्द्रसेवको
मनोरथो धावति दुर्लभे यतः ॥४६॥

श्रीप्रभु के जन्म ग्रहण के समय ग्रहगण अनुकूल होकर तुङ्गस्थ हो गये, एवं उस समय पूर्व फल्गुनी नक्षत्र, एवं सिंहराशि का भी प्रवेश हुआ ॥४४॥

उस समय जगत् के मनोरम वस्तु समूह, श्रीगौराङ्गदेव को छोड़कर मनोहर अपर कोई नहीं हैं, यह मानकर यौतुकत्व प्राप्त हो गये, अर्थात् रत्ननिकर श्रीशचीनन्दन के समीप में स्वतः ही उपस्थित हुए थे ॥४५॥

अनन्तर वसन्त के सहित पूर्णिमा रात्री के अधिपति चन्द्र, मनोहर द्विगुण रूप से शोभित होकर भगवान् श्रीशचीनन्दन के वदन चन्द्र का सेवक हो गये, कारण जनसमूह का मनोरथ, दुर्लभ वस्तु के प्रति ही धावित होता है ॥४६॥

विनिद्रशोनाम्बुरुहाश्रयाः श्रियो
विलोचने तस्य सिषेविरे मुहुः ।
भ्रुवौ भ्रमद्भृङ्ग बधूगणोऽभज–
च्छ्रुतिद्वयं नूतन पल्लवद्युतिः ॥४७॥

तिलप्रसूनं नवमाशु सेवया
बभूव नासापुटमुन्नतश्रिया ।
सिषेविरे दर्पणविम्बविभ्रमं–
मनोरमं गण्डयुगस्य मण्डलम् ॥४८॥

नवीनबन्धूक-नवीनपल्लव–
प्रवालविम्बानि निजश्रिया मुहुः ।
जगन्मनोज्ञं युगपत् सिषेविरे
नितान्तमोष्ठाधरमस्य कोमलम् ॥४९॥

प्रफुल्ल रक्त पद्म के गर्भगत श्री, श्रीप्रभु के लोचनद्वय, चञ्चल भ्रमर बधूगण, उनके भ्रूद्वय एवं नवपल्लव समूह, श्रीप्रभु के श्रुति-युगल की सेवा करने लगे थे ॥४७॥

नवीन तिलकुसुम, स्वीय शोभानिकर के द्वारा उनके सुदीर्घ नासापुट की सेवा करने लगे, एवं दर्पण विम्बस्थ शोभा समूह उनके मनोहर गण्डयुगल की सेवा में तत्पर हो गये ॥४८॥

नवीन बान्धुलि वृक्ष के नवीन पत्र, एवं प्रवाल समूह निज शोभारूप सम्पत्ती के द्वारा उनके मनोहर कोमल ओष्ठाधर की एक कालीन सेवा करना प्रारम्भ कर दिये ॥४९॥

शरन्निशाशोभासुरसान्द्रचन्द्रिका
स्मितं सिषेवेऽस्य जगन्मनोरमम् ।
रदावलीसम्भवसम्पदुत्सुका
स्थिता परं संप्रति मौक्तिकद्युतिः॥५०॥

अपूर्व्वकार्त्तस्वर कम्बुविभ्रमः
शिश्राय कण्ठं त्रिवलीविलोभनम् ।
यथा नव-स्निग्ध-हिरण्मयद्रव—
द्युतिःसिषेवे मधुरायतौ भुजौ ॥५१॥

सुकोमलैः पल्लवराजिविभ्रमैः
समुच्छ्वसत् कोकनदश्रियांचयैः ।
अभाजिषातां मृदु-सुन्दरौ करौ
तदङ्गुलिश्चम्पककोरकाः श्रिताः ॥५२॥

महामणीनां निचयो महीयसा
निजौजसा तन्नखपङ्क्तिमासदत् ।

शारदीय निशा की सुन्दर चन्द्रिका श्रीप्रभु के जगन्मनोहर ईषत हास्य का आश्रय ग्रहण किया, एवं मुक्तामाला उनकी दन्त पङ्क्ति को अबलम्बन किया ॥५०॥

अपुर्व स्वर्णशङ्ख का विलास उनके त्रिवली विलोभन कण्ठ को आश्रय किया, नवीन उत्तप्त स्वर्ण कान्ति मानों उनके भुजद्वय की सेवा करने लगी ॥५१॥

उनके करद्वय, सुकोमल पल्लवराजि विराजित प्रफुल्ल कोकनद की अर्थात् रक्त कुमुद की शोभा की भाँति शोभित हुये, एवं उनके अङ्गुली समूह मानों चम्पक कलिका का आश्रयग्रहण किये हैं ॥५२॥

उपत्यका श्रीः कलधौतभूभृतः
सिषेव कापीमुरस्थलं गुरु ॥५३॥

मृगेन्द्रमध्यस्य विलासभासुर-
स्तदीयमध्यं क्रशिमा समासदत्
अधिश्रितः पल्लवविभ्रमोदय-
स्तदीयनाभिं ललितश्रिया युतः ॥५४॥

तदुरुयुग्मं क्रमवृत्तकोमलं
हिरण्यरम्भाद्युतयः समाश्रिताः ।
विलोहिताम्भोजकला समुद्गमः
सुकोमलं श्रीयुततत्पदद्वयम्॥ ॥५५॥

अथेह नीलाम्बरचक्रवर्त्तिना
समागतेनातिसुखान्तरात्मना ।
गुणैरनेकैर्गणितैर्मुदं ययौ
शची च सा मिश्रपुरन्दरः स च॥५६॥

महामणिसमूह मानों स्वीय सुपूजित पराक्रम के सहित उनकी नख पङ्क्ति का आश्रय ग्रहण किये हैं, एवं स्वर्ण पर्वत की उपत्यका की शोभा जैसे उनके गुरुतर विशालवक्षः स्थल की सेवा करने लगी ।५३।

श्रीप्रभु के मध्यस्थल केशरी के मध्यदेश के तुल्य कृश है, नाभि-मण्डल, काञ्चन कमल के समान शोभा को विस्तृत करने लगे ।।५४।

उनके क्रमवृत्त एवं कोमल उरुद्वय, स्वर्ण रम्भा के समान एवं श्रीचरणद्वय, रक्त पद्म के समान शोभा से मण्डित हो गये ।।५५।।

अनन्तर मातामह श्रीनीलाम्बर चक्रवर्त्ती, माता-शची, पिता श्रीजगन्नाथमिश्र, प्रभु के रूप लावण्य एवं अगणनीय गुण वृन्द का दर्शन कर सुतृप्त हुये थे ।।५३

समुद्धरिष्यत्यसकृन् कुलद्वयं
पितुश्च मातुश्च सुखावहो भृशम् ।
इतीह सर्व्वः कथयन्ननेकधा
मुदं परामाप निरस्तकल्मषः ॥५७॥

स जातकर्म्माण्यकरोन्महामतिः
सुखैकभू र्मिश्रपुरन्दरः क्रमात् ।
प्रसून ताम्बूल-सुगन्धि-चन्दनै-
र्द्विजातिसंघान् समपूजयन्मुहुः ॥५८॥

क्रमदथोत्थानविधानमङ्गलं
चकार हृष्टो जगदेकपूजितः ।
दिने दिने तद्वयसा समं सुखम्
बभूव पित्रोरतिभूमिमागतम् ॥५९॥

अन्यान्य नागरिकगण कहने लगे–सर्व सुखावह यह बालक, पितृमातृ उभयकुल को पवित्र करेगा, सानन्द चित्त से उसप्रकार कहते कहते पूर्व सञ्चित पाप राशि से मुक्त होकर परमानन्दित वे सब हुये थे ॥५७॥

श्रीजगन्नाथमिश्र महाशय, सन्तान के जात कर्मोपलक्ष्य में चन्दन कुसुम ताम्बूल के द्वारा द्विजगण की पूजा करने लगे ॥५८॥

अनन्तर जगन्मान्य श्रीजगन्नाथमिश्र, पुत्र के मङ्गलार्थं प्रफुल्ल मानस से पुत्र का औत्थानिक कार्य्य अर्थात् सूतिका गृह से पुत्र को स्थानान्तरित किये, कालक्रम से सन्तान की वयोवृद्धि जिस परिमाण में होने लगी उन सब की सुख समृद्धि की वृद्धि भी उस परिमान से हुई ॥५९॥

ततः स कालेन सुजानुमण्डल–
द्वयेन भूमौ विजहार भूयशः ।
चिरं वियोगाकुलितात्मनः क्षिते–
र्जहार तापं सकलाङ्गसङ्गमैः ॥६०॥

कलस्य पीयूषपयोधिविस्फूर–
त्तरङ्गविप्रुट्प्रकरस्य कोमलैः ।
वचो विलासस्य कियद्भिरुदगमै–
र्बभौ पितुर्मानसहंस उत्सुकः ॥६१॥

भविष्यतीदं निजकीर्त्तनादिभि
र्विलासलावण्य सुधामयैर्जगत् ।
इतीव विश्वम्भर इत्युदारधी
रचीकल्पन्नाम मनोरमाशयः ॥६२॥

अनन्तर श्रीप्रभु, स्वीय जानुमण्डल द्वारा धरा को स्पर्ष करके इतस्ततः गमना-गमन करने लगे थे, उस उपक्रम में श्रीप्रभु के सर्वाङ्ग स्पर्श से चिरविरह ताप निर्वापित होने पर धरणी अपूर्व परितृप्त हुई थी ॥६०॥

सुधासमुद्र की तरङ्ग की भाँति मनोहर पुत्र के वाग् विलास से मुग्ध होकर पिता का मानसहंस उत्सुक होकर उक्त सुधासिन्ध में अवगाहन किया ॥६१॥

प्रभु,-सुधास्वरूप विलास लावण्य एवं निज नाम सङ्कीर्त्तन के द्वारा जगत् को परितृप्त करेंगे, तज्जन्य ही क्या उनके पिता उनका नामकरण 'विश्वम्भर' किये थे? ॥६२॥

प्रतप्तकार्त्तस्वरशैलभासुर
स्फुरत्तनुं स्मेरमुखेन्दुविभ्रमः ।
विलोलनीलालकभालमण्डलो
रराजराजन्मरुदंशुकोऽसकौ ॥६३॥

प्रभुः समासाद्य सशैशवं नवं
नवेन्दुवन्नित्यनवं व्यवर्द्धत ।
अशेषमाधुर्य्यनिधेः समाहृतं
महा-महा-रत्नमिवातिहर्षदम् ॥६४॥

झणज्झणत्कारमनोज्ञकङ्कण
प्रवाल-मुक्ता-मणिहारविभ्रमै-
र्नितम्बविम्बैकविलम्बिकिङ्किणी-
रवेण शश्व ' कुतुकी ननर्त्त सः ॥६५॥

अथैष कालेन शनैः शनैः क्षितौ
पदारविन्दं मधुमाधुरीमयम् ।

तप्त काञ्चन के तुल्य उनकी अङ्गकान्ति, पुर्णिमा के चन्द्र-मण्डल के समान उनकी मुखमण्डलश्री, चञ्चल अलकावलि शोभित ललाट देश एवं परिधेय दिग्वसन शोभित होने लगे थे ॥६३॥

तदनन्तर चन्द्र कलाके समान परिवर्द्धित सुधा सागर की भाँति उनकी शैशवावस्थ को देखकर दर्शकवृन्द निःसीम आनन्दित्त हुये थे ॥६४॥

श्रीचैतन्य देव झणत्कार शब्द विशिष्ट मनोज्ञ कङ्कण, प्रवाल, मुक्ता, एवं मणिमयहार की शोभा से तथा नितम्बावलम्बि किङ्किणी के मनोहर रव से कौतुकी होकरनृत्य करने लगे थे ॥६५॥

करुणा निधि शचीनन्दन यथासमय धीरे धीरे भूमि में मधु

न्यस्यन्नमुष्याश्चिरविप्रयोगजं
जहार तापं करुणापयोनिधिः ॥६६॥

खेलाविलासेन वयस्यबालकै-
र्विहर्त्तुकामः कमनीयविग्रहः
नवैर्नवैः पल्लवसञ्चयैरमून्
जघान तैस्तैर्मुदितैः स चाहतः ॥६७॥

तमेकदा तैः शिशुभिर्निरन्तरं
खेलन्तमेनं जननी विलोक्य सा ।
अभूद्विधर्त्तुं कृतकैतवं रुषा
समुद्यता तं क्षणमत्युदारधीः ॥६८॥

विलोक्य तामित्थमसौ रुषान्वितो
बभञ्ज भाण्डानि बहूनि सन्ततम् ।
तमीदृशं तत्र विलोक्य सा शची
बबन्ध भीता स्वयमप्यतिस्फुटम् ॥६९॥

माधुरीमय पदारविन्द सञ्चालन के द्वारा पृथिवी की चिरविरहजात यातना का अपनोदन किये थे ॥६६॥

अनन्तर अति सुकुमार जगन्नाथ कुमार विहारार्थ बालकगणों के सहित क्रीड़ा विलास में प्रवृत्त होकर बालक वृन्द के अङ्ग में आघात करने लगे, एवं उनसब के हस्त विक्षिप्त पल्लव द्वारा निज कोमलाङ्ग को भी ताड़ित करने लगे थे ॥६७॥

एकदा जननी बालक को उस प्रकार क्रीड़ा करते देखकर सरोष मानस से पकड़ने के निमित्त उद्यत होने पर बुद्धिमान् प्रभु विश्वम्भर उसप्रकार देखकर विरक्ति के सहित क्रीड़ाभाण्ड समूह तोड़ने लग गये, यह देखकर माताने भीता होकर बालक का बन्धन किया ।६८-६९।

उपर्युपर्य्याहितभाण्डसंहतौ
सुगर्हितोच्छिष्टविसर्ज्जनस्थले ।
जगाम मातुः पुरतो महाप्रभुः
प्रकशयन् ज्ञानपरां स विज्ञताम् ॥७०॥

विलोक्य तत्रात्यशुचिस्थले गतं
सुतम् शची प्राह् भयाकुलक्रमम् ।
जहीहि् ताताशुचिदेशसंस्थितिं
ममाङ्कमागच्छ विधाय शुद्धताम् ॥७१॥

निशम्य मातुर्वचनं महाप्रभु
र्न्यरूपयत् सच्चिदचित्स्वरूपताम् ।
अवेहि् मातर्वचनं ममेदृशं
जहि् भ्रमं चेतसी विभ्रमाकुले ॥७२॥

अनन्तर महाप्रभु जननी के प्रति रुष्ट होकर उपर्य्युपरि भावापन्न भाण्ड समूह द्वारा परिपूर्ण अपवित्र उच्छिष्ट विसर्जन स्थल में जाकर ज्ञानी एवं पण्डित के समान वाग्‌जाल विस्तार करते करते माता के निकट उपस्थित हुये ॥७०॥

तब शची, अत्यन्त को अशुचि स्थानस्थित सन्तानको कहने लगीं, अरे बाप ! विश्वम्भर ! तुम शुचि होकर मेरे अङ्क में आओ ॥७१॥

अनन्तर महाप्रभु, मातृवाक्य को सुनकर सत् एवं असद्वस्तु विचारच्छल से उनको ज्ञानयोग प्रदान करते हुये कहने लगे–हे मातः! अवहित होकर मेंरे वाक्यानुसार मायाकुलित चित्र विभ्रम समूह का परित्याग करो ॥७२॥

इदं हि विश्वं सचराचरं तु य-
द्विलोक्यते तद्भ्रमएव केवलम् ।
पवित्रता वाप्यपवित्रतापि वा
कथं भवेदम्ब विचित्रमेव तत् ॥७३॥

यतो ह्यनानात्वइहैतदात्मनो
घटेत नैवेदमहं ममेत्यपि ।
स एक आत्मैव सदावशिष्यते
तदन्यदेतत् सकलं हि विभ्रमः ॥७४॥

इदं हि यद्वा सुरमर्त्त्यरक्षसां
तनूषु सर्व्वासु वसन्ति पञ्च ते ।
क्षितिर्जलं व्योम महो मरुत्तत-
स्तदात्मकं सर्व्वमभिन्नमेव हि ॥७५॥

मातः ! परमेश्वर भिन्न दृष्ट चराचरात्मक निखिल भ्रमात्मक हैं। पवित्रता एवं अपवित्रता की वार्ता को सुनकर मैं विस्मित हो रहा हूँ ॥७३॥

कारण-आतमा एक है, अनेक नहीं है, यदि आतमा में नानात्व नहीं है, तब, "त्वं एवं अहं" इत्यादि वाक्य की घटना कैसे सम्भव होगा ? कारण एक आतमा व्यतीत अवशेष कुछ भी नहीं रहेगा, अतः यह सब भ्रम हैं ॥७४॥

और भी जगत् में अथवा देव, मनुष्य, राक्षस, प्रभृति के शरीर में पञ्चभूत विद्यमान हैं, सुतरां समुदाय ही अभिन्न पदार्थ हैं ॥७५॥

अतः पवित्रं सकलं हि वस्तुतो
नचापवित्रं कियदप्यदो भुवि ।
इत्थं वदन्तं तमुदारधीः शची
दधार सा पाणियुगेन सत्वरा ॥७६॥

ततः समानीय सुरापगाजलं
सुतं परिस्नाप्य मुदं परां ययौ ।
ततश्च कालेन तथैव तं शची
विलोक्य तत्रैव ततर्ज्ज भाषितैः ॥७७॥

पुनः पुनर्मन्दमतेऽशुचिस्थले
प्रयासि किं किं नु विरुद्धमीहसे ।
इति क्रुधा लोहित-लोल-लोचन-
श्चुकोप मातुर्वचनान्तरे प्रभुः ॥७८॥

अतएव पञ्च भूतात्मक शरीर यदि अपवित्र नहीं होता है, तब तो जगत् में और अपवित्र कुछ भी नहीं है। पुत्र के मुख से यह वार्ता सुनकर माता ने बालक को सत्वर पकड़ लिया ॥७६॥

अनन्तर भागीरथी वारि से पुत्र को स्नान कराकर माता परम सन्तुष्ट हुई। अपर दिन शची ने बालक को पूर्ववत् खेलते देख कर यह कहकर तिरस्कार किया ॥७७॥

अरे दुर्बुद्धि बालक! तुम क्यों बारम्बार अशुचि स्थान को जाते रहते हो? तेरा हिताहित विवेक क्या नहीं है? तब महाप्रभु, वाक्य को सुनकर ही चञ्चल लोचनद्वय को आरक्त करके कहने लगे ॥७८॥

मुहुः पुरोक्तं किमपीह वर्त्तते
नचापवित्रं सकलं हि चिन्मयम् ।
तथापि गर्हां कुरुषे सदैव मा-
मितीह लोष्ट्रेण जघान मातरम् ॥७९॥

तदा तदाघातकृतव्यथार्द्दिता
पपात भूमौ मृदुला स्वभावतः ।
ततः स हा मातरिति त्वरान्वितो
वदंस्तदङ्केष्वविशद्‌ व्यन्मनाः ॥८०॥

स्त्रियः समागत्य सुशीतलैर्जलै-
स्ततस्तदास्यं सिषिचुः कृतत्वराः ।
मुमोद सापि प्रतिरुद्धया धिया
तदङ्गसङ्गामृतपूरसेचनैः ॥८१॥

जननी! मैंने पहले ही आपको कहा कि—समस्त जगत् चिन्मय है, इस में अपवित्र वस्तु कुछ भी नहीं है, तथापि आप क्यों बारम्बार तिरस्कार करती रहती हैं? यह कहकर क्रुद्ध होकर लोष्ट्र के द्वारा उन्होंने माता को आघात किया ॥७९॥

स्वभावतः कोमलाङ्गी शची पुत्र के लोष्ट्राघात से व्यथित होकर भूमितल में पतित होने से महामति विश्वम्भर आर्द्रचित्त से हा मातः! हा मातः! कहते कहते शीघ्र उनके क्रोड़ में प्रविष्ट हो गये ॥८०॥

यह देखकर स्त्रीगण सत्वर वहाँ आकर श्रीशची के मुख-मण्डल में सुशीतल जल सिञ्चन करने से शची सचेतन हो गयीं, एवं पुत्र के अङ्गसङ्गरूप अमृत प्रवाह के सेचन से आनन्दानुभव करने लगीं ॥८१॥

जगाद काचित् जगदेकवल्लभं
द्रवन्मना नर्म्मपरा महाप्रभुम् ।
ददासि मात्रे यदि नारिकेलकं
तदैव सद्यः समुपैति सुस्थताम् ॥८२॥

इतीदमस्या वचनं निशम्य स
त्वरायुतस्तन्निकटाद्बहिर्गतः ।
ददौ तदा तत्क्षणपातनेन तत्–
सहार्द्रवृन्तं सहसा फलद्वयम् ॥८३॥

विलोक्य तास्तत्फललम्भनं शिशो–
र्दुरापमन्यैरपि तत् निसर्गतः ।
सुविस्मिता ऊचुरिमं द्विजस्त्रियः
कुतस्त्वया लब्धमिदं फलद्वयम् ॥८४॥

सहुङ्कृतैस्ताः सहसातिकोपतो
निवारयामास न किञ्चिदूचिवान् ।

उस समय एक रमणी आर्द्रचित होकर परिहास चञ्चल से जगदेकवल्लभ महाप्रभु को कही, वत्स ! तुम यदि जननी को एक नारिकेल लाकर दे सकते हो तब जननी सद्य सुस्थता प्राप्त करेगी ।८२।

उस कथन को सुनकर महाप्रभु सत्वर वहाँ निर्गत होकर तत्-क्षणात् आर्द्रवृन्त युक्त नारिकेल फलद्वय को लाकर प्रदान किये ॥८३॥

शिशु के पक्ष में जो अत्यन्त दुष्प्राप्य है, इस प्रकार फलद्वय का आनयन को देखकर द्विजपत्नीगण विस्मित होकर पूछने लगीं वत्स ! कहो, तुमने कहाँ से फलद्वय को प्राप्त किया ? ॥८४॥

उस समय महाप्रभुने--प्रत्युत्तर प्रदान न करके क्रोधारुणलोचन

किमेतदाश्चर्य्यममुष्य चेष्टितं
न हि प्रजेशोपि भवोपि वेत्ति यत् ॥८५॥

कदाचिदेषा निजमन्दिरे शची
सुतेन सार्द्धं शयिता निशान्तरे ।
पुरीमनेकैः परिपूरितां मुहु-
र्जनैरिवालक्ष सुतं जगाद तम् ॥८६॥

प्रयाहि तात स्वपितुर्गृहं द्रुतं
तथेति यातस्य स विप्रकर्षतः ।
मनोरमः सुन्दरपादपद्मयो-
र्ध्वनिस्तुलाकोटिभवो व्यवर्द्धत ॥८७॥

पिता च माता च सुनूपुरस्वनं
पदाब्जयोः केवलयोर्मनोरमम् ।

से हुङ्कार करके निषेध किया। उससे रमणीगण परस्पर कहने लगीं बालक की कैसी आश्चर्य चेष्टा है ? ब्रह्मा अथवा शिव कोई भी इसको जान नहीं सकते हैं ॥८५॥

अपर किसी एकदिन रात्रिकाल में शची शिशु को क्रोड़ में लेकर शयन कर रही थी, उस समय गृह को लोकपूर्ण देखकर निज अङ्कशायी सन्तान को बोली ॥८६॥

वत्स ! तुम शीघ्र पिता के निकट जाओ, विश्वम्भर जननी का आदेश प्रति पालनार्थ गमन करने पर दूरता निबन्धन उनके चरणा-रबिन्द युगल की नूपुर ध्वनि अतिसुन्दररूप से झङ्कृत होने लगी ।८७।

उस समय, शची माता एवं पिता जगन्नाथ मिश्र अकाल प्रफुल्ल

अकाल-संफुल्ल-पयोरुहोल्लस-
न्मधुव्रतस्येव रवं तदाश्रृणो ॥८८॥

परस्परं तौ सभयं समूचतुः
कुतस्तुलाकोटिरवो महानिति ।
अथैव मिश्रो निकटागतं सुतं
समाश्लिषन्नूपुरशब्दहर्षितः ॥८९॥

अथाग्रजोद्वयष्टसमासमाश्रितः
स विश्वरूपः समुपेत्य सद्वयः ।
गुणाम्बुधेः पारमपारमागतो
विदन्निदं विश्वमिवात्मनः समम् ॥९०॥

बभूव सर्व्वज्ञतया समन्वितः
प्रभोः पदाम्भरुहसक्तचेतनः ।
जगत्यनासक्तमतिर्म ङ्गमतिः
समाश्रितो निर्भरशान्तदान्तताम् ॥९१॥

पद्मस्थ मधुकर की ध्वनि के समान पुत्र के चरण युगल की नूपुर ध्वनि को सुने थे ॥८८॥

अनन्तर परस्पर सभय से कहने लगे,–अहो ! कहाँ से इस प्रकार सुमहत् नूपुर ध्वनि हो रही है। मिश्र महाशय, नूपुर शब्द से आह्लादित होकर समीपागत पुत्र को आलिङ्गन किये थे ॥८९॥

श्रीमन्महाप्रभु के अग्रज षोड़श वत्सर वयःक्रम में पदार्पण कर विश्व को आतमतुल्य जानकर अपार गुण समुद्र का पार गमन किये थे ॥९०॥

आप सर्वज्ञता सम्पन्न एवं श्रीमन्महाप्रभु के पादपद्म में आसक्त

पिता विचिन्त्याथ विवाहमङ्गलं
गुणस्य रूपस्य तदोचितां बधूम् ।
स चित्तवृत्त्या नितरां व्यमीमृगत
क्षणेन तां तत्कलनां विवेद सः ॥९२॥

स विश्वरूपः पितरं तथाविधै-
र्मनोरथैरुत्सुकमाकलय्य तम् ।
गृहं विहाय द्युनदीञ्च सन्तरन्
ययौ जिहासुः सकलं महाशयः ॥९३॥

चकार सन्न्यासमदभ्रविभ्रमो
गुणाम्बुधिः सोऽधिसमापितक्रियः ।
न निःस्पृहाणां जगतीह निष्फले
महाधियां धावति चित्तविभ्रमः ॥९४॥

वित्त थे, एतद्व्यतीत उनकी आसक्ति किसी अपर वस्तु के प्रति नहीं थी। शमदम गुणादि उनको आश्रय कर अवस्थित थे ॥९१॥

अनन्तर पिता जगन्नाथ मिश्र, विश्वरुप के माङ्गलिक विवाह संस्कार के निमित्त चिन्ता कर उनके रूपगुण के अनुरूप एक कन्या का अन्वेषण मन ही मन करने लगे थे, उस समय श्रीविश्वरूप भी उस अभिप्राय को जान गये थे ॥९२॥

जब विश्वरूप ने उक्त अभिप्राय सिद्धि के निमित्त पिता को समुत्सुक देखा, तब आपने निखिल विषय वासना को छोड़कर गृह विसर्जन एवं गङ्गासन्तरण पूर्वक प्रस्थान किया ॥९३॥

अदभ्रविभ्रम, गुणसागर विश्वरूप कार्य्य समूह को सम्पन्न करके सन्न्यास अवलम्बन किए थे, कारण–सुबुद्धि एवं निस्पृह साधु जनगण का चित्तविभ्रम, कदापि इस निष्फल जगत् में नहीं होता है ॥९४॥

तदैतदाश्रुत्य पिता प्रसूश्च सा
विलापमुच्चै रकरोन्मुमोह च ।
ततः समाश्वास्य हिताभिलाषुकौ
सदाशिषं तत्र सुते प्रचक्रतुः ॥९५॥

अयं वयो नूतनमेव संश्रितो
व्रताधिशिश्राय यतित्वमेव यत् ।
तदा विधातः करुणा विधीयतां
सदात्र धर्म्मे निरतो भवेद्यथा ॥९६॥

इतीह भूयोतिविलप्य दुःखितौ
कनिष्ठमेतस्य मनोरमं सुतम् ।
ननन्दतुः क्रोड़गतं विधाय तौ
सुनिर्वृतौ तत्तनुसङ्गशर्मभिः ॥९७॥

अनन्तर पिता जगन्नाथ मिश्र, जननी शचीदेवी, विश्वरूप का सन्न्यासावलम्बन को सुनकर उच्चैःस्वर में विलाप करते करते मूर्च्छित हो गये थे। कुछ समय के बाद कथञ्चित् आश्वस्त होकर तदीय हितार्थ उनको यथेष्ट आशीर्वाद प्रदान किये थे ॥९५॥

पश्चात् विधाता को उद्देश कर कहे थे—हे विधातः! यह बालक नूतन वयस में सन्न्यास ग्रहण किया है, अतएव इसके प्रति आप करुणा करें, जिससे इसकी सर्वदा अनुरक्ति धर्म में हो ॥९६॥

जगन्नाथ मिश्र एवं शची देवी दुःखित चित्त से यह कहकर बारम्बार विलाप करने लगे थे, अनन्तर विश्वरूप का कनिष्ठ एवं मनोरम पुत्र गौराङ्ग को अङ्ग में धारण कर तदीय अङ्ग स्पर्श जनित सुख में निमग्न होकर शोक सम्बरण किये थे ॥९७॥

उवाच वाचामृतपूर पूर्णया
मृतस्य जीवप्रदया दयाम्बुधिः ।
तदङ्गवल्लीमवगाह्य मातरं
तथैव तातञ्च सदा द्रवन्मनाः ॥९८॥

गतोग्रजो मे भवतीमुपेक्ष्य य-
त्तितिक्षयासौ पितरञ्च शान्तिमान् ।
मयैव कार्य्या जनकस्य तेऽपि च
क्षणात् सपर्य्या सकलैव नित्यशः ॥९९॥

तदा तदाकर्णयतोर्वचोमृतं
कलस्वरेणातिगभीरमर्थतः ।
तदैव पित्रोरभवत् परिप्लुतं
सुखैरनेकैर्वपुरुत्तनूरुहम् ॥१००॥

दया सागर श्रीगौराङ्ग देव, आर्द्रचित्त से जननी की अङ्गलता को अवलम्बन कर अमृत प्रवाहपूर्ण जीवनप्रद वाक्य के द्वारा माता पिता को कहे थे ॥९८॥

मातः! यद्यपि शान्त गुण सम्पन्न मदीय अग्रज विश्वरूप तितिक्षा के सहित आपसब की उपेक्षा कर प्रस्थान किये हैं, तथापि आपसब दुःखानुभव न करें। मैं स्वल्पकाल के मध्य में ही आपसब के परिचर्य्या कार्य्य का सम्पादन करूँगा ॥९९॥

जिस समय पिता माता ने उस प्रकार गम्भीरार्थ सुमधुर वचनामृत का श्रवण किया, उस समय ही उनके शरीरद्वय रोमाञ्चित होकर अपार आनन्दाम्बुधि में निमज्जित हुआ ॥१००॥

तदङ्गसङ्गामृतधारया तया
मनस्तयोराप्लुतमेव निश्चितम् ।
असंवृतान्तः परिवाहितेव सा
यदिक्षणाद्वन्द्वपथेन निर्गता ॥१०१॥

पठन् सपर्य्यापर एव सर्व्वदा
तयोर्महाकारुणिकः सुखावहः ।
वयस्यभावेन वयस्यबालकै-
र्निरन्तरं खेलति खेलयत्यपि ॥१०२॥

स्वतन्त्रमालोक्य कदाचिदात्मजं
पिता वचोभिर्निरभर्त्सयन् मुहुः ।
ततोरजन्यां शयितोतिशुद्धधी-
र्ददर्श संस्वप्नमदभ्रभाग्यवान् ॥१०३॥

परम प्रिय श्रीगौराङ्ग देव के अङ्ग-सङ्ग रूप अमृतवर्षणसे उनके शरीर परिप्लुत हुआ, एवं नेत्रद्वय से अजस्र आनन्दाश्रु क्षरित होने लगा ॥१०१॥

महा कारुणिक सुखप्रद श्रीगौराङ्ग देव सर्वदा पिता-माता की परिचर्य्या करते थे, एवं सहाध्यायी बालक वृन्द के सहित निरन्तर खेलते थे, एवं वयस्य वृन्द को खेलने के निमित्त प्रोत्साहित करते थे ॥१०२॥

एकदिन सुबुद्धि सम्पन्न पिता जगन्नाथ मिश्र क्रीड़ारत बालक को तिरस्कार कर रात्रिकाल में सुखपूर्वक निद्रित थे, उस समय स्वप्न में सौभाग्य वशतः श्रीगौराङ्ग को आपने देखा ॥१०३॥

सुतः स्वतन्त्रो मम किं सदा भवे
दतीवखेलाकुललोलमानसः ।
इतीव कृत्वा बहुमन्यते भवान्
नचैवमाविष्कृतगौरविग्रहम् ॥१०४॥

पशुर्यथा स्पर्शसुखं महामणे-
र्भजन्नपीमं परिलोकयन्नपि ।
न वेत्ति तत्तत्सदसद्विवेचनां
स्वभावमुग्धस्य विवेचना कुतः ॥१०५॥

इत्थं वचोभिर्वंत भर्त्सयन्नमु
द्विजोजगादातिरुषारुणेक्षणः ।
प्रबुद्ध आसीत्तत एव सन्मनाः
सुविस्मितस्तत् सकलं जगाद च ॥१०६॥

एक ब्राह्मण आकर मुझको कहा—अहे मिश्रवर! "पुत्र स्वतन्त्र है, अर्थात् किसी का बाध्य नहीं है, सर्वदा खेल में आसक्त है, मेरा क्या होगा?" यह मानकर आविष्कृत श्रीगौराङ्ग विग्रह को आप बहुमान प्रदान नहीं करते हैं ॥१०४॥

जिस प्रकार पशु, महामणि का स्पर्शसुख ग्रहण एवं स्वचक्षु से दर्शन करके भी उसकी सदसत् विवेचना करने में अक्षम है, उसके समान ही मैं आपको देख रहा हूँ। स्वभाविक मुग्ध व्यक्ति के निकट विवेचना की वार्त्ता कहाँ है? ॥१०५॥

ब्राह्मण उस प्रकार क्रुद्ध होकर आरक्तनेत्र से तर्जन गर्जन कर कहने पर मिश्र महोदय की निद्रा टूट गई एवं आप हृष्टचित्त होकर विस्मय के सहित सब के निकट समुदाय वृत्तान्त को कहे थे ॥१०६॥

निशम्य तंस्वप्नमतीव विस्मिता
बभूवुरुत्साहपराश्च मानवाः ।
मनोवचोभिः पुरुषर्षभंप्रभुं
महाशयोसाविति साधु मेनिरे ॥१०७॥

ततः कदाचिन्निवसन् स्वमन्दिरे
समुद्यदादित्यमहोमहोज्ज्वलः ।
स्वतेजसाध्वस्ततमिस्त्रसञ्चयो
जगाद देवो जननीं पुरस्थिताम् ॥१०८॥

संश्रूयतां मातरिदं वदामि य-
त्तथेति तस्योदितमाददे शची ।
यमुच्यते तात समस्तमेव तत्
करिष्यते तत् वद तात भाषितम् ॥१०९॥

श्रोतृवर्ग—जगन्नाथ मिश्र के मुख से स्वप्न वृत्तान्त को सुनकर विस्मित हो गये थे, एवं मन और वाक्य के द्वारा उत्साह पूर्वक उन पुरुष श्रेष्ठ श्रीगौराङ्ग देव को "यह साधु है" इस प्रकार मानने लगे ॥१०७॥

एकदिन श्रीगौराङ्ग देव सूर्यतुल्य निज अङ्ग की प्रभा से अन्धकार राशि को विनष्ट कर निज मन्दिर में उपविष्ट होकर निज जननी को कहे थे ॥१०८॥

मातः! मैं जो कुछ कह रहा हूँ, आप यत्न पूर्वक श्रवण करें। प्रत्युत्तर में शची माता बोली—वत्स! तुम जो कुछ कहोगे, मैं वही करूँगी ॥१०९॥

कदापि मातर्हरिवासरे त्वया
न कार्य्यमिवादनमित्यसौ पुनः ।
जगाद पश्चात्तनुजोदितं शची
समाददे निर्भरभाग्यभूषिता ॥११०॥

पुनश्च ताम्बूलफलादि शुद्धिम-
न्निवेदितं यत्तदपास्य मातरम् ।
जगाद मातः परिपालयात्मनः
सुतस्य देहं चलितोऽहमञ्जसा ॥१११॥

स इत्थमुत्थाय महाप्रभुः क्षितौ
पपात शम्पायुतकोटिकोटिवत् ।
इतीममालोक्य विसंज्ञमाकुला
सिषेच गङ्गासलिलैः शची चिरम् ॥११२॥

महाप्रभु बोले—मातः! आप कदाच हरिवासर (एकादशी) में भोजन ग्रहण न करें, अनन्तर भाग्यवती शची ने भी पुत्र के कथित विषय को अङ्गिकार किया ॥११०॥

अनन्तर शुद्ध ताम्बूल एवं फलादि जो कुछ उनको दिया गया था, समस्त परित्याग कर जननी को बोले—मातः! मैं यथार्थ कह रहा हूँ, सहसा मेरा शरीर कम्पित हो रहा है, अतः आप स्वीय पुत्र के देह का परिपालन करें ॥१११॥

उस प्रकार कहकर महाप्रभु भूतल में गिर गये, तब उनको देखकर बोध होने लगा, जिस प्रकार कोटि-कोटि विद्युत् पुञ्जीभूत होकर भूतल में निपतित हैं। शची धराशायी पुत्र को बहुक्षण यावत् अचेतन देखकर व्याकुल हो गयीं, एवं भूरि-भूरि गङ्गाजल आनयन पूर्वक उनके शरीर में सिञ्चन करने लगीं ॥११२॥

ततः प्रबोधस्थिरया धिया समं
नवप्रबोधाम्बुजराजदीक्षणः ।
समुत्थितोऽसौ महसा निसर्गिणा
समावृतः शारदचन्द्रवद्बभौ ॥११३॥

तदा तदाश्रुत्य पितापि तादृशं
जगाम भूयः सह विस्मयं स्वयम् ।
उवाच वाचश्च सदर्थवाचिकाः
किमेतदेतत् किमितीतिरीतितः ॥११४॥

तदाशयं तच्चरितं तदिङ्गितं
विदन्ति तद्विभ्रममत्र के जनाः ।
नहि स्वयम्भूः श्रुतयश्च ताः स्वयं
भवोऽपित यत् प्रभोर्वो भविष्णवः ॥११५॥

उस उपचार से श्रीगौराङ्ग देव प्रबोधित एवं पूर्वावस्था को प्राप्त कर स्वभावसिद्ध स्वीय कान्ति द्वारा शारद चन्द्र के समान शोभित हुये थे ॥११३॥

अनन्तर पिता-जगन्नाथ मिश्र, उक्त विषय श्रवण कर पुत्र के निकट उपस्थित हुये थे, एवं विस्मय के सहित सदर्थ वाक्य से कहे थे-वत्स ! यह तुम्हारी कैसी रीति है ? ॥११४॥

श्रीप्रभु के आशय, चरित्र, इङ्गित, एवं विलास को कौन जान सकते हैं ? कारण—ब्रह्मा, स्वयं महेश्वर एवं श्रुति समूह भी जिनका यत् किञ्चित विषय को भी जानने में सक्षम नहीं हैं ॥११५॥

गुरोर्गृहे सम्वसता महाधिया
समस्तविद्याः सकृतार्थताः कृताः ।
क्षणेन तस्मिन् विविशुश्च ताः स्वयं
पयोनिधौ नद्य इवोत्सुका भृशम् ॥११६॥

ततः पिता तस्य निवृत्तयौवनो
जरां स भेजे ज्वरितोऽतिदुर्बलः ।
तथाविधं तं परिलक्ष्य स प्रभु–
र्निनाय गङ्गातटभूमिमाकुलः ॥११७॥

पितुः पदं वक्षसि दुःखितात्मना
निधाय तेपे नितरां कृपावता ।
पितः क्व मां प्रोज्झ्य सुदीनमेककं
शिशुं कथं हन्त भवान् गमिष्यति ॥११८॥

अनन्तर बुद्धिमान् श्रीगौराङ्ग देव गुरुगृह में अवस्थान पूर्वक स्वल्पकाल के मध्य में ही सर्वविद्या पारदर्शी हुये थे, इससे प्रतीत हुआ सागराभिमुखी नदी के समान समुदाय विद्या जैसे समुत्सुक होकर उनमें स्वयं प्रविष्ट हो रही हैं ॥११६॥

उनके पिता का शरीर यौवनावसान से जरा क्रान्त होकर ज्वर से अभिभूत होने से अत्यन्त दुर्बल हो गया था, यह देखकर महाप्रभु व्याकुल चित्त से उनको भागीरथी तीर में ले गये थे ।११७।

अनन्तर उनके चरण युगल हृदय में धारण कर यह कह कर परिताप करने लगे–हा पितः! मैं अतिशय निःसहाय शिशु सन्तान हूँ, मुझको छोड़कर आप कैसे चले जायेंगे ? ॥११८॥

निशम्य वाक्यामृतमस्य हर्षदं
ततोन्तकाले द्विजपुङ्गवोऽस्रकौ ।
समर्पणं ते रघुनाथपादयोः
कृतं सुखी स्यामिति पुत्रमब्रवीत् ॥११६॥

अथ सा पतिपादपङ्कज-
द्वयमालिङ्ग्य सगद्गदस्वरम् ।
परिदेवनयानया मुहु-
र्बहुधा नेत्रजलैरसेचयत् ॥१२०॥

अपि मां परिहाय दुःखिता
मतिदीनां कुररीमिव प्रभो ।
क्व नु सम्प्रति यासि नीयतां
निजदासी बहुदुःखकर्षिता ॥१२१॥

पुत्र के हर्षप्रद वाक्यामृत को सुनकर द्विजश्रेष्ठ जगन्नाथमिश्र ने कहा, वत्स! तुमको श्रीरघुनाथ के चरण युगल में मैने समर्पण किया, तुम सुखी बनोंगे ॥११६॥

अनन्तर जगन्नाथभार्य्या शची गद्गद स्वर से अनुतापपूर्वक पति के चरणद्वय को धारण कर अश्रुवारि से सिञ्चन करने लगीं ॥१२०॥

एवं बोलीं—नाथ ! कुररी के समान दुःखिता, एव दीना निज दासी को परित्याग कर सम्प्रति आप कहाँ जा रहे हैं ? मैं दुःख से कातर हो गई हूँ, मुझको साथ ले चलो ॥१२१॥

दिवि देवगणे निरन्तरं
सुमनोवर्षिणि भूरिशः सुखात् ।
भुवि कीर्त्तनतत्परे जने
द्युनदीमध्यगतः स निर्व्ववौ ॥१२२॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये द्वितीयः सर्गः ।

शचीमाता उस प्रकार विलाप करते रहने से देवगण, स्वर्ग से पुष्प वृष्टि करने लगे थे एवं मानववृन्द श्रीहरिसङ्कीर्त्तन रत होने से महाप्रभु के पिता गङ्गा मध्यगत होकर देहत्याग किये थे ॥१२२॥

इति-श्रीश्रीचैतन्यचरितमहाकाव्ये द्वितीयसर्गः ।



तृतीयःसर्गः

नवीनलावण्यसुधाम्बुधारा-
भृता नवीनेन सदङ्गकेन ।
तं यौवराज्ये सकलस्य यूनः
प्रसूनचापोऽभिषिषेच भूयः ॥१॥

पपाठ सत्पण्डितविष्णुनाम्नः
सुदर्शनादप्यतिहर्षभाजः ।
गुरुत्वमाकल्प्य महानुकम्पां
चकार हर्षादनयोः किमेषः ॥२॥

ततश्च वैयाकरणात् स गङ्गा-
दासादभूत् प्रत्यनुभूतविद्यः
यदेष विद्यामददाद् द्विजेभ्य-
स्तेनैव पुण्येन पपाठ सोऽत्र ॥३॥

अनन्तर कन्दर्पसुन्दर ने श्रीगौराङ्गदेव के अङ्गलावण्यामृत को सन्दर्शन करके समुदय युवकगणो के यौवराज्य में मानों उनको पुनर्बार अभिषिक्त किया ॥१॥

तत्पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु ने सुपण्डित विष्णु एवं आनन्द सुदर्शन को गुरुत्व में बरण कर उन दोनों के निकट से विद्याध्ययन प्रारम्भ किया, किन्तु श्रीप्रभु का यह अध्ययन नहीं है, प्रतीत होता है कि-उन्होंने उस लीला के द्वारा उन दोनों के प्रति अनुग्रह का प्रकाश ही किया ॥२॥

बाद में वैयाकरणिक श्रीगङ्गादास महोदय के समीप से व्याकरण शास्त्र का अध्ययन किया, कारण-पण्डितवर्य्य श्रीगङ्गादास महोदय अनेक ब्राह्मणों को विद्यादान किये थे, उस पुण्य से ही महाप्रभु ने उनके समीप से अध्ययन करना स्वीकार किया ॥३॥

सतीर्थवृन्दैः परिहासवद्भि-
र्हसन् विशेषं सवदावदेन।
ततान लीलाप्रतिभानवार्त्ता-
मुर्व्वी सदुर्व्वीसुरवंशरत्नम् ॥४॥

कदाचनासौ वनमालीनाम्नो
गृहे सदाचार्य्यबरस्य नाथः।
जगाम सम्भाषरसेन हर्षाद्-
यदृच्छया श्रीमयगौरदेहः ॥५॥

निवर्त्तमानेन ततः सुखेन
संभाष्य तं वर्त्मनि तेन तत्र।
अकारि पीयूषमिव क्षरन्ती
नेत्रातिथिः काचनहेमवल्ली ॥६॥

भूदेवावंशावतंस श्रीचैतन्यदेव परिहासकारी छात्रवर्ग को शास्त्रीयकथा का बादानुबाद करते करते लीला रस का विस्तार किये थे ॥४॥

एकदिवस, श्रीगौरविग्रहधारी श्रीहरि यदृच्छाक्रमसे शास्त्रालाप रस से विभोर होकर श्रीवनमालि आचार्य के घर में उपस्थित हुये थे ॥५॥

किन्तु उनके सहित शास्त्रालाप कर जब श्रीप्रभु गृह में प्रत्यावर्त्तन कर रहे थे, उस समय रास्ते में एक अनिर्वचनीय स्वर्णलता उनके नयन गोचर हुई। आहा! हेमवल्ली का कैसा आश्चर्य रूप है? मानों उससे अमृत क्षरित हो रहा था। ॥६

सा वल्लभाचार्य्यसुता चलन्ती
स्नातुं सखीभिः सुरदीर्घिकायाम् ।
लक्ष्मीरनेनैव सहावतीर्णा
प्रभोर्ययौ लोचनवर्त्म तत्र ॥७॥

विलोक्य स प्राक्तनवल्लभां तां
सुखाम्बुधौ मज्जनमाततान ।
नैसर्गिकं प्रेम यथावकाशं
प्रसह्य नामोदयतीह कम्वा ॥८॥

तथाविधां तामवलोक्य रामां
मनस्यभूदुल्लसितः कृपाब्धिः ।
मणिम्विना दुर्लभमाभिराम्यं
न हैमनी हारलता प्रयाति ॥९॥

श्रीवल्लभाचार्य की कन्या ही उक्त अनिर्वचनीय हेमवल्ली थी, वह स्वयं लक्ष्मी थी, जो स्वयं ही श्रीप्रभु के सहित अवतीर्णा हुई थी, उस समय सौन्दर्य लक्ष्मी गङ्गा स्नान करने के निमित्त सखीगणों के सहित गमन कर रही थी, अकस्मात् श्रीमन्महाप्रभु के नेत्रपथ उनके समीप में ही उपस्थित हुआ ॥७॥

श्रीगौराङ्गदेव स्वीय कान्ता को अवलोकन कर सुख सागर में निमज्जित हो गये, कारण-नैसर्गिक प्रेमावकाश सहसा किसको आनन्दित नहीं करता ? ॥८॥

करुणानिधि श्रीशची कुमार उक्त रामा को अवलोकन कर मनसा अतिशय उल्लसित हुये थे। आहा! मणिव्यतीत जिसप्रकार स्वर्णहार की शोभा प्रकाशित नहीं होती हैं, तद्रूप ॥९॥

सा शैशवादेकपदेन बाला
समागता यौवनसीम्नि किञ्चित् ।
परित्रुटच्चापलजायमान–
त्रपा तमालोक्य ननन्द शश्वत् ॥१०॥

अथाजगामैष निरीक्ष्य कान्तां
तैस्तैर्वयस्यैर्विहरंस्तथैव ।
पठन् सदोद्ग्राहपरः परेशो
रराज गूढ़स्थिररम्यलीलः ॥११॥

अथापरेद्युर्वनमालिनामा
प्रभोः य आचार्य उपेत्य वेश्म ।
नमश्चकार प्रणतो महात्मा
शचीं शुचिः संकथयन् विधिज्ञः ॥१२॥

श्रीवल्लभाचार्य के उक्त कन्या शैशव अवस्था से ही किञ्चित् यौवन सीमा में पदार्पण कर चाञ्चल्य परिहारकारिणी लज्जा के सहित शचीतनय को अवलोकन कर निरन्तर आनन्दानुभव करने लगी ॥१०॥

अनन्तर श्रीगौराङ्गदेव—स्वीय कान्ता को अवलोकन कर वयस्यवृन्द के सहित विहार एवं पाठाभ्यास करते करते गृह में प्रत्यावर्त्तन किये थे, किन्तु उस समय विवाह विषय में अतिशय इच्छा होने पर भी उसका प्रकाश न कर मनोरम लीला आचरण के सहित विराजमान थे ॥११॥

अनन्तर एकदिवस, आचार्य वनमालि नामक महानुभाव विशुद्धाचार सम्पन्न ब्राह्मण, श्रीमहाप्रभु के घर आकर विनय पुरःसर शचीदेवी को नमस्कार करतः कहे थे ॥१२॥

सुताय ते देवि वृतास्ति काचित्
कन्यातिधन्या गुणरूपशीलैः ।
सा वल्लभाचार्यसुता बराङ्गी
मूर्त्तेव लक्ष्मीः क्षितितोऽवतीर्णा ॥१३॥

विधीयतां तत्र लघुप्रयत्न-
स्तनूजरत्नस्य विवाहकार्य्ये ।
यदीच्छसि श्रीमति तां सदङ्गां
श्रियं बधूरत्नमनिन्द्यशीलाम् ॥१४॥

इत्यस्य संश्रुत्य वचोमृतं सा
तूष्णीमभून्नैव किमप्युवाच ।
अश्रद्दधाना वचनेऽस्य तस्मिन्
सुतेऽपि तल्लक्षणलक्षणार्था ॥१५॥

देवि ! रूप, गुण शीलसम्पन्ना, एक कन्या, मन ही मन आपके पुत्र को बरण किये हैं, आप वल्लभाचार्य की कन्या हैं, उनके समान अङ्ग सौष्ठव अतीव विरल है। उनको सन्दर्शन करने से बोध होता है, साक्षात् लक्ष्मी ही भूतल में अवतीर्णा हुई है ॥१३॥

हे श्रीमति ! यदि आप उक्त शोभनशीला बराङ्गी लक्ष्मी को बधूरत्न रूप में इच्छा करें तो पुत्ररत्न का शुभ परिणय कार्य्य के निमित्त मनोयोग प्रदान करें ॥१४॥

अनन्तर शची, विप्रबर वनमाली के बचनामृत का श्रवण कर तष्णीम्भाव अवलम्बन किए एवं उक्त कन्या के सहित परिणय सुत्र से आबद्ध हाने की इच्छा पुत्र की है अथवा नहीं, यह जानने के निमित्त समुत्सुक होकर वनमाली के वाक्य का प्रत्युत्तर देने के निमित्त श्रद्धालु नहीं हुये ॥१५॥

नैवाकलय्याशु वचांसि शच्या
ययौ स आचार्यवरोतिदुःखी ।
विलोकयामास मनःकथाभिः
कषायितास्योथ महाप्रभुं तम् ॥१६॥

असौ नवद्वीपकिशोरचन्द्र–
श्चन्द्राननश्चन्द्रसहस्रकान्तः ।
आचार्यमालोक्य ननाम हृष्टो
दृढ़ं परिष्वज्य च धीरमूचे ॥१७॥

आसोः क्व गन्ता त्वमये महात्मन्
कथं नु वा त्वं विमनाः प्रयासि ।
स आह मातुश्चरणौ तवैव
द्रष्टुं गतः सम्प्रति यामि दुःखी ॥१८॥

आचार्यवर वनमाली शचीदेवी के मनोभाव को अवगत होने में अक्षम होकर अत्यन्त दुःखित एवं कषायितास्य अर्थात् शुष्कवदन से महाप्रभु के निकट उपस्थित हुये थे ॥१६॥

अनन्तर पूर्ण चन्द्रानन सहस्रांशु विनिन्दित अङ्गकान्ति सम्पन्न नवद्वीप किशोरचन्द्र, आचार्य्य को अवलोकन कर प्रणाम किए एवं हृष्ट चित्त से दृढ़ आलिङ्गन पूर्वक धीरभाव से कहने लगे ॥१७॥

हे महात्मन ! किस हेतु आपका शुभागमन हुआ ? एवं आप दुःखित होकर प्रत्यागमन क्यों कर रहे हैं ? प्रश्नोत्तर में आचार्यवर ने कहा, मैं आपकी जननी के चरण दर्शन हेतु आया था, सम्प्रति दुःखित होकर जा रहा हूँ ॥१८॥

न किञ्चिदूचे तमिदं स शृण्वन्
स्वमेव गेहं प्रययौ कृपाब्धिः ।
तदीयया तद्विमनस्तयासीत्
स्वयं दयावारिनिधिः सुदुःखी ॥१६॥

आगत्य गेहं जननीं ततोऽसौ
पप्रच्छ नाथः स्तनयित्नुधीरम् ।
किमुक्तमाचार्यवराय मात-
स्त्वया यतोऽसौ विमनाः प्रयाति ॥२०॥

कथं न तस्यानुमतौ मतिस्ते
बभूव नामोदितमुक्तमस्य ।
प्रीतिर्यथा स्यात् सुजनस्य साधो-
स्तथैव कर्त्तुं सुजनः प्रमाणम् ॥२१॥

आचार्य के वाक्य को सुनकर कृपासागर गौरहरि उनको उत्तर प्रदान न कर स्वयं घर को चले गये, किन्तु दयानिधि उनकी विमनस्कता से स्वयं दुःखित हुये थे ॥१६॥

गृहागमन पूर्वक नवद्वीपनाथ, मेघतुल्य गम्भीर स्वर से स्वीय जननी को पूछे थे, मातः! आपने आचार्य को क्या कही, जिस हेतु आचार्य विमनस्क होकर जा रहे हैं ॥२०॥

हा कष्ट! उनके अनुमत विषय में आप क्यों सम्मत नहीं हुयीं? क्यों आपने उनके वाक्य को अनुमोदन नहीं किया? यह कार्य्य उत्तम नहीं है। मातः! जिससे साधुजन प्रसन्न होते हैं, उस प्रकार आचरण ही साधु का निदर्शन है ॥२१॥

विज्ञाय पुत्रानुमतिं मुदासौ
प्रस्थापयामास तदात्मलोकम् ।
आचार्यवर्य्यानयनाय शीघ्रं
निष्पाद्यते किं न तदीच्छया यत् ॥२२॥

द्रुतं स आगत्य शचीं प्रणम्या-
वदत् किमाज्ञापयतीश्वरी मे ।
विधीयतेऽसौ शिरसा नियोगो
नियुज्यतां तत्तव किंकरोऽस्मि ॥२३॥

विज्ञापितं योस्ति यदत्र तात
तदेव कर्त्तुं त्वमिह प्रमाणम् ।
त्वं वत्सलोऽतीव सुहृत्कुटुम्बं
स्निग्धः स्वयं चेत्यथ सा जगाद ॥२४॥

पुत्र का अभिप्राय को जानकर आह्लाद के सहित आचार्य बर को आनयन के निमित्त शची ने सत्वर निज व्यक्ति को प्रेरण किया, एवं मन ही मन शोचने लगी, जो इच्छा आचार्यने की है, वह क्या सम्पन्न होगी? अर्थात् उनको जो इच्छा है, उसको सम्पन्न करूँगी ।२२।

इत्यवसर में आचार्य वनमाली शीघ्र आकर शचीमाता को प्रणाम कर कहे थे, ईश्वरी ! मेरे प्रति आपकी क्या आज्ञा है ? मैं आपका किङ्कर हूँ । मुझको नियोग करें, मैं आपका आदेश शिरोधार्य्य कर पालन करूँगा ।।२३

अनन्तर शची, आचार्य को बोलीं, वत्स ! इस विषय में, मैं जो कहूँगी, उसको सम्पन्न करने में तुमही एकमात्र समर्थ हो, कारण तुम प्रीतिमान् हो, एवं मेरा अति सुहृत्, कुटुम्ब एवं स्निग्ध हो, अतएव स्वयं समुदाय कार्य निर्वाह करो ।।२४।।

ततः ममाकर्ण्य वचः स धीरः
स्वधीतसर्व्वागम एव तूर्णम् ।
शचीं नमस्कृत्य शुचिर्जगाम
विधित्सुरेतस्य विवाहकार्य्यम् ॥२५॥

स वल्लभाचार्यगृहेतिहर्षात्
जगाम कौतूहलपूर्णचेताः ।
तूर्णं विलोक्यैनमसावुदस्तात्
प्रत्युद्गमोऽग्रार्च्चनमेव साधोः ॥२६॥

स वल्लभोभूमिसुरैकरत्नं
दिदेश तस्मै वरमासनं तत् ।
पप्रच्छ पश्चाच्च विनीतचेष्टः
सदैव धीरो विनयेन भाति ॥२७॥

तब, निखिल शास्त्रार्थदर्शी धीर प्रकृति आचार्य शची देवी के वाक्य को सुनकर उनको प्रणाम कर विश्वम्भर का विवाह कार्य सम्पन्न करने के निमित्त गमन किया ॥२५॥

आचार्य का चित्त कौतूहल से परिपूर्ण हो गया, सुतरां हर्ष के सहित गमन करते करते अल्पकाल के मध्य में ही आप वल्लभाचार्य्य के घर में उपस्थित हो गये। वल्लभाचार्य परम साधु आचार्य को समागत देखकर प्रत्युद्गमन पुरःसर उनको यथाविधि सम्मानित किये थे ॥२६॥

एवं भूदेवाग्रगण्य आचार्य वनमाली को आसन प्रदान करने के निमित्त आदेश कर पश्चात् जिज्ञासा किये थे, जो लोक विनयी एवं धीर, वे सब स्वभावत हीं विनय के द्वारा ही शोभित होते हैं ॥२७॥

अनुग्रहोऽयं मयि ते बभूव
स्फुटं यदत्रागमनं त्वदीयम् ।
कार्य्यं कियद्वाप्यवशिष्यते त-
द्वक्तुं महाधीस्त्वमिह प्रमाणम् ॥२८॥

इत्थं निशम्याशु महानुभावः
प्रभोर्विवाहे घटनां विधित्सुः ।
उवाच हर्षोद्‌गतरोमवृन्दः
शुभस्वरां वाचमनिन्दितात्मा ॥२९॥

गुणैर्वरोमिश्रपुरन्दरात्मजः
शरीरवत्तामतनुः किमाश्रितः ।
य एष सौन्दर्य्यमयीं तनूमिमां
जगत्त्रयीलोकविमहिनीं श्रितः ॥३०॥

परन्तु हे महाशय! आपका आगमन जब मेरे घर में हुआ है, तब स्पष्टतः ही बोध हुआ कि-मेरे प्रति आपका यथेष्ट अनुग्रह है। हे धीरबर! सम्प्रति क्या करना होगा? कौन कार्य्य अवशिष्ट है, आप मुझे आज्ञा करें ॥२८॥

तब महात्मा महानुभाव वनमाली आचार्य, वल्लभाचार्य के वाक्य श्रवण कर आनन्द से पुलकित हो गये, एवं महाप्रभु की विवाह घटना का विधान करने का इच्छुक होकर मृदुस्वरसे कहने लगे ।२९।

आचर्यबर! श्रीजगन्नाथ मिश्र के पुत्र विश्वम्भर सर्वगुण सम्पन्न हैं, उनको देखने से बोध होता है कि-मानों कन्दर्प ही उनके तनु में आश्रय ग्रहण किये हैं। अहो, श्रीगौराङ्गदेव इस प्रकार आश्चर्य रूप को अवलम्बन किये हैं, जिनको देखकर त्रिलोकस्थ जनगण का मन विमोहित हो जाता है ॥३०॥

य एष निष्णाततया तया विधे
विधानदक्षस्य विधानकर्म्मणि ।
विधाय सौन्दर्य्यसमुहमग्रतः
सुधामयः कोप्यतनुर्विनिर्ममे ॥३१॥

यदास्यचन्द्रं विधिना विधाय तं
चिराय भूयिष्ठमिवात्मसौष्ठवम् ।
विदाम्बभूवे गदता प्रतिक्षणं
चतुर्भिरास्यैरपि साधु साध्विति ॥३२॥

अतः सुतायास्तव योग्यविभ्रमः
स कल्पवल्या इव कल्पभूरुहः
योगोस्तु मुक्तामणिवर्य्ययोरिव
प्रियाकरः सर्व्वजगज्जनस्य सः ॥३३॥

जगत् श्रष्टा विधाता ने स्वीय नैपुण्य से सौन्दर्य समूह को एकत्र संग्रह कर निज सृष्टि कार्य में निपुणता के द्वारा प्रथमतः सुधामय गौरविग्रहरूप कन्दर्प का निर्माण किया है ॥३१॥

श्रीगौराङ्गदेव के रूप माधुर्य की कथा का वर्णन क्या करूँ, विधाता जिनके मुखचन्द्र का निर्माण कर भूतल में निज शिल्पकर्म का सौष्ठव सन्दर्शन कराकर स्वयं प्रतिक्षण चतुर्म्मुख के द्वारा साधु साधु शब्द से उनकी प्रशंसा करते रहते हैं ॥३२॥

अतएव हे महानुभाव! जिसप्रकार कल्पतरु के सहित कल्पलताका, एवं उत्कृष्टमणि के सहित जिसप्रकार मुक्ता का योग उपयुक्त होता है, उसके समान आपकी कन्या के सहित विश्वम्भर का योग, लोकसमूह के निमित्त निःसन्दिग्ध सुखावह हो होगा ॥३३॥

निशम्य सौम्योथ स वल्लभद्विजो
द्विजैकरत्नं तमुवाच हर्षतः ।
विचिन्त्य भूयो मनसा शुभंयुना
सख्येन विख्यातयशःसमुच्चयः ॥३४॥

भाग्यातिभाग्येन महानुभाव ! मे
योगेन तत् संप्रति तेन भूयते ।
तथाविधस्यास्य समं तथाविधै-
र्यथातथं स्याद्घटना मनोरमा ॥३५॥

यदीश्वरः स्यान्मयि सुप्रसादभाक्
भाग्योदयो वा यदि मे महान् भवेत् ।
यदस्ति पुत्र्याः सुकृतं महत्तरं
तदेदृशस्तत् पतिरेव निश्चयः ॥३६॥

तब प्रशस्त मनाः यशस्वी श्रीवल्लभाचार्य, द्विजरत्न श्रीवनमाली के वाक्य को सुनकर, क्षणकाल मन ही मन चिन्ता करतः सहास्य वदन से कहे थे ॥३४॥

हे महानुभाव ! यदि आपकी सहायता से एवं श्रीपरमेश्वर की अनुकम्पा से यह अघटन घटना उपस्थित होती है, अर्थात् यदि महातमा श्रीगौराङ्ग मेरी कन्या को पत्नि रूप में अङ्गीकार करते हैं, तो इसके तुल्य और सौभाग्य क्या होगा ? ॥३५॥

हे ब्राह्मण ! ईश्वर यदि मेरे प्रति सुप्रसन्न होते हैं, अथवा मेरा महत् भाग्योदय होता है, किंवा यदि कन्या का सुमहत् पुण्य सञ्चित है, तब निश्चय ही उसका एतादृश पति लाभ होगा ॥३६॥

यथा गुणैः काञ्चनहारवल्ली
रत्नेन सन्नायकतां गतेन ।
निष्पन्नतां याति तथा त्वदीयै-
र्गुणैस्तयोः संघटना घटेत ॥३७॥

इत्यूचिवांस्तां विनयोक्तिवत्तया
तया महाप्रीत इमं जगाद सः ।
तवेदृशा सद्विनयेन सत्वरं
संपत्स्यते सर्व्वमशेषमङ्गलम् ॥३८॥

इत्थं स संभाष्य मिथो द्विजाग्रो
जगाद भूयो निलयेषु शच्याः ।
न्यवेदयत् सर्व्वमदभ्रभाग्यो
विवाहकौतूहललोलचित्तः ॥३९॥

श्रीवल्लभाचार्य ने ओर भी कहा, महाशय ! गुणगुम्फित स्वर्णहार, यद्रूप मध्यगत नायकमणि के सहयोग से अपरूप शोभित होता है, तद्रूप ही आपके गुण से यदि उन दोनों की संघटना घटित होती है, तब ही उक्त कार्य सुसम्पन्न होगा ॥३७॥

श्रीवल्लभाचार्य की सविनय उक्ति से आचार्यवर वनमाली सन्तुष्ट होकर कहे थे, महाशय ! आपके ईदृश विनय के द्वारा समुदाय मङ्गल शीघ्र सुसम्पन्न होगा ॥३८॥

द्विजमणि वनमाली, उसप्रकार परस्पर सम्भाषण के पश्चात् पुनर्वार शचीदेवी के गृह में उपस्थित हुये थे, उस समय उनका चित्त विवाह कौतुहल से अतिशय चञ्चल था, सुतरां शचीदेवी के निकट जाकर उक्त वृत्तान्त समुदय निवेदन किये थे ॥३९॥

शची तथा तत्सकलं विदित्वा
हर्षेण पूर्णामविदत्तनूं स्वाम् ।
विचिन्त्य मूर्त्तिं निजभाग्यराशि
तनूजरत्नं निभृतं जगाद ॥४०॥

विवाहमाङ्गल्यविशेषदक्षिणो
विधीयतां तत्समयः सुखावहः ।
तदा तदाकर्ण्य स चित्तवृत्तिभि-
श्चकार नाथः कलनां कलानिधिः ॥४१॥

द्रव्याण्यदभ्राणि मनोज्ञविभ्रमो
मातुर्निदेशादहरत्तदा रहः ।
चकार कालं शुभलग्नभूषितं
सोऽयं तदा किं स्वमेव भूषितः ॥४२॥

मृदङ्गचारुध्वनिभङ्गिसङ्गी
सङ्गीतकोलाहल उच्छ्रितोऽभूत ।

अनन्तर शची माता आचार्य के प्रमुख पुत्र का परिणय वृत्तान्त सुनकर आनन्द से पुलकित हुयीं, एवं मनोमध्य में निज मूर्त्तिमान् सौभाग्य को जानकर निभृत में पुत्र को कही थीं ॥४०॥

वत्स ! माङ्गल्य विवाह का एक सुखावह समय का निश्चय करो। तब कलानिधि गौरहरि भी माता के वाक्य को सुनकर मन ही मन एकदिन निर्णय कर माता के निदेशानुसार उत्तम उत्तम द्रव्य समूह का सग्रह करने लगे, एवं शुभलग्न समन्वित एक समय स्थिर किये, उस समय ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों उक्त समय ही विविध उत्सव से परिपूर्ण होने लगा ॥४१-४२॥

उस समय की शोभा का वर्णन कितना करें, वह मृदङ्ग को

तथैव तत्रातिशयो गरीया-
न्नृत्योद्गमो हर्षितनर्त्तकानाम् ।।४३।।

भूदेववेदध्वनिभिः समन्ता-
न्मृदङ्गनादैर्जयनादमिश्रैः ।
सचन्दनैरागुरवैः प्रधूपै-
रौशीरवद्भिः स रराज कालः।। ४४।।

उर्व्वीसदुर्व्वीसुररत्नदत्तां
जाज्वल्यमानामधिवासलक्ष्मीम् ।
आसाद्य भातिस्म सरोहिणीको
यथा सुधारश्मिरथैष नाथः ।।४५।।

ततो द्विजेभ्यः प्रददुः प्रकामं
ताम्बूलमाल्यान्यपि चन्दनानि ।
रेजुस्तदा ते सकला महान्तः
स्मेरानन हर्षसमुद्रमग्नाः ।।४६।।

मधुर ध्वनि के सहित सङ्गीत के कोलाहल से वर्द्धित तथा नर्त्तकगणों की नृत्यभङ्गी से अतिशय गरिष्ठ था ।।४३।।

ब्राह्मणगणों की वेदध्वनि एवं जयध्वनि मिश्रित मृदङ्गशब्द, चन्दन, अगुरु, उशीर विशिष्ट धूप समूह के सौरभ से वह परिवेश आश्चर्य रूप से शोभित होने लगा ।।४४।।

उस समय श्रीगौराङ्गदेव, प्रधान प्रधान ब्राह्मणगणों के द्वारा अतिशय रूप से अनुष्ठित जाज्वल्यमाना अधिवास लक्ष्मी को प्राप्त कर रोहिणी के सहित अविष्ठित चन्द्र के समान शोभित होने लगे ।।४५।।

अनन्तर श्रीनवद्वीपचन्द्र, ब्राह्मण वृन्द को यथेष्ट रूप से ताम्बूल,

स वल्लभोभ्येत्य तदा सदुर्व्वी–
गीर्व्वाणरत्नैर्द्विजसुन्दरीभिः ।
महाप्रभोर्गन्धसुगन्धि माल्यैः
शुभाधिवासं विदधे विधिज्ञः ॥४७॥

अथ प्रभाते विमलार्कभूषिते
स्वयं कृतस्नानविधिर्यथाविधि ।
प्रभुः पितृनर्च्चयितुं यथा तथा
नान्दीमुखश्राद्धमथाकरोदसौ ॥४८॥

ततो द्विजातिश्रुतिपाठनाद्यै–
र्मृदङ्गनादैः पणवस्वनैश्च ।
वराङ्गनावक्त्रविनिर्गतैस्तै–
रुलूलशब्दैस्तुमुलो महोऽभूत् ॥४९॥

माल्य, वस्त्र व चन्दादि प्रदान किये थे। उससे उक्त महानुभव स्मेरानन ब्राह्मणगण आनन्द समुद्र में निमज्जित हुये थे ॥४६॥

उस समय विधिज्ञ वल्लभाचार्य, ब्राह्मण एवं ब्राह्मणी वृन्द के सहित समागत होकर सुगन्धि माल्य के द्वारा श्रीमन्महाप्रभु का शुभ अधिवास विधान किये थे ॥४७॥

तत् पश्चात् श्रीचैतन्यदेव, विमल भास्कर शोभित प्रभात काल में यथाविधि स्नानकार्य सम्पन्न करके पितृगणों की अर्च्चना के निमित्त शास्त्रोक्त रीति से नान्दीमुखी श्राद्धानुष्ठान किये थे ॥४८॥

इस समय ब्राह्मण वृन्दों का वेदपाठ, मृदङ्ग की ध्वनि, पणव-वाद्य एवं नारीवृन्द की 'उलु उलु' शब्द से महा उत्सव अनुष्ठित होने लगा ॥४९॥

शची द्विजानां महिला यथायथं
तत्तत्सपर्य्याग्रहिलास्तदावदत् ।
अलं मया भर्त्तृपदाब्जहीनया
कर्त्तव्यमेतद्भवतीभिरेव हि ॥५०॥

स मातुरित्थं करुणोदितं प्रभु-
र्निशम्य तातस्मृतिदुःखविह्वलः ।
मुक्ताफलस्थूल विलोचनाम्भसां
विन्दूनुवाह प्रवरोरुवक्षसि ॥५१॥

तथाविधं तत्समये विलोक्य सा
सुतं सुदीनाह सहाङ्गनागणैः ।
पितः कथं मङ्गलकर्म्म कुर्व्वता
विमुच्यते वारि दृशोरमङ्गलम् ॥५२॥

उक्त में समय शची, यथावत् पूजाप्राप्ता द्विजपत्नी वृन्द को कही थी, हे सुन्दरीगण ! मैं पति के पादपद्म से वियुक्त हो गई हूँ, यह समस्त मङ्गल कार्य में मेरा अधिकार नहीं है, अतएव आप मदीय पुत्र का मङ्गलानुष्ठान सुसम्पन्न करें ॥५०॥

उस समय श्रीगौराङ्गदेव, माता के मुख से उस प्रकार करुण वाक्य श्रवण कर अतिशय दुःख से विह्वल हो गये, एवं स्थूल मुक्ताफल सदृश अश्रुविन्दु समूह से विशाल वक्षःस्थल को सेचन करने लगे ।५१॥

अनन्तर शची, तत्कालीन पुत्र को उस प्रकार शोकाकुल देख-कर सुदुःखित चित्त से नारीगण के सहित पुत्र को बोली थी, पुत्र ! तुम मङ्गल कार्यानुष्ठान में प्रवृत्त होकर नयनों से अमङ्गल सुचक जल मोचन क्यों करते रहते हो ? ॥५२॥

स मातुरित्थं वचनेन नाथो
द्राघीयसा निश्वसितेन तेन ।
म्लानोरुवक्षाः करुणं बभाषे
प्रभातचन्द्रप्रतिमास्यचन्द्रः ॥५३॥

धनानि किम्वा मनुजा न सन्ति मे
येनेदृशं मातरुदीरितं वचः ।
त्वयाद्य दैन्येन पराश्रयाग्रहो
विधीयते किं वद दुःखतप्तया ॥५४॥

त्वयैव दृष्टं द्विजसज्जनेभ्यः
प्रकाममृक्‌थं रभसाद्विकीर्णः ।
ताम्बूलमाल्यानि च गन्धवन्ति
प्रकर्षतोऽलङ्करणांशुकानि ॥५५॥

पित्रापि हीनोऽहमकुण्ठशक्तिः
किं मातरित्थं पुरतो ममोक्तम् ।

गौरचन्द्र, जननी के उक्त वाक्य श्रवण करतः दीर्घ निश्वास के द्वारा स्वीय विशाल वक्षःस्थल को म्लान करके प्रभात कालीन चन्द सदृश मलिन बदन से कहने लगे ॥५३॥

मा ! आप कहें कि धनजन नहीं है, यह जानकर ही क्या आज आपके मुखसे उस प्रकार वाक्य उद्‌गत हो रहा है। हाय ! आप कातर होकर दैन्य वशतः क्या अपर की सहायता काङ्क्षिणी हैं? ।५४।

मा ! आपने तो देखी होगी, मैंने हर्ष के सहित, ब्राह्मण सज्जन को यथेष्ट धन, ताम्बूल, सुगन्धिमाल्य, एवं उत्तम उत्तम वस्त्रालङ्कार प्रभृति प्रदान किया है ॥५५॥

मातः ! मैं पितृहीन होने के कारण सामर्थ्य विहीन हूँ, इस

अमर्त्यकार्य्येषु सदैव शक्ता-
स्तथापि यल्लौकिकमेव कुर्म्मः ॥५६॥

इतीरितं तस्य निशम्य माता
तं सान्त्वयिता मधुरैर्वचोभिः ।
सचन्दनैरागुरवानुलेपै-
र्लिलेप वक्षःस्थलमात्मजस्य ॥५७॥

त्रैलोक्यमाधुर्य्यमयार्य्यकान्तिः
प्रसूनमाल्याभरणानुलेपैः ।
विभूषितः स्मेरमुखो विरेजे
सौन्दर्य्यलक्ष्म्येव वृतः स्वयं सः ॥५८॥

तस्मिन् क्षणे वल्लभभूमिदेवः
समाप्य कार्य्यं पितृदेवतानाम् ।

प्रकार कथन, पुनर्वार आप मेरे समीप में न करें। कारण जब हम सब दैवकर्म सम्पादन में सतत समर्थ हैं, तब लौकिक कर्म सम्पादन की वार्त्ता ही क्या है ॥५६॥

तदनन्तर माँ ने पुत्र के वाक्य को सुनकर मधुर वाक्य से पुत्र को सान्तना प्रदान करतः चन्दन मिश्रित अगुरु अनुलेपन द्वारा तदीय वक्षःस्थल को सुशोभित कर दिया ॥५७॥

उससे त्रैलोक्यस्थ माधुर्यमय कान्ति विशिष्ट शचीतनय, जननीदत्त अगुरु चन्दन अनुलेपन द्वारा विभूषित होकर सहास्यवदन से मनोहर शोभित हुये थे, उस समय उनको देखकर प्रतीत हुआ कि-सौन्दर्य लक्ष्मी के द्वारा मानों आप स्वयं ही वृत हुये हैं ॥५८॥

उक्त समय ही भूदेव वल्लभाचार्य देवकार्य एवं पितृकार्य सम्पन्न करके बहुमूल्य विविध अलङ्कार द्वारा स्वभाव सुन्दराङ्गी स्वीय

विभूषयामास विभूषिताङ्गीं
सुतामलङ्कारकुलैर्महार्घ्यैः ॥५९॥
वरस्य सौन्दर्य्यभृतां वरस्य
द्विजा स्ततोऽस्यानयनाय जग्मुः ।
संप्रेषितास्तेन ततस्तदैव
शुभस्वरां वाचममन्दमूचुः ॥६०॥
विधीयतां संप्रति वत्स यात्रा
पन्थान एते शुभदा भवन्तु ।
अथैष बन्धुद्विजसज्जनाद्यै
र्दोलामधिश्रित्य ययौ प्रसन्नः ॥६१॥
प्रदीप्तदीपावलिभिर्विशिष्टं
तस्याविशत् सद्भवनं मनोज्ञम् ।
ततोऽभिगम्यालयमध्यमेनं
निनाय विप्रो निजभाग्यराशिम् ॥६२॥

कन्या को अलङ्कृत किये थे ॥५९॥

तत् पश्चात् सौन्दर्य पदार्थ की सीमा स्वरूप श्रीगौराङ्गदेव को आनयन करने के निमित्त द्विजवृन्द को प्रेरण किये थे। वे सब वहाँ पर उपस्थित होकर सुमधुर स्वर से श्रीगौराङ्गदेव को कहे थे ॥६०॥

वत्स ! सम्प्रति यात्रा करो, तुम्हारे निमित्त यहसब पथ मङ्गलमय होवें। यह सुनकर श्रीगौराङ्गदेव प्रसन्न वदन से दोला में आरोहण कर बन्धु-बान्धव एवं ब्राह्मण सज्जनवृन्द के सहित यात्रा किये थे ॥६१॥

क्षणकाल के मध्य में समधिक समुज्ज्वल दीपमाला परिशोभित वल्लभाचार्य के सुशोभन भवन में आपसब उपस्थित होने

पाद्यादिना तं वरयाम्बभूव स
द्विजो नवद्वीपमहौषधीश्वरम् ।
बभौ वृतस्तेन महाप्रभुस्तदा
त्रैलोक्यलक्ष्मीललितां तनुं श्रितः ।।६३।।

स गौरचन्द्रः कनकाङ्गदादिभि
विराजमानोरु भुजान्तरः स्वयम् ।
कल्पद्रुमश्रीरुचिरस्य विभ्रमं
जहारहारी तपनीयभूभृतः ।।६४।।

सुतां समानीय शरन्निशापते
र्ज्यौत्स्नामिव स्नापितदिग्वधूगणाम् ।
प्रभावनिध्वस्ततमिस्रसञ्चयां
स्वलङ्कृतां तां प्रभवे ददौ द्विजः ।।६५।।

से वल्लभाचार्य आकर निज सौभाग्य राशि को अन्तःपुर में ले गये थे ।।६२।।

विप्र ने नवद्वीप महौषधीश्वर को पाद्यादि के द्वारा वरण करने से श्रीमहाप्रभु उस सयय त्रैलोक्यस्थ समस्त लावण्य शोभा से मण्डित हुये थे ।।६३।।

श्रीगौराङ्गदेव के विशाल भुजान्तर कनक निर्मित अङ्गदादि अलङ्कारों से समलङ्कृत होने से इस प्रकार शोभा का विस्तार हो रहा था, जिससे, कल्पवृक्ष एवं कनकमय सुमेरु पर्वत की मनोहर शोभा का विभ्रम भी अपहृत होने लगा ।।६४।।

अनन्तर द्विजवर्य्य वल्लभाचार्य ने शरत् कालीन निशापति की ज्योत्स्ना के समान स्नापित दिग्वधू समूह के तुल्य निज कन्या को जो स्वीय अङ्गकान्ति के द्वारा अन्धकार राशि को विनष्ट कर रही

चिराय सा लब्धफलं मनोरथं
विलोक्य बाला चरणाम्बुजं प्रभोः ।
समाश्रिता दीप्तिमुवाह भूयसीं
सौन्दर्य्य लक्ष्मीरिव सा स्वयम्बरा ॥६६॥

परस्परं तौ सुमनःसमूहौ
विचक्रतुः प्रेमरसेन सार्द्धम् ।
तयोरभिक्षा सममाविरासी
त्तदैव चित्रा शशिनोरिवासौ ॥६७॥

अथौपविश्य प्रभवे प्रदातुं
सुतां द्विजोऽसौ विधिना विधिज्ञः ।
वराय पाद्यं विनिवेद्य हृद्यं
हृदिस्थितं प्रेमविलोचनाभ्याम् ॥६८॥

थी, अलङ्कृत करके प्रभु के हस्त में समर्पण कर दिया ॥६५॥

उस समय वल्लभदुहिता श्रीप्रभु के पादपद्म को सन्दर्शन करके चिरकाल सञ्चित मनोरथ लाभ हुआ, मानकर स्वयम्बर लक्ष्मी के समान अतिशय शोभिता होकर विराजित हुई ॥६६॥

उक्त युगल परस्पर एकमन होकर प्रेमरस के सहित विराजित होने से उक्त युगल को देखकर बोध होने लगा कि-मानों चन्द्रमा चित्रा के सहित विराजित हैं ॥६७॥

अनन्तर विधिज्ञ शुद्ध बुद्धि वल्लभाचार्य्य आसनोपरि उपविष्ट होकर विधिपूर्वक श्रीप्रभु को कन्या समर्पण करने के निमित्त हृदिस्थित उत्कृष्ट प्रेमरूप पाद्य का प्रदान श्रेष्ठ बर को निज लोचन द्वय के द्वारा किये थे ॥६८॥

तमर्घ्यमर्घ्यं मधुपर्कभूषितं
सविष्टरं सुन्दरमासनं ततः ।
क्रमेण तस्मै महनीयमूर्त्तये
ददौ वरस्य प्रवराय शुद्धधीः ॥६९॥

दत्त्वा तनूजां महिताय तस्मै
बभार हर्षं सदृशं समुत्सुकः ।
इमानि चासौ मनसि प्रकामं
वहिर्विभेदाथ तनूरुहेषु ॥७०॥

ततो निवृत्ते महिते महोत्सवे
प्रियां समादाय कृपामहाम्बुधिः ।
रराज राजन्मुखपद्मविभ्रमो
यथा शशी चन्द्रिकया समन्वितः ॥७१॥

विश्वम्भरो विश्वजनाय कौतुकं
विकीर्य्य विश्वार्त्तिभरैर्महाप्रभुः ।

तत् पश्चात् क्रम पूर्वक विष्टर आसन के सहित मधुपर्क भूषित उत्कृष्ट अर्घ्य का प्रदान पूजनीयमू र्त्तिवरश्रेष्ठ को आपने किया ॥६९॥

तदनन्तर समुत्सुक होकर महामान्य वर को कन्या सम्प्रदान करतः आप अतिशय हृष्ट हुये थे। द्विजवर के मनोमध्य में जो आनन्दसञ्चित था, मानों वह ही रोमाञ्च रूप में बाहर प्रकट होने लगा॥७०॥

शुभ परिणय महोत्सव क्रिया समापन के अनन्तर कृपासागर शचीनन्दन, लक्ष्मी को ग्रहण कर चन्द्रिका समन्वित चन्द्र के समान प्रफुल्ल वदन से शोभित हुये थे ॥७१॥

तत् पश्चात् श्रीविश्वम्भर, विश्व के आर्त्ति समूह द्वारा कातर

लक्ष्मीं समादाय शरीरिणीं श्रियं
सौन्दर्य्यसारस्य जगाम वेश्मनि ॥७२॥

द्विजाङ्गनानामथ सञ्चयैः सा
शची सुतोद्वाहसुखैरनेकैः ।
अस्फूर्त्तिमत्तां धियमेत्य गेहे
प्रवेशयामास बधूं सूतञ्च ॥७३॥

दत्वा द्विजेभ्यो बहुधैव हर्षिता
वसूनि वासांसि च चन्दनानि ।
लेभे तदा निर्वृतिमुत्तमां शची
समाप्तिकृत्या हि महाजनोद्यमा ॥७४॥

वसन् स इत्थं निजमन्दिरे प्रभु-
र्मुमोद लक्ष्म्या सह कान्तया तया ।

विश्वजनों के प्रति कौतुक विस्तार करते करते, सौन्दर्य सार की मूर्त्तिमती लक्ष्मी के समान लक्ष्मी को ग्रहण कर निज गृहाभिमुख में यात्रा किये थे ॥७२॥

उक्त समय में शची, पुत्रोद्वाह के आनन्द में सम्मिलित होने के निमित्त जो सब रमणीवृन्द आगमन किये थे, उनसब के सहित मिलित होकर आनन्द विह्वल चित्त से पुत्रबधू एवं पुत्र को गृहप्रवेश करवायी थीं ॥७३॥

शची, अतिशय आह्लाद के सहित ब्राह्मणवृन्द को धन, वस्त्र, चन्दन प्रभृति प्रदान कर उत्तम सुखानुभव करने लगीं, कारण, महाजनगणों का उद्यम कभी भी निष्फल नहीं होता है ॥७४॥

उक्त रीति से महाप्रभु सर्वदा लक्ष्मी नाम्नी कान्ता के सहित निज गृह में अवस्थान पूर्वक आनन्दानुभव करतः जननी के अभिप्रायानुसार

सदा जनन्या परिचिन्तितक्रियो
गृहस्थधर्म्मं सदुदारमावहन् ॥७५॥

कान्ताङ्गसङ्गामृतधारया तया-
भिषेचयन्ती हृदयेशयद्रुमम् ।
मनोभिलाषस्तवकोच्चयं सुख-
प्रसूनवृन्दं विरराज सा भृशम् ॥७६॥

उरस्तरागस्य किमब्जकोरकौ
मनोहरे हारलताफले किमु ।
लावण्यसिन्धोः किमु कोकशावकौ
मनोजदन्तावलकुम्भकौ किमु ॥७७॥

विधेर्निजं सौष्ठवमुन्निनीषतो
निर्म्माणरम्ये किमु हेमकुम्भकौ ।

उत्कृष्टगृहस्थ धर्म समूह का निर्वाह करने के निमित्त तत्पर हो गये ॥७५॥

वल्लभनन्दिनी भी पति के अङ्गसङ्ग रूप अमृतधारा के द्वारा कान्तरूप कल्पतरु को, जिसमें अभिलाष रूप स्तवक एवं सुखरूप पुष्प समूह उत्पन्न हो रहे हैं, उसको सिञ्चन करती हुई शोभिता हुई थीं ॥७६॥

अनन्तर गौराङ्गपत्नी के वक्षःस्थल रूप तड़ाग में जो वक्षोजद्वय उद्गत हुये हैं, उसे देखकर प्रतीत होता है कि-वह क्या पद्मकलिका है? अथवा मनोहर हारलता का फल है? अथवा लावण्य सागर विहारी चक्रवाक शावकद्वय हैं? अथवा कन्दर्प हस्ती के कुम्भ द्वय हैं? ॥७७॥

किंवा उत्तम सृष्टि कार्य में विधाता की जो निपुणता है, उसका

स्तनौ नवारब्धेसमुद्गकौ प्रभोः
संबिभ्रती हर्षभरं बभास सा युग्मकम् ॥७८॥

मुखेन मन्दाक्षविनम्रचक्षुषा
स्मितानुपृक्तेन सदोष्ठरोचिसा ।
स्मेरेण गण्डेन मधूकपाण्डुना
मनोधिराजस्य मनो जहार सा ॥७९॥

सुसीमभाजा स्तनकोरकेण सा
बलद्वलीकेन कृशोदरेण च ।
नितम्बिना सज्जघनेन सुन्दरी
सदा मनोनाथ मनः समाददे ॥८०॥

तदङ्गसंसर्गसुधाम्बुराशेः
प्रवाह संगाहन शीतलस्य ।
लावण्यमत्यन्तनितान्तकान्तं
बभूव गौराङ्गमहाप्रभोस्ततः ॥८१॥

निदर्शन स्वरूप ही क्या वे दोनों मङ्गल हेमघट स्वरूप हैं ? जो भी हो, वल्लभदुहिता, इस प्रकार स्वीय नवोद्गत वक्षोजद्वय के द्वारा महाप्रभु के हर्षातिशय को विस्तार पूर्वक शोभित होने लगीं ॥७८॥

लक्ष्मी देवी, लज्जा से विनम्र नयन, ईषत्हास्य, विम्बोष्ठ युक्त वदन, एवं स्मित प्रफुल्लित मधूक पुष्पतुल्य पाण्डुवर्ण गण्डयुगल के द्वारा, तथा सुमनोहर वक्षोज कलिका त्रिबलीबद्ध क्षीणोदर, नितम्ब एवं सुन्दर जघनद्वय द्वारा सर्वदा प्रियतम का मनोहरण करने लगीं थीं ॥७९-८०॥

लक्ष्मी संसर्गरूप सुधासमुद्र में अवगाहन कर शीतलाङ्ग श्रीमन्महाप्रभु का मनोहर लावण्य अतीव प्रकाशित हुआ ॥८१॥

इत्थं कियन्त्यत्र दिनानि नाथो
नीत्वा कृपार्यै करुणैकसिन्धुः ।
ययौ मघोनो दिशि सज्जनोघैः
सार्द्धं समृद्धैर्निजसत्कृपाभिः ॥८२॥

स यत्र यत्र प्रभुरुद्गतोभू-
दभूतपूर्व्वः शतचन्द्रतुल्यः ।
विलोक्य नाथं खलु तत्र तत्र
रूपामृतेनापि मुमोह लोकः ॥८३॥

लावण्यपीयूषनिधौ मनुष्या
विलोक्य वक्त्रेन्दुमदृष्टपूर्व्वं ।
विलोचनाभ्यां सततं पिबन्त-
स्तृष्णाविकारस्य न पारमीयुः ॥८४॥

परस्परं ते कथयान्बभूवुः
क एष कस्यैष महानुभावः ।

श्रीगौराङ्गदेव कुछ समय घर में उस रीति से अवस्थान करने के पश्चात् स्वीय कृपाभाजन सज्जन एवं धनाढ्य व्यक्ति समूह के सहित पूर्वदेश की यात्रा किये थे ॥८२॥

अभूतपूर्व शतचन्द्र तुल्य श्रीगौराङ्गदेव जहाँ पर गमन करते थे, तत्रत्य जन समूह उनको सन्दर्शन कर तदीय रूपामृत से विमोहित होने लगे थे ॥८३॥

मानववृन्द, महाप्रभु के लावण्यामृत समुद्र में प्रभु के मुखचन्द्र को देखकर निरन्तर लोचनद्वय के द्वारा उसका पानकर तृष्णाविकार से मुक्त होने में असमर्थ हुये ॥८४॥

परस्पर कहने लगे थे-यह कौन हैं? यह महानुभाव किसके

पुण्येन वा केन दधार गर्भे
सुनिर्वृता का सुकुमारमेनम् ॥८५॥

अनङ्ग एवायमभूच्छरीरी
विधाय लक्ष्मीं द्विगुणां स्वकीयां ।
अस्माकमक्ष्णोः श्रवणद्वयस्य
न गोचरः कुत्रचिदेवमेषः ॥८६॥

स्त्रियस्तथोचुर्नयनोत्पलाभ्यां
तदास्यपीयूषरसं पिबन्त्यः ।
क एष कन्दर्पसमस्तदर्पं
तिरस्करोत्यङ्गरुचैव शश्वत् ॥८७॥

सौभाग्यराशेः कतरेव बल्ली
लीलावतोऽस्यानुपमैव लीला ।
रतिं विधायात्र रतिं न का वा
तिरस्करोत्यद्भुत एष सर्गः ॥८८॥

सन्तान हैं? किस भाग्यवती ने किसप्रकार पुण्यानुष्ठान से इस सुकुमार को गर्भ में धारण किया है ॥८५॥

आश्चर्य है, इस प्रकार पुरुष किसी स्थान में है, वह हमारे श्रवण नयन के गोचरीभूत नहीं है, प्रतीत होता है कि-अनङ्ग स्वीय द्विगुण लावण्य प्रकाश कर शरीर परिग्रह किये हैं, इसमें सन्देह नहीं है ॥८६॥

तत् पश्चात् ललना निकर स्व स्व नयनोत्पल के द्वारा तदीय मुखमाधुरी पान करते करते कहने लगीं--यह कौन है? निज कान्ति के द्वारा निरन्तर कन्दर्प के दर्प को विचूर्ण कर रहे हैं ॥८७॥

यह क्या हमारी सौभाग्य राशि की किसी एक लता है?

श्रृण्वन्नसौ मूग्धबधूजनेरिता
वाचो नवद्वीपकिशोरचन्द्रमाः ।
लावण्यलक्ष्मीस्तिमितेन रज्यता
कटाक्षपातेन ददर्श ताः प्रभुः ॥८९॥

यन्नाममात्रश्रवणेन देहिन-
स्तरन्ति संसारसमुद्रमुल्वणम् ।
सोऽपि स्वयं लोचनवर्त्मसंश्रित-
स्तद्वर्ण्यतां केन कृपा महाप्रभोः ॥९०॥

पद्मावतीं द्वीपवती कृपावान्
स्नानेन सौभाग्यवतीं चकार ।
तस्यास्तटं साधुभिरहितोऽसौ
महाप्रभुः सस्पृहमध्यवात्सीत् ॥९१॥

अहो ! लीला विशिष्ट पुरुष की कैसी अनुपम लीला है। जो भी हो, यह सृष्टि अत्यद्भुत है, इनमें प्रीति स्थापन कर कौन वनिता रति को तिरस्कार नहीं करती हैं, अर्थात् रति, जिस कन्दर्प को पत्तिरूप में वरण कर चूकी है, यह उस कन्दर्प की अपेक्षा कोटिगुण अधिक है ॥८८॥

नवद्वीप किशोरचन्द्रमा, मुग्ध बधुवृन्द के वाक्य श्रवण कर लावण्य लक्ष्मी परिपूरित सुभङ्गिकटाक्षपात द्वारा उनसब के प्रति अवलोकन किये थे ॥८९॥

ललनागण और भी कहने लगीं, जिनके नाम श्रवण मात्र से जनगण भयानक संसार समुद्र से उत्तीर्ण हो जाते हैं, आप ही क्या आज हमारे नयन पदवी को प्राप्त किये हैं ? अहो ! महाप्रभु की कृपा का वर्णन कौन करेगा ? ॥९०॥

अनन्तर कृपालु गौराङ्गदेव, जिस द्वीपवती पद्मावती को

महद्भिरुच्चैः पुलिनैः सुशोभै-
स्तरस्विना दीप्तिमती जवेन ।
तदङ्गसङ्गामृतपूरपूर्णा
सैषा तदा स्वस्तटिनीसमाभूत् ॥९२॥

तरङ्गहस्तैः शफरीविलोचनै-
र्नितम्वरूपैः पुलिनैर्विसारिभिः ।
पद्मावती तुल्यगुणा मृगीदृशां
चकार कौतूहलमस्य शाश्वतम् ॥९३॥

महात्मनां पुण्यसमूहभाजां
कुर्व्वन् सुखं नेत्रमहोत्पलस्य ।
ममाद माद्यत्करिराजगामी
जगन्मनोहारि विहार लोलः ॥९४॥

तत्रैव नाथः कियतः स मासा-
नध्यापयन् कोमलचित्तवृत्तिः ।

भागीरथी में परिणत किये थे, आप उसके तट में साधुजन कर्त्तृक पूजित होकर निवास करने लगे ॥९१॥

उत्तुङ्ग परम सुन्दर द्वीपवती स्रोतवती पद्मावती, श्रीमन्महाप्रभु के अङ्ग स्पर्श कर अमृत वेग से पूर्णा होकर जाह्नवी तुल्या हो गई ।९२।

महाप्रभु के कौतुक निमित्त पद्मावती, तरङ्गरूप हस्त, सफरी रूप नेत्र, पुलिनरूप प्रशस्त नितम्ब धारण कर मृगलोचना ललना के समान मनोरम शोभा विस्तार करने लगी ॥९३॥

करीन्द्रगामी, जगन्मनोहारी विहारलीला सम्पन्न श्रीगौराङ्ग देव, जिनका वदनचन्द्र जगज्जनानन्दप्रद है, जिनकी कान्ति, कोटि चन्द्र तुल्य है, जिनका चित्त, अति सुकोमल है, आप वहाँ पर

जगज्जनाह्लादकरास्यचन्द्रो
निनाय कोटीन्दुसमानकान्तिः ॥९५॥

अथात्र लक्ष्मीर्निजमन्दिरे सा
प्राणाधिनाथस्मृतिमात्रचेष्टा ।
पदाब्जसंवाहनमार्ज्जनाद्यैः
श्वश्रूसपर्य्यानिरता बभूव ॥९६॥

निरन्तरं प्राणपतेः समागमं
विचिन्तयन्ती चिरमुत्सुकात्मना ।
सम्मार्ज्जन स्वस्तिक लेपनादिभि-
श्चकार सा देवगृहेऽभिषेवणम् ॥९७॥

सुशीतलाभिः शुचिशीलताभि-
र्गिरा सुधापुरितयातिमृद्व्या ।
मेने शची मूर्त्तिमतीं श्रियं तां
तनूमिवान्यां तनुजस्य तस्य ॥९८॥

अध्यापन वृत्ति अवलम्बन के द्वारा कतिपयमास अतिवाहित किये थे ॥९४-९५॥

लक्ष्मी भी निज मन्दिर में निज प्राणनाथ की चिन्ता में निमग्न होकर पाद सम्वाहन एवं मार्जनादि कार्य के द्वारा श्वश्रू की परिचर्या मे निरता हुई ॥९६॥

एवं समुत्सुकचित्त से निरन्तर पति की आगमन चिन्ता करतः मार्जन एवं स्वस्तिक लेपनादि के द्वारा देवगृह की सेवा करने लगी ॥९७॥

शची, पुत्रबधू की सुशीलता एवं पवित्र व्यवहार को देखकर तथा सुकोमल मधुर वाक्य श्रवण कर पुत्र के तनु के समान मूर्त्तिमती

इत्थं गृहे तत्र बधूद्वितीया
विचिन्तयन्ती तनुजागमं सा ।
निनाय कालं चिरमासजन्ती
बध्वां सुतस्नेहमतिप्रवृद्धम् ॥९९॥

विज्ञाय कालादयथाविहारिणः
प्रभोर्मतं सा निजचित्तवृत्तिभिः ।
तामेव विच्छेदरुजं वताश्रिता
तदातिरोधात्तमिहाकरोन्मनः ॥१००॥

दैवादथो मन्दिरमध्यमागत–
श्चक्षुःश्रवाः क्रूरतरः सुपामरः ।
बध्वाः पदं शारदपद्मसौरभं
भेजे कठोरैर्दशनैः कठोरधीः ॥१०१॥

अन्य लक्ष्मी स्वरूप ही उनको मानने लगीं ॥९८॥

इस प्रकार शचीदेवी, केवल पुत्रबधू के सहित द्वितीय होकर पुत्र की आगमन चिन्ता करके पुत्र के प्रति जो अतिशय स्नेह था, उसका प्रयोग बधू के प्रति करके कालातिपात करने लगीं ॥९९॥

अनन्तर लक्ष्मी देवी, कालक्रम से निज चित्त वृत्ति के द्वारा अथवा विहरणशील प्रभु के मत को जानकर अर्थात् प्रभु ने मुझको परित्याग किया है, यह निश्चय कर अति क्लेशपूर्वक तदीय विरह पीड़ा को शान्त करने के निमित्त निज मन को स्थिर की ॥१००॥

एकदिन लक्ष्मी देवी निज मन्दिर में उपविष्ट थी, उस समय दैवक्रम से अति पामर क्रूर स्वभाव विशिष्ट एक कालसर्प आकर शारद पद्मगन्ध विनिन्दित तदीय चरण तल में कठोर दशन द्वारा दंशन किया ॥१०१॥

तथाविधां तामवलोक्य दुःखिता
शची चकाराथ विषप्रमार्ज्जनम् ।
तथा प्रसङ्गोत्तमसञ्चयानसौ
यत्नं समानीय चिरं बधूप्रिया ॥१०२॥

अनेकधा तैर्विहिताः प्रकाराः
विषस्य दूरीकरणाय नैव ।
शेकुस्तदादैवकृतं विदित्वा
मोहं समीयूर्विकलाश्च सर्व्वे ॥१०३॥

तदीश्वरेणेरितमेव मत्वा
बधूं बधूस्नेहकृशा कृशाङ्गीम् ।
गङ्गातटेऽन्यामिव तत्र गङ्गां
निनाय धन्यामतिदुःखदग्धा ॥१०४॥

बधूप्रिया शची, लक्ष्मी को क्लेशकर अवस्थापन्न देखकर दुःखित चित्त से सर्पविष निवृत्ति के निमित्त अनेक विध प्रचेष्टा करने लगी, एवं यत्न पूर्वक अनेक विषबैद्य को बुलाकर उन सबके द्वारा भी विष प्रतिकार की चेष्टा करने लगीं ॥१०२॥

किन्तु विष बैद्यवृन्द, विष निवारण के निमित्त विविध प्रयत्न करने पर भी जब असफल रहे, तब उक्त सर्प दंशन को दैवकृत जानकर मोह एवं चित्त व्याकुलता से सब व्यक्ति अभिभूत हो गये ॥१०३॥

अति दुःख संतप्ता बधूस्नेहकातरा शची ने उक्त घटना को ईश्वरकृत जानकर द्वितीय गङ्गा के समान भाग्यवती बधू को गङ्गातीर में ले जाने की व्यवस्था की ॥१०४॥

ततो विमाने दिवि राजमाने
प्रसूनवर्षैर्दिविषदभिरान्नैः ।
पत्युः पदाब्जं हृदि गाढ़मेषा
ततः परिष्वज्य जहौ तनूं स्वाम् ॥१०५॥

ततोऽङ्कमारोप्य सुदुःखिता शची
बधूं विमुग्धा रुदती विलापिनी ।
जगाद कृच्छ्राद्वचसा गरीयसा
क्षोभेण शोकेन च गद्गदस्वरम् ॥१०६॥

गतः सुतो मे भवतीं समर्प्य
प्रियस्तवासौ मयि दुःखभाजि ।
हीनात्वयातस्यमुखं कथं वा
द्रक्ष्यामि दुःखैकनिवासभूमिः ॥१०७॥

उस समय स्वर्गस्थ देवगण विमान के द्वारा आगमन पूर्वक पुष्प वर्षण करने से लक्ष्मी देवी निज हृदय में पतिचरणद्वय को मनसा गाढ़रूप में स्थापन कर प्राण वायुरहित हो गयीं ॥१०५॥

तब शची पुत्रबधू के मृत कलेवर को निज क्रोड़ में स्थापन कर विमुग्ध चित्त से सरोदन विलाप करने लगीं, एवं अतिकष्ट से क्षोभ व शोक हेतु सकरुण वाक्य प्रयोग कर बधू को उद्देश्य कर गद्गद स्वर से कहने लगीं ॥१०६॥

वत्से ! मैं अति हतभागिनी एवं अति दुःखिनी हूँ, मैं अतिशय क्लेश प्राप्त करूँगी, जानकर पुत्र, विदेश गमन के समय मेरे निकट तुमको छोड़ गया था। हाय ! अब मैं तुमको छोड़कर पुत्रमुख दर्शन कैसे करूँगी ? ॥१०७॥

त्वया कृता प्रीतिरतीव गौरवं
निरन्तरं यत्र विशेषभक्तया ।
कथस्त्विदानीं परिदेवनान्वितो
विलोक्यते न क्षणमप्ययं जनः ॥१०८॥

आहूतमात्रैव मया ददासि
प्रहर्षभीतिस्मितभक्तिलज्ञम् ।
प्रत्यूत्तरं हन्त कथस्त्विदानीं
न भाषसे मां रुदतीं सशोकाम् ॥१०९॥

यद्वा मयि प्रीतिलवोऽपि नास्ति ते
बभूव दैवेन यदीदृशी गतिः ।
अमुं तव प्राणपतिं ममात्मजं
न वीक्ष्य किंवा व्रजसि प्रियंवदे ॥११०॥

हे वत्से ! तुमने भक्ति प्रीति गौरव पूर्वक जिनकी परिचर्या की वह मैं अतिशय व्यथा से कातर हूँ। क्यों मुझको क्षणकाल के निमित्त भी नहीं देख रही हो ? ॥१०८॥

वत्से ! मैं जब तुम्हें आह्वान करती, तत् क्षणात् तुम आह्वान के साथ साथ ही प्रहर्ष, भीति, ईषद्धास्य, एवं भक्ति, लज्जा के सहित उत्तर प्रदान करती। हा कष्ट ! वह मैं शोक से रोदन कर रही हूँ, अब क्यों नहीं कुछ कहती हो ? ॥१०९॥

अथवा, हे वत्से ! यदि मेरे प्रति विन्दु मात्र प्रीति तुम्हारी नहीं है, दैव वशतः इस प्रकार घटना होती है तो हो, किन्तु हे प्रियम्वदे ! तुम्हारा प्राणपति, मेरा सन्तान है, उनका दर्शन न कर कैसे तुम जा रही हो ? ॥११०॥

असौ तव प्राणपतिः प्रियङ्करो
निरन्तरं प्रेमनवप्रकाशिनि ।
अमुं प्रति प्रीतिलवोऽपि नास्ति ते
किं मातरित्थं क्रियते यतस्त्वया ॥१११॥

निरन्तरं या गमनाय पत्यु-
र्विचिन्तयन्ती त्वमुदश्रु सुभ्रु ।
विलोक्य मां साध्वसपूर्व्वमासीः
सलज्जमश्रूण्यपसारयन्ती ॥११२॥

या त्वं त्रपायै मयि साध्बसाय
स्वजीवितेशस्य वियोगदुःखं ।
दत्त्वा वहिश्चेतसि तप्यमाना
लज्जावती प्रत्यहमेवमासीः ॥११३॥

हे नव प्रेमप्रकाशिनि ! यह तुम्हारा प्राणपति है, निरन्तर प्रियङ्कर है, हे मातः ! तुम जब इस प्रकार व्यवहार कर रही हो, तब बाध होता है कि—इसके प्रति तुम्हारी किञ्चिन्मात्र भी प्रीति नहीं है ॥१११॥

हे सुभ्रु ! जो तुम निरन्तर पति का आगमन का स्मरण कर सजल नयन हो जाती एवं मुझको देखकर भय एवं लज्जावनत वदन से अश्रुपात करती रहती ॥११२॥

और जो तुम लज्जा एवं भय निमित्त मुझको स्वीय प्राणनाथ का वियोग दुःख प्रदान कर प्रत्यह परितापवती एवं लज्जावती होकर रहती थी ॥११३॥

सा त्वं तदीयास्यसुधामयूखं
तवैव चेतःकुमुदैककान्तम्
कठोरचित्ते तमवीक्ष्य साक्षात् ।
कथं कुतो या व्रजसि प्रसह्य ॥११४॥

कथं महाक्रूरमते विहाय मां
स्वभावमृद्वी भवता बधूरियं ।
अदंशि सर्प क्षणमप्यसौ दया
त्वामेव पस्पर्श न साम्प्रतं ननु ॥११५॥

यदङ्गमेतत कुसुमैः सुदूयते
वाष्पोष्मणा चापि शिरीषकोमलम् ।
कथं नु वा तेऽसहतातिदुःसहं
विषाग्नितेजस्तदिदं हतास्मि तत् ॥११६॥

हे कठोरचित्ते ! वह तुम निज चित्तरूप-कुमुद का एकमात्र कान्त स्वरूप पतिमुखचन्द्र का दर्शन न कर हठात् कैसे कहाँ चली जा रही हो ? ॥११४॥

हा कष्ट ! अरे क्रूर ! अरे सर्प ! तुमने मुझको छोड़कर कोमल स्वभावा मेरी बधू को क्यों डस लिया ? मैं निश्चय जान गई हूँ, दयाने तेरे को स्पर्श भी नहीं किया है ॥११५॥

अरे कीटाधम ! जो अङ्ग शिरीष कुसुम सदृश सुकोमल है एवं जो कुसुमाघात तथा वाष्पगत उष्मता से भी परितप्त होता है, अरे खल ! कह तो दे उस अङ्ग ने कैसे तेरा दुःसह विषाग्नि तेजः को सहन कर लिया। हाय ! मैं हतास्मि में मर चली ॥११६॥

इत्थं सुदीना विलपन्त्यनुक्षणं
विलोचनद्वन्द्वजलेन भूयसा ।
चकार सा क्षालितमेव सन्ततं
स्नेहेन बध्वा वदनेन्दूमण्डलम् ॥११७॥

समाप्य कृच्छ्रेण चितोचिताः क्रियाः
गृहं ययौ रोदनमेव कुर्वती ।
कथं बधूशून्यमवेक्ष्यते गृहं
तनूजरत्नश्च तथेतिदुःखिता ॥११८॥

अथागतो गौरसुधामयूखः
कियद्दिनान्तरमेव गेहे ।
निस्तार्य्य तत्रत्यजनानजस्रं
स्वमातृदुःखान्यपहर्त्तुकामः ॥११९॥

अनन्तर शची माता, अत्यन्त दुःखी होकर अनुक्षण विलाप करते करते स्नेह परिपूर्ण नयनद्वय की अश्रुधारा के द्वारा निरन्तर बधू के वदन चन्द्र को सेचन करने लगीं ॥११७॥

अनन्तर शची माता अति कष्ट से बधू की अन्त्येष्टि क्रिया का समाधान कर रो-रो कर घर में लौट आयी, एवं अतिशय दुःख से कातर होकर कहने लगीं, हाय ! अब बधू शुन्य गृह के प्रति मेरा पुत्ररत्न कैसे दृष्टिपात करेगा ? ॥११८॥

अनन्तर श्रीगौरचन्द्र तत्रत्य जननिकर को उद्धार कर कियद्दिनानन्तर जननी की दुःख शान्ति के निमित्त गृह में उपस्थित हुये थे ॥११९॥

विलोक्य हर्षं न तथाविधं सा
सुतं चिरं प्रोषितमप्यगच्छत् ।
बधूवियोगेन सुदुःसहेन
तदा यदाधिक्यमनेन भेजे ॥१२०॥

विधाय भूयो भुवि दण्डवन्नतिं
रजः समादाय पदद्वयस्य ।
तथाविधां तामवलोक्य दुःखितां
प्रपच्छ नाथो मनसा विदन्नपि ॥१२१॥

स्वकीयवाणीसुधयावगाह्य-
न्नयं जनन्याः सकलां तनूं ततः ।
जगाद मातर्मलिनेव लक्ष्यसे
कथं त्वमेवं ननु कथ्यतामिति ॥१२२॥

किन्तु शचीदेवी, विदेशागत पुत्ररत्न को स्वनयन से निरीक्षण करके भी पूर्ववत् हर्षित नहीं हुईं, बरञ्च पुत्र को देखकर बधूनिधन जन्य शोक और भी प्रबल हो उठा ॥१२०॥

तब श्रीगौराङ्गदेव, जननी को साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर बारम्बार तदीय चरण द्वय की धूलि ग्रहण किये थे, पश्चात् जननी को शोक दुःख से कातर देखकर, यद्यपि आप सर्वज्ञ हैं, मनसा सब कुछ जान सकते हैं, तथापि आपने माता को जिज्ञासा की ॥१२१॥

प्रभुने स्वकीय वचनामृत से जननी के सर्वाङ्ग को स्नापित कर कहा, मातः ! आपको क्यों मलिन की भाँति देख रहा हूँ ? इसका कारण क्या है ? आप कहें ॥१२२॥

इत्थं समस्तं बुबुधे महाप्रभु–
स्तदप्यनुक्तं सहसा हसन् मुहुः ।
तदीयनेत्रद्वयनिर्भरोद्गतैः
पयोभिराख्यानितमेव साक्षात् ॥१२३॥

बध्वूस्तवासौ परलोकमागता
मातस्तदत्रास्ति महद्धि कारणं ।
इयं कदाचिन्नहि मानुषो भवेत्
कस्यापि हेतोः पृथिवीं समागता ॥१२४॥

अहं हि जानामि तदेतदस्या
यं कारणं भूमिमुपागतायाः ।
तथागतायाश्च समस्तमेव
तत्त्यज्यतां मातरिह प्रमोहः ॥१२५॥

यद्यपि जननी ने उस विषय में प्रत्युत्तर कुछ भी नहीं दिया, तथापि तदीय नयन युगल के वाष्पजल सकल ही मानों उक्त विषय को कह दिये थे। महाप्रभु स्मितहास्य के सहित समस्त विषय अवगत होकर कहे थे ॥१२३॥

मातः! आपकी बधू का जो परलोक गमन हुआ है, उसका महत् हेतु यह है कि वह मानवी नहीं है, किसी कारण वशतः पृथिवी में उसका आगमन हुआ था ॥१२४॥

जननी! आपकी बधू का पृथिवी में आगमन जिस हेतु हुआ था एवं जिस कारण परलोक गमन भी हुआ उक्त समुदाय को मैं जानता हूँ, आप शोक परित्याग करें ॥१२५॥

इत्थं निशम्याशु वचः सुतस्य
शची ययौ निर्वृतिमुत्तमां सा ।
ननन्द पुत्रेण समं तथान्यैः
स्वबन्धुभिः स्वैर्विभवैः शचीव ॥१२६॥

ततोऽतिवेलं मनसा विचिन्त्य
तनूजरत्नस्य विवाहकार्य्यम् ।
समानयामास तदैव काशी–
नाथं द्विजश्रेष्ठमदीनसत्त्वा ॥१२७॥

आनीय तं क्षिप्रमुवाच विप्रं
तदात्मजोद्वाहविधिं विवित्सुः ।
समुच्यतां मत्तनुजाय कन्यां
सनातनो विप्रबरः प्रदातुम् ॥१२८॥

इत्थं निशम्यैव वचांसि विप्रः
क्षिप्रं प्रमोदेन सनातनाय

अनन्तर शची, पुत्र वाक्य श्रवण कर शनैः शनैः शोक सन्ताप से शान्ति प्राप्त कर स्वीय पुत्र के ऐश्वर्य्य एवं बन्धु वर्ग के सहित इन्द्राणी के समान परमानन्द से काल यापन करने लगीं ॥१२६॥

अनन्तर विवाह कार्य्य विषय की चिन्ता मन में करके सानन्द से द्विजश्रेष्ठ काशीनाथ को आपने घर में बुलवाया ॥१२७॥

पुत्रोद्वाह विधि को सफल करने के निमित्त शची उनको घर में बुलाकर बोलीं, हे काशीनाथ! विप्रवर सनातन को जाकर आप निवेदन करें कि, "मदीय पुत्ररत्न को आप स्वीय कन्या प्रदान करें" ॥१२८॥

विप्र काशीनाथ पण्डित वैवाहिक माङ्गलिक विधि में निष्णात थे, शची के वाक्य को सुनकर सत्वर सनातन के निकट जाकर कहे

न्यवेदयन् माङ्गलिकं विधित्सु–
वैंवाहिकं तत् सकलं विधिज्ञः ॥१२९

तदा तदाकर्ण्य वचो विमृश्य
स्वैर्बन्धुभिः कार्य्यमवश्यमेतत् ।
इत्थं विचिन्त्याथ जगाद हृष्टो
निर्णीयतां काल इदं विधेयम् ॥१३०॥

निशम्य सर्व्वं वचनं स विप्रः
सुखेन शीघ्रं समुपेत्य शच्यै ।
न्यवेदयत्तत् परिकर्ण्य साऽपि
तुतोष सानन्द ममन्दभाग्या ॥१३१॥

सनातनेन प्रहितोऽथ कश्चित्
समेत्य तां तत्र जगाद नत्वा
गुणेन रूपेण बरां बराङ्गीं
स याचते ते तनयाय दातुम् ॥१३२॥

थे,–'हे विपेन्द्र ! आप शची तनय को स्वीय कन्या प्रदान करें' ।१२९।

सनातन, काशीनाथ के प्रमुख से "श्रीगौराङ्ग मदीय कन्या ग्रहण करेंगे" सुनकर बन्धु बान्धव के सहित परामर्श करतः हृष्टचित्त में आपने काशीनाथ को कहा, महाशय ! तब आप विवाहानुष्ठान के निमित्त दिन स्थिर करें ॥१३०॥

काशीनाथ, सनातन के वाक्य श्रवण कर आनन्द चित्त से तत्-क्षणात् प्रत्यागमन करतः शचीमाता को कहे थे, देवि ! सनातन, आपके पुत्र को कन्या सम्प्रदान करेंगे, यह सुनकर महाभाग्यवती शची अतिशय सन्तुष्ट हुईं ॥१३१॥

इस समय सनातन कर्त्तृक प्रेरित एक ब्राह्मण आकर शची

विष्णुप्रियां प्राप्य तवात्मजः प्रियां
यथार्थसंज्ञामिव तां करोतु सः ।
वृत्ते विवाहे भवतां सुनिर्वृंता-
वुमामहेशाविव तौ परस्पर ॥१३३॥

गत्वा स सर्व्वं द्विजपुङ्गवाय
न्यवेदयत्तत् कथितं समस्तम्
सत्पण्डितः सोऽपि सनातनस्तैः
सनातनैर्हर्षभरैरुदासे ॥१३४॥

द्रव्याणि भद्राणि स शुद्धकीर्त्तिः
समाहरत् कौतुकलोलचेतः ।
निर्णीय कालं तरसाधिवासं
विधातुकामो मुमुदे सुतायाः ॥१३५॥

को प्रणाम कर कहे थे, देवि! सनातन भवदीय पुत्र को रूप गुण से अतुलनीया स्वीया परमा सुन्दरी कन्या सम्प्रदान करने के निमित्त अभिलाषी हैं ॥१३२॥

आपने कहा है - आपका पुत्र, मेरी कन्या विष्णुप्रिया को ग्रहण कर उसका विष्णुप्रिया नाम ग्रहण सार्थक करेंगे, शुभ परिणय सुसम्पन्न होने से उमामहेश्वर के समान उभय ही सुखी होंगे ॥१३३॥

उक्त ब्राह्मण प्रत्यागत होकर समस्त वृत्तान्त पण्डितप्रबर सनातन को कहने पर सनातन उक्त वृत्तान्त सुनकर परमानन्दित हुये थे ॥१३४॥

अनन्तर विशुद्धकीर्त्ति सनातन आनन्दित चित्त से माङ्गलिक द्रव्य समूह का आहरण कर शीघ्र कन्या का अधिवास काल निर्णय कर अतिशय आनन्दानुभव किये थे॥१३५॥

शुभेन लग्नेन विभूषिते ततः
प्रकाशमाने समये समन्ततः ।
शुभाधिवासं विदधे महामति-
र्महाधियामाप्तफला मनोरथाः ॥१३६॥
ततो ददौ भूसुरपुङ्गवेभ्य-
स्ताम्बूलमाल्यानि सचन्दनानि ।
संप्रेषितैस्तैरपि कारयित्वा
जामातुरग्रे मुदितोऽधिवासम् ॥१३७॥
अथ प्रभाते प्रभुराह्निकीं क्रियां
स्नात्वा चकार द्युनदीपयःसु सः ।
कियद्विलम्वेन च तं महीसुरा
हर्षादलंचक्रुरलं प्रसाधनैः ॥१३८॥
ऊचुश्च साधो विजयस्व साधु
साधुर्विवाहस्य बभूव कालः ।

महामति सनातन, समागत अभीप्सित शुभकाल को देखकर स्वीय कन्या का शुभाधिवास किये थे, कारण महाबुद्धि सम्पन्न व्यक्ति का मनोरथ सफल होता है ॥१३६॥

पश्चात् उक्त विप्र, विप्रवर्य्यगण को ताम्बूल, माल्य, चन्दन आदि प्रदान कियेथे, एवं उक्त ब्राह्मणवर्ग को प्रेरण कर सर्वाग्र में जामाता का अधिवासन कराये थे ॥१३७॥

अनन्तर श्रीगौराङ्गदेव, प्रभात समय में भागीरथी जल में स्नान एवं आह्निक क्रियानुष्ठान सम्पन्न करने के पश्चात् कियत्क्षणानन्तर ब्राह्मणगण उनको वसन भूषण के द्वारा शोभित किये थे ॥१३८॥

एवं कहे थे-हे साधो ! वैवाहिक यात्रा का शुभ समय समागत

इत्थं निशम्यारचयत् कृपालु
यात्रां समारुह्य मनोज्ञदोलाम् ॥१३९॥

सन्तप्तचामीकरगौरदेह
दोलामुपेतः शरदभ्रशुभ्रां ।
दुग्धाम्बुराशेरुपरि प्ररूढ़ं
शृङ्गं सुमेरोः स जिगाय सद्यः ॥१४०॥

जामातरं वीक्ष्य समीपमागतं
प्रोद्‌गम्य हर्षेण तनूरुहैः समं ।
पाद्यासनाद्यैर्वरयाम्बभूव
क्षणेन कन्याञ्च ददौ सकूकुदः ॥१४१॥

द्विजस्त्रियः स्वस्तिकधूपदीपै-
रमुष्य निर्मञ्छन मादरेण ।

है, तब श्रीगौराङ्गदेव ब्राह्मणों के वाक्य को सुनकर मनोहर दोला-रोहण पूर्वक विवाहार्थ यात्रा किये थे ॥१३९॥

तत्कालीन श्रीगौराङ्गदेव की आश्चर्य शोभा का वर्णन क्या करें? उनका देह, प्रतप्त सुवर्ण की अपेक्षा भी गौर वर्ण है, आप शरत् कालीन मेघ तुल्य शुभ्र दोलारोहण कर मानों दुग्ध समुद्र के उपरिस्थित सुमेरु शृङ्ग को पराजित कर रहे थे ॥१४०

द्विजश्रेष्ठ सनातन, समागत जामाता को अवलोकन कर हर्षातिरेक से रोमाञ्च के सहित प्रत्युद्‌गमन पूर्वक तत्क्षणात् कन्या दानार्थ उद्यत होकर पाद्य एवं आसनादि के द्वारा बर को वरण किये थे ॥१४१॥

उस समय द्विजपत्निगण, स्वस्तिक धूप दीप प्रभृति के द्वारा श्रीगौराङ्गदेव की निर्मञ्छन करने लगीं, उस समय द्विजवर स्वीय

चक्रुः समानीय ततः स कन्यां
प्रादात् द्विजस्तस्य पदाम्बुजेभ्यः ॥१४२॥

उन्मीलत्पटुपटहप्रकृष्टढक्का-
निस्वानैः स्फुटरटितैश्च मर्द्दलानां ।
श्रीमद्भिर्जयनिनदैः प्रसूनवृष्ट्या
रेजाते स्मितसुमुखौ परस्परं तौ ॥१४३॥

इत्येवं गृहमनयत् बधूं महद्भि
र्वादित्रध्वनिसहितैर्जयध्वनैश्च ।
सा हृष्टा सपदि निवेशयाञ्चकार
स्त्रीरत्नं मुदितमना: शची स्वगेहम् ॥१४४॥

इति—श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये
तृतीयसर्गः समाप्तः

कन्या को लाकर तदीय चरणारविन्द में समर्पण कर दिये थे ॥१४२॥

तत् कालीन उत्तम उत्तम पटह, ढक्का, मर्द्दल प्रभृति की तुमुल ध्वनि होने लगीं, एवं स्थान स्थान में जयध्वनि एवं पुष्पवृष्टि भी प्रारम्भ होने से श्रीगौराङ्गदेव एवं तदीय पत्नी परस्पर सहास्य वदन से मनोहर शोभित हुये थे ॥१४३॥

अनन्तर विवाह विधि सम्पन्न होने से नानाविध वाद्यध्वनि एवं जयध्वनि के सहित शचीदेवी स्नुषारत्न के सहित पुत्ररत्न को घर में लाकर परम तृप्त हुई थीं ॥१४४॥

श्रीचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये तृतीयसर्गः समाप्तः



चतुर्थः सर्गः

अथ कृपारसवारिनिधीन्दुना
स्वजनमानसकैरवबन्धुना ।
दयितया सह तत्र विराजिता
निजगृहे जगृहे गृहमेधिता ॥१॥

द्रुतसुवर्णसुवर्णरुचः शुचे-
र्मधुरकोमलशीतलविभ्रमः ।
श्रियमसौ मधुरामतिसुन्दरी
मवपुषो वपुषोनुरुचाहरत् ॥२॥

अमूमवेक्ष्य हृदा हृदयेशयः
सपदि निश्चितमित्थममन्यत ।
इममृते मम मन्मथता जनै-
रनुकथं नु कथं न हसिष्यते ॥३॥

दयासिन्धु, स्वजन मानसरूप कुमुदचन्द्र श्रीगौराङ्गदेव, निज दयिता के सहित विराजित होकर निजगृह में गृहमेधीय धर्मावलम्बन पूर्वक निवास करने लगे ॥१॥

श्रीगौराङ्गदेव के आश्चर्य रूप का वर्णन किस प्रकार करें? आप गलित सुवर्ण के मनोहर वर्ण की अपेक्षा भी मधुर कोमल एवं शीतल शोभाविशिष्ट गौरवर्ण के हैं, आपका शरीर सौष्ठव इस प्रकार है, जिसके द्वारा आप कन्दर्प की अति मधुर शोभा का अपहरण कर रहे हैं ॥२॥

हृदयङ्गम कन्दर्प ने श्रीगौराङ्गदेव को अवलोकन कर यह सद्य निश्चय किया है कि-श्रीगौराङ्ग मूर्त्तिव्यतीत जननिकर मेरी मन्मथता की कथा को सुनकर क्यों नहीं हसेंगे? अर्थात् गौराङ्ग

निजपदाब्जरसैरतिशीतलै-
र्जगदपूरयादत्तकृपारसः ।
य इह तत्कथने विरमन्त्यहो
तनुधरा नु धरासु वसन्ति ते ॥४॥

अथ गुरुत्वमुपेत्य विकस्वरा
म्बुजविलोलविलोचनखेलनैः ।
द्विजगणं समपाठयदेष यत्
प्रतिभयातिभयाकुलितो गुरुः ॥॥५॥

विविधशिष्यसदस्यपि राजतः
कनकगौरतनोर्मधुरद्युतेः ।
सुखवतः परिपाठयतोऽस्य सा
सुरुचिरा रुचिरास सुधारसम् ॥६॥

मूर्त्ति की जिस प्रकार अनुपम माधुर्य है, इसका सन्दर्शन करने से अवश्य ही जगत् का मन निःसन्दिग्ध अपहृत होगा ॥३॥

जिन्होंने कृपापरवश होकर निज चरण पद्म के शीतल रस के द्वारा जगत् को परिपूर्ण किया है, हाय ! उनका गुण कथन में विरत होकर जो सब तनुधारी मानव धरातल में निवास करते रहते हैं, उनसब का जीवन व्यर्थ है ॥४॥

अनन्तर प्रफुल्ल कमल लोचन श्रीगौराङ्गदेव गुरुत्व स्वीकार कर ब्राह्मणवृन्दों को इस प्रकार अध्ययन कराने लगे थे कि—तदीय प्रतिमा अर्थात् नव नवोन्मेष शालिनी प्रज्ञा को देखकर गुरु बृहस्पती अथवा गुरु गङ्गादास अतिशय भयाकुलित हो गये थे ॥५॥

मधुर कान्ति कनक गौरतनु गौरहरि, बहुविध शिष्य मण्डली के द्वारा परिवृत होकर मधुर वाक्य से अध्ययन कराने में प्रवृत्त होने से उनकी प्रसिद्ध मनोहर कान्ति, अतिशय सुधारस वर्षण करने लगी ।६।

दशनरश्मिभिरच्छरदच्छदो
स्नपयता सततं वदनेन्दुना ।
स्मितसुधामधुरेण महाप्रभु-
र्घनरुचा नवचारुरुचिर्बभौ ॥७॥

सकलशिष्यमुखानि महाप्रभोः
कलयतः ककुभः सततारुणाः ।
विदधिरे बहुविभ्रमयावलत्-
करुणयाऽरुणया नयनश्रिया ॥८॥

करतलेन गिरां गुरुविभ्रमै-
र्भ्रमवता स बभौ परितः स्फुरन् ।
कनकशैल इवोद्गतगैरिको-
दयलता लयताण्डवखेलनाम् ॥९॥

उस समय श्रीमन्महाप्रभु की दशन ज्योत्स्ना के द्वारा निरन्तर उद्भासित अधरच्छद् स्नपनकारी वदनचन्द्र, स्मितसुधा एवं नवनीरद गर्ज्जन के सदृश गम्भीर वाक्य के द्वारा अभिनव रूप से शोभित हुआ ।७।

निरन्तर बलवत् करुणापूर्ण अरुण नयनों से शिष्यवृन्द के प्रति श्रीमन्महाप्रभु दृष्टिपात करने से दिक्समूह विविध विभ्रम मण्डित हो गये ॥८॥

जिस समय श्रीगौरहरि, विभ्रम विशिष्ट स्थुल करतल द्वारा चतुर्दिक में स्फूर्त्तिशील होकर वाक्य विन्यास करने लगे थे, उस समय बोध होने लगा कि कनक, शैलोत्पन्न गैरिक की भाँति लय ताण्डव नृत्य में रत हो गया है ॥९॥

अयमयं नु किमस्य कमस्य वा
किमयमर्थं उतस्विदयन्त्विति ।
कलकलोस्य बभूव सुखाय स
त्रिचतुरैश्चतुरैः परितः कृतः ॥१०॥

प्रभुमुखे युगपत् पतयालुभि-
र्विसृमरैरलिभिर्विदधे मुहुः ।
विततपक्षविधूननसक्षणै-
र्दिगवलागवलावलिविभ्रमा ॥११॥

किसलयं सलयं किमु वारुणं
सकमलं कमलं किमुवेत्यलिः ।
इह तदा हतदाक्ष्य इव प्रभोः
करदलं रदलङ्घनयाभजत् ॥१२॥

चतुर्दिक में विचक्षण शिष्यवृन्द, 'भोः, इसका अर्थ क्या है? यह ही क्या इसका अर्थ है? अथवा यह ही अर्थ है?' इस प्रकार जब परस्पर कहने लगे थे, तब उक्तार्थं रूप कलध्वनि श्रीगौरहरि की सुख सम्पादिका हुई थी ॥१०॥

प्रसरणशील मधुपवृन्द, आनन्द के सहित पक्ष विस्तार पूर्वक श्रीगौरहरि के सम्मुख में इस प्रकार पतित होने लगे, उस समय प्रतीत होने लगा कि—दिगङ्गना समूह भृङ्ग समूह के विभ्रम से विभूषित हुये हैं ॥११॥

जिस समय श्रीमन्महाप्रभु शिष्यवृन्द की सभा में उपविष्ट थे, उस उनके करतल को अवलोकन कर भ्रमरवृन्द मन ही मन वितर्क करने लगे थे कि—यह क्या अरुण वर्ण चञ्चल मृणाल है? अथवा सजल कमल है? निश्चय करने में अलिवृन्द विमूढ़ होकर तदीय घन रेखाञ्चित करपङ्कज दल में निपतित हो गये ॥१२॥

नखसुधांशुसुधां शुचिमुक्षता
सुरुचिरेण चिरेण मधुव्रतः ।
करदलेन दलेन रुचाप्यभूद्-
धवलता वलता सुचिरोषितः ॥१३॥

स परितः परितक्ष्य धुरीणतां
मधुरिमा धुरि मानवतां श्रियाम्
भुवि हितं विहितं रचयन् सता-
मगमदागमदाक्ष्यममुष्य किम् ॥१४॥

प्रभुमुखेन्दुगलद्वचनामृतं
मृतजनस्य च जीवितदायि तत् ।
श्रुतिपथेन निपीय चिरेण ते
मुदमिता दमिताखिलकल्मषाः ॥१५॥

श्रीगौर सुन्दर के दलित सूर्यकान्ति सदृश मनोहर हस्तदल जो निरन्तर नखचन्द्र की शुक्ल सुधा का सेचन में नियुक्त था, उससे भ्रमर मुग्ध होकर पुष्पमकरन्द शोभित शुभ्रवर्ण लता समूह के प्रति उदासीन हो गया, अर्थात् उक्त लता समूह में उपविष्ट होने की इच्छा उसकी नहीं रही ॥१३॥

अपर कथा यह है कि—भ्रमर सब प्रकार से मधुर माधुर्य धुरीगण को छोड़कर पृथिवी में नियन्त्रित होकर साधुमानी व्यक्ति वृन्द की विहित हित रचना करके क्या श्रीगौराङ्गदेव की शास्त्र-निपुणता को प्रकाश किया ? ॥१४॥

मृतजन को जीवनप्रदायक श्रीगौरहरि के वदनचन्द्र विगलित वचनामृत का पान श्रुति के द्वारा करके शिष्य समूह कल्मष रहित हो गये ॥१५॥

धवलपक्षसपक्षरुगंशुकः
शुकचञ्चुरुचं चुलुकीकृताम् ।
मधुरयोर्नुदधेऽधरयोरसौ
मधुरयो यदयं परिजृम्भते ॥१६॥

नवविकस्वरपङ्कजभास्वरं
स्मितमधुद्रवविश्वविलोभनम् ।
जहसुरस्य मुखेन्दुमवेक्ष्य ते
रसमयं समयन्तमशोणताम् ॥१७॥

विधुरसौष्टवतां लभतां मुहु-
र्विधुरसौ वलता वदनांशुना ।
मधुरसान्वितपुष्पमनोरमो
मधुरसाधुरसावभिवर्त्ततान् ॥१८॥

श्रीमन्महाप्रभु के परिधेय वसन शुभ्रवर्ण का था, नासापुट मानों शुकपक्षी के चञ्चु की चलुकीकृत किया है, एवं जृम्भा हेतु अधरद्वय मानों मधुधारा प्रवाहित कर रहे हैं ॥१६॥

श्रीगौरहरि के नवविकसित पङ्कज सदृश विश्वविलोभन मधुद्रव स्वरूप ईषत्‌हास्य विशिष्ट मुखचन्द्र है जो रसमय कोकनद को तिरस्कार कर रहा है, उसको देखकर शिष्यवृन्द हास्य करने लगे थे ॥१७॥

आहा ! श्रीगौरहरि के वदन चन्द्र को पुनः पुनः अवलोकन करके भी चन्द्रमा असौष्ठव को प्राप्त किया, एवं मधु रसान्वित पुष्प मनोरम मधु अर्थात् वसन्त, श्रीमन्महाप्रभु के मुखमाधुर्य्य को सन्दर्शनकर असाधु रूप में अवस्थित हुआ ॥१८॥

इति जनः परिपाठयति प्रभौ
प्रभवता प्रतिभानरसाब्धिना।
मधुरिमानमवेक्ष्य समुज्जगौ
नवसुधा बसुधामिव किं श्रिता ॥१९॥

इति कियन्ति दिनानि महाप्रभुः
समनयत् परिपाठ्य कृपानिधिः।
निजतनोर्महसा स दिनन्दिनं
प्रभवता भवतापचयानपि ॥२०॥

स जननीभगिनीपतिना गयां
सममुपैतुमनस्तदनन्तरम्।
निजयतोरयचेष्ठितविभ्रमैः
सुमनसां मनसां मुदमावहत् ॥२१॥

श्रीगौराङ्गदेव बलवत् प्रतिज्ञा समुद्र के द्वारा शिष्यवर्ग को अध्यापन करने में प्रवृत्त होने से तत्रत्य जननिकर तदीय अपरूप रूप लावण्य को अवलोकन कर कहने लगे कि–क्या नवसुधा वसुधा को आश्रय किया है? ॥१९॥

कियत्काल पर्यन्त कृपानिधि महाप्रभु अध्यापन कार्य में रत होने से उनकी अङ्गकान्ति इस प्रकार वर्द्धित होने लगी, जिससे समस्त भवताप मूलतः विनष्ट हो गये ॥२०॥

अनन्तर श्रीगौरहरि जननी के भगिनीपति आचार्य रत्न के सहित गयाधाम गमनेच्छु होकर निज मनोरम चेष्टा विलास के द्वारा सज्जनवृन्द को आनन्दित किए थे ॥२१॥

प्रथममुल्लसितो विजयोद्यमे
परिसमाप्तविधिर्महितो मुहुः ।
द्विजगणेन सुखैर्ववृधे जय–
स्वनवता नवतामरसेक्षणः ॥२२॥

द्विजगणैर्भगणैरिव संक्षरन्
द्युतिसुधा वसुधासु शशीव सः ।
सुकथितैः पथि तैर्विलसन् प्रभु
रसमयं समयं तममन्यत ॥२३॥

क्वच विलोक्य मनोज्ञतमां स्थलीं
स्थलपयोरुहपादपयोरुहाम् ।
उपतरङ्गिणि तेन विशविभ्रमे–
न मधुपा मधु पातुमनुत्सुकाः ॥२४॥

नव तामरसेक्षण महाप्रभु गयाधाम गमन पूर्वक उल्लसित होकर विधि पूर्वक श्राद्धादि अनुष्ठान सम्पन्न किये थे, अनन्तर जयध्वनि परायण विप्रवृन्द कर्त्तृक मुहुर्मुहुः पूजित होकर परमसुखी हुये थे ॥२२॥

नक्षत्रराजि परिवेष्टित चन्द्रमा जिसप्रकार शोभित होते हैं, श्रीमन्महाप्रभु भी द्विजवृन्द परिवेष्टित होकर उस प्रकार शोभित हुये थे, एवं गमन के समय सत् प्रसङ्ग से उस समय का अति मधुर बाध कर रहे थे ॥२३॥

तत् पश्चात् भागीरथी तीर में उपस्थित होकर श्रीमन्महाप्रभु मनोरम प्रदेश को अवलोकन कर उपवेश करने पर अलिकुल व्याकुल होकर स्थलपद्म की मृणाल भ्रान्ति से तदीय पादपद्म मकरन्द पान करने के निमित्त अतिशय उत्सुक हो गये थे ॥२४॥

निभृत नील मधुव्रत लोचनै-
र्ललित केशर दन्त विकस्वरैः ।
विकसिताम्बुरुहाननमण्डलै-
र्मधुरसाधुरसा मधुशालिनी ॥२५॥

मदनमन्थरहंसबधूगति-
प्रतिपदोल्लसिता मधुराकृतिः ।
कमलिनीततिरस्य मुदं दधे
सरसि को रसिको विलसेन्न हि ॥२६॥ युग्मकम्

मधुकरा मधुपानमदोन्मदाः
किमिदमेव गदन्ति मुहुर्मुहुः ।
स्फुटसरोजवनीष्ववनीतले
कलभतां लभतां रसिको जनः ॥२७॥

सरसि का रसिको विरता भवे-
दुरसि को रसिकोऽधृततत्कुचः ।

तदनन्तर भ्रमररूप लोचनसे, केशररूप दशन श्रेणीसे, विकसित पद्मरूप वदन मण्डलसे, हंस समूह के मनोरम निनादसे एवं तदीय गति माधुर्य से उत्कृष्ट मधुर रस विशिष्टा सरोवरस्थ मधुशालिनी मधुराकृति कमलिनी श्रीगौरहरि को आनन्दित करने लगी, कुछ भी हो, इस प्रकार सरोवर के तट देश में रसविद् कौन व्यक्ति अवस्थान नहीं करेगा ? ॥२५।२६॥

उस समय अलिकुल मधुपानमत्त होकर मुहुर्मुहुः कहने लगे थे कि—अवनीमण्डल में रसविज्जन क्या नलिनीवनस्थ करिशावक के समान विचरण करते हैं ? ॥२७॥

वे सब और भी कहने लगे कि-सरोवर में कौन रसिक बिरत

ननु कथन्नु कथञ्चन तौ मतो
कमलकोमलकोरकवन्नयौ ॥२८॥

इह दृशां सुदृशां सुषमां समां
तुलयितुं लयितुञ्च मुहुर्मुहुः ।
कुवलयं वलयं पवनैर्वनै-
रकति वा कति का मधुरा धुराः ॥२९॥

तनुतरङ्गतरङ्गमवीक्ष्य सा-
ऽतनुतरङ्गगतं प्रियमाकुला ।
तनुतरङ्गमयन्त्यखिलं पयो-
ऽतनुतरङ्गममुष्य सितच्छदी ॥३०॥

कलरुता गरुतामवधूननं
विदधती दधती प्रणयं प्रिये ।
अकृतका कृतकाऽपि मुदं विभो-
र्मंदकलोदकलोलितचक्रिका ॥३१॥

होता है एवं कमल को वक्षःस्थल में धारण नहीं करता है एवं कमल कोरक को बहुमान प्रदान नहीं करता है ॥२८॥

सरोवरस्थ कमलिनीवृन्द सुनयना रमणीवृन्द के नयन की सुषमा मण्डित हैं एवं समालिङ्गित होने के निमित्त पुनः पुनः शीकर समन्वित समीरण के सहित मधुरभाव प्राप्त हैं ॥२९॥

राजहंसीनिकर निज प्रियतम को रङ्ग विरहित देखकर सरसी को तरङ्गायित करतः अतिवेग से स्वीय प्रियतम के निकट धावित होने लगीं ॥३०॥

इस प्रकार मधुर भाषिणी हंसीवृन्द काकुस्वर से पक्षद्वय

तनुतरङ्गजवेन तरङ्गितं
निकटगं सरसः सरसं तटम् ।
परिविलोक्य ययौ मुदमुत्तमां
सुरुचिरे रुचिरेव हि कामिनः ॥३२॥

श्रमलशीकरशीतलमेदुरः
कुवलयं कलयन् वलयाकृति ।
बलयसाध्वससाध्वतिमन्थरः
श्रमहतीर्महतीर्बिदधे मरुत् ॥३३॥

अथ पथि प्रथितातिसुखोद्गमं
लघु चलन्तमलन्त मवेक्ष्य सः ।
किमनुरागरसैरतिलोहितो
दिनपतिर्न पतिष्यति विह्वलः ॥३४॥

विधूनित करके सरोवर को आवर्त्तित करतः श्रीमन्महाप्रभु को सन्तुष्ट करने लगीं ॥३१॥

तरङ्गाकुलित सरोवर के तटदेश को अवलोकन कर अखिल रसामृत मूर्त्ति श्रीमन्महाप्रभु निःसीम आनन्दित हुये थे, कारण मनोरम वस्तु सन्दर्शन से सहृदय का हृदय आनन्दोत्फुल्ल होता ही है ॥३२॥

अनन्तर अमल शीकर शीतल समीरण मन्द मन्द प्रवाहित होकर पथश्रम जनित श्रीमन्महाप्रभु की महती श्रान्ति को अपनोदन करने लगा ॥३३॥

उस समय दिनकर, महाप्रभु को सुख समुद्र में निमज्जित होते देखकर अनुरागरस से अरुणिमाव्याप्त हो गया, तब सब व्यक्ति अनुमान करने लगे थे कि–दिनपति विह्वल होकर निपतित न हो जाय? ॥३४॥

अथ विलोक्य गतश्चरमाचले
पिपतिषुं परिपक्वफलाकृतिम् ।
दिनकरं भ्रमरैः सह निःसृतै-
र्गतरसा तरसा भवदब्जिनी ॥३५॥

अपतता क्वचनापिच निर्यता
मदकलालिकुलेन समन्ततः ।
सहजवैरवतीच बभूव सा
कुमुदिनी मुदिनी रजनी तदा ॥३६॥

नवविकाशपराऽपि कुमुद्वती
मधुकरैः सुतरां परिबोधिता ।
बलवता दयितेन यथा भवेत्
प्रियतमायतमानविरामतः ॥३७॥

अविरतं नलिनी मधुमाधुरी-
मदमदा अपि पुष्पलिहो मुहुः ।

उस समय परिपक्वफलाकृति पतनेच्छु दिनकर को निःसृत अलिकुल के सहित अस्ताचलगत देखकर नलिनीनिकर म्लान हो गये थे ॥३५॥

तब नलिनीनिकर के प्रति अत्यादर प्रकाश पूर्वक उसमें पतनरत मधुकरनिकर को देखकर कुमुदिनीमुदिनी रजनी ने मानों प्रति हिंसा से वैरभाव को अवलम्वन किया ॥३६॥

प्रियतम – प्रियतमा के प्रफुल्ल वदनकमल को देखने के निमित्त जिस प्रकार उसका निद्राभङ्ग करता हैं, उस प्रकार अलिकुलनिकर भी कुमुदिनी को मुद्रित देखकर प्रतिबोधनरत हो गये ॥३७॥

नवरसाभिज्ञ श्रेष्ठ व्यक्तिगण जिसप्रकार अनवरत एकरस

कुमुदिनीमभजन्निरतस्पृहा
नवरसा बरसाधुजनाः खलु ॥३८॥

शिषयिषुर्निशि कारुणिकस्ततः
क्वचन नीवृति निर्वृतिमानसः ।
सहसमस्तजनेन सुनिद्रता-
घटनतोऽटनतो विरराम सः ॥३९॥

दिनमुखस्य विलोकयतस्ततो-
ऽपरदिने लघु वाति नभस्वति ।
रुचिरतां करुणामयवारिधे-
र्हृदयमुद्धरमुत्सुकता ययौ ॥४०॥

सरादिसङ्कुचता दलता नवं
दलचयेन ततः समविभ्रमा ।
उदयताविशतालिकुलेनच
प्रवसतावसता रजसाऽपिच ॥४१॥

आस्वादन करते करते विरक्ति प्रयुक्त अपर रसस्वादनेच्छु होते हैं, उस प्रकार मधुमाधुरी आस्वादनरत मत्त भ्रमरगण भी कमलिनी को परित्याग करतः कुमुदिनी को अवलम्बन करने लगे थे ॥३८॥

कारुणिक श्रीमन्महाप्रभु शयनेच्छु होकर जनपद में भ्रमण उपरत होकर वहाँपर निद्रासुखानुभव करने लगे थे ॥३९॥

अनन्तर रजनी अवसान होने से प्रभातकालीन सुस्निग्ध समीरण प्रवाहित होने लगा, श्रीमन्महाप्रभु प्रभातकालीन हृदयङ्गम रमणीयता को सन्दर्शन कर अतिशय आनन्दित हुये थे ॥४०॥

अलिनिकर कुसुमरेणु से धूसरित होकर निद्रा से उत्थित होकर देखे थे कि—पुष्पदल समूह विदलित हो गये हैं, सुतरां वे सब कमल

दिनमुखेस्य ततान महाप्रभो-
र्मु दमनेकतमां पथि गच्छतः ।
कुमुदिनी नलिनीच समन्ततो
विधिकृतेऽधिकृतेव विचित्रता ॥४२॥ युग्मकम्

स हृदये हृदयेप्सितमीक्षणा-
दकृतकोऽकृतको न हि विभ्रमः ।
स्मरणतो रणतोपि मुदं प्रभो-
र्दिविरता विरता विततीर्दधे ॥४३॥

चिरमिव प्रतिबोधमुपागता
गिरिभुवो विभुलोचनवर्त्मगाः ।
विविधपत्त्रिरवेण जयध्वनिं
सपदि सम्पदि सन्ततमादधुः ॥४४॥

वन में प्रविष्ट होकर कमलमधु पान में प्रवृत्त हो गये ॥४१॥

अनन्तर कुमुदिनी एवं नलिनी प्रत्यूष में भ्रमणरत श्रीमन्महाप्रभु को देखकर उनको सर्वतोभावेन अतिशय आनन्द प्रदान करने लगीं ॥४२॥

तत् पश्चात् महाप्रभु—वनस्थली की शोभा सन्दर्शन करतः वन भ्रमण रत होनेपर उनको देखकर पक्षिकुल परम परितृप्त होकर श्रीप्रभु को आनन्दित करने लगे ॥४३॥

उस समय गिरिस्थली श्रीप्रभु की पादरेणु के स्पर्श से प्रति बोधित होकर ही मानों पक्षिकुल के कण्ठरव के च्छल से जयध्वनि करने लगी ॥४४॥

सुहरिता हरितालरुचाश्रयैः
क्वचन काञ्चनकान्तरुचिः क्वचित् ।
घनसमान समा स्वरुचाऽसिता
क्वच सिता च सिताच्छशिलाचयैः ॥४५॥

विकसितैः कसितैः कुसुमोच्चयै-
रिव दरी वदरी विधुरायिता ।
विहसतीहसतीक्षणगे प्रभा-
वधरभूधरभूरतिसुन्दरी ॥४६॥ युग्मकम्

अगवयैर्गवयैः शरणीकृतं
विसृमरैः सृमरैरुपशोभितम् ।
वृततरं ततरङ्कुभिरीश्वरः
स्थलमलोलमलोकयदध्वनि ॥४७॥

अनृजुलोचन लोचनविभ्रमै-
रनुपदं नु पदं नटयन्त्यसौ ।
द्रुततमं तत मञ्जुरसं न तं
वशयिता शयिता मृगसन्ततिः ॥४८॥

पार्ब्वत्य निम्नभूमि समूह हरिताल सदृश हरिद्वर्ण से काञ्चन पीतवर्ण से चन्द्रकान्त शिला के समान शुभ्रवर्ण से एवं निकष पाषाण तुल्य कृष्णवर्ण से विभूषित होकर मानों प्रसन्नता व्यक्त करने लगीं ॥४५।४६॥

प्रभु, उस समय गो, गवय एवं विविध मनोहर मृगवृन्द के द्वारा परिशोभित वनस्थली को मुहुर्मुहुः अवलोकन करने लगे थे ॥४७॥

उक्त वनस्थली में विचरण परायण मृगकुल व्याकुल चित्त से इतस्ततः भ्रमण करते रहते थे, उनके चमत्कार वक्रलोचन की शोभा

इति स वर्त्मनि गौरसुधानिधि–
विविधकौतुकवीक्षण कौतुकी ।
विरुरुचे सुखमग्नमना व्रजन्
विविध सद्विध सत्परिपालितः ॥४६॥

पथि स चोरनदे प्रभुरातनोत्
प्लवनतर्पणपूजनमुत्सुकः ।
ज्वरितमस्य वपुः समभूत्ततो
न चरितं चरितं भवति प्रभोः ॥५०॥

पथि शरीरगतेयमसुस्थता
कथमभूत् प्रतिकूलकरी मम ।
इति विचिन्तयता द्विज सश्रयो
निजगदे जगदेककृपालुना ॥५१॥

को देखकर श्रीहरि परम सन्तुष्ट हुये थे ॥४८॥

अनन्तर चमत्कार रूपधारी गौरहरि गृहस्थ एवं उदासीन जन निकर के साहाय्य से निज उज्ज्वल कान्ति से गन्तव्य पथ को उद्भासित करते करते स्वच्छन्द चित्त से गयाधाम में प्रभु विचरण करने लगे ॥४६॥

प्रभु, अनन्तर पथ के मध्य में चोर नामक नद में जब स्नान एवं पूजन कर रहे थे, उस समय हठात् आपका शरीर ज्वराक्रान्त तर्पण हो गया। किन्तु उससे दिनचर्या का क्रम भङ्ग नहीं हुआ ॥५०॥

कृपापूर्ण भगवान् का शरीर कैसे रोगाक्रान्त हुआ, यह मेरा प्रतिकुल आचरणकारी है, इस प्रकार निश्चय कर, प्रभु सहचर विप्रवृन्द को कहे थे ॥५१॥

अथ विचिन्त्य भृशं मनसात्मनो
ज्वरशमाय महाप्रभुरौषधम् ।
क्षितिसुराङ्घ्रिपयो न्यदिशत् स्वयं
नहि कृपां हि कृपाम्बुधिरुज्झति ॥५२॥

ज्वरशमोथ बभूव महाप्रभोः
सपदि तेन तदीयपदाम्बुना ।
जगति तच्चरितानि विदन्तु के
सुनिभृता निभृतानि जगत्त्रये ॥५३॥

अथ समेत्य स राजगिरिं प्रभु
र्द्विजगणेन मुदा व्यतनोत्तदा
पितृसमर्हणमुत्तममादरा
दुपरमे परमेष्ठिसरस्यपि ॥५४॥

अखिलतीर्थवरेषु पितृक्रियाः
स कृतसद्विधि तत्र समापयन् ।

अनन्तर आपने निश्चय किया कि — विप्रपादोदक ग्रहण व्यतीत ज्वर का उपशम नहीं होगा, वह ही एक मात्र महौषध है, अतएव आपसब पादोदक प्रदान करने की कृपा करें। कारण— कृपाम्बुधि कदापि कृपा त्याग नहीं करते हैं ॥५२॥

यह कहकर श्रीमहाप्रभु विप्रपादोदक सेवन किये थे, उससे ही उनका ज्वर उपशम हुआ, अतएव श्रीगौराङ्गदेव की विचित्र महिमा को जगत्त्रय में कौन जान सकते हैं ॥५३॥

तत् पश्चात् द्विजवृन्द के सहित श्रीमन्महाप्रभु राजगिरि एवं परमेष्ठि सरोवर में उपस्थित होकर पितृ श्राद्धानुष्ठान सम्पन्न किये थे ॥५४॥

अथ गयां सह भूसुरसञ्चयै-
रविशदाविशदात्मभिरुत्सुकैः ॥५५॥

अथ स गौरकिशोर सुधाकरः
प्रथितमीश्वरपूर्व्वपुरीति तम ।
सपदि वीक्ष्य मुदं निरपायिनीं
हृदि तदादितदापि ययौ प्रभुः ॥५६॥

तमवनम्य निपत्यच भूतले
बहुल हर्ष परिप्लुत मानसः ।
अथ जगाद गभीरघनस्वरां
विनयतो नयतोषकरीं गिरम् ॥५७॥

तव पदाम्बुजयुग्ममिदं प्रभो
बहुल भाग्यभरेण विलोकितम् ।
वद यथा हरिभक्तिगुणाद्भवेत्
प्रभवतो भवतोयधिशोषणम् ॥५८॥

श्रीमन्महाप्रभु—अनेक तीर्थं में पितृक्रिया समापन के अनन्तर उदारचेता ब्राह्मणवर्ग के सहित उत्सुकता से गयाधाम में प्रविष्ट हुये ॥५५॥

अनन्तर गौरकिशोर सुधाकर तत् क्षणात ईश्वरपुरी नामक सन्न्यासी का दर्शन कर विपुल आनन्दलाभ किये थे ॥५६॥

उनको देखकर भूमि में पतित होकर हर्षाप्लुत अन्तःकरण से विनय एवं प्रीति पूर्वक गंभीर घनस्वर से नीतिपूर्ण वाक्य कहे थे ॥५७॥

हे प्रभो ! परम सौभाग्य से आज आपका सन्दर्शन लाभ हुआ, श्रीहरिभक्ति गुण प्रभाव से जिस प्रकार में भवार्णव से उत्तीर्ण

इति निशम्य महाप्रभु भाषितम्
मुदमवाप्य यतिः स महाशयः ।
मनुमदात् प्रभवे करुणानिधिः
कृतदयं तदयं तममन्यत ॥५९॥

अमुमवाप्य मनुं व्रजभाविनी-
जनपतेः पुलकाङ्कुरशोभिना ।
विगलदश्रुभृता विनयादयं
निजगदे जगदेककृपावता ॥६०॥

यतिपते भवतः पदसङ्गमात्
सुमहतीह बभूव कृतार्थता ।
स्वगुरुभक्तिरिति प्रतिगृह्णता
विचकरे च करे पदजं रजः ॥६१॥

अथ स फल्गुनदीप्लवने यथा-
विधि विधाय पितॄन् समतर्पयत् ।

हो सकूँ, आप मुझे उस प्रकार उपदेश प्रदान करें ॥५८॥

महाशय यति ने श्रीमन्महाप्रभु की वाणी को सुनकर करुणार्द्र चित्त से मन्त्रराज का उपदेश किया ॥५९॥

श्रीमन्महाप्रभु यतिवर के निकट से मन्त्ररत्न प्राप्त कर प्रेम पुलक चित्त से सजल नयन होकर कहे थे ॥६०॥

हे यतिपते! आज मैं आपकी प्रसन्नता को प्राप्तकर परम कृतार्थ हो गया हूँ, यह कहकर भक्ति के सहित उनकी चरण धूलि ग्रहण किये थे ॥६१॥

अनन्तर करुणानिधि अरुणलोचन श्रीगौरहरि वहाँ से गमन

शवमहीभृति पिण्डमदादथो
करुणतोऽरुणतोप्यरुणेक्षणः ॥६२॥

समवतीर्य्य ततो व्यतनोत् क्रियाः
पितृगणस्य स दक्षिणमानसे ।
द्विजगणैश्च तथोत्तरमानसे
सहृदयैर्हृदयैक सुधाकरः ॥६३॥

पितृगणस्य गयाशिरसि क्रिया
अथ विधाय हरेः पदपद्धतिम् ।
प्रभुरवेक्ष्य मुदं हृदि निर्भरां
स सहसा सह साधुजनैर्ययौ ॥६४॥

कथमभून्न हरेः पदपद्धतिं
समवलोकयतो मृदुतैव स ।
इति विचिन्तयतोऽस्य दृशोर्भरो
विपुलकः पुलकश्च तदाभवत् ॥६५॥

कर फल्गुतीर्थ में उपनीत होकर स्नान तर्पण प्रभृति समापन कर प्रेत शिला में पिण्ड प्रदान किये थे ॥६२॥

तत् पश्चात् दक्षिण मानस में एवं गयासुर के मस्तक में पिण्ड प्रदान पूर्वक श्रीगदाधर के पादपद्म दर्शन कर सहचर वृन्द के सहित प्रस्थान किये थे ॥६३-६४॥

पश्चात् आपने सोचा, हाय ! मैंने श्रीगदाधर के पादपद्म का दर्शन किया, तथापि हृदय कोमल नहीं हुआ ? यह कहकर चिन्ता करते करते नयन अश्रुवारिपरिपूरित हो गये एवं अङ्ग पुलकाकुल हो गया ॥६५॥

इति तथाविधया निजचेष्टया
सपदि मुक्तसमस्तजनप्रभुः ।
अभवदुल्लसितश्चलितुं तदा
मधुवने धुवनेन चलत्तनुः ॥६६॥

अथ दिवः समभूदशरीरिणी
सपदि गीर्नवमेघवराकृतिः ।
पुनरुप्यैष्यति तत्र महाप्रभुः
स्वभवनं भव नन्दयितुं पुनः ॥६७॥

इति निशम्य दिवो गिरमुत्तमां
प्रमुदितेन महाप्रभुना ततः ।
निजगृहे चलितुं महिताशयैः
प्रववृतेऽववृतेन महीसुरैः ॥६८॥

अथकियद्दिनमात्रविलोम्बतो
निकवमागत आत्मज इत्यसौ ।

अनन्तर श्रीमन्महाप्रभु अभीप्सित साधन मानस से सद्य परिजन वर्ग को छोड़कर कम्पित कलेवर से मधुवन में प्रविष्ट हुये थे ॥६६॥

पश्चात् नवीन नीरद विनिन्दित रूपदर्शन हुआ सरसा नभोवाणी इद्दशी हुई कि – गौरहरि ! पुनर्बार गृह में प्रत्यागमन कर आप भवनानन्दानुभव करें ॥६७॥

हृदङ्गम मधुरवाणी को सुनकर ब्राह्मणवृन्द के सहित स्वभवन में गौरहरि प्रत्यावर्त्तन किये थे ॥६८॥

शचीदेवि पुत्र को गृहागत देखकर गृह को विविध उत्सब से

निजगृहान् समपुरयदुत्सवैः
सुमहतामहता हि मनोरथाः ॥६९॥

मृदुमृदङ्गयशः पटहोल्लसत्–
पणव काल कांस्य सुमर्द्दलैः ।
युगपदेव भृशं परिताड़नात्
ध्वनिरभून्निरभूत इवोच्छ्रितः ॥७०॥

अतिसुखेन परिप्लुतमानसा
सुरुचिरेण चिरेण तनूभुवा ।
गृहमुपेत्य ततो ददृशे मुदा
स्वजननी जननीतिषु कोविदा ॥७१॥

प्रभुरथो जननीपदजं रजः
करतलेन शिरस्यदधान्मुहुः ।
अथ पपात स दण्डवदुत्सुको
भुवि नयं विनयं विदधन्मुहुः ॥७२॥

परिपूर्ण करके मनोरथ सफल किये ॥६९॥

उस समय मनोहर मृदङ्ग, यशः, पटह, पणव, काहल, कांस्य, मार्दल प्रभृति विविध वाद्य यन्त्र की ध्वनि से दिग्विदिक् मुखरित हो उठे थे ॥७०॥

उस समय श्रीमन्महाप्रभु दीर्घदिन के पश्चात् गृहागमन करतः लोकनीति निपुणा एवं प्रफुल्ल वदना स्वीय जननी को सन्दर्शन किये थे ॥७१॥

जननी की पदधूलि ग्रहण कर श्रीमन्महाप्रभु स्वीय मस्तक में स्थापन किये थे, अनन्तर भूमि में दण्डवत् पतित होकर प्रणाम किये थे ॥७२॥

सुघनं सुततं सुघनं सुततं
सहसा शुषिरैः सहसा शुषिरैः ।
अथ वाद्यमभूदथ वाद्यमभू-
रभसोद्यम भूरभसोद्यमभूः ॥७४॥

अथ काञ्चन काञ्चननव्यलतां
मृदुलां मृदुलाञ्चित शुभ्रपटाम् ।
मुदितामुदितामथ वीक्ष्य तनुं
वसु तस्य सुतस्य ससर्ज्ज शची ॥७४॥

द्विजगणाय सनर्त्तक वादक-
प्रभृतयेऽपिच भिक्षुगणाय सा ।
निजसुतागमनोल्लसिता ददौ
निभृत संभृत सम्पदिजं वसु ॥७५॥

गयाया इत्येवं स्वगृहमगमद्भूरिकरुण-
प्रभुः पौषस्यान्ते सकलतनुभृत्तापशनः ।

उस समय पुनर्बार कांस्य, वंशी, वीणा एवं मुरज प्रभृति वाद्य यन्त्र की मनोहर ध्वनि होने लगी ॥७३॥

अनन्तर शची तप्तकाञ्चन तुल्य गौरवर्ण शुभ्र वसन धारी पुत्र को देखकर तदीय आगमन महोत्सव में उल्लसित होकर नर्तक, गायक, वादक, भिक्षु, एवं ब्राह्मणवृन्द को प्रचुर धन प्रदान किये ॥७४-७५॥

निखिल जीव निकर का तापापनोदनकारी अति दयालु श्रीमन्महाप्रभु पौष मास के अन्त में गयाधाम से गृह में प्रत्यागमन

ततो माघस्यादौ निरवधि निजैः कीर्त्तनरसैः
प्रकाशं चावेशं भुवि विकिरति स्मानुदिवसम् ॥७५॥

इति क्षणौत्क्षिप्तसमस्तचेष्टितः
प्रतिक्षणं गायति निर्भरं मुहुः ।
पदे पदे रोदिति रोमहर्षणै-
र्विमुक्तकण्ठं करुणापयोनिधिः ॥॥७७॥

इति—श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये

चतुर्थसर्गः समाप्तः



किये थे, एवं माघ मास के प्रथम दिन से निरन्तर निज कीर्त्तन रस के द्वारा प्रकाश एवं विकाश को प्रकट कर पृथिवी को सौभाग्य मण्डित किये थे ॥७६॥

करुणानिधि श्रीगौरहरि के उत्सव मध्य में समस्त चेष्टा आक्षिप्त होने से आप क्षण क्षण में रोमाञ्चित होकर मुक्त कण्ठ से गान एवं रोदन करने लगें ॥७७॥

श्रीचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये चतुर्थसर्गः समाप्तः



पञ्चमः सर्गः

आगत्यस्वगृसमथ स्वकीर्त्तनाद्यैः
संरेजे निरवधि रोदनैर्विभिन्नः ।
दृष्ट्वैवंविधिमनिशं सविस्मयासी–
दित्येतत् किमिति किमित्यथ प्रसूः सा ॥१॥

यामिन्यां शयितवतः शची कदाचित्
पुत्रस्य प्रथममवेक्ष्य रोदनं सा ।
ब्रूहीत्थं किमहह तात रोदिषि त्वं
साशङ्कं तमिति जगाद भूरिभाग्या ॥२॥

तत्श्रुत्वा न किमपि चेदुवाच नाथः
प्रेमार्द्रो नयनजलासिक्तसर्व्वगात्रः ।
सात्यन्तं निरवधि चिन्तिता तदासीत्
प्रेमेत्येतदपि विवेद दैवयोगात् ॥३॥

अनन्तर श्रीमन्महाप्रभु गयाधाम से गृह में प्रत्यावर्त्तन कर श्रीहरिनाम संङ्कीर्त्तन एवं विविध सात्विकविकारों से भूषित हुये थे, जननी शची, एवम्विध भाव को अवलोकन कर ‘यह क्या यह क्या है’ कहकर अत्यन्त विस्मित हो गईं ॥१॥

एकदिवस भूरि भाग्यवती शचीदेवी ने रजनी में शयान तनय का प्रथम रोदन को सुनकर शोकाक्रान्त चित्त से जिज्ञासा की, वत्स ! तुम क्यों रो रहे हो, कहो ? ॥२॥

उस समय श्रीमन्महाप्रभु प्रेमार्द्र चित्त में अवस्थित थे, उनके नयन जल से गण्डस्थल आप्लावित हो रहा था, जननी के वाक्य को सुनकर भी आप प्रत्युत्तर प्रदान करने में अक्षम थे, उससे शचीदेवी

ज्ञात्वैतत् विमलमना: शची तनूजं
सार्द्राक्षी विनयपरा भृशं ययाचे ।
मह्यं यद्धनमखिलं प्रयच्छसि त्वं
प्रेमाख्यं किसु न ददासि साम्प्रतं तत् ॥४॥

देवानामविदितमेतदत्यलभ्यं
प्रेमेदं यदवगतं त्वया गयायाम् ।
दीनायै तदिहहि मे प्रयच्छ तात
स्नेहस्ते यदि मयि तिष्ठति क्षणश्च ॥५॥

इत्यस्या गिरमधिगम्य गौरचन्द्रः
स्नेहार्द्रः प्रतिवचनं ददौ जनन्यै ।
तन्मातस्तव भविता चिरेण नूनं
यत्ते स्याद्गुरुतरवैष्णवानुकम्पा ॥६॥

चिन्तित हो गईं, एवं सहसा जान गईं कि—यह पुत्र का प्रेम विकार व्यतीत अपर कुछ नहीं है ॥३॥

तब विक्षुद्ध चित्ता शचीदेवी दैवक्रम से पुत्र का तादृश भाव को जानकर विनय के सहित बारम्बार कहने लगीं, मुझको अनेक धन रत्न दान तुमने किया है, सम्प्रति यह वस्तु प्रदान क्या नहीं करोगे ?

हे वत्स ! मैं अत्यन्त दुःखिनी हूँ, गयाधाम में तुमने देवदुर्ल्लभ जो प्रेमधन प्राप्त किया है, यदि मेरे प्रति तुम्हारा स्नेह हो तो मुझे वह प्रेम धन दान करो ॥५॥

श्रीगौरहरि, जननी के वाक्य को सुनकर स्नेहार्द्र चित्त से कहे थे—मातः सुदीर्घ कालान्तर में जब आपके प्रति वैष्णववृन्द की अनुकम्पा होगी, तब हीं आपका प्रेमधन लाभ होगा ॥६॥

तच्छ्रुत्वा मुदमधिकां ययौ ततः सा
तन्नूनं मम भवितेति हृष्टचित्ता ।
गौराङ्गोऽपि तदधिगम्य मातृचित्तं
विप्रेन्द्रान् विनयपरो जगाद भूयः ॥७॥

प्रेमायं निरवधि मृग्यते जनन्या
भक्तिश्च प्रभुचरणे गरीयसीयम् ।
ते स्यातां सपदि यथाशिषो भवद्भि-
र्युज्यन्तां तदनु तथोचुरेवमेते ॥८॥

इत्येवं क्वचन रुदन् विलोचनाभ्यां
धाराणां शतशतमादधात्युरःसु ।
श्लेष्माणं क्षिपति मुहुर्मुहुः स्थविष्ठं
नासाभ्यां भुवि विलुटन् क्वचित् स नाथः ॥९॥

पुत्र का कथन को सुनकर शचीदेवी अतिशय आनन्दिता हुईं, एवं आनन्द चित्त से बोलीं, हाय ! मैं क्या प्रेमधन प्राप्त कर सकूँगी ? तब श्रीगौराङ्गदेव जननी के हृदय को जानकर विनीत भाव से ब्राह्मण वृन्द को कहे थे ॥७॥

हे महानुभाववृन्द ! जननी श्रीप्रभु चरणों में प्रीति एवं गरीयसी भक्ति की वांञ्छा कर रही हैं, अतएव जननी के अन्तःकरण में जैसे प्रेमभक्ति का उदय हो, तज्जन्य आप सब उनको आशीर्वाद प्रदान करें, सुनकर ब्राह्मणों ने आशीर्वाद प्रदान किया ॥८॥

आशीर्वाद वचन को सुनकर श्रीगौराङ्गदेव आनन्दित हो गये नयनयुगल से उनका वक्षःस्थल आप्लावित होने लगे विविध सात्त्विक विकारों से चित्त समाक्रान्त हुआ एवं धरणी निपतित होकर लुठन करने लगे ॥९॥

प्रत्यूषप्रभृति दिनं समस्तमेव
प्रेमाश्रुप्रचुरवरै रुदन् विनीय ।
यामिन्या भवति सति प्रभुः प्रबोधे
वैकल्याद्दिनमिति तर्कयाम्बभूव ॥१०॥

सन्ध्यायां किमपि विमुक्तकण्ठः
प्रातः स्यात् कथमपि चेद्वहिः प्रबोधः ।
तन्नक्तं व्रजति कियत् कदेति गौरो
वैकल्याद्वदति न तस्य कालभेदः ॥११॥

नामैकं श्रवणपथं यदैव गच्छे-
त्तत्सोऽयं भुवि विलुठन् बलप्रकामम् ।
द्राघिष्ठैः श्वसनसमीरणैः सकम्पै-
र्नेत्रान्तप्रसृमरधारयाच रेजे ॥१२॥

श्रीमन्महाप्रभु प्रत्यूष से आरम्भ कर समस्त दिन सविनय प्रेमाश्रु एवं उच्चैःस्वर से रोदन करते करते रात्रि उपस्थित होने से इस प्रकार वितर्क किये थे ॥१०॥

जिस समय वाह्य प्रकाश होता था, उस समय प्रातःकाल हो जाता, उस समय कहते थे क्या रात्रि नहीं है ? इस प्रकार श्रीगौरहरि का कालभेद समाप्त होने लगा ॥११॥

श्रीमन्महाप्रभु के कर्णकुहर में एकबार मात्र श्रीकृष्ण नाम ध्वनि प्रविष्ट होने से आप भूतल में लुठित होने लगते थे एवं सुदीर्घ श्वास समीरण, अङ्गकम्प एवं नेत्रान्त की पवित्र जल धारा से सुशोभित हो जाते थे ॥१२॥

सोत्कण्ठं निरवधि कृष्ण कृष्ण कृष्णे-
त्याजल्पन् क्वचन विभिन्न सन्नकण्ठः ।
हर्षोद्भवैस्तनुरुहसञ्चयैर्विभाति
प्रायोऽयं प्रतिदिनमेवमेव भूत्वा ॥१३॥

स स्नात्वा दिवसमुखे करोति पूजा
मश्नाति प्रतिदिवसं मुदा निवेद्य ।
सद्विप्रानपि परिपाठयन्नुदारान्
माघाद्यानिति चतुरो निनाय मासान् ॥१४॥

प्रेमार्द्रः सपुलकमेकदा मुरारे-
र्वैद्यस्यालयमगमत् कृपासमुद्रः
तत्रासौ सपदि निवेश्य देवगेहे
संभिन्नो नयनजलैः समध्यवात्सीत् ॥१५॥

अत्युत्कण्ठित होकर निरवधि कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण कीर्त्तन करते करते अत्यन्त हर्षान्वित हो जाते थे एवं पुलकाञ्चित वपु से शोभित होते थे, प्रतिदिन ही इस प्रकार अवस्था होती थी ॥१३॥

प्रभात काल में स्नान, देवार्च्चन, यथा समय में श्रीविष्णु निवेदित वस्तु ग्रहण कर एवं विशुद्ध कुलोत्पन्न ब्राह्मण कुमारों को विद्यादान कर श्रीप्रभु माघादिमासचतुष्टय को अतिक्रम किये थे ॥१४॥

एकदिन कृपासिन्धु श्रीगौरहरि, मुरारि वैद्य के भवन में प्रविष्ट होकर तत्रत्य देवगृह में प्रवेश कर सजल नयनों से अवस्थित हुये थे ॥१५॥

आश्चर्य्यं दशनयुगेन गां बलीयान्
वाराहं वपुरिदमावहन् क एषः ।
मर्म्मस्पृक् तुदति महामहीधृतुल्यो
भूयेऽसाविति निगदन् ससर्प पश्चात् ॥१६॥

इत्युक्त्वा सपदि तथा तदीय भावं
संगृह्णन् भुवि भुजजानुभि र्व्रजन् सः
घूर्णाभिस्तरलतरेण दृग्युगेन
द्राघिष्ठामपि विदधे च हूंकुतिं ताम् ॥१७॥

दन्ताग्रैः सपदि स पैत्तलाम्बुपात्रं
धृत्वासौ बहुभयमुन्मुखोतिदूरे ।
संक्षिप्यंस्तदनु मुरारिगुप्तमुचे
रूपं मे सहजमुदीरयेति शश्वत् ॥१८॥

उस समय एक घटना हुई, श्रवरण करो, श्रीमन्महाप्रभु श्रीमन्दिर के अभ्यन्तर से कहने लगे — यह कौन है? यह भीषणाकृति के है, अत्यन्त बलवान है, दन्ताग्र के द्वारा धरणी को धारण कर प्रकाण्ड पर्वत सदृश वराहमूर्त्ति प्रकट कर मुझको मर्मन्तुद व्यथा प्रदान कर रहा है, इस प्रकार कहते कहते श्रीप्रभु, पश्चादपसरण करने लगे थे ॥१६॥

अनन्तर श्रीमन्महाप्रभु वराह भाव विभावित होकर धरणी में हस्त जानु निक्षेप पूर्वक गमन करते करते घूर्णित चञ्चल लोचन युगल से देखकर भीषण हूङ्कार करने लगे थे ॥१७॥

पश्चात् सत्वर एक वृहत् पित्तल के जलपात्र को स्वीय दशन के द्वारा उठा कर दूर में निक्षेप पूर्वक कहने लगे—मुरारे! मैं कौन हूँ, मेरा स्वाभाविक रूप का वर्णन करो ॥१८॥

तच्छ्रुत्वा भुवि निपतन स भीतभीतो
नो विद्मो वयमिह ते स्वरूपमेतत् ।
आत्मानं स्वयमेवमात्मनैव वेत्थे-
त्यूचेऽसौ प्रतिवचनैश्च गीतयोक्तैः ॥१९॥

भूयोऽसौ स हसितवन्मधुद्रवैस्तैः
प्रत्यूचे प्रतिवचनैः प्रभुस्तमेनम् ।
वेदोयं ननु किमु वेत्तयचयं विमुग्ध
संमोहादवचिनुतेऽन्धवत् स नित्यम् ॥२०॥

इत्युक्त्वा श्रुतिगदितं निपठ्य भुयः
सोत्प्रासं स परिहसन्नुवाच नाथः
वेदानामिह खलु नास्ति शक्तिरेषा
ज्ञातुं मामिति निगदन् ययौ स्वगेहम् ॥२१॥

सुनकर मुरारि समय से भूतल में निपतित होकर कहने लगे—प्रभो! आप स्वयं ही स्वयं को जानते हैं, आपका स्वरूप वर्णन करने में मैं सक्षम नहीं हूँ ॥१९॥

पुनर्बार श्रीमन्महाप्रभु हास्य पूर्वक मधुर वचन से कहे थे — हे मुरारे! वेद मेरी महिमा को नहीं जानते हैं, कुछ भी नहीं जानते हैं, केवल अन्ध के समान ही अन्वेषण करते रहते हैं ॥२०॥

यह कहकर श्रुतिपाठ पूर्वक सपरिहास वचन से कहे थे-महात्मन्! मुझको जानने की शक्ति वेदों को नहीं है, इस प्रकार कहते कहते श्रीप्रभु निज मन्दिर में चले गये ॥२१॥

अन्येद्युः स्वगृहमभि क्षपेशकोटि-
श्रीयुक्तः परपरभागभाक् प्रतीकः।
श्रीवासं निजपुरतः स्थितं महस्वा-
नभ्यूचे सह बलहूङ्कृतैर्वचोभिः ॥२२॥

त्वं भोः पश्यसि न किमत्र पञ्चवक्त्रान्
षड् वक्त्रानपिच चतुर्मुखान् समेतान्।
सोप्युचे न खलु विलोक्यते मयासौ
षड्वक्त्रप्रभृतिजनः समागतोयम् ॥२३॥

इत्युक्ते सति तदनूपतस्थिरांसं
नाम्ना श्रीपतिमनुजं ददर्श विप्रः।
सोभ्येत्य श्रुतिनिकटेषु धीर मुचे
ऽद्वैतस्यागमनकथां प्रभुं दिदृक्षोः ॥२४॥

अपर दिवस में कोटिचन्द्र निभानन श्रीहरि स्वीय भुवन में श्रीवास को देखकर बारम्बार हूङ्कार पूर्वक कहे थे ॥२२॥

श्रीवास! पञ्चवक्त्र, षड़वक्त्र एवं चतुर्मुख प्रभृति देवगण समागत हुये हैं, तुम क्या नहीं देख रहे हो? सुनकर श्रीवास बोले, प्रभो! आपने कहा कि-देववृन्द का शुभागमन यहाँपर हुआ है, मैं तो कुछ भी नहीं देख रहा हूँ ॥२३॥

यह कहकर श्रीवास, स्वीय पश्चाद्वर्त्ति निज अनुज श्रीपति के प्रति दृष्टिपात करने पर श्रीपति शनैः शनैः श्रीवास के समीप में धीरस्वर से उनके कर्ण के समीप में कहे थे-श्रीप्रभु के दर्शनाभिलाषी श्रीअद्वैतप्रभु का शुभागमन हुआ है ॥२४॥

आचार्यः किमिह समागतोस्ति तस्यै
तज्ज्ञात्वा सपदि समुत्थितोऽजिरेषु ।
आगत्य प्रतिपदहूंकृतां स वाणीं
प्रत्यूचे महितमहामहः समूहः ॥२५॥

ते ज्ञास्यन्त्यहह सपद्यमुत्र ये ये
यास्यन्ति क्ष्मामधुनाधिकारहीनाः ।
इत्युक्त्वा गुरुतरहूंकृतै र्विभिन्नः
श्रीवासालयमगमत् द्रुतं प्रभुः सः ॥२६॥

तत्रैव द्रुतमधिगत्य गाढ़बन्धं
सम्बध्यार्गलमवरद्वये विकुर्व्वन् ।
बद्धाविष्कृतसहजप्रकाशभास्वा
नावासे रहसि रराज गौरचन्द्रः ॥२७॥

अद्वैतो निजनिलयात् समागतोऽसौ
सप्रादुष्कृतसहजो विलोकितव्यः

आचार्य प्रभु का आगमन संवाद से अङ्गन में उपविष्ट श्रीवास, आनन्द से उत्थित होकर कहे थे – आचार्य्य का आगमन हुआ है? इत्यवसर में तेजस्वी पूज्य प्रभु हूङ्कार ध्वनि के सहित आगमन कर कहे थे ॥२५॥

जो लोक सम्प्रति अधिकारहीन होकर त्रिलोक गमन करेंगे, वे जान सकेंगे, गुरुतर हूङ्कार से उक्त वाक्य कहकर अतिसत्वर श्रीवास के भवन में प्रविष्ट हो गये ॥२६॥

श्रीगौराङ्गदेव वहाँपर सत्वर आकर दृढ़रूप में द्वार रुद्ध कर गृहाभ्यन्तर में सूर्य के समान प्रकाशित हुये थे ॥२७॥

उस समय श्रीअद्वैताचार्य निज गृह से आगमन करतः

इत्येवं मनसि विधाय सत्प्रतिज्ञां
तत्काले वहिरुदभूत् कवाटयोस्तत् ॥२८॥

श्रीवासद्विजकुलचन्द्रमः कनीया
नेषः श्रीपतिरथ तत्समागमं तम् ।
साशङ्कं सपदि निवेदयाञ्चकार
ज्ञात्वैवैतत् स्वयममुचत् प्रभुः कवाटम् ॥२९॥

सङ्कल्पो मनसि कृतो यथैव तेन
श्रीभाजं प्रभूमवलोक्य तं तथैव ।
अद्वैतस्तृणनिचयं रदैर्गृहीत्वा
सुस्निग्धो भुवि निपपात दण्डवत् सः ॥३०॥

त्वं दृष्ट्वा प्रभुरपि दोर्द्वयेन शीघ्रं
श्रीभाजं स्वयमिव मुन्निनाय पश्चात् ।

स्वाभाविक रूप से आविर्भूत श्रीगौरहरि का दर्शन करेंगे, इस अभिलाष से मानसिक सत् संकल्प कर वहिर्द्वार में अवस्थित हुये ।२८।

द्विजकुलाम्भोधि चन्द्रमा श्रीवास के कनिष्ठ भ्राता श्रीपति शङ्कित मन से द्वारसमीप में उपस्थित होकर श्रीमन्महाप्रभु को आचार्य का आगमन संवाद निवेदन किये, तब श्रीगौरहरि आचार्य्य की अगमनवार्त्ता को सुनकर ही तत्क्षणात् द्वारोद्घाटित किये थे ॥२९॥

उस समय आचार्य मन ही मन सोच रहे थे — कि मैंने जिस प्रकार सङ्कल्प किया था, अधुना तदनुरूप ही महाप्रभु का दर्शन किया, यह कहकर दशनों में तृणगुच्छ धारण पूर्वक श्रीप्रभु के सम्मुख भूमि में दण्डवत् निपतित हो गये ।३०॥

उस प्रकार देखकर श्रीमन्महाप्रभु स्वीय बाहुद्वय को प्रसारित

हर्षेणाशिथिलितमाश्लिषद्विशेषम्
प्रेमाश्रुस्रवणभरैः सिषेच भूयः ॥३१॥

इत्येवंविधविविधोल्लसद्विहारै
विश्रान्तोऽभवदृतुनायकोवसन्तः ।
अत्रान्ते प्रभुनटनावलोकहृष्टः
किं ग्रीष्मः प्रहसति मल्लिका विकासैः ॥३२॥

विच्छेदादिव सुरभेर्दिनान्यमूनि
प्रत्यग्रादतिविधुराणि संश्रयन्ते ।
उद्दीप्यद्दिनकरजातवेदसः किं
ज्वालाभिर्निरवधि देहदाहवर्त्म ॥३३॥

उद्दामद्युमणिरुचो मुहुर्ज्वलन्त्यो
यद्यप्याश्रयमयमम्बु शोषयन्ति ।
पद्मिन्यास्तदपि दधात्यतीव सौख्यं
दुःखञ्च प्रियविहितं प्रियं तनोति ॥३४॥

कर उनको भूमि से तत्क्षणात् उत्तोलन किये थे एवं प्रेमाश्रु के द्वारा उनको सम्यक् रूप से अभिषिक्त किये थे ॥३१॥

वसन्त ऋतु विविध विहार से श्रान्त हो जाने पर अर्थात् वसन्त ऋतु का अधिकार विनष्ट होने पर प्रभु के नृत्य ध्वनि से कौतुकी ग्रीष्म ऋतु मानों मल्लिका कुसुम विकसन के छल से हास्य करने लगे ॥३२॥

वसन्त ऋतु का अवमान में ग्रीष्म ऋतु के दिनसमूह अत्यन्त प्रचण्ड प्रतीत होने लगे थे, दिनकर के किरणजाल अग्नि के समान जीव जगत् को दग्ध करने में प्रवृत्त हुआ ॥३३॥

ग्रीष्मकाल में यद्यपि मार्त्तण्डके किरणजाल पद्मिनीगणों का

नैदाघं निजमहसा निदाघरश्मिं
न्यक्कुर्व्वन् सततं नवनवेन गौरः ।
अन्येद्युर्द्विजतनूजान् विपाठयन् स
प्रोद्भिन्नप्रकटनिजप्रकाश आसीत् ॥३५॥
इत्येतद्विधसहजप्रकाशभास्वान्
निर्भिन्नः सदरुणसर्व्वंगात्रयष्टिः ।
प्रत्यग्रोन्मिषदरुणोत्पलाङ्घ्रियुग्मः
श्रीवासालयमगमद्विमुक्तसङ्गः ॥३६॥
उन्मीलद्द्युमणिगणप्रकाशभाजं
प्रत्यग्रस्फुटतरशोणसारसाक्षम् ।
गच्छन्तं द्रुतमरुणाङ्घ्रिपद्मयोस्तै
र्विन्यासैः पथि ददृशुर्जनाः सचित्रम् ॥३७॥

आश्रय रूप जल का शोषण करता है, तथापि दिनकर पद्मिनी को सुखी करते हैं, कारण – प्रिय व्यक्ति को दुःख प्रदान करने पर भी वह दुःख सुख के निमित्त ही होता है ॥३४॥

श्रीगौराङ्गदेव निरन्तर स्वीय नित्य नवीन तेजः के द्वारा निदाघ कालीन रश्मि का तिरस्कार कर विराजित हुये, एवं ब्राह्मण तनयवृन्द अध्ययन को कराकर अतिशय शोभित हुये थे ॥३५॥

अनन्तर स्वतः सिद्ध प्रकाश स्वरूप श्रीगौरहरि, अरुणवर्ण की गात्रयष्टि को धारण कर एकाकी निर्विण्ण होकर अरुण कमल दल सदृश चरण युगल के द्वारा श्रीवासालय के ओर गये थे ॥३६॥

तत् कालीन श्रीमन्महाप्रभु की शोभा को क्या कहूँ ? नयन युगल उदीयमान सूर्य तुल्य अरुणिमा मण्डित हैं, जिस समय आप अरुणिमा विमण्डित चरण कमल विन्यास पूर्वक गमन कर रहे थे,

तत्पुर्य्यां सपदि निवेश्य देवगेह–
स्यालिन्दोपरि परितस्थिवान् परेशः ।
ध्यायन्तं गुहमधि निर्भरैकतानं
श्रीवासं प्रकटप्रकाशमाजुहाव ॥३८॥

तच्छ्रुत्वा सपदि गृहाद्बहिर्बभूव
ध्यानादि प्रकटमपोह्य विप्रमुख्यः ।
उन्मीलन् गुरुमहसं महायताङ्गं
सोऽद्राक्षीन्निजपुरतः स्थितं परेशम् ॥३९॥

उदभ्रान्तः प्रकटनिजप्रकाशवेगै
रज्यद्भिर्महिततनूर्न्नवैर्महोभिः
पाथोभिः सुरसरितो ममाभिषेकं
शीघ्रं कुर्व्विति निजगाद गौरचन्द्रः ॥४०॥

उस समय लोक आश्चर्य चकित होकर उनका दर्शन करते रहते थे ॥३७॥

श्रीमन्महाप्रभु श्रीवास भवन में उपस्थित होकर तदीय देवगृह के अलिन्द के ऊपर उपवेशन किये थे एवं गृहमध्य में निविष्ट चित्त से ध्यान परायण श्रीवास को लक्ष्य कर आह्वान करने लगे ॥६८॥

विप्रश्रेष्ठ श्रीवास श्रीमन्महाप्रभु के वाक्य को सुनकर ध्यानादि वर्जन पूर्वक गृह से निर्गत होकर चक्षुः उन्मीलन मात्र से ही महातेजस्वी शोभनाङ्ग श्रीगौराङ्गदेव को देखे थे ॥३९॥

अनन्तर अनुपम कान्तिमय श्रीमूर्त्तिधारी गौरचन्द्र, अभिनव शोभा से विमण्डित देखकर श्रीवास को कहे थे, 'जाह्नवी वारि समानयन पूर्वक सत्वर मेरा महाभिषेक करो' ॥४०॥

तच्छ्रुत्वा सपदि सहोदरैरमुष्य
श्रीरामप्रभृतिभिरुत्सुकैर्महद्भिः ।
तच्चेष्टासुखविवशैस्तदाह्नियन्त
द्रव्यानि स्वयमिव जग्मुराहृतत्वम् ॥४१॥

तत् कैश्चिन्नवकलसीशतं समन्ता-
दाजह्रे झटिति तथा जलैः पुपुरे ।
सर्व्वाभिः सविधगताभिरङ्गनाभिः
स्वर्व्वापीजलहरणाय शीघ्रमीये ॥४२॥

गम्भारीविरचितपीठमध्यराजी
श्रीगौरः प्लवनचिकीर्षयाजिरान्तः ।
दुग्धाब्धेरुपरिगतस्यमेरुश्रृङ्ग-
स्याभिक्षां सपदि विड़म्वयाम्बभूव ॥४३॥

आनीतैरति लघुजह्नुकन्यकायाः
पाथोभिः सुरभिसुवासितैः प्रकामम् ।

श्रीवास के सहोदर श्रीराम प्रभृति भ्रातृवृन्द अतिशय प्रीति एवं औत्सुक्य से अभिषेचनिक सामग्री समाहरण में प्रवृत्त हुये थे, किन्तु समारोह सम्पादनोपयोगि द्रव्य समूह स्वय आहृत हुये थे ॥४१॥

अनन्तर श्रीवास के भ्रातृवृन्द तत्क्षणात् एकशत नूतन कलस जाह्नवी वारिवहन के निमित्त उपस्थित करने पर अङ्गनागण सत्वर गङ्गाजलानयन में प्रवृत्त हुये थे ॥४२॥

तत्पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु अङ्गन के मध्यभाग में गम्भारी पीटोपरि जब उपविष्ट हुये थे, उस समय क्षीरसागर मध्यस्थित सुमेरु शिखर के समान आप प्रतिभात हुये थे ॥४३॥

सीमन्तिनीगण सत्वर जाह्नवी जलानयन करने पर उसमें

कर्पूरागुरुगुरुगन्धसारवद्भिः
श्रीवासस्तमभिषिषेच हृष्टचित्तः ॥४४॥

द्राघिष्ठैर्निरवधि-शश्वदुन्मिषद्भि
स्तेजोभिः कणकनिकाशराजिगौरैः ।
अत्यच्छावपुषि पतन्त्यमुष्य धारा
गौराङ्गीक्रियत इवाभिषेकवाराम् ॥४५॥

गङ्गानां कलसशतेन सञ्जलानां
सेकोयं झटिति पटीवदङ्गभाजम् ।
निर्व्यूढ़ोऽभवदनुभूय तज्जलं भू-
रुच्छ्वासैः सुबहुकृतार्थतां जगाम ॥४६॥

स्नानान्ते वरवसनेन सारयित्वा
गात्राम्भः करयुगलेन तस्य पश्चात् ।
श्रीवासस्तनुतरशुभ्रशुद्धवासो
द्वन्द्वेन प्रसरवता सुखेन भेजे ॥४७॥

कर्पूर अगुरु प्रभृति गन्ध द्रव्य निक्षिप्त हुये थे, तद्द्वारा श्रीवासने श्रीमन्महाप्रभु का अभिषेक कार्य्य सम्पन्न किया ॥४४॥

उस समय महाप्रभु के कनक सदृश गौरवर्ण अङ्ग की अतिशय तेजोराशि से संपृक्त होकर अभिषेक की वारिधारा निपतित होने लगीं, वे सब ही गौरवर्ण से विमण्डित हो गयीं ॥४५॥

उस समय धरणी श्रीगौरचन्द्र की अङ्ग विगलित अभिषेक वारि धारा समूह को स्वीय अङ्ग में पट्ट वस्त्र के समान धारण कर स्वयं को कृतार्थ मानने लगी ॥४६॥

श्रीवास अभिषेक केअनन्तर हस्त में उत्कृष्ट वसन ग्रहण पूर्वक

श्रीगौरस्तनुवसनद्वयं गृहीत्वा
नीहारप्रचयसुपृक्तमेरुशोभाम् ।
जग्राहोद्भटमहसा महीयसासौ
संभिन्नो द्रुतमविशच्च देववेश्म ।।४८।।

तस्यान्तः सपदि निविश्य गौरचन्द्रः
पर्य्यङ्के ललितरुचौ महामहस्वान् ।
देवानां प्रतिकृतिसञ्चयं समन्ता
दाक्षिप्य स्वयमकरोत् सुखोपवेशम् ।।४९।।

अप्राप्याविसरममुष्य वेश्ममध्ये
तेजोभिर्वहिरपि सन्धिभिर्व्यभेदि ।
तत्काले जननिचयस्य हर्षराशिः
स्वान्तान्तः पुलकभरैर्वहिर्बभूव ।।५०।।

तदीय गात्रजल अपसारण करतः पश्चात् शुभ्रवर्ण सुप्रशस्त सूक्ष्म वसनद्वय श्रीप्रभु को अर्पण किये थे ।।४७।।

महाप्रभु वसनद्वय से शोभित होकर नीहार संसिक्त सुमेरु पर्वत की शोभा को म्लान किये थे, अनन्तर सुमहत्तेज से देदीप्यमान होकर सत्वर देवगृह में प्रविष्ट हुये ।।४८।।

श्रीमन्दिर में पर्य्यङ्कोपरि विराजित होकर महातेजोमय कान्ति से देवमूर्त्ति समूह को आक्षिप्त कर शोभित थे ।।४९।।

गृहाभ्यन्तर में अङ्ग कान्ति समुह स्थान प्राप्त न कर सन्धिभाग के द्वारा वहिर्निर्गत होने लगे, उस समय जननिकर की अन्तर्वर्त्ती हर्षराशि मानों वहिर्भाग में प्रकाशित होने लगीं ।।५०।।

सर्व्वे तत्समयमवाप्य हर्षमग्ना
गौराङ्गं परिविविदुस्त्रिलोकनाथम् ।
श्रीवंशीध्वनिमथ शुश्रुवुश्च सर्व्वे
रम्यं तन्मुखकमलोद्गतं चिराय ॥५१॥

तत्तापे सुखमतुलं समस्तलोकै-
रासेदे पुलककुलैरथोश्चदङ्गम् ।
संभेजे नयनजलैः स रोमहर्षः
श्रीगौरे जयति तथाविधे तदानीम् ॥५२॥

गौराङ्गोऽवददथ भूसुरैकरत्नं
श्रीवासं परममहामहोविभिन्नः ।
एतस्माद्भवनवराद्भवद्गृहान्त
र्यास्यामीत्यथ सततप्रकाशरम्यः ॥५३॥

तच्छ्रुत्वा झटिति सहोदरैः समस्तै
स्तद्गेहं सुखविवशैः समस्कृतोच्चैः ।

जनगण आनन्दाप्लुत होकर श्रीगौरहरि को त्रिलोकनाथ रूपमें अवगत हो गये, एवं समय विशेष में श्रीमन्महाप्रभु के मुखकमलोत्पन्न रम्यवंशीध्वनि सुनने लगे थे ॥५१॥

उससे जननिकर में अतुल हर्षोद्गम होने से उन सब के अङ्ग पुलक परिपूरित हुये थे, नयन हर्षवारि पूर्ण हुये थे, वे सब श्रीगौराङ्ग की जय जय ध्वनि से मुखरित हो गये ॥५२॥

अनन्तर श्रीगौरहरि असीम तेजोराशि को प्रकट कर द्विजकुल रत्न श्रीवास पण्डित को कहे थे—द्विजवर ! मैं यहाँ से आपके भवन को जाऊँगा ॥५३॥

श्रीमन्महाप्रभु के मुखनिःसृत वाणी को सुनकर श्रीवास के

मध्यद्वारि च बहुवेष्टनैस्तथा तै
रावव्रे भवति सुगोपितं यथा तत् ॥५४॥

श्रीवासस्तदनु गदाधरं बभाषे
खट्वाद्यं सकलममुत्र नीयतां तत् ।
इत्युक्तः स च सकलं निनाय तत्र
प्रेमार्द्रो निरवधि विस्मृतात्मचेष्ठः ॥५५॥

सच्चन्द्रातपमुपरि प्रतत्य तूर्णं
तस्यान्ते सुरुचिरचामराणि तेने ।
पर्य्यङ्कोपरि कशिपूत्तमं निपात्य
श्रीमद्भिर्वरवसनैरथानुवव्रे ॥५६॥

गौराङ्गस्तदथ गृहं व्रजन् विरेजे
तेजोभिर्लघु तिरयन् विवस्वदोजः ।

अनुजवृन्द आनन्द विभोर होकर गृह को सुशोभित करने लगे थे' एवं गृह मध्यद्वार को सुगोपित रूपसे आवरण के द्वारा वेष्टित किये थे ॥५४॥

तत्पश्चात् श्रीवास श्रीगदाधर को कहे थे हे भ्रातः! तुम गृहस्थित खट्वा प्रभृति उपकरण द्रव्य समुह मदीय भवन में लेजाने के निमित्त प्रयत्न करो, आदेश प्राप्तकर श्रीगदाधर प्रेमपरिप्लुतान्तःकरण से आत्मविस्मृत होकर तद्गृहस्थित सामग्री समूह का स्थापन यथास्थान में किये थे ॥५५॥

अनन्तर सत्वर गृह के उपरीभाग में उत्कृष्ट चन्द्रातप, चामर विन्यस्त कर पर्य्यङ्कोपरि उत्तम तुलिका आस्तरण स्थापन करतः उत्तम वसन के द्वारा आच्छादन के अनन्तर समुदय वस्तु समूह श्रीगौरचन्द्र को अर्पण किये थे ॥५६॥

शम्पानां शतशतकोटिकोटिवत् स
प्रोन्मील्य क्षितिमिव संश्रितश्चकास्ति ॥५७॥
पादाम्भोरुहयुगलं विलासपूर्व्वं
विन्यस्य क्षितिषु चलन्महामहस्वान् ।
पर्य्यङ्कं परममनोहरं स भेजे
मेरोः सच्छिखर इवान्यशैलपृष्ठम् ॥५८॥
सद्गौरैः परममहोभिरुन्मिषद्भिः
सर्व्वापुः परिमिलिता तदा तदीयैः ।
बभ्राज प्रमथमिव प्रजेशसृष्टां
न्यक्कुर्व्वन्त्यनिशमिलावृतस्य शोभाम् ॥५९॥
कैश्चिद्वा परिपिपिषे न गन्धसार
स्ताम्बूलं न हि कति सज्जितं प्रचक्रे ।

तत्पश्चात् श्रीगौराङ्गदेव गृहागमन पूर्वक स्वीय तेजोराशि के द्वारा सूर्य तेज को लघु करके शोभित हुये थे, एवं भूतल में अपरिमित सौदामिनी के समान अत्यन्त उन्मीलित होकर प्रकाशित हुये थे ॥५७॥

तेजःपुञ्ज विस्तारी श्रीमन्महाप्रभु विलास पूर्वक चरण कमल युगल को निक्षेप पूर्वक श्रीवास भवनाभिमुख में गमन किये थे, एवं श्रीवास भवन में उपस्थित होकर सशिखर मेरुपर्वत का अपर पर्वत के उपरी भाग में अवस्थान के समान मनोहर पर्य्यङ्कोपरि विराजित हुये थे ॥५८॥

उस समय श्रीगौरहरि कर्त्तृक प्रकाशित अथच प्रशस्त गौरवर्ण परम तेजोराशि के द्वारा समस्त पुरी प्रकाशित होकर प्रजापति सृष्ट इलावृतवर्ष की शोभा को न्यक्कृत कर शोभित होने लगीं ॥५९॥

उस समय कौन व्यक्ति चन्दन घर्षण नहीं किया है ? कौन

आजह्रे कुसुमशतं तदा न कैश्चिन

पूर्णा भूः किमिव महोत्सवैस्तदानीम् ॥६०॥

कर्पूरैर्मरिचसिताभिरप्यखण्डा

नन्दस्यानुभवसहोदरं समन्तात् ।

कैर्नो वा सपदि पयोविभावनादि

व्यापारै रस इव सम्मदात् प्रसस्रे ॥६१॥

सोत्कण्ठं सपदि गदाधरेण पुष्पैः

सामोदैरतिरुचिरैः स्वयं तदानीम् ।

माल्यौघः प्रवणतरेण सौष्ठवेन

स्वस्वान्तैरिव स मनोरथै र्जगुम्फे ॥६२॥

उत्तंसं कुटिलकचोचितं वतंसौ

सश्रीक श्रुति युगलोचितौ तथैव ।

व्यक्ति ताम्बूल सज्जित नहीं किया? पुष्पाहरण भी किसने नहीं किया? एवं किस महोत्सव से पृथिवी परिपूरित नहीं हुई? अर्थात् तत् कालीन विविध महोत्सव से पृथिवी पूर्ण हो गई थीं ॥६०॥

हर्ष से किसने उस समय कर्पूर, मरिच, सिता एवं दुग्ध विभावित अखण्ड रसतुल्य आनन्दरस का विस्तार नहीं किया? ।६१।

उस समय श्रीगदाधर सुगन्ध अथच अति मनोरम पुष्प के द्वारा उत्कण्ठित होकर मनोरम विविध माल्य रचना किये थे, अति प्रीति प्रवणता से उनका अन्तःकरण भी आमोदित एवं अति रुचिर हुआ था, उससे प्रतीत होता था कि–मानों मन के द्वारा ही आप माल्य ग्रन्थन किये थे ॥६२॥

तत् पश्चात् उन्होंने कुटिल केशोपयोगि उत्तंस अर्थात् शिरोभूषण, सुशोभन कर्णयुगल के अवतंस कर्णभूषण एवं निपुणता

नैपुण्याद्विरचित पुष्पबन्धरम्यं
ग्रैवेयं तदनु ललाटिकाञ्च कान्ताम् ॥६३॥

हारञ्च ग्रथनसुकौशलातिमुग्धं
केयूरे वलययुगञ्च कङ्कणे च।
सर्व्वामामपि विदधे तदङ्गुलीनां
सच्छोभाचितरुचिरोर्म्मिकासमूहम् ॥६४॥

रम्यं सारसनमपि क्रमात् पदाब्जे
मञ्जीरं तदनु तदङ्गुलीविभूषाम्।
निम्र्माय क्षणत इतः स गौरदेहे
सोत्कण्ठं चिरमुपपोजयाम्बभूव ॥६५॥

आपादाङ्गुलि वर भालपट्टदेशं
श्रीखण्डागुरुघनसारकुङ्कुमानाम्।
सत्पङ्कैर्वपुरलिपत्तदीयमेतत्
सोत्कण्ठं निविड़मनन्तभाग्यराशिः ॥६६॥

के सहित पुष्प बन्ध द्वारा रमणीय ग्रैवेय अर्थात् कण्ठभूषण एवं मनोहर ललाटिका का सम्पादन भी किया ॥६३॥

अनन्तर सुनैपुण्य से सुन्दर हार, केयूर, वलय कङ्कण एवं अङ्गुली के उपयोगी उत्कृष्ट शोभा सम्पन्न अङ्गुरीयक का निर्म्माण भी आपने किया ॥६४॥

मनोज्ञ सारसन पदपङ्कज में नूपुर अङ्गुलीभूषण का निर्माण क्षणकाल में करके अत्युत्कण्ठा के सहित श्रीगौराङ्गदेव के श्रीअङ्ग में शनैः शनैः उपयोजित किया ॥६५॥

अनन्तर निविड़ानन्त भाग्यराशि सम्पन्न श्रीगदाधर, श्रीगौराङ्ग देव के पादपद्म की अङ्गुली से आरम्भ कर उत्कृष्ट ललाट पर्यन्त

लिप्तस्यापिच वपुषो घनं सुपङ्कैः
श्रीखण्डागुरुरचितै रतिप्रमोदैः ।
तेजोभिः स्फरतिरयद्भिरेतदुच्चै-
रुद्द्योतैः कनकनिकाय चारुगोरैः ॥६७॥

तैरेतैः कुसुमविभूषणैः समस्तै–
स्तैरेतैर्मलयज कुङ्कुमस्य पङ्कैः ।
तेजोभिर्निजवपुषो निसर्गगौरैः
संभिन्नः क इव बभूव गौरचन्द्रः ॥६८॥

द्वाराग्रेऽजिरभुवि वेष्टनानि दृष्ट्वा
नास्माभिः प्रभुरवलोकितव्य एव ।
इत्येवं मनसि विभाव्य तेपुरुच्चैः
श्रीवास प्रभृतिसगर्भ्यसर्व्वपत्न्यः ॥६९॥

गौराङ्गः सपदि तथाविधा विदित्वा
ताः सर्व्वाः कृतसुकृता द्विजातिपत्नीः ।

प्रदेश को अगुरु, चन्दन, कुङ्कुम पङ्क के द्वारा मनोरम प्रगाढ़रूपसे लेपन किये थे ॥६६॥

आनन्दद अथच सुगन्ध श्रीखण्ड अगुरु पङ्क द्वारा घनलिप्त श्रीअङ्ग समूह एवं अङ्गस्थ मनोरम भूषण समूह के नैसर्गिक कान्ति विशिष्ट श्रीगौरहरि एतादृश सुशोभित हुये थे, जिससे प्रतीत होता था पृथिवी में द्वितीय गौरचन्द्र समुद्भासित हुआ है ॥६७-६८॥

गृहद्वार के पुरोभाग को आवृत देखकर दर्शन सौभाग्य कथा नहीं होगा, इस प्रकार चिन्तान्वित होकर श्रीवास प्रभृति के भ्रातृ पत्नीगण अतिशय सन्तप्त हुये थे ॥६९॥

श्रीगौराङ्गदेव पुण्यवती ब्राह्मण पत्नीगण को तदवस्थ जानकर

एताः किं गृहमधि नो विशन्ति सर्व्वा
आगच्छन्त्विति निदिदेश तत्र पश्चात् ॥७०॥

श्रीवासस्तदनु निदेशमेतदीयं
ज्ञात्वा ताः सपदि समाजुहाव हर्षात् ।
ताः सर्व्वा अपि विविशुः सहर्षलज्जं
वैकल्याद्गृहमवलोकनाय तस्य ॥७१॥

आविश्य प्रकटितसत्प्रकाशरम्यं
तं दृष्ट्वा मुदमतुलामभूतपूर्व्वाम् ।
संप्रापुर्भुवि च निपेतुरात्ततोषा–
स्तत् पादाम्बुजमपि निर्भरं प्रपन्नाः ॥७२॥

मच्चित्ता भवत सदेत्य भीक्ष्णमुक्त्वा
सर्व्वासां शिरसि पदारविन्दयुग्मम् ।
कारुण्यामृतरससेचनातिसार्द्रः
श्रीगौरः परमगुणाम्बुधिर्व्यधत्त ॥७३॥

"यह सब गृह प्रवेश में अक्षम हैं, आगमन करें" यह कहकर उक्त स्थान में उनसब को प्रवेश कराने का निर्देश प्रदान किये थे ॥७०॥

श्रीगौराङ्गदेव के आदेश प्राप्त कर हर्षातिशय्य से विभोर होकर श्रीवास महिलावर्ग को भवन में प्रविष्ट होने के निमित्त आह्वान किये थे ॥७१॥

वे सब भवन में प्रविष्ट होकर प्रकटित स्वप्रकाश के द्वारा रम्यमूर्त्ति गौरचन्द्र का दर्शन कर अतुल अभूतपूर्व हर्षित हुये थे, एवं परितोषप्राप्ति हेतु तदीय चरणारविन्द में प्रपन्न होकर भूमि में निपतित होकर प्रणाम किये थे ॥७२॥

अनन्तर "सब मत्परायण बनो" यह कहकर महागुणनिधि

तैरेतैरतिमहतां सतां महद्भिः
श्रीवासप्रभृतिभिरेव सत्प्रकाशः।
पश्यद्भिर्निजनिजचित्तहर्षराशि-
र्देहीव प्रथममलं तदा व्यतर्कि ॥७४॥

सर्व्वे तच्चरणसरोरुहां समीपम्
स्वर्णाढ्यं सकलमिह प्रचिक्षिपुस्ते।
तैरेतैरथ समभूत्तदैव खट्टा
सत्कल्पव्रततिरिवातिरत्नसूः सा ॥७५॥

कार्पासं वसनयुगं जहौ निवीय
क्षौमं श्रीयुतमथ हेमगौरदेहः।
तद्वस्त्रं द्विजवनिताभ्य आत्मनैव
स्नेहेण न्यदिशदशौ कृपासमुद्रः ॥७६॥

श्रीगौरहरि सीमन्तिनीवृन्द के प्रति कारुण्यामृतरस सेचन करतः आर्द्रचित्त से उन सब के मस्तक में स्वीय श्रीचरण स्थापन किये थे ॥७३॥

अनन्तर महत् साधुगणसे भी महत्तम प्रसिद्ध श्रीवासादि स्वप्रकाश श्रीगौराङ्गदेव को देखकर बोध करने लगे थे कि–" उन सब की हर्षराशि ही मूर्त्तिमान होकर प्रकटित हैं " प्रथमतः इस प्रकार से आप सब वितर्क कर रहे थे ॥७४॥

पश्चात् उन सब के द्वारा समर्पित स्वर्ण निर्मित विविध उपायनों से सुसज्जित श्रीगौरहरि की खट्टा कल्पलता के समान अतिशय रत्न प्रसविनी हुई थी ॥७५॥

कृपानिधि हेमकान्ति श्रीगौरहरि पट्टवसन परिधान कर कार्पास वस्त्रयुगम को परित्याग किये थे, एवं आर्द्रचित्त से महिलावृन्द

भूयोऽन्यच्छुचि वसनं ददौ प्रसन्नः
प्रासाद्यं निजपरमप्रियेभ्य एभ्यः ।
पर्य्यङ्कोपरि परितस्थिवान् विलासी
संरेजे सुविलासितानि तानि कुर्व्वन् ॥७७॥

उत्सार्य क्षणमनुलिप्तमेव भूयः
संधत्ते मलयजपङ्कमिष्टगन्धि ।
माल्यानि क्षणनिहितानि तानि हित्वा
भूयोऽसौ रहसि दधाति पुष्पमालाः ॥७८॥

ताम्बूलं सततमुपाश्नतोऽस्य भूय–
स्त्यक्तेनाप्यतिवहलेन चर्व्वितेन ।
पूर्णः स्यात् सपदि पतद्ग्रहस्तदेनं
बारंबारमपनयन्ति विप्रपत्न्यः ॥७९॥

को उक्त वस्त्र प्रदान करने के निमित्त अनुमति दिये थे ॥७६॥

अनन्तर प्रसन्न होकर परमप्रिय श्रीवासादि भक्तवृन्द को पुनर्बार प्रसादस्वरूप अन्य पवित्र वसन अर्पण किये थे एवं विलासशाली होकर पर्य्यङ्क के ऊपर उपवेशन पूर्वक दत्त वस्तु को सुशोभित करके विराजित थे ॥७७॥

श्रीगौरचन्द्र निश्चित् काल अनुलिप्त चन्दन पङ्क को परित्याग पूर्वक पुनर्बार मनोहर गन्ध चन्दन पङ्क धारण किये थे, एवं पूर्वप्रदत्त पुष्प माल्यादि परित्याग पूर्वक नूतन पुष्प माल्यादि से सुशोभित हुये थे ॥७८॥

श्रीगौरहरि निरन्तर नवीन सुगन्धित ताम्बूल चर्वण करते थे, पुनः-पुनः चर्वित ताम्बूल परित्याग पूर्वक पतद्ग्रह को पूर्ण करते थे, एवं विप्रपत्नीवृन्द पुनः- पुनः पतद्ग्रह को परिष्कार करते थे ॥७९॥

आघ्रेयं सपदि विजिघ्रति स्म नाथो
भोग्यश्च प्रतिबुभुजे कृपासमुद्रः ।
आदेयं यदपि दधार सर्व्वमेवं
गौराङ्गः सविलसितं चकार भूयः ॥८०॥

यूयं नृत्यथ झटितीत्यथो कृपावा-
नद्वैतप्रभुवरमादिदेश धीरम् ।
तच्छ्रुत्वा मुदितमनाः समं महद्भि-
र्गायद्भिः सुखविवशैरसौ ननर्त ॥८१॥

श्रीवासोदित समुपागता सकम्पं
सा देवी सकलजगज्जनस्य माता ।
मातेति प्रथितवती महाप्रभोर्या
तत्काले प्रभुपुरतो बभूव भीता ॥८२॥

अनन्तर दीनबन्धु दयानिधि श्रीगौरहरि आघ्राणोपयोगि वस्तु समूह का आघ्राण ग्रहण किये थे, एवं भोज्य वस्तु समूह का उपभोग किये थे, इस प्रकार अति विलास के सहित समस्त कार्य सम्पन्न करने लगे थे ॥८०॥

कृपावान् महाप्रभु "आप सब नृत्य सङ्कीर्त्तन करें" विबुध बर श्रीअद्वैतप्रभु को निर्देश किये थे, उस समय श्रीअद्वैतप्रभु-श्रीमन्महाप्रभु की आज्ञा प्राप्त कर हृष्ट चित्त से गायनशील सुखविवश महद्व्यक्तिवृन्दों के सहित नृत्य करने लगे थे ॥८१॥

जो श्रीमन्महाप्रभु की जननी रूपमें प्रसिद्ध हैं एवं समस्त जगज्जनों की माता हैं, उन शचीदेवी-श्रीवास के वाक्य से उपस्थित होकर श्रीप्रभुके भयसे भीत होकर सम्मुख भागमें कम्पिताङ्गी होकर स्थित हुई ॥८२॥

तां दृष्ट्वा सपदि महाप्रभुर्मुखाब्जं
तत्तिर्य्यक् सचकितमेव सामि चक्रे ।
तद्दृष्ट्वा हृदि समवाप्य दुःखमेष
श्रीवासः सभयमुवाच गौरचन्द्रम् ॥८३॥

नैवेदं परमदयस्य ते कृपालो-
र्योग्यश्चेद्वयमपि कुत्र ते भवामः ।
नैतत्ते प्रभुवर युज्यते प्रभुत्वं
तत्पश्चात् त्वरितमुवाच ताञ्च विप्रः ॥८४॥

आगच्छ प्रणम निपत्य भूमिपृष्ठे
श्रुत्वैवं पुनरपि तां बिलम्ब मानाम् ।
नायं ते सुत इति नम्यतां निपत्य
क्ष्मापृष्ठे त्वरितमिति प्रियं जगाद ॥८५॥

महाप्रभु जननी को देखकर तत्क्षणात् सचकित भावसे मुखारबिन्द को अर्द्ध सङ्कुचित किये थे, यह देखकर श्रीवास दुःखी होकर सभय से श्रीगौरचन्द्र को निवेदन किये थे ॥८३॥

हे भगवन् ! आप परम दयालु, कृपासमुद्र हैं, आपका ईदृश आचरण अनुपयुक्त है, यदि उपयुक्त हो तो हमसब आपके नहीं हैं, ' हे प्रभुवर ! यह आचरण आपका प्रभुत्व का अनुरूप नहीं हैं' यह कहकर बाद में श्रीवास श्रीशचीदेवी को कहे थे ॥८४॥

मातः ! आप भूतल में निपतित होकर प्रणाम करें, किन्तु आनेमें शचीदेवी का विलम्ब हुआ, इससे पुनर्बार आपने कहा— 'जननी ! यह आपका पुत्र नहीं हैं, अतएव आप शीघ्र भूपृष्ठ में निपतित होकर प्रणाम करें ' ॥८५॥

इत्येवं परिकलयन्त्यसौ निपत्य
क्ष्मापृष्ठे प्रभुमनमत्तदैव देवी ।
श्रीवासस्तदवसरे जगाद नाथम्
साशङ्कं द्रुतहृदयो भयेन धीरः ॥८६॥

कारुण्यं कुरु भगवन् प्रभो तदस्यै
येनेयं त्वयि न करोति पुत्रभावम् ।
येनेयं तवचरणे भवेत् प्रपन्ना
तेनैव प्रभवति निर्वृतिर्ममापि ॥८७॥

इत्युक्ते सति सहसा महाशयोऽस्या
मूर्द्धनि श्रीयुत पदपङ्कजं स नाथः ।
आधाय प्रथितकृपस्तथैव तस्यै
कारुण्यं परिकलयन्ननुवाच हृष्टः ॥८८॥

देवीने श्रीवास के प्रिय वचन को सुनकर तत्क्षणात् भूतल में निपतित होकर भगवत् बुद्धि से पुत्र को प्रणाम किया, उस समय सुपण्डित श्रीवास शङ्कित चित्त से भीत विह्वल होकर महाप्रभु को कहे थे ॥८६॥

हे भगवन् ! हे प्रभो ! आप शचीदेवी के प्रति करुणा करें, जिससे आपके प्रति इनकी पुत्र बुद्धि न रहे एवं आपके चरणों में प्रपन्न हो जाएँ, उससे मैं भी सुस्थता प्राप्त करूँगा ॥८७॥

श्रीवासके वाक्य श्रवणानन्तर अनाथबन्धु महाशय महाप्रभु भगवदावेशसे शचीदेवीके मस्तक में पादपद्म अर्पण किये थे, एवं परम करुणा प्रभाव को देखकर आनन्द चित्त से कहे थे ॥८८॥

स्पृष्ट्वै तत्पदकमले तदैव चित्रं
नेत्राभ्यामभिदधती जलं गरीयः।
विभ्रान्ता पुलकितदेहयष्टिरासीत्
सोद्दामं नटनपरा ह्रतत्रपैव ॥८९॥

एतैः सा बहुविधचेष्टया प्रसह्य
व्यावृत्ता सुचिरमिवाप चित्तधैर्य्यम्
क्रन्दन्ती नयन जलेन धौतदेहा
संभिन्ना सभयमसौ जगाम गेहम् ॥९०॥

उन्निद्रप्रथम सरोजपत्रनेत्रो
गौराङ्गः परमविलासवान् कृपावान्।
यामिन्या विगतकृशद्वियामवत्या–
स्तद्द्यामद्वयमनयत्तथा विहारैः ॥९१॥

आश्चर्य ! शचीदेवी चरण कमल स्पर्श मात्र से श्रीकृष्ण प्रेम विभोर हो गयीं, इनके नयन युगल से अविरल नेत्र धारा निर्गत होने लगी, अङ्ग पुलकित हो गया, एवं लोक लज्जादि त्याग कर उन्मत्तवत् नृत्य करने लगीं ॥८९॥

अनन्तर श्रीवास प्रभृति भक्तगण को विविध चेष्टा से उक्तभाव शचीदेवी का प्रशमित हुआ, चित्त धैर्य पूर्ण हुआ, एवं रोदन परायण होकर नयनवारि से धौताङ्गी होकर भीतचित्त से गृहाभ्यन्तर में शचीदेवी चली गयीं ॥९०॥

विकसित सरोज पत्रवत् नयन, परम विलासी, कृपालु गौराङ्गदेव प्रहरद्वय रात्री विगत होने पर विगत निद्र होकर अवशिष्ट प्रहरद्वय को अतिवाहित भक्तसङ्ग में श्रीकृष्ण कथालाप से किये थे ॥९१॥

आश्लेषैः कतिच तथैष कांश्चिदन्या-
नाचुम्बैस्तदनुच चर्व्वितैस्तथान्यान् ।
इत्येवं परमकृपानिधिः सुतृप्तान्
चक्रे सद्विलसितलीलया महत्या ॥६२॥

इत्येवं पुनरपि देवतालयेऽसौ
संगत्य क्षणमवतस्थिवान् विरेजे ।
ततपश्चादतिकरुणः क्रमाच्चतूर्णां
भ्रातॄणामपि चतुरो गृहान् जगाम ॥६३॥

इत्येवं बहु विलसत् कृतप्रकाशो
भूयोऽपि प्रभुरधिगम्य देवगेहम् ।
तान् सर्व्वानवददलं विलम्बितैस्तद्
गच्छामीत्यतिकमनीयगौरदेहः ॥६४॥

तच्छ्रुत्वा वचनममुष्य ते समस्ता
अद्वैतप्रभृतय एवमेव मूचुः ।

भक्त को प्रेमालिङ्गन प्रदान, चर्वित वस्तु प्रदान रूप विविध विहार के द्वारा कृपानिधि गौरहरि भक्तवृन्द को अतिशय परितृप्त किये थे ॥६२॥

इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु, पुनर्बार देवालय में प्रविष्ट होकर क्षणकाल वहाँपर अवस्थित होकर शोभित हुये थे, पश्चात् करुणामय महाप्रभु श्रीवास के भ्रातृ चतुष्टय के सहित प्रत्येक के गृह में गमन किये थे ॥६६॥

अतिकमनीय गौरदेह प्रभु ऐश्चर्य्य प्रकाश पूर्वक बहुविद्या विलास के सहित पुनर्बार देवगृह में प्रविष्ट होकर भक्तवृन्द को कहे थे, विलम्ब का प्रयोजन नहीं है, मैं जा रहा हुँ ॥६४॥

एवं चेद्वयमपि तद्गले कृपाणं
बद्धैतत् सपदि शरीरमाजहीमः ॥९५॥
गौराङ्गोऽप्यथ हसितं विधाय सद्रा-
गित्येतत् किमिति किमात्थ वाक्यमेतत् ।
उक्त्वैवं क्षणमवतस्थिवान् धरण्यां
हुङ्कारैः सह निपपात चित्रमेतत् ॥९६॥
इत्येवं भुवि सुचिरं विलुठ्य नाथो
निश्चेष्टः समजनि हेमगौरदेहः ।
तत्कालच्युतमिव काञ्चनाचलस्य
क्षमापृष्ठे ज्वलदनिशं मनोज्ञश्रृङ्गम् ॥९७॥
भूयोऽयं मृदि च विलुठ्य चत्वरान्तः
संमूर्च्छन्निव विरराम रम्यमूर्त्तिः ।

तब श्रीअद्वैत प्रमुख भक्तवृन्द कहने लगे— प्रभो ! यदि आप इस प्रकार करें तो हम सब गलदेश में कृपाण धारण कर शरीर परित्याग करेंगे ॥९५॥

अनन्तर श्रीगौराङ्गदेव हँसकर कहे थे, ' तुम सब इस प्रकार क्यों कह रहे हो, यह कहकर क्षणकाल धरणी में सहुङ्कार निपतित हो गये, यह अतीव आश्चर्य है ॥९६॥

अनाथबन्धु स्वर्णकान्ति गौरहरि अनेकक्षण पर्य्यन्त भूतल में विलुठित होकर चेष्टाशुन्य हो गये, देखकर प्रतीत होने लगा कि— कनकाचलसुमेरु का निरन्तर जाज्वल्यमान श्रृङ्ग भूतल में निपतित है ॥९७॥

कमनीय मूर्त्ति श्रीगौराङ्गदेव पुनर्बार अङ्गनमध्य में विलुठित होकर मुर्च्छिन हो गये, तत्कालीन उनकी अङ्गचेष्टा उत्तर प्रदान

चेष्टाद्यं न किमपि नोत्तरश्च किञ्चि –
त्रस्पन्दः श्वसितसमीरणश्च नैव ॥९८॥

चिक्षेप क्षितिषु यथा भुजौ तथा तौ
ताद्दक्षाविव किल तस्थतुश्चिराय ।
तस्थौ श्रीपदयुगलं तथा यथासौ
चिक्षेप क्षणमनु विस्मृताङ्गचेष्टः ॥९९॥

इत्येवं भवति सति क्षपाव्यपाये
पर्य्यासीत् सपदि रविः समुद्गतोऽभूत् ।
मूर्च्छाभिर्गतसकलक्रियः प्रकामं
नैवायं प्रकृतिमवाप गौरचन्द्रः ॥१००॥

ते सर्व्वे परमपरं सहस्रभारै–
र्दुःखानां किमिति किमित्युदीरयन्तः ।
निश्चेष्टं प्रभुमवलोक्य भूमिपृष्ठे
स्विन्नाङ्गाः परिमुमुहुर्द्रुतं समन्तात् ॥१०१॥

स्पन्दनादि एवं निश्वास प्रभृति का उन्मेष नहीं था ॥९८॥

भूतल में जिस प्रकार हस्त क्षेपण किये थे, चिरकाल उस प्रकार ही स्थित रहे, पदयुगल भी निश्चेष्ट होकर पूर्ववत् रहे थे, इस प्रकार श्रीगौरहरि अङ्ग चेष्टारहित होकर अवस्थित थे ॥९९॥

इस प्रकार रीति से रजनी का अवसान होने पर शीघ्र सूर्योदय हुआ, किन्तु गौरहरि सम्यक् मूर्च्छागत थे, किसी प्रकार प्रकृतिस्थ हो न सके ॥१००॥

अनन्तर भक्तवृन्द अतिशय दुःखभाराक्रान्त होकर परस्पर कहने लगे थे, क्या हुआ ? क्या हुआ ? कहकर भूपृष्ठ में प्रभु को निश्चेष्ट देखकर धर्माक्त कलेवर से भक्तवृन्द मोहग्रस्त हो गये ॥१०१॥

यातैषा सपदि निशा समुद्गतोऽर्कः
सम्पन्नोऽपि च घटिकार्द्ध एष सोऽपि ।
यामार्द्धस्तदनु च याम एष भूतो
हा हा किं तदपि बुबोध नैव नाथः ॥१०२

इत्येतत् सततमुदीरयन्त एते
दुःखार्त्ताश्चलित इति प्रतेपु रुच्चैः ।
संरुद्धे परमदृढ़े कवाटबन्धे
तत्पुर्य्यां तमभिनिवेश्य ते निषेदुः ॥१०३॥

अद्वैतस्त्वथ शतहुङ्कृतैः करेण
क्षिप्ताम्भो वदनममुष्य संसिषेच ।
गौराङ्गस्तदपि न बोधतामवाप
स्पन्दं निःश्वसितसमीरणं न चापि ॥१०४॥

एवं कहने लगे, देखते देखते रजनीका अवसान हुआ, सूर्यदेव भी उदित हो गये, अर्द्धघटिका समय व्यतीत हुआ, पुनर्बार अर्द्धप्रहर गत हुआ, एवंएकप्रहर हुआ, हा कष्ट ! हा कष्ट ! अभी भी तो गौरचन्द्र सचेतन नहीं हुये ॥१०२॥

भक्तवृन्द परस्पर विलाप करके दुःख से कातर होकर आप चले गये हैं, यह जानकर अत्यन्त शोकानल से सन्तप्त हो गये, एवं भवन में दृढ़तर कवाट बद्ध कर महाप्रभु को स्थापन कर सब अवस्थित्त हो गये ॥१०३॥

अनन्तर श्रीअद्वैतप्रभु हुङ्कार पूर्वक जलक्षेपण करके श्रीमन्महाप्रभु के वदन सिञ्चन करने लगे थे, तथापि महाप्रभु चेतना, स्पन्दन, निश्वास वायु प्राप्त नहीं किये ॥१०४॥

चिन्ताभिर्मनसि विभाव्य कीर्त्तनं त
च्चक्रुस्ते मधुमधुरं सुधीरधीरम् ।
तच्छ्रुत्वा स तु चिरकालमेव नाथो
नह्येव प्रकृतिमियाय गौरचन्द्रः ॥१०५॥

अश्रान्तं श्रवणपथैः प्रविश्य चेत-
स्तस्यैतत् सुमधुरकीर्त्तनामृतेन ।
तैः सार्द्धं सुखितमनोभिरत्र भूयः
सन्तेने सपदि तनूरुहेषु हर्षः ॥१०६॥

यद्धर्षैः सममुदभूत् स रोमहर्षो
गौरस्य प्रकृतिमुपेयुषः समन्तात् ।
तद्दुखैः सममपि निर्भरैर्विवृत्ति
पार्श्वस्य प्रभुरकरोत् क्रमेण तत्र ॥१०७॥

गौराङ्गश्चिरमनुभूय कीर्त्तनं तत्
प्रव्यक्तं दृढशयितः शनैरुदस्थात् ।

पश्चात् भक्तवृन्द विचार पूर्वक अतिशय धीर एवं सुमधुर स्वर से श्रीहरि कीर्त्तन करने लगे, किन्तु उससे भी अनाथ नाथ श्रीगौरचन्द्र सचेतन नहीं हुये ॥१०५॥

अनन्तर सुमधुर सङ्कीर्त्तन रूप अमृतधारा का निरन्तर प्रवेश श्रवण के द्वारा चित्तपुट में होने पर भक्तवृन्द के आनन्द के सहित श्रीप्रभु के अङ्ग में हर्षोत्पुलक व्याप्त हुआ ॥१०६॥

कीर्त्तन आनन्द से श्रीगौरचन्द्र का रोमहर्ष हुआ, एवं दुःखित भाव से प्रभु पार्श्व परिवर्त्तन किये थे ॥१०७॥

श्रीगौराङ्गदेव निश्चेष्ट भावसे अनेकक्षण पर्य्यन्त सङ्कीर्त्तन

तैर्भूयस्त्यजति सति प्रभौ प्रकाशा-
विष्कारं व्यघटि तदास्य वेशभूषा ॥१०८॥

उत्थाय प्रभुरथ देवगेहभित्ति
संहृत्य प्रकटनिजप्रकाशतेजः ।
भूयोऽसो मृदुमधुरां दधार लक्ष्मीं
नैदाघो रविरिव शारदेन्दुरासीत् ॥१०९॥

आश्वस्य क्षणमथ दन्तसत्प्रसून
द्योतैस्तैरधरदले विभेदयन् सः ।
प्रत्यूचे चिरशयितो यथा प्रबुद्धे
निद्रान्ते किमपि कथञ्चनाप्यजानन् ॥११०॥

एतावान् किमु समयः सुषुप्तिभाजा
निद्रायामति गमितो मया चिराय ।

आनन्दानुभव करतः शनैः-शनैः गात्रोत्थान किये थे, एवं प्रकाश आविर्भाव परित्याग करने पर भक्तवृन्द यथोचित वेश भूषासे श्रीगौराङ्गदेव को सुसज्जित किये थे ॥१०८॥

अनन्तर श्रीमहाप्रभु देवगृह में प्रविष्ट होकर स्वीय प्रकाशरूप तेजः को संहृत किये थे, एवं मृदुकान्ति धारण किये थे, उससे श्रीमन्महाप्रभु ईदृश शोभित हुये थे कि—मानों ग्रीष्मकालीन दिनकर शारदीय सुषमा मण्डित हुये हैं ॥१०९॥

श्रीमन्महाप्रभु, क्षणकाल आश्वस्त होकर दन्तरूप प्रशस्त पुष्प कान्ति द्वारा अधरौष्ठद्वय को विभिन्न करतः चिरशयित व्यक्ति जिस प्रकार निद्रान्त में कुछ भी नहीं जान सकता है, उसके ममान प्रत्युत्तर प्रदान करने लगे थे ॥११०॥

प्रत्यूषे यदहमपाठयं द्विजाती-
नाश्चर्य्यं किमिति तदेव संस्मरामि ॥१११॥

सोत्प्रासं तदनु जगाद गौरचन्द्रं
श्रीवासो विमल मनाश्विहस्य ।
नेदानीं प्रभवितुमर्हति त्वदीया
मायेयं विदिततमा बभूव भूयः ॥११२॥

तच्छ्रुत्वा किमिति किमात्थ किं नु वा मा
मित्येवं परिहससि प्रकाममेव ।
नो जाने क्षणमपि किञ्चिदेतदेतत्
प्रत्यूचे सचकितमेव गौरचन्द्रः ११३॥

यामानां त्रयमिति सम्बभूव तत्रा
तीतैरष्टभिरपि सार्द्धमत्र यामैः ।

भक्तवृन्द ! सुषुप्ति दशापन्न होकर सुदीर्घ निद्रासे एतावत् काल मैंने अतिवाहित किया ? कारण— मैंने प्रत्यूष में ब्राह्मणवर्ग को अध्यापन किया है, आश्चर्य ! उसका स्मरण भी हो रहा है ॥१११॥

श्रीमन्महाप्रभु उस प्रकार कहने पर श्रीवास ईषत् हास्यपूर्वक कहे थे— प्रभो ! आपकी माया को हम सब जान गये हैं, यह माया हमारे ऊपर प्रभुत्व विस्तार नहीं कर सकेगी ॥११२॥

श्रीवास के कथन को सुनकर श्रीगौरहरि ने कहा— क्या कहते हैं, मुझको परिहास करते हैं ? मैं यह सब नहीं जानता हूँ, यह कहकर सचकित भाव से प्रत्युत्तर दान किये थे ॥११३॥

पूर्व दिवस के अष्टप्रहर काल एवं परदिवसीय तीनप्रहर काल अर्थात् एकादश प्रहर काल उक्त प्रकार से अतिवाहित हुये थे, उस

न स्नानं नच गृहकर्म नान्यचेष्टा
नो निद्रा नच शयनं तदा जनस्य ॥११४॥

इत्येकाधिकदशभिः सुदीर्घदीर्घै-
र्यामैस्तैर्निमिष इवाभवत् स कालः ।
एतेषु क्षणमपि पक्ष्मणां विवृत्ति-
र्नैवासीत् सुखमहतां तदा जनानाम् ॥११५॥

नेत्राभ्यां चिरमुपवास सस्पृहाभ्यां
श्रोत्राभ्यां बधिरतया विवर्ज्जिताभ्याम् ।
स्वान्तेन प्रथमसमुद्गतेन लोका
निस्पन्दा इव सततं बभूवुरेते ॥११६॥

अश्रान्तं गतनिमिषं विलोकयन्त्यो
गौराङ्गाहितपरमप्रसादमुग्धाः ।
देहादि क्षणमपि नैव सस्मरु स्ता
वाह्यान्तःप्रमदभरेण विप्रपत्न्यः ॥११७॥

समय किसी का स्नान, गृहकर्म, निद्रा प्रभृति कार्य नहीं हुये थे ॥११४॥

सुदीर्घ एकादश प्रहर काल निमेषवत् अतिवाहित होने से सब लोक आश्चर्यान्वित हुये थे, सुखानुभव निबन्धन उक्त समय में महानुभववृन्द का निमेषपात भी नहीं हुआ था ॥११५॥

जननिकर के नयनवृन्द चिर उपवासी होकर सस्पृह थे, अर्थात् नेत्र युगल के द्वारा अपर वस्तु दर्शन की इच्छा उनसब की नहीं रही, सब व्यक्ति की श्रवणवृत्ति अवरुद्धा थी, एवं अन्तःकरण प्रथम उत्पन्न होने से सब निस्पन्द थे ॥११६॥

विप्रपत्नीगण निरन्तर अनिमेषनयन से श्रीगौराङ्ग को देख

इत्येवं परमरहस्यमीक्षमाणाः
क्षुत्तृष्णापरिभवमेव नापुरेते ।
किञ्चैतत् क्षणमिव चेद्दिनद्वयं स्या
त्तत् किं क्षुत्प्रभृतिभिरत्र देहधर्मैः ॥११८॥
अत्रान्ते परमसुखेन सञ्जयित्वा
गात्रोद्वर्त्तनपरवस्तुदत्तचित्तैः ।
स्नानाय प्रति विदधे तथोद्यमं तै-
र्गौराङ्गः परमकृपारसाम्बुराशिः ॥११९॥
स्नानान्ते निजनिजवेश्म जग्मुरेते
गौराङ्गः पुनरपि तस्य वेश्म गत्वा ।
श्रीरामप्रभृतिसहोदरैश्चतुर्भि-
स्तत्पत्नीभिरपि समर्हितो रराज ॥१२०॥

कर गौराङ्गार्पित परम प्रसन्नता से विभोर होकर देहगेह विस्मृत हुये थे ॥११७॥

श्रीप्रभु का परम रहस्य दर्शन से भक्तवृन्द क्षुधा तृष्णा से अभिभूत नहीं हुये, आश्चर्य है! दो दिन क्षणकाल के समान व्यतीत हुये, तब क्षुधा प्रभृति देहधर्म के द्वारा क्या हो सकता है, वे सब कैसे अभिभूत होंगे? ॥११८॥

भक्तगण परम मनोहर अङ्ग का उद्वर्त्तन प्रभृति कार्य्य में मनो निवेश करने पर परम कृपारसाम्बुराशि श्रीगौराङ्गदेव स्नानार्थ उद्यम किये थे ॥११९॥

स्नान के अनन्तर भक्तवृन्द निज निज गृहागमन करने से श्रीप्रभु पुनर्बार श्रीवास के भवन में उपस्थित हुये थे एवं श्रीराम प्रभृति भ्रातृवर्ग के पत्नीगण कर्त्तृक सम्यक् प्रकार से पूजित होकर शोभित हुये थे ॥१२०॥

स्रग्गन्धैर्वरवसनैश्च भूषणैश्च
श्रीखण्डद्रवसहितैश्च धीरपङ्कैः ।
स्नेहेन प्रतिदिननूतनेन दत्तै-
र्गौराङ्गः सुखमतुलं जगाम भूयः ॥१२१॥

प्रत्यङ्गं तनुमनुलिप्य चन्दनेन
स्रग्वृन्दैरपि वपुरस्य भूषयित्वा ।
सद्वासोऽपि च परिधाप्य सूक्ष्मशुभ्रं
यद्योग्यं तदपि सुखेन भोजयित्वा ॥१२२॥

प्रत्यग्रां प्रतिदिवसं तदर्पयित्वा
तां प्रीतिं द्विजवृषभाश्च तत्स्त्रियाश्च ।
आसेदुर्निरुपमभाग्यसिन्धुपुरै-
रश्रान्तं परिमिलितं प्रमोदवृन्दम् ॥१२३॥

इत्येवं सहजनिजप्रकाशतेजः
सन्दर्श्य स्थिरकरणश्चिरं विलस्य ।

प्रत्यह नूतन-नूतन स्नेह पूर्वक प्रदत्त माल्य, गन्ध, उत्कृष्ट भूषण वसन एवं चन्दन द्रव्य के सहित अगुरु पङ्क के द्वारा आप्यायित होकर श्रीगौराङ्गदेव अतुल आनन्दानुभव किये थे ॥१२१॥

द्विजवृन्द एवं उनके पत्नीवृन्द श्रीगौराङ्गदेव के प्रत्येक अङ्ग में चन्दन लेपन माल्य के द्वारा भूषित करण उत्तम उत्तम सूक्ष्म वस्त्र धारण एवं उत्तम भोज्य द्रव्यार्पण प्रभृति कार्य अभिनव प्रीति के सहित सुसम्पन्न कर निरुपम भाग्यसिन्धु के प्रवाह के द्वारा निरन्तर सम्मिलित प्रमोद समूह का प्राप्त किये थे ॥१२२-१२३॥

अनन्तर मधुरस्मितानन श्रीगौरचन्द्र संयत चित्त से स्वीय नैसर्गिक तेज सन्दर्शन करवाकर बहुक्षणपर्य्यन्त अवस्थित होकर निज

स्वं गेहं मधुरमुखो ययौ ततोऽयं
मातुस्तां मुदमतिनिर्भरां बितन्वन् ॥१२४॥

इत्येवं प्रचुरकृपामृतं वितन्वन्
ज्यैष्ठाद्यष्टभिरतीसम्मदेन मासैः ।
पौषान्तं नटनरसैर्निदाघवर्षै-
र्हेमन्तं सह शरदा निनाय नाथः ॥१२५॥

ऋतूनामेतेषां प्रतिदिनमथानुक्षणमसौ
प्रभुर्मासं मासं प्रति यदकरोन्नर्त्तनरसम् ।
तदेतन्नैवायं कथयितुमलं किं पुनरहो
मनुष्यास्तु क्षुद्राः सुरगुरुसहस्रं क्व नु पुनः ॥१२६॥

श्रीवासालय एव नृत्यति सदा तद्भ्रातृभिर्निर्भरं
गायद्भिर्हरिकीर्त्तनामृतरसं श्रीगौरचन्द्रः प्रभुः ।
तत्सङ्गामृतदीर्घिका निरवधि स्नातास्तदास्योद्गतं
वाक्पीयूषममी निपीय बहुधा नित्यं विजह्रुस्तथा ।१२७।

गृहागमन पूर्वक जननी का अतुल आनन्द विस्तार करने लगे थे ।१२४।

दीनबन्धु गौरहरि अतिहर्ष से ज्यैष्ठ से पौष मास पर्य्यन्त अष्ट मास प्रचुर कृपामृत विलास पूर्वक अतिवाहित करने के पश्चात् ग्रीष्म, वर्षा, शरत् एवं हेमन्त ऋतु नृत्य रस से अतिवाहित किये थे ॥११५॥

आश्चर्य है कि– श्रीगौरहरि समस्त ऋतु के प्रतिमास के प्रति दिन क्षण-क्षण में जिस नृत्यरस का प्रकाश किये थे, उसका वर्णन स्वयं महाप्रभु करने में अक्षम थे, मनुष्य की तो कथा ही कया हैं ? वे सब अति क्षुद्र हैं, असंख्य वृहस्पती की भी वर्णन सामर्थ नहीं है ।१२६।

श्रीवास के भ्रातृवृन्द कीर्त्तन रूप अमृतरस पान करते थे,

स तु गदाधरपण्डितसत्तमः
सततमस्य समीपसुसङ्गतः ।
अनुदिनं भजते निजजीवितं
प्रियतमं तमभिस्पृहया युतः ॥१२८॥

निशि तदीयसमीपगतः स्थिरः
शयनमुत्सुक एव करोति सः ।
विहरणामृतस्य निरन्तरं
सदुपभुक्तमनेन निरन्तरम् ॥१२९॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये नवद्वीप विहार वर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः



उनके सहित प्रभुवर श्रीगौरहरि श्रीवास भवन में निरन्तर नृत्य करते थे, सुतरां श्रीवास के भ्रातृगण श्रीगौराङ्ग सङ्ग रूप अमृत दीर्घिका में निरवधि स्नान एवं श्रीगौराङ्ग मुखोद्गत वाक्यामृतपान अनेक प्रकार से करके श्रीगौराङ्ग के समान नित्य विहार करते थे ॥१२७॥

प्रसिद्ध साधुश्रेष्ठ श्रीगदाधर पण्डित निरन्तर महाप्रभु के निकटस्थ होकर प्रत्यह श्रीगौराङ्ग का भजन प्रीति पूर्वक करते थे ॥१२८॥

प्रतिदिन रजनी में स्थिर भावसे उत्सुकता के सहित श्रीगौराङ्ग के समीप में अवस्थान करते थे, श्रीगौराङ्गदेव भी श्रीगदाधर के प्रीतिपूर्ण व्यवहार से आनन्दित होते थे ॥१२९॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये नवद्वीप विहार वर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः



षष्ठः सर्गः

श्रीवासगेहमुपगम्य कदाचिदेष
व्याख्यां चकार तदनन्तरमेव नाम्नाम् ।
माहात्म्यमुद्भटमिदं पुरुषार्थसर्व्व-
श्रेष्ठं श्रुतिप्रकरदुर्ल्लभमोदमादौ ॥१॥

स्वीये विलास रस नव्यमहाम्बुराशौ
नित्यं कुतूहलपरो विजिहीर्षुरेषः ।
आदौ स्वनाममहिमामृतरम्यपूरं
हर्षाद्वचोऽञ्जलिपुटैर्जगति व्यकारीत् ॥२॥

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥३॥

नाद्यः पुमानयमुदेति सदैव भूमौ
नामस्वरूपमिति तन्तु कलौ विदन्तु ।

तदनन्तर महाप्रभु एक समय श्रीवास गृह में जाकर धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षरूप पुरुषार्थ चतुष्टय से श्रेष्ठ एवं वेददुर्ल्लभ आमोद स्वरूप श्रीनाम माहात्म्य का वर्णन करने लगे थे ॥१॥

स्वीयविलाष रूप नूतन महासमुद्र में कुतूहल के सहित विहार करने के निमित्त इच्छुक होकर सर्व प्रथम निजनाम महिमामृत का रमणीय प्रवाहरूप वाक्य को जगत् में निज अञ्जलीपुट के द्वारा निक्षेप करने लगे ॥२॥

केवल श्रीहरिनाम व्यतीत कलियुग में अपरगति अवश्य ही नहीं है, इस को पुनः-पुनः कहते थे ॥३॥

श्रीहरिनामरूप आदि पुरुष का आविर्भाव पृथिवी में सर्वदा नहीं होना है, केवल कलियुग में ही आविर्भुत होते हैं, तीनबार

बारत्रये च पुनरुक्तिरथैवकारो
दार्ढ्याय सर्व्वजगतो बहुजाड्यभाजः ॥४॥

कैवल्यमेव तदिदन्त्विति केवलस्य
शब्दस्य दार्ढ्यमनने प्रतिपादनन्तत् ।
यस्त्वन्यथा वदति तस्य गतिर्हि नास्ति
नास्त्येव निश्चितमिवं पुनरेवकारात् ॥५॥

इत्यूचिवानथ कृतप्रकटप्रकाशः
श्रीमद्वरासनमुपेत्य कृपासमुद्रः ।
पादारविन्दयुगलेन मनोरमेण
श्रीरामपण्डितमुखान् सममस्पृशद्द्राक् ॥६॥

तेऽपि प्रणम्य सहसा नतकन्धरेण
प्रेमस्वरूपभजनं मुदिताः समीयुः ।

पुनरुक्ति एवं तीनबार एवकार का प्रयोग उसकी दृढ़ता के निमित्त हुआ है ॥४॥

उक्त नाम माहात्म्य प्रति पादक श्लोक में "केवल" शब्द का प्रयोग हुआ है, उससे श्रीहरिनाम माहात्म्य की दृढ़ता प्रतिपादित हुई है, किन्तु जो जन इसमें विश्वासी नहीं है, उसका निस्तार नहीं है, इसको सूचित करने के निमित्त ही तीनबार "एव" कार का प्रयोग हुआ है ॥५॥

प्रकट प्रकाश श्रीगौराङ्ग सुन्दर उस प्रकार कहकर सुन्दर आसन में उपविष्ट होकर मनोरम पदारविन्द युगल के द्वारा शीघ्र श्रीराम पण्डित प्रभृति को स्पर्श किये थे ॥६॥

वे भी नतकन्धर होकर श्रीप्रभु के पदारविन्द युगल में सहसा प्रणत हो गये, एवं भक्त वत्सल भगवान् के द्वारा प्रदत्त प्रेमरूप

तेभ्यो ददावभिमतं भगवान् प्रकामं
श्रीमान् स्वभक्तजनवत्सलतातिरम्यः ॥७॥

शुक्लाम्बरो द्विजवरः सुभगोऽथ कश्चि
दूचे प्रभुं प्रकटितातिशयप्रकाशम् ।
द्वारावतीञ्च मथुराञ्च सदैव गत्वा
मां दुःखिनक्षणमवेक्ष्य दयस्व नाथ ॥८॥

किं तत्र सन्ति न शृगालचयास्ततः किं
तेषां भवेत् किमथ ते न पुनः शृगालाः ।
इत्युक्तवत्यथ विभौ द्विजपुङ्गवोऽय
मुच्चैः पपात भुवि दण्डवदुत्सुकात्मा ॥६॥

भूयश्च भूरिकरुणो निजगाद विप्रं
दीनानुकम्पितहृदयो हृदयैकवेत्ता ।
अद्यैव तेऽत्र भविता प्रभुपादपद्मे
सप्रेमभक्तिरिति गौरसुधामयूखः ॥१०॥

श्रीकृष्ण भजन को सादर पूर्वक ग्रहण किये थे ॥७॥

अनन्तर शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी नामक सौभाग्यशाली व्यक्ति ने अतिशय प्रकाश प्रकटनकारी श्रीमन्महाप्रभु को कहे थे— हे नाथ ! आप मथुरा एवं द्वारका जाकर मुझको अवश्य अवलोकन करेंगे, मैं अतिशय दुःखी हूँ ॥८॥

उत्तर में श्रीप्रभु ने कहा— द्वारका मथुरा में क्या शृगाल नहीं है ? वहाँ के शृगाल को क्या शृगाल नहीं कहा जाता है ? इस प्रकार श्रीप्रभु की वाणी को सुनकर द्विजवर शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी उत्सुकता के सहित भूतल में दण्डवत् प्रणत हो गए थे ॥६॥

भूरिकरुण प्रभु—पुनर्बार विप्र को दीनानुकम्पित हृदय से

सद्योऽथ तस्य चरणेषु निपत्य भूयः
स्विद्यन्मनाः पुलकसञ्चयपूरिताङ्गः ।
उच्चैःस्वरेण बहुलाश्रुभरैर्विभिन्नो
वाग्गद्गदेन च रुरोद महानुभावः ॥११॥

श्रीमान् गदाधरमहामतिरत्युदार-
शीलः स्वभावमधुरो बहुशान्तमुर्त्तिः ।
ऊचे समीपशयितः प्रभुना रजन्यां
निर्म्माल्यमेतदुरसि प्रतिसार्य्यमेभ्यः ॥१२॥

इत्थं स यद्यददात् प्रमदेन यस्मै
यस्मै जनाय तदिदञ्च गदाधरोऽपि ।
प्रातर्ददौ सततमुल्लसिताय तस्मै
तस्मै महाप्रभुविमुक्तमहाप्रसादम् ॥१३॥

संग्रथ्य माल्यनिचयं विरचय्य यत्नात्
सद्गन्धसार घनसार वरादि पङ्कम् ।

कहे थे— अद्य ही श्रीकृष्ण पादपद्म में प्रीतिभक्ति लाभ होगा ॥१०॥

अनन्तर महानुभाव ब्राह्मण तत् क्षणात् श्रीप्रभु चरणों में निपतित होकर पुनर्बार आर्द्रचित्त पुलक पूरिताङ्ग अश्रुपूर्ण नेत्र उच्चैःस्वर से रोदन करने लगे थे ॥११॥

एकदिन श्रीप्रभु- महामति उदार स्वभाव मधुरमूर्त्ति विनीत श्रीमान् गदाधरप्रभु को निकटस्थ देखकर कहे थे— ये निर्माल्य समूह का प्रदान भक्तवृन्द को करो' ॥१२॥

इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु आनन्दित चित्त से जिसको जिसको जो-जो पदार्थ प्रदान हेतु कहे थे, श्रीगदाधर भी प्रातःकाल में तत् समुदय वस्तु भक्तवृन्द को निरन्तर प्रदान करने लगे थे ॥१३॥

अङ्गेषु तस्य परियोजयति स्म नित्यं
सोत्कण्ठमत्र स गदाधर पण्डिताग्र्यः ॥१४॥

सायं कदाचिदथ तैः स्वपदाब्जभक्तैः
श्रीगौरचन्द्र उदित निजकीर्त्तनाब्धौ ।
आकस्मिकैर्गगनमण्डलमम्बुवाहै-
र्व्याप्तं निरीक्ष्य करुणोऽजनि विघ्नभीत्या ॥१५॥

आदाय पाणिकमलेष्वथ मन्दिराग्र्यं
रागान् स्वरांश्च सकलान् स कृतार्थयित्वा ।
उच्चैर्जगौ स्वगुणसञ्चयमेव हृष्टः
श्रीमाननङ्ग इव विग्रहवान् पृथिव्याम् ॥१६॥

सद्यस्तदा जलमुचो मरुता प्रकीर्णा
भेजुर्दिशं दिशममी सह चित्तखेदैः

श्रीगदाधर प्रभु उत्सुक चित्त से प्रत्यह अतियत्न पूर्वक माल्य ग्रन्थन एवं प्रशस्तगन्धयुक्त कुङ्कुमादिपङ्क सम्पादन करके उसके द्वारा श्रीमन्महाप्रभु के अङ्ग को सुशोभित करते थे ॥१४॥

एकदिन सायंकाल में भक्तवृन्द के सहित कीर्त्तन रत अवस्था में अकस्मात् मेघमाला परिव्याप्त गगन मण्डल को निरीक्षण करतः कीर्त्तन विघ्न से भीत होकर करुणान्वित हुये थे ॥१५॥

धरातल में मूर्त्तिमान् आनन्द के समान श्रीगौरहरि हृष्टचित्त से करकमल में उत्कृष्ट मन्दिरा ग्रहण पूर्वक राग एवं स्वर समूह को कृतार्थ करने के निमित्त निजगुण समूह का गान उच्चैःस्वर से करना प्रारम्भ किये थे ॥१६॥

उस समय जलधर मण्डल समीरण द्वारा परिचालित होकर दिग् दिगन्त में चले गये, नभोमण्डल निर्म्मल हुआ, एवं अन्धकार

व्योमातिनिर्म्मलमभूदुदियाय चन्द्रः
सार्द्धं समस्त भगरोन तमोऽपहत्यै ॥१७॥
रज्यन् प्रसारितकरः परिरभ्य गाढ़ं
रम्यां क्षपानवबधूं वितमोऽन्तरीयाम् ।
ग्रानन्दसिन्धुलहरीचयमुच्छलन्तं
ज्योत्स्नामिषादिव रमत्ययमोषधीशः ॥१८॥
गीर्वारावर्त्मनि तदा विमले सदृक्षैः
पीयूषमुद्गिरति तत्र सुधामयूखे ।
श्रीगौरशीतकिरणोऽप्यवनौ स्वलोके
सङ्कीर्त्तनामृतरसे रमति स्म भूयः ॥१९॥
श्रीमत्पदाब्जपदवीवरहंसकाद्यैः
पारिप्रवालयुगलं वलयैर्लयैश्च ।
लास्योद्गमे सपदि मन्मथमन्मथस्य
श्रीगौरशीतकिरणस्य रराज भूयः ॥२०॥

नाश हेतु नक्षत्र माला के सहित चन्द्रोदय हुआ ॥१७॥

चन्द्र रक्तवर्णकर को प्रसारित कर तमोमय वसन रहिता रमणीय मूर्त्ति रजनीरूपा नवबधू को गाढ़तर आलिङ्गन करके ज्योत्स्नाछल से मानों उच्छलित आनन्द समुद्र के तरङ्ग समूह को क्रीड़ापरायण कर दिया ॥१८॥

तत्कालीन सुविमल नक्षत्रमाला से नभोमण्डल निर्म्मल होने पर अमृत किरण चन्द्र भी अमृत वर्षण करने लगा अपर दिक् में पुनर्बार गौरचन्द्र भी स्वीय भक्तगण के सहित कीर्त्तन रूप अमृतरस में विहार करने लगे ॥१९॥

नृत्य का अवसर उपस्थित होने पर मन्मथ मथन श्रीचैतन्यचन्द्र

विप्राङ्गनागणमुखेन्दुविनिर्गतैस्तै-
रुच्चै रुलूलुनिनदैर्जयनादमिश्रैः ।
खेऽवस्थितस्यदिविषन्निचयस्य हर्ष
स्वानैरतीवतुमुलः सुमहोत्सवोभूत् ॥२१॥

कुन्दारविन्द करवीर नवीनमल्लि
जात्यादिपुष्पनिवहै रवकल्पृमाल्यः ।
श्रीखण्डकुङ्कुमलसन्मृगनाभिपङ्कै-
रालिप्य सर्व्वतनुमेष रराज नृत्यन् ॥२२॥

शुक्लाम्बरः सतु निपत्य धरातलान्तः
श्रीगौरचन्द्रमवदत् सभयं महात्मा ।
हे नाथ सम्प्रति कृता भवता नवीन-
दीपं नवैव मधुरा विविधैर्विहारैः ॥२३॥

के चरण कमल नूपुर एवं अरुणवर्ण कमल युगल वलय एवं सङ्गीत के लय के द्वारा अतिशय शोभित होने लगे ॥२०॥

उस समय विप्राङ्गनागण मुखचन्द्र निर्गलित उच्च जय शब्द उलु-उलु ध्वनि तथा स्वर्गस्थ देववृन्द के हर्षशब्द से नृत्य महोत्सव अतिशय तुमुल हो उठा था ॥२१॥

कुन्द, अरविन्द, करवीर, नवमल्लिका एवं जाति प्रभृति कुसुम समूह के माल्य के द्वारा अलङ्कृत होकर एवं सुगन्धी चन्दन, कुङ्कुम, मृगनाभिपङ्क द्वारा स्वीय तनुलेपन पूर्वक नृत्य करते करते अतिशय सुशोभित हुये थे ॥२२॥

उस समय महात्मा शुक्लाम्बर धरणी में निपतित होकर सभय से निवेदन किये थे- "सम्प्रति विविध विहार के द्वारा आप नवद्वीप को नूतन मथुरा में परिणत कर दिये हैं" ॥२३॥

इत्युक्तवान् बहलगद्गदगद्यपद्य
वाक्येन भूमिमभितो गलदश्रुपूरः
वैह्वल्यदैन्यहृदयः सततं विमुक्त-
कण्ठं रुरोद बहुशः स्तवनेन तस्य ॥२४॥

नृत्यन् वयस्यरुचिरांसतटेऽतिपीनं
दोस्तम्भमर्पयति स क्षणमप्युदारम्
उद्दामवेपथुचलत्सकलाङ्गयष्टि-
र्भूमौ स्खलत्यनुपदं विवशः क्षणश्च ॥२५॥

तेभ्योवरान् क्षणमपीश्वरभावरम्यो
भूयो ददाति सदयं सदयैकसिन्धुः
नानाविधैरतिकृपारससिन्धुचन्द्रो
लोकानशिक्षयदशेषविलासभावैः ॥२६॥

कहकर विप्रवर अतिशय गद्गद स्वर से गद्य पद्य वाक्य के द्वारा श्रीमन्महाप्रभु का स्तव करके निरन्तर मुक्तकण्ठ से अनेक रोदन किये थे, उस समय उनका हृदय विह्वल होकर दैन्ययुक्त हुआ एवं नयनयुगल से गलित अश्रुप्रवाह द्वारा अवनी सिक्त होने लगी ।२४।

श्रीमहाप्रभु नृत्य करते करते कभी वयस्य के स्कन्धदेश में बाहुस्तम्भ अर्पण करते थे, कभी तो अतिशय कम्पन हेतु समस्त अङ्गयष्टि कम्पित होने लगे थे, एवं क्षणकाल में विवश होकर अवनीतल में निपतित होने लगे थे ॥२५॥

दयासिन्धु महाप्रभु क्षणकाल ईश्वर भाव अवलम्बन पूर्वक भक्तवृन्द को पुनः-पुनः वर प्रदान करते थे, इस प्रकार अतिशय कृपारस समुद्र श्रीगौरहरि, अशेष विलासभाव समुद्र द्वारा लोक समूह को शिक्षा प्रदान करने लगे थे ॥२६॥

आरुह्य स क्षणमपि स्वपदाब्जभक्त
स्कन्धं महाप्रभुरतीवविकाररम्यः
आक्रीड़ति स्वजनहर्षसमुद्रपूर–
मुल्लासयन्निशि निशाकरकोटिकान्तः ॥२७॥

अन्येद्युरुद्यदहिमांशुसहस्रभास्वान्
भूमौ वसन् करतलद्वयताल पुरैः
सर्व्वा दिशः प्रतिरवोन्मुखराः समन्तात्
कुर्व्वन्नुवाचनिजपादपयोजभक्तान् ॥२८॥

भोः पश्य पश्य भुवि रोपितमाम्रवीजं
चूतस्य पश्य पुनरङ्कुर एष जातः
पश्यैष सम्प्रति बभूव वितस्तिमात्रो
भूयोऽपि पश्य विटपोऽस्य बभूव शीघ्रम् ॥२९॥

कोटि-कोटि शशधर के समान उज्ज्वल कान्ति विशिष्ट गौरचन्द्र प्रेमविकार से रमणीय मूर्त्ति होकर क्षणकाल निज पादपद्मसेवी भक्तगण के स्कन्ध में आरोहण कर स्वजन वर्ग को हर्षसमुद्र का प्रवाह से उल्लसित करके सम्यक् रूपसे क्रीड़ा करने लगे थे ॥२७॥

नवोदित सहस्र सूर्यतुल्य दीप्तिशाली श्रीगौरहरि अपर एकदिन भूतल में उपविष्ट होकर करतल द्वय के द्वारा ताल प्रदान कर दिक् समूह को प्रतिध्वनि से परिपूर्ण करते हुये भक्तगण को कहे थे ॥२८॥

अहे ! देखो ! देखो ? भूमि में आम्रवीज रोपण कर दिया हूँ, पुनर्बार देखो ! आम्र का अङ्कुर उत्पन्न हुआ है, और भी देखो, अङ्कुर वितस्ति मात्र विस्तृत हुआ है, पुनर्बार देखो, उससे शाखा निर्गत हुई है ॥२९॥

शाखा बभूवुरिह पश्य निमेषमात्रात्
पश्यास्य पल्लवचयः परितो बभूव
पश्यैतदेव परिपक्वमभूदथास्य
पश्याभवद् ग्रहणमप्यतिचित्रमेतत् ॥३०॥

वृक्षश्च सर्व्वविटपश्च फलञ्च सर्व्वं
मायाकृतं सकलमेव कुतोऽपि नास्ति ।
शैलुषचेष्टितमिदं वितथं यदेत
त्तत्प्राप्तवैकृतमनर्थकतां प्रयाति ॥३१॥

एतत्तदप्यमृतमेव यदीश्वरस्य
कौतूहलाय पुरतः कुरुते जनौघः ।
प्राप्नोति सद्वसनमृक्थमति प्रकामं
मायाकृतेन च फलं लभते विचित्रम् ॥३२॥

एवं हि विश्वमखिलं वितथं यदेत—
न्निष्पद्यते सततमीश्वरसेवनाय

देखो निमेष मात्र से शाखा का उद्गम हुआ, देखते-देखते चतुर्दिक पल्लवों से परिपूर्ण हो गये, फल भी परिपक्क हुआ, पुनर्बार इसका सौन्दर्य भी अनुपम हुआ ॥३०॥

वृक्ष, शाखा, फल समस्त ही मायावृत कुहक से सम्पादित हुये हैं, पुनर्बार विलीन हो गये हैं, यह सब मिथ्या है, अर्थात् ऐन्द्रजालिकवत् चेष्टा है, कारण— उक्त समस्त द्रव्य क्षणकाल में विकृत एवं विलीन हो गये हैं ॥३१॥

मानवगण इस प्रकार का अनुष्ठान यदि ईश्वर के सन्तोष निमित्त करे तो वह सफल होता है, अन्यथा केवल माया प्रदर्शन निमित्त होने से विचित्र फ्रल दायक नहीं होता है ॥३२॥

तत् सार्थकं भवति सम्यगसत्यमेतत्
सत्यं भवेदशुचि यत्तदिदं शुचि स्यात् ॥३३॥

तस्माज्जनैः सकलमेव परेश्वरस्य
सेवार्थमप्यनृतमेतदिहावचेयम् ।
संसार एष नहि तस्य भवेद् विरोधि
सेवापरस्तु नहि बाध्यते एव कैश्चित् ॥३४॥

अत्रान्तरे स्वपुरतः स्थितमत्युदारं
प्रोचे महाकरुण एष मुकुन्ददत्तम् ।
ब्रह्मे ति किं नु भवतात्र निरूप्यते त-
दित्थं निगद्य च पपाठ पुनः स्वयं सः ॥३५॥

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥३६॥

इस प्रकार निखिल विनश्वर विश्व का उपयोग यदि ईश्वर सेवा के निमित्त होता है, तब असत्य संसार भी सम्यक् रूप से सार्थक होता है, कारण— ईश्वरार्पित अशुचि पदार्थ भी पवित्र होता है ॥३३॥

अतएव इस जगत् में मनुष्य समस्त सामग्री का संग्रह ईश्वर सेवा हेतु करे तो यह संसार उसका विरोधि नहीं होगा, कारण— सेवारत व्यक्ति का बाधक कोई व्यक्ति नहीं हो सकता है ॥३४॥

इत्यवसर में श्रीमन्महाप्रभु सम्मुखस्थ उदार स्वभाव सम्पन्न मुकुन्द को कहे थे- मुकुन्द ! तुम क्या जगत् में ब्रह्मवाद का निरूपण करते हो ? यह कहकर स्वयं यह पाठ किये थे ॥३५॥

सत्य, अनन्त, आनन्द, चिदात्मा स्वरूप परमात्मा में योगिगण रत होते हैं, तज्जन्य रामपद से परमब्रह्म अभिहितहोते हैं ॥३६॥

भूयोऽपि तं समनुशिष्य जगाद नाथः
किञ्चित् क्रुधाधरदलद्वयकम्पितेन ।
रूपं चतुर्भुजमतीववरं ततोऽन्य-
न्नूनं कियद्द्विभुजमित्ययि किं मतं ते ॥३७॥

यद्यात्मनोहितमवैषि तदा परस्मा-
त्तद्द्वैभुजं वरमिति प्रतिकीर्त्तय त्वम् ।
श्रुत्वैष तन्निगदितं करुणाविलासि
भूमौ निपत्य निजगाद सहर्षशङ्कम् ॥३८॥

स्नातं मया सुरनदीपयसि प्रकामं
श्रीवैष्णवाङ्घ्रिरजसाङ्गमलङ्कृतञ्च
श्रीमन्त्वदीय पदपद्मयुगातपत्रं
मूर्द्ध्नि प्रयेच्छ कुरु दास्यपदेऽभिषेकम् ॥३९॥

पुनर्बार महाप्रभु मुकुन्द को शासन कर क्रोध से अधरोष्ठ कम्पन के द्वारा कहे थे— मुकुन्द ! 'चतुर्भुज रूप श्रेष्ठ है' तदपेक्षा द्विभुज रूप किञ्चित् न्यून है, यह ही क्या तुम्हारा मत है ? ॥३७॥

यदि तुम निज मङ्गल चाहो तो परमपुरुष द्विभुज मूर्त्ति का कीर्त्तन करो, वह ही श्रेष्ठ है, तब मुकुन्द– श्रीमन्महाप्रभु के करुणा विलास पूर्ण वाक्य को सुनकर भूतल में निपतित होकर हर्ष शङ्का से कहे थे ॥३८॥

हे श्रीमन् ! मैंने सुरनदी जल में स्नान किया है, वैष्णव चरणधूलि से मस्तक को भूषित भी किया है, सम्प्रति आपके चरणारविन्द आतपत्र मस्तक में प्रदान कर मुझको स्वीय दास्य दान करें ॥३९॥

एवं निशम्य करुणारसपूर्णचेता–
स्तद् वाक् सुधाप्रमुदितेन ततः परेशः ।
श्रीमत् पदाम्बुजयुगं निजलोकनाथ–
मस्यादधाच्छिरसि पूततमे प्रसन्नः ॥४०॥

रोमाञ्चसञ्चयसमञ्चितदेहयष्टि–
र्निर्यद्विलोचन पयोभ्ररवृन्दधौतः ।
तत्पाद पङ्कजयुगस्य तदैव लब्ध्वा
स्पर्शं बभूव इवातिशयोत्सुकात्मा ॥४१॥

भूयो जगाद करुणैक निधिर्मुरारि
श्रीगौरचन्द्र इदमुद्भट भावरम्यः
आध्यात्मिकं किमु कृतं नु तवास्ति गीतं
सत्यं वदाशु तदिदं यदि वा कृतं भोः ॥४२॥

वाञ्छास्ति चेत्तव तु जीवितमेन किम्वा
प्रेमोदयेषु तदिदञ्चपलं विहाय ।

परम ईश्वर श्रीगौरहरि यह सुनकर करुणापूर्ण वाक्यामृत से आनन्दित हुये थे, अनन्तर प्रसन्न चित्त से निज भक्त नाथरूप स्वीय चरण युगल का स्पर्श मुकुन्द के मस्तक में कराये थे ॥४०॥

स्पर्शलाभ से अनिर्वचनीय उत्सुकात्मा हुये थे, उस समय उनकी अङ्गयष्टि रोमाञ्च कम्पित हुई, एवं नयन युगल विगलित वारिधारा से अङ्ग प्रत्यङ्ग को विधौत करने लगे ॥४१॥

करुणानिधि श्रीगौरहरि उद्भट भाव से रम्यमूर्त्ति होकर पुनर्बार मुरारि को कहे थे, मुरारि ! तुमने क्या आध्यात्मिकता का अनुशीलन किया है ? अथवा प्रवचन किया है ? यदि तुमने किय (किया) हो तो सत्वर सत्य करके कहो ॥४२॥

श्रीमत्कृपारसपरिप्लुतपादपद्म–
माहात्म्यरूपगुणवर्णनमातनुष्व ॥४३॥

श्रुत्वामहाप्रभुवचो मधुरं ततोऽसौ
"नारायणो" ऽत्रददमं प्रति वैद्यमुख्यः ।
कारुण्यमीश्वर विधेहि मुरारिगुप्ते
वक्तुं यथार्हति तवैव चरित्रमेषः ॥४४॥

श्रुत्वाथ तं प्रति तदा परमप्रहृष्ट–
स्तत् प्रार्थना स निजगाद कृपासमुद्रः ।
यद्यद्वदिष्यति तदेव समस्तमेव
शुद्धं भविष्यति भविष्यति शक्तिरुग्रा ॥४५॥

श्रृण्वन्नसौ तदुदितं सुमनाः प्रहृष्टः
प्रोत्फुल्लरोमनिचयो मुमुदे मुरारिः
पीयूषसिन्धुषु निमग्नमिवातिवेल–
मात्मानमुद्भटसुखैकवशो विवेद ॥४६॥ ("सुखैकरसः" पाठ)

अथवा यदि कृष्ण प्रीति प्राप्त कर जीवित रहना तुम्हारा इष्ट हो तो चपलता त्यागकर कृपारस परिप्लुत श्रीमद्भगवत् पादपद्म माहात्म्य एवं रूपगुण का गान करो ॥४३॥

श्रीमन्महाप्रभु के वाक्य को सुनकर वैद्यवर नाराणप्रभु को कहे थे— हे ईश्वर आप मुरारि गुप्त के प्रति उस प्रकार कृपा करें, जिससे गुप्त आपके चरित्र वर्णन में सक्षम हो ॥४०॥

कृपासमुद्र श्रीगौरहरि उनके वाक्य को सुनकर हृष्ट हुये, एवं, तदीय प्रार्थना को अङ्गीकार कर कहे थे- मुरारि जो कुछ कहने की इच्छा करेगा, उस वर्णन शुद्ध एवं वाक्शक्ति समन्वित होगा ॥४५॥

मुरारि श्रीमन्महाप्रभु के वाक्य को श्रवण कर अतिशय हृष्ट

श्रीवास पण्डितमहामतिरत्युदार-
शील: स्वभावहरिभक्तिरतोऽतिधीर: ।
शुद्धः स्वधर्मनिरतो बहुशान्तदान्त-
स्तत् सेवनेन मुमुदे ऽनुदिनं महात्मा ॥४७॥

एवं निरन्तरमुपासनया च नृत्यै:
सङ्कीर्त्तनैरपि तथा विविधैश्च भावै: ।
श्रीवासपण्डितमहाशय एव नित्यं
तत्सङ्गतोऽतिविलसन् मुमुदे महात्मा ॥४८॥

अध्यापयन् द्विजसुतानपरेद्युरीश:
शश्वत् स्वनामगुणकीर्त्तनमाततान
दैवादुवाच पुरतो द्विजसूनुरेको
नाथं न किञ्चदपि जातु विदंस्तदन्ते ॥४९॥

एवं रोमाञ्चित होकर आनन्द समुद्र में निमज्जित हो गये थे ॥४६॥

स्वधर्म निष्ठ, पवित्र चरित्र, शमदमादि गुण सम्पन्न, उदार स्वभाव महामति अति सुधीर श्रीवास पण्डित श्रीमन्महाप्रभु के सेवा कार्य में रत होकर प्रतिदिन अभिनव आनन्दानुभव करते थे ॥४७॥

इस प्रकार निरन्तर उपासन, नृत्य, सङ्कीर्त्तन एवं विविध ऐश्चर्य भाव विलास में महात्मा श्रीवास पण्डित ही श्रीमन्महाप्रभु के सङ्गी होकर आनन्दानुभव करने लगे थे ॥४८॥

एकदिन महाप्रभु ब्राह्मण बालकों को अध्यापन कर रहे थे, एवं निरन्तर निजनाम अर्थात् श्रीहरिनाम गुण कीर्त्तन में रत थे, उस समय एक ब्राह्मण बालक ने सम्मुख में आकर निवेदन किया, नाथ ! मैं आपका प्रवचन कुछ भी नहीं समझता हूँ ॥४९॥

'नाम्नो य एष महिमा खलु सोऽर्थवाद'
इत्थं खलस्य वचनं परिकर्ण्य सर्व्वम् ।
कर्णौ पिधाय सह तेन पुरःसरेण
गङ्गातटं समगमद्घृणया महत्या ॥५०॥

स्नात्वा सचेल उदगात् सह चेलवृन्दैः
शुद्धैः शुचिर्निजगृहं मुदितो जगाम ।
यः कीर्त्तयत्यनुदिनं य इदं शृणोति
स प्रेम्नि नाम्नि नितरां भवति प्रलीनः ॥५१॥

इत्थं स्वनाममहिमा प्रथमं प्रकामं
प्रख्यापितः क्रमतः एव शनैस्तथैव ।
आध्यात्मिकं पदमपासितमात्मपाद-
पद्मोपसेवनरसेन परमेश्वरेण ॥५२॥

" नाम की महिमा अवश्य ही अर्थवाद पूर्ण है अर्थात् प्रशंसा मात्र ही है" खलव्यक्ति का वाक्य को सुनकर श्रीमहाप्रभु अत्यन्त घृणा से तत्काल कर्णद्वय को अङ्गुलीद्वय के द्वारा अवरुद्ध करतः उक्त विप्र बालक को अग्र में करके गङ्गातीर में उपस्थित हुये थे ॥॥५०॥

अनन्तर श्रीमहाप्रभु सवस्त्र गङ्गास्नान कर आर्द्र एवं पवित्र वस्त्र के सहित शुचि हाकर स्वानन्द चित्त से गृह में प्रत्यावर्त्तन किये थे, जा जन इस लीला का कीर्त्तन निरन्तर करता है अथवा श्रवण करता है, वह निश्चय ही प्रेम एवं नामामृत में निमग्न होता है ॥५१॥

परमेश्वर श्रीगौरहरि प्रथमतः निज नाम महिमा का विस्तार अशेष रूप से करने के पश्चात् क्रमशः शनैः-शनैः नाम महिमा का विस्तार करने लगे थे, एवं इस प्रकार आध्यात्मिक पद को श्रीकृष्ण

नाथ: कदाचिदथ तैर्निजपादभक्तैः
श्रीवासपण्डितमुखैः सुखसागरः सः ।
अद्वैतचन्द्रमवलोकितुमस्य गेहे
श्रीमाननङ्ग इव विग्रहवान् प्रतस्थे ॥५३॥

गच्छन् पथि प्रथित नर्त्तन कीर्त्तनाद्यै-
र्गायन्नटन्नपि जगाम तदस्य वेश्म ।
अद्वैतचन्द्र मधिभूमिषु दण्डवत् स
भुयः पपात निजभक्तमहत्त्ववेदी ॥५४॥

आलिङ्गनान्यथ परस्परमुत्सुकाङ्गौ
तौ चक्रतुः परमकारुणिकौ जगत्सु ।
अद्वैत एव किमु किं नु स गौरचन्द्र
इत्यूहितौ जनचयेन बभूवतुश्च ॥५५॥

पादपद्म सेवारस के द्वारा दूरीभूत किये ये ॥५२॥

आनन्दम्बुधि श्रीगौरचन्द्र, निज पादपद्म सेवा परायण श्रीवास प्रभृति परिकर गणों के सहित श्रीअद्वैतचन्द्र के गृह में उपस्थित हुये थे ॥५३॥

श्रीमहाप्रभु का दर्शन प्राप्त कर श्रीअद्वैतप्रभु अवनी में निपतित होकर दण्डवत् प्रणाम किये थे, भक्त सम्मानदाता श्रीगौर-हरि भी दण्डवत् भूतल में पतित होकर प्रणाम किये थे ॥५४॥

परम कारुणिक श्रीगौरहरि एवं श्रीअद्वैतप्रभु परस्पर उत्सुकाङ्ग होकर आलिङ्गनपाश से आबद्ध हुये थे, उस समय तर्क का विषय उपस्थित हुआ था कि— जगन्मण्डल में यह क्या गौरचन्द्र हैं अथवा अद्वैतचन्द्र हैं ? अर्थात् उभय ही भिन्नभाव विहीन हो गये थे ॥५५॥

शुद्धासने समुपविश्य स गौरचन्द्रः
स्वच्छां कथामकथयत् करुणैकराशिः ।
आविष्कृत स्वपदभक्ति विलास लोलो
नानाविधेन निजभक्ति निरूपणेन ॥५६॥

अद्वैत एष निजगाद ततो महात्मा
भक्तिः कलौ न खलु वर्त्तत एव मूढ़ाः ।
ये संवदन्ति कुधियः सकलास्त एते
पश्यन्तु तत्तदशृणोत् स्वयमेव नाथः ॥५७॥

नास्तीति यो वदति तस्य गतिर्हि नास्ति
तस्यै जन्म विफलं खलु सोऽति पापी ।
भक्तिर्हि राजति कलौ सततं तदादि
क्रोधारुणाक्षियुगलो भगवान् जगाद ॥५८॥

श्रीवास एष तदनन्तरमित्थमूचे
दृष्ट्वा ततो द्विजमवैष्णवमेकमुग्रम् ।

अनन्तर करुणामय विग्रह श्रीगौरहरि शुद्धासन में उपविष्ट होकर आविष्कृत निज पादपद्म भक्ति विलास से चञ्चल होकर विविध स्वीय भक्ति निरूपण के द्वारा पवित्र कथा कहने लगे थे ॥५६॥

पश्चात् महात्मा अद्वैतचन्द्र कहे थे— जो सब कुबुद्धि परायण व्यक्तिगण कहते रहते हैं कि— कलियुग में भक्तियोग है ही नहीं, वे सब अवलोकन करें, उक्त कथन को स्वयं महाप्रभु सुनकर क्रोध से अरुण लोचन होकर कहे थे— जो कहता है कलि में भक्तियोग नहीं है, उसका निस्तार नहीं है, उसका जन्म विफल है, निश्चय ही वह अत्यन्त पापी है, कारण— कलि में निरन्तर भक्तियोग विराजित है ॥५७-५८॥

विघ्नो बभूव नितरामयमत्र नूनं
सङ्कीर्त्तने कथमितो वहिरेष याति ॥५९॥
त्वच्चिन्तयालमत्र नचैष विप्र-
आयास्यतीत्यवितथं निजगाद नाथः।
नैवागम सच तदीय मनोनिदेशै-
रत्रान्तरे मुदमियाय स भूमिदेवः ॥६०॥
श्रीवासविप्रतिलकांसतटे स दक्षं
विन्यस्य बाहुमितरञ्च गदाधरांसे।
श्रीरामपण्डितवराङ्गतटे पदाब्जं
दत्वा रराज स सुधांशुसमूहकान्तः ॥६१॥
क्रीड़ापरोऽस्य निलये स महेश्वरस्य
राजीवलोचनयुगः कलधौतगौरः :

एकदिन श्रीवास उग्र स्वभाव अवैष्णव ब्राह्मण को देखकर कहे थे, अद्य श्रीहरि सङ्कीर्त्तन में महाविघ्न उपस्थित हुआ, यहाँ से कैसे यह अब्राह्मण निष्क्रान्त होगा ? ॥५९॥

सुनकर श्रीनवद्वीप नाथ ने कहा, 'मैं सत्य पूर्वक कहता हूँ, चिन्ता की कथा नहीं है, यह ब्राह्मण नहीं आयेगा, तब ब्राह्मण श्रीमन्महाप्रभु की मानसिकी आज्ञा से वहाँ पर नहीं आये थे, उससे भूदेव कुल तिलक श्रीवास अतिशय आनन्दित हुये थे ॥६०॥

अनन्तर श्रीवास के स्कन्ध में दक्षिण बाहु एवं श्रीगदाधर के स्कन्ध में बाम बाहु विन्यास पूर्वक एवं श्रीराम पण्डित के मस्तक में श्रीचरण अर्पण कर सुधांशु सदृश उज्ज्वल मूर्त्ति मनोज्ञ गौरचन्द्र अतिशय शोभित हुये थे ॥६१॥

राजीवलोचन, कलधौतगौर, स्मेरानन, कन्दर्प दर्पहारी

स्मेराननः सपदि दर्पकदर्पहारी
रेजे निजैर्जनचयै रचयन् विहारम् ॥६२॥

अध्यात्मतत्त्वमभि गौरमहाप्रभुः स
व्याख्यां चकार बहुदुर्गमबोधमन्यैः ।
एकोऽवशिष्यत इहाविरतं स आत्मा
सृष्टौ स एव पुनरेकक एव भाति ॥६३॥

इत्थं प्रसार्य्य स्वकरौ करुणासमुद्रो
मुष्टीचकार च पुनर्द्रुतमेव नृत्यन् ।
सच्चित्स्वरूपमथ तत्त्वनिरूपणं त
द्भूयो जगाद जयदेकगतिः प्रकामम् ॥६४॥

भावोऽपि निश्चितमनर्थक एव तस्य
सद्रूपमेव सुधियामवधारणीयम् ।

श्रीगौरहरि उस समय भक्तगण के सहित श्रीअद्वैत के भवन में विराजमान हुये ॥६२॥

अनन्तर श्रीमन्महाप्रभु अतिशय दुर्बोध्य अध्यात्मतत्त्व की व्याख्या अनेक प्रकार से करने लगे थे, इस जगत् में एक आत्मा ही प्रत्येक समय में स्वयं अवशिष्ट रहेंगे, एवं सृष्टि के समय भी वह एक आत्मा विभिन्न प्रकार से प्रकाशित होते हैं ॥६३॥

जगत् के एकमात्र गति करुणासिन्धु श्रीगौरहरि नृत्य करते करते सत्वर कर युगल को प्रसारित कर पुनर्बार मुष्टि बन्धन किये थे, एवं यथेष्ट रूप से नित्य चित् स्वरूप तत्त्व का निरूपण करते हुये कहे थे ॥६४॥

भाव पदार्थ अर्थात् उत्पत्तिशील पदार्थ निश्चय ही पर ब्रह्म का अनर्थ स्वरूप है, वह अद्वैत विधायक है, किन्तु ज्ञानीगण उक्त

यद्ब्रह्मणो भवति नैव कदापि मुक्ति–
रेकत्वमेतदवबोधमृते हि सा स्यात् ।।६५।।

पश्याङ्गुली करगते पुनरेककस्य
सैकोऽमृतेन निचितां परिलोचिताश्च ।
अन्यां व्रणेन गलतातितरामवद्यां
नो पश्यति क्षणमपि प्रकटं घृणार्त्तः ।।६६।।

इत्थं स एक इह शेषपदं ह्यनादि–
रात्मा सदैव परिशिष्यत एवमेषः ।
सोपाधिरेव भवती प्रकटादुपाधे
र्मुक्तोऽन्यथा स खलु कश्चिदपीह जीवः ।।६७।।

इत्थं प्रभु र्बहु निरूप्य निसर्गदुर्गं
ज्ञानं तथा लघुतया स्वजनान् विबोध्य ।

भाव पदार्थ को ब्रह्मरूप मानते हैं, अर्थात् सब कुछ ब्रह्ममय देखते हैं, कारण– ब्रह्म का एकत्व ज्ञान व्यतीत कभी भी मुक्ति नहीं होती है ।।६५।।

और भी देखो ! एक व्यक्ति के हस्त में अङ्गुलीद्वय हैं, एक अमृत सिक्त है, अपर गलित कुष्ठ परिव्याप्त है, किन्तु अङ्गी व्यक्ति पूर्वोक्त अङ्गुली के प्रति उत्तम ज्ञान करता है, प्रीति पूर्वक दर्शन करता है अपर अङ्गुली के प्रति घृणा से भी नहीं देखता है ।।६६।।

इस प्रकार संसार में एक आत्मा ही शेषपद वाच्य है, अर्थात् एक आत्मा है, नित्य अवशिष्ट है, सोपाधि ब्रह्म ही उपाधि निर्मुक्त होकर निरुपाधि होते हैं, अर्थात् निर्गुण कहलाते हैं, अन्यथा उक्त सोपाधि विशिष्ट ब्रह्म को इस जगत् में जीव भी कहा जायेगा ।।६७।।

विश्रम्य तत्र गलदश्रुभरप्लुताक्षो
रोमाञ्चसञ्चययुतो मधुरं जगाद ॥६८॥

स्निह्यन्मनाः पुलकितो विरुदन् हसंश्च
प्रेमासवेन जड़वद्गतदेहधर्मा ।
गायन्नटन्नपि समस्तमिदं त्रिलोकं
मद्भक्त एव परिपाति पुनाति नित्यम् ॥६९॥

"वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥"

इत्युक्तवान्निजजनैः करुणैकसिन्धुः
स्मेराननः प्रमुदितो मधुरं ननर्त्त ।

इस रीति से दुर्बोध्य ज्ञानमार्ग का निरूपण अतिसरल रूप से करके स्वजनगण को ब्रह्म तत्त्व का परिज्ञान कराये थे, अनन्तर विगलित अश्रुधारा से परिपूरित नेत्र एवंरोमाञ्चित कलेवर होकर मधुर स्वर से कहने लगे थे ॥६८॥

श्रीमहाप्रभु उस समय स्निग्ध चित्त एवं पुलकित होकर हास्य रोदन प्रेमावेश से जड़वत् देहधर्म विस्मृत होकर गान एवं नृत्य करते करते कहे थे, मेराभक्त ही समस्त त्रिलोक को नित्य पालन एवं पवित्र करते रहते हैं, ॥६९॥

"मेरा चरित्र श्रवण कर जिसका वाक्य गद्गद एवं चित्त द्रवीभूत होता है, कभी रोदन, कभी हास्य, कभी लज्जाशून्य होकर जो गान नृत्य करता है, इस प्रकार भक्ति युक्त मेरा भक्त भुवन को पवित्र करता है"

नृत्योद्यतः स्वयमसौ जगतीतले यत्
प्रेमप्रकाशयति तत्करुणैव सैषा ॥७०॥

तत्रापरेद्यु रमलद्युमणिप्रकाशो-
ऽद्वैतः समेत्य करुणानिधिदर्शनाय।
स्नात्वार्च्चनञ्च विरचय्य समेति यावत्
श्रीवास गेहमगमत् प्रभुरेष तावत् ॥७१॥

गत्वाथ तत्र स मनाग्धसितं विधाय
दण्डे प्रसूनमुपयोज्य च हुङ्कृतेन।
एतद्गदार्च्चनमहो कृतमस्ति दुष्ट-
शान्त्यर्थमित्थमवदत् कमलायताक्षः॥७२॥

एकोऽस्ति दुष्टतम एव मदीयभक्त-
द्वेषी गलद्व्रणतनुर्बहुकुष्ठरोगैः।

उक्त श्रीमद्भागवत के श्लोक को पढ़कर करुणासिन्धु श्रीगौरहरि स्मित वदन से नृत्य करने लगे थे. नृत्योद्यत श्रीगौरहरि अवनी मण्डल में श्रीकृष्ण प्रीति को प्रकटित किये थे, वह उनकी परम करुणा है ॥७०॥

अपर दिन निर्मल भास्कर सदृश श्रीअद्वैतप्रभु करुणानिधि श्रीगौरहरि के दर्शन निमित्त स्नान पूजादि कृत्य समापन के अनन्तर आने के निमित्त उद्योगी थे, इस समय श्रीमन्महाप्रभु भक्तवृन्द के सहित श्रीवास भवन में उपस्थित हो गये ॥७१॥

अनन्तर कमलायतलोचन महाप्रभु वहाँ आगमन पूर्वक स्मित हास्य से दण्ड को पुष्पित कर कहे थे, मैंने दुष्ट जनगण को दण्डित करने के निमित दण्ड की पूजा की है ॥७२॥

भूयोऽपि तं परमनारकिनं विधास्ये
तच्छिष्यकानपि तथा श्वश्रृगालभक्ष्यान् ॥७३॥

इच्छामि गन्तुमटवीमित एव सा भू-
र्व्याघ्रस्य केऽपि सदृशा हरयस्तथान्ये।
केचित्तथा तृणनिभास्तरवश्च केचि-
त्तेनेदमेव सुमहद्विपिनं सुदुर्गम् ॥७४॥

अद्वैत आगत इति श्रुतमस्ति किं त-
न्नायात्यसौ चिरमतो ननु तत्र यामि।
इत्थं विचिन्तयत एव पुरोऽस्य भूमौ
सोऽयं निपत्य सभयं प्रणनाम भूयः ॥७५॥

मेरा भक्त विद्वेषी एक अतिशय दुष्ट व्यक्ति है, विविध कुष्ठ जनित व्रण से अङ्ग उसका विगलित है, किन्तु मैं पुनर्बार उसे एवं उसके अनुयायी जनगण को कुक्कुर एवं श्रृगाल का भक्ष्य बनाऊँगा ॥७३॥

अनन्तर कहे थे— मैं यहाँ से वन गमन करना चाहता हूँ, सम्प्रति यह स्थान ही व्याघ्र, वानर, तृणतरु समाकीर्ण होने से सुमहत् दुर्गम वन सदृश हुआ है, अर्थात् यहाँ के जनगण हिंस्र चञ्चल क्रूर होने से जनालय ही दुर्गम वन हो गया है ॥७४॥

श्रीअद्वैत का आगमन क्या हुआ है ? विलम्ब हुआ है, अतः सम्भव है, आप नहीं आए हैं, तबमैं ही वहाँ जा रहा हूँ, महाप्रभु इस प्रकार सोच ही रहे थे, इस समय श्री अद्वैतप्रभु का आगमन हुआ, एवं आप श्रीगौरहरि के अग्रदेश में पतित हाकर सभय से प्रणत्त हो गये ॥७५॥

उत्थाप्य शीघ्रमथ तन्तु करे गृहीत्वा
प्राह त्वदर्थमिह नूनमुपागतोऽस्मि ।
इत्यूचिवान् सह स तेन सदा कृपालुः
खट्वामधिष्ठित इतः प्रकटं रराज ॥७६॥

तस्याज्ञयाथ स ननर्त्त भृशं महात्मा–
द्वैतः सुखातिशयविह्वलचित्तवृत्तिः ।
तत्तद्विलोक्य मुदितो निजगाद नाथ-
स्तं तन्मनः सरसयन् रससिन्धुचन्द्रः ॥७७॥

संप्रार्थ्यते सततमेभिरये महात्मन् !
प्रेमा तथा तव कृते खलु दास्यते सः ।
सोऽप्यब्रवीत्तव पदाम्बुजयुग्मभक्ता
एते भवन्ति खलु पात्रममुष्य सत्यम् ॥७८॥

ज्योत्स्नावतीषु रजनीषु तथोपविष्ट
स्तैः सार्द्धमुद्यदखरद्युतिदीप्यमानः ।

तब श्रीगौरचन्द्र अद्वैत को उठाकर तदीय कर धारण पूर्वक कहे थे, "मैं आपके निमित्त यहाँ पर आया हूँ" यह कहकर परम कृपालु श्रीगौरहरि अद्वैत के सहित खट्टा में विराजित हो गये ॥७६॥

अनन्तर श्रीमन्महाप्रभु की आज्ञा से श्रीअद्वैतप्रभु सुखातिशय से विह्वल होकर अत्यन्त नृत्य करने लगे थे, तद्दर्शन से रसाम्बुधि चन्द्र श्रीगौराङ्गदेव हृष्ट होकर अद्वैत को आनन्दित किये थे ॥७७॥

महात्मन् अद्वैत ! सब लोक प्रेम प्रार्थना कर रहे हैं, किन्तु वह प्रेमदान आपके निमित्त ही प्रदान कर रहा हुँ, अनन्तर श्रीअद्वैत ने भी कहा— यह सब लोक आपके चरण युगल के भक्त हैं, सुतरां यह सब प्रेमलाभ के अधिकारी हैं ॥७८॥

अद्वैतमेव निजगाद भवान् हि भक्तः
क्षौण्यां त्वदर्थमिह नूनमुपागतोऽस्मि ॥७९॥

तच्छृण्वताथ जगदे मधुरैर्वचोभि-
र्भीत्या च भूरिकरुणो जगतीपतिः सः ।
श्रीवासभूसुरवरेण भवत्कृपैषा
भक्तः क एष यदिदं स्वयमीश ऊचे ॥८०॥

रोषेण कम्पदशनच्छदनद्वयस्तं
श्रीवासपण्डितमुवाच दृढ़ैर्वचोभिः ।
भक्तः किमुद्धव इहैनमृते मदीयः
किम्वा शुकस्तव यदेवमभून्मनीषा ॥८१॥

अस्यां हि भारतभुवि प्रकटं किमन्यो-
ऽद्वैतं विनास्ति सकलामरसङ्घवन्द्यम् ।

अनन्तर चन्द्रतुल्य दीप्तिशाली श्रीगौरचन्द्र ज्योत्स्नावती रजनी में भक्तगण के सहित उपवेशन कर श्रीअद्वैत को कहे थे— आप ही भक्त हैं, निश्चय ही आपके निमित्त ही मेरा आगमन धरातल में हुआ है ॥७९॥

कथा श्रवणानन्तर द्विजवर श्रीवास करुणानिधि जगत्पति स्वयं ईश्वर श्रीगौरहरि को भीत होकर मधुर वाक्य कहे थे— "हे प्रभो ! भक्त कौन है ? यह तो आपका अनुग्रह मात्र ही है" ॥८०॥

सुनकर श्रीगौरहरि के अधरोष्ठ कम्पित होने लगे थे, क्रुद्ध होकर आप श्रीवास पण्डित को सुदृढ़ वाक्य से कहे थे— "यह अद्वैत व्यतीत उद्धव अथवा शुकदेव ही मेरा भक्त है, यह क्या तुम जानते हो ?" ॥८१॥

'इस भारत भूमि में देववृन्द बन्दनीय अद्वैत व्यतीत और

मत्तुल्य एव तदयं ह्यवधारणीयो
नैवास्य कोऽपि भुवने सदृशोऽस्ति जातु ॥८२॥
तूष्णीं बभूव तदयं वचनं निशम्य
तत्तत्तदा पुनरुवाच तथा कृपालुः ।
अध्यात्ममत्र न कदापि भवद्विधेन
जिह्वाग्रतोऽपि करणीयमिदं क्षणञ्च ॥८३॥
यद्युच्यते क्षणमपि प्रकटं कदापि
नो दास्यते परमदुर्लभभक्तियोगः ।
इत्युक्तवत्यथविभौ मम विस्मृतिः स्या
त्तस्मिन् तथा कुरु तथेत्यवदन्महान्तः ॥८४॥
ऊचे मुरारिरिदमीश्वर वेद्मि नैवा-
ध्यात्मं कदापि भगवन् करुणां विधेहि ।
जानासि तच्छ्रुतमिहास्ति मया पुरस्ता—
दित्येव तत् पथि जगाद महप्रभुः सः ॥८५॥

प्रकट कौन व्यक्ति हैं ? अद्वैत को मत्सदृश जानना । इस जगत् में इनको छोड़कर अपर कोई नहीं हैं, यह सत्यरूप से जानना" ॥८२॥

श्रीवास उस प्रकार सुनने के बाद मौनधारण करने पर श्रीभगवान् गौरहरि पुनर्बार कहे थे— हे श्रीवास ! तुम्हारे समान व्यक्ति जैसे क्षणकाल के निमित्त भी जिह्वाग्र से अध्यात्म वाक्य का उच्चारण न करे ॥८३॥

यदि अध्यात्म तत्त्व का उच्चारण करोगे तो मैं क्षणकाल के निमित्त भी दुर्लभ श्रीकृष्ण प्रीति प्रदान नहीं करूँगा ॥८४॥

अनन्तर मुरारि गुप्त ने कहा— हे ईश्वर ! हे भगवन् ! मैं कभी अध्यात्मतत्त्व नहीं जानता हूँ, मेरे प्रति कृपा करें, अनन्तर

इत्थं निदाघसमयः स तदीयनृत्य
गीतामृतेन सततं सकले नृलोके ।
शैत्यं स्वभावमवलम्ब्य चकार भूयः
स्निग्धं विचित्रमिदमत्र मनस्तड़ागम् ॥८६॥

सूक्ष्मेणशुभ्रवसनेन सुखावहेन
कृत्वा शिरस्यनुपमां मधुरां विभूषाम् ।
उद्यत्सुविद्रुममनोहरहारकण्ठो
नृत्योद्यमे विजयते कनकाद्रिगौरः ॥८७॥

उद्दामदोर्द्वयविलासविशेषभाजा-
केयूरकङ्कण लसद्वलयादिना च ।
हैमाङ्गुलीयविलसद्‌विरलाङ्गुलीको
नृत्योद्यमे जयति मन्मथमन्मथोऽसौ ॥८८॥

महाप्रभु बोले थे-तुम जानते हो, मैंने पहले से ही सुन रखा है ॥८५॥

इस प्रकार ग्रीष्म काल में निरन्तर श्रीकृष्ण कीर्तनामृत के द्वारा सर्वत्र शीतलता व्याप्त किये थे, एवं सब के मनोरूप तड़ाग को आश्चर्य रस से परिपूर्ण किये थे ॥८६॥

अनन्तर कनकाचल सदृश श्रीगौरहरि सुखावह शुभ्र एवं सूक्ष्मवसन से विभूषित होकर मनोरम प्रवाल के निर्मल हार धारण कर श्रीकृष्ण कीर्त्तन उद्यम में विराजित हुये थे ॥८७॥

सुवर्ण अङ्गुरीयक से जिनके अङ्गुली समूह शोभित हैं, उन कन्दर्प विमोहनकारी गौरचन्द्र स्वीय बाहु युगल को केयूर, कङ्कण, अङ्ग वलय प्रभृति विभूषण के द्वारा भूषित कर श्रीकृष्ण कीर्त्तन नर्त्तनोद्यम में जय युक्त हो रहे थे ॥८८॥

प्रत्यग्रफुल्लसरसीरुहरम्यपाणिः
कान्तिच्छटास्रवणदीपितदिक्समूहः ।
वक्षःस्थलद्युतिविनिर्ज्जितमेरुश्रृङ्गो
नृत्यत्यसाववितरं मधुराधरौष्ठः ॥८६॥

चञ्चन्मनोरमधटीपरिधानरम्य-
स्तत्तद्वहिर्विलसता रसनेन कम्रः ।
उद्दामनर्त्तकघट्टामुकुटार्घरत्नं
लास्ये विलासरसिको मधुरं चकास्ति ॥६०॥

श्रीमन्नितम्व परिविम्व विलम्विराज
दुद्दामसारसनविभ्रमचित्तहारी ।
ऊरुद्वयोरु परिणाहमिषेणचारु-
सद्वृत्तरामकदलीद्वयमेव विभ्रत् ॥६१॥

अभिनव प्रफुल्ल कमल के सदृश जिनके करकमल रमणीय है, जिनका अङ्गलावण्य इतस्ततः विच्छुरित होकर चतुर्दिक उद्दीपित हो रहे थे, जिनके वक्षःस्थल की कान्ति सुवर्णाचल सुमेरु श्रृङ्ग को निर्जित करती रहती है, एवं जिनके अधरोष्ठ सुमधुर हैं, उन श्रीमन्महाप्रभु अविरत सङ्कीर्त्तन नृत्य में जययुक्त हो रहे हैं ॥८६॥

अपिच— जिन्होंने मनोरम वसन परिधान किया है, उक्त रमणीय परिधेय के वहिर्देश सुन्दर क्षुद्र घण्टिका के द्वारा सुशोभित है, एवं जो उद्दाम नर्त्तक वृन्द का शिरोरत्न स्वरूप हैं, उन परम करुण श्रीगौरचन्द्र अतिशय माधुर्य्य मण्डित हुये हैं, ॥६०॥

शोभन श्रीनितम्ब के उपरि भाग में लम्बमान मनोहर कटि-बन्धन सूत्र के विलास से जो सर्वजन चित्तहारी हुए हैं, एवं जो ऊरुयुगल की विशालता के छल से सुचारु एवं वर्त्तुलता से मानों रामरम्भा वृक्ष को धारण किए हैं ॥६१॥

श्रीमत्पदाम्बुजयुगं वरहंसकाद्यै-
रुद्यन्नखेन्दुमणिदीधितिभिः प्रफुल्लम् ।
विभ्रद्विलास परमङ्कतलञ्च रम्यं
नृत्योत्सवे विजयते द्रुतहेमगौरः ॥९२॥

उद्यत्प्रवालरुचिरञ्जितपादमूलो
विन्यासचारुमधुरं विहरन् पृथिव्याम् ।
नृत्योद्यमे मधुरकोमलकान्तकान्तिः
श्रीमाननङ्ग इव विग्रहवांश्चकाशे ॥९३॥

उद्यन्मृदङ्गकरतालकमन्दिराद्यै-
रुच्चैश्चरत् स्वरपुरःसररम्यगीतैः ।
विप्राङ्गनागण मुखाम्बुरुहोद्गतेन
प्रोच्चै रुलूलूनिनदेन महान्महोऽभूत् ॥९४॥

जिनके उत्कृष्ट नूपुरादि से एवं उदयशील नखरूप चन्द्रकान्त-मणि से समुत्थित किरणमाला के द्वारा शोभमान पादपद्म युगल प्रफुल्ल हैं, जिनके क्रोड़देश परम विलास से मनोहर हुआ है, उन गलित काञ्चन द्युति श्रीगौरचन्द्र नृत्योत्सव में जययुक्त हुए हैं ॥९२॥

जिनके चरण युगल प्रवाल कान्ति मण्डित हैं, उन सुमधुर कोमल कान्ति युक्त श्रीमान् गौरहरि पृथिवी में मनोहर मधुर पद विन्यास के द्वारा विहरण करते करते नृत्योत्सव में शरीरी कन्दर्प राज के समान प्रकाशित हुये हैं ॥९३॥

वादित मृदङ्ग, करताल, एवं मन्दिरा की ध्वनि से समधिक रूप से स्वर उन्नत होने से रमणीय गान एवं विप्राङ्गनागण के मुखपद्म से विनिःसृत उलुलु ध्वनि से उक्त नृत्योत्सव सुमहान् हो उठा ॥९५॥

पुंस्कोकिलस्वरमनोहरकण्ठनादाः
सन्मन्दिरायुगविभूषितपाणिपद्माः ।
उच्चैर्जगुः सपदि नृत्यमवेक्ष्य तस्य
हृष्टाः प्रमोदमधुरं पुलकाकुलाङ्गाः ॥९५॥

रोमाञ्चसञ्चिततनु र्गलदश्रुधारा-
धौतः श्रमाम्बुलहरीपरिमिश्रिताङ्गः ।
भावैरथाष्टभिरशेषरसेन नाथः
प्रोद्दाम नर्त्तन घटा मुकुटार्घ रत्नम् ॥९६॥

उद्दामनिश्वसितमारुतवेपमान-
रक्ताधरद्वितयपल्लवकान्तिकम्रः ।
दन्तांशुधौतदशनच्छदभिन्नकान्ति
कान्तो रराज नटनेन विलासभाजा (युग्मकम्) ॥९७॥

उस समय विप्राङ्गनागण श्रीमन्महाप्रभु के नृत्य दर्शन कर अतिशय हृष्ट एवं अतीव पुलकाञ्चित होकर हस्त में उत्तम मन्दिरा ग्रहण पूर्वक कोकिलतुल्य सुश्राव्य उच्चैःस्वर से सुमधुर कीर्त्तन करने लगे थे ॥९५॥

उस समय जिनका श्रीअङ्ग रोमाञ्चित, गलदश्रु धारा से विधौत, श्रमजन्य वहमान धर्मवारि से सर्वाङ्ग परिव्याप्त एवं अष्ट-सात्त्विक भाव एवं अशेष प्रेमानन्द से प्रोद्दाम नर्त्तक समूह के वरणीय रत्न स्वरूप हैं, तथा जो सुदीर्घ निःश्वास वायु द्वारा कम्पित अधर पल्लवद्वय की मनोहर कान्ति से कमनीय है, एवं जिनके दशन किरण से ओष्ठ का कान्तिभेद हो रहा है, उन कमनीय मूर्त्ति श्रीगौर-चन्द्र विलासशाली नृत्य के द्वारा शोभित हो रहे हैं ॥९६-९७॥

इत्थं विधाय नटनं नवकम्बलेन
रम्ये वरासनतले पटुविभ्रमाढ्यः ।
तत्रोपविश्य विशदे मधुरं जगाद
श्रीवासपण्डितमतीव सुभागधेयम् ॥९८॥

श्रीविष्णुर्भक्तिरियमेव भवानमुष्या
वासः स्थितिस्त्वयि विराजति विष्णुभक्तिः ।
श्रीवास इत्यधिकृतो मधुरेण नाम्ना
पश्चान्मुरारिमवदत् कवितां पठेति ॥९९॥

सोऽयं पपाठ कवितां स्वकृतामनेकां
श्रीराघवेन्द्रगुणरूपविलासगाथाम् ।
इत्थं निशम्य रघुनन्दनराजसिंह–
श्लोकाष्टकं पदमधात्तदमुष्य मूर्द्ध्नि ॥१००॥

अतिशय विलासशाली श्रीगौराङ्गदेव इस प्रकार नृत्य विधान पूर्वक नूतन कम्वल के उत्तम आसन में उपवेशन करके अतिशय भाग्य सम्पन्न श्रीवास पण्डित को कहे थे ॥९८॥

श्रीवास ! देखो, श्री शब्द से विष्णुभक्ति का बोध होता है, उक्त विष्णुभक्ति का निवास स्थल तुम ही हो, अतएव तुम श्रीवास हो, "श्रीवास" नामक मधुर नाम का आश्रय तुम ही हो, यह कहकर पश्चात् मुरारि गुप्त को कहे थे– कविता पाठ करो ॥९९॥

अनन्तर मुरारि ने श्रीरामचन्द्र के गुण, रूप विलास वर्णन समन्वित अनेक निजकृत पद्य का पाठ किया, श्रीमान् गौरचन्द्र राजीव लोचन राजसिंह श्रीरामचन्द्र श्लोकाष्टक श्रवण कर मुरारि गुप्त के मस्तक में स्वचरण पद्म समर्पण किये थे ॥१००॥

त्वं 'रामदास' इति भो भव मत्प्रसादा-
द्भाले लिलेख चतुरक्षरमेतदेव ।
पश्चात् पपाठ मधुरं मधुराकृतिः स
श्लोकं महाप्रभुरतीव कृपासमुद्रः ॥१०१

'न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥"

इत्थं पपाठ मधुरं तत आगतांस्ता-
नूचे द्विजान् द्विजमयूखसमाप्लुतोष्ठः ।
श्रीवास एव वदतीह यदा यथा वै
कर्त्तव्यमेतदधुना नियतं भवद्भिः ॥१०२॥

उसके बाद कहे थे— मुरारि गुप्त ! मेरा अनुग्रह से तुम श्रीरामचन्द्र का दास बनोंगे, यह कहकर मुरारि के ललाट देश में "रामदास" अक्षर चतुष्टय अङ्कित किये थे, पश्चात् अतीव कृपा समुद्र मधुराकृति श्रीगौरहरि सुमधुर स्वर से श्रीमद्भागवतीय एकादश स्कन्धस्थ चतुर्दश अध्याय के एकोनविंश श्लोक पाठ किये थे, "न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ! न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्ज्जिता"

हे उद्धव ! योगशास्त्र अथवा सांख्ययोग, स्व स्व वेदशाखा का अध्ययन, तपस्या अथवा दान के द्वारा मेरी प्राप्ति तद्रूप नहीं होती है, यद्रूप मद्विषयक दृढ़ भक्ति से होती है ।

इस प्रकार सुमधुर स्वर से श्लोक पाठ के अनन्तर समागत ब्राह्मणवृन्द को सहास्य वदन से कहे थे— श्रीवास, आप सब को जब जिस प्रकार कहेंगे, आप हम को उसका पालन करना कर्त्तव्य होगा ॥१०१-१०२॥

श्रीरामपण्डितमथाह सदैव कार्य्यं
ज्येष्ठस्य सेवनमिदं हि ममैव सेवा ।
एतेन ते सकलमेव शिवाय भूया-
दित्थं वदन् स रुरुचे रुचिराननेन्दुः ॥१०३॥

श्रीवासपण्डितसमर्पितदुग्धपूग-
माल्यानि तत्र स निषेव्य ततोऽवशेषम् ।
तेभ्यः प्रसादसुमुखो निजपादपद्म-
भक्तेभ्य एव भगवान् प्रददौ कृपाब्धिः ॥१०४॥

इत्थं निनाय सकलां स निशां निशेश-
कोटिप्रकाशमधुराननचन्द्रबिम्बः ।
उद्याति तिग्मकिरणेऽथ महाप्रभुं तम्
संनम्य वेश्मनि यथातथमीयुरेते ॥१०५॥

अनन्तर श्रीराम पण्डित को कहे थे— सर्वदा ज्येष्ठ भ्राता की परिचर्या में रत रहना एवं निश्चित जानना, यह सेवा मेरी सेवा है, इससे तुम्हारा मङ्गल होगा, यह कहकर रुचिरानन श्रीमन्महाप्रभु अतिशय शोभित हुये थे ॥१०३॥

अनन्तर श्रीवास पण्डित द्वारा समर्पित दुग्ध, गुवाक्, माल्य प्रभृति ग्रहण पूर्वक कृपाब्धि श्रीगौरहरि प्रसन्न वदन से निज भक्तवृन्द समुदय की वस्तु प्रदान किये थे ॥१०४॥

कोटि-कोटि शशधर के समान सुप्रकाश मधुरानन श्रीगौरहरि उक्त रीति से रात्रि अतिवाहित किये थे, अनन्तर रात्रि अतीत होने पर सूर्योदय हुआ, उस समय भक्तगण श्रीमन्महाप्रभु को प्रणाम कर निज-निज भवन को चले गये ॥१०५॥

भूयश्च देवतटिनीप्लवनेन मुग्धाः
संपूज्य देवसदनाच्च यथायथं ते ।
आजग्मुरस्य पदपङ्कजदर्शनार्थं
तन्मात्रजीवनमहौषधयो महान्तः ॥१०६॥

दृष्ट्वा महाप्रभुरथैष समागतांस्ता–
नूचे पयोधरगभीररवः सुधीरम् ।
अत्रागतोऽस्ति मतिमानवधूत नित्या–
नन्दः श्रुतं कथममुष्य विलोकनं स्यात् ॥१०७॥

हे रामपण्डित मुकुन्द मुरारिगुप्त
नारायण द्रुतमितस्त्वरितं प्रयात ।
अत्रास्ति स प्रचुरभाग्यभरो महात्मा
गत्वा समानयत तं महितानुभावम् ॥१०८॥

जिनके महौषधि श्रीगौरहरि हैं, उन महानुभावगण सुरतरङ्गिणी गङ्गा में अवगाहन से मनोहर कान्ति सम्पन्न होकर भी देवार्चन कर देव भवन से क्रमशः श्रीमन्महाप्रभु के श्रीचरण सन्दर्शनार्थं पुनर्बार आगमन किये थे ॥१०६॥

समागत भक्तवृन्द को अवलोकन कर मेघमन्द्र रवशाली गौरहरि सुधीर वाक्य से कहे थे—"मतिमान् अवधूत नित्यानन्द यहाँ आगमन किये हैं, आप सब क्या सुने हैं ? कह सकते हैं ? कैसे साक्षात्कार होगा ? ॥१०७॥

अनन्तर कहे थे–"हे श्रीराम पण्डित ! हे मुकुन्द ! हे मुरारि ! हे नारायण ! तुम सब सत्वर यहाँ से प्रस्थान करो, एवं उन महानुभाव श्रीनित्यानन्द को यहाँ पर उपस्थित करो, प्रचुर भाग्य शाली महात्मा यहाँ पर किसी स्थान में अवस्थित हैं" ॥१०८॥

आज्ञापिता इति महाप्रभुना ततस्ते
गत्वा भृशं पथि विचार्य्य न तं विलोक्य ।
भूयः समेत्य च विलोकित एष नैव
कुत्रापि किं वत विधेयमितीदमूचुः ॥१०९॥

भूयस्तथाह भगवानधुना न दृश्यः
सोऽयं भवद्भिरिह सायमवेक्षितव्यः ।
स्वान् स्वान् गृहान् सपदि गच्छत तत्तदानी-
मत्रागमिष्यथ तथेति ययुर्गृहं ते ॥११०॥

सायं ततः पथि चलन् सह तै कृपालु
र्वैद्यं मुरारिमवलोक्य जगाद धीरम् ।
आचार्य्यनन्दनगृहेऽस्ति हि सोऽबधूत-
स्तत्र प्रयाहि चपलं तमिहानयेति ॥१११॥

श्रीमहाप्रभु के द्वारा आदिष्ट होकर भक्तवृन्द श्रीनित्यानन्द के अनुसन्धानार्थ गमन किये थे, किन्तु अनुसन्धान से फल नहीं हुआ, नित्यानन्द का दर्शन लाभ न कर भक्तवृन्द पुनर्बार श्रीमन्महाप्रभु के निकट प्रत्यावर्त्तन कर निवेदन किये थे. हम सब ने नित्यानन्द का दर्शन नहीं कर पाया, अधुना क्या करना है ? ॥१०९॥

भगवान् श्रीगौरहरि ने कहा—"सम्प्रति निज-निज भवन में जाकर निज कृत्य सम्पन्न करें" श्रीमन्महाप्रभु के वाक्य को सुनकर सब निज भवन में चले गये थे ॥११०॥

तदनन्तर कृपालु गौरहरि सायंकाल में भक्तगण के सहित भ्रमण करते करते वैद्य मुरारि को देखकर धीरे-धीरे कहे थे-आचार्य नन्दन के गृह में नित्यानन्द अवस्थित हैं, सत्वर तुम सब वहाँ जाकर उनको यहाँ पर उपस्थित करो ॥१११॥

इत्थं स तत्र समुपेत्य ददर्श नित्या–
नन्दं प्रभुं च समलोकयदेष साक्षात । (पश्चात)
आनम्य तं मधुरमाह सुधांशुकम्रः
काक्वा नयेन विनयेन कृपारसाब्धिः ॥११२॥

त्वं भूतलेऽतुलमहामहिमार्णवोऽसि
संसारसागर विशोषणमातनोषि ।
निःशेषदेहिकुलनन्दथुमेव कुर्व्वन्
पाषण्डिनां हृदयमाकुलयस्यशेषम् ॥११३॥

त्वं त्यक्तलोकनिचयोऽपि समस्तलोक–
सम्यक्श्रिताङ्घ्रिकमलद्वय एव नित्यम् ।
वैराग्यमाश्रयसि सन्ततमेव लोके
रागो महान् प्रविरतः खलु लक्ष्यतेऽसौ ॥११४॥

चन्द्र विनिन्दित कान्ति गौरहरि वहाँ उपस्थित होकर नित्यानन्द का साक्षात् दर्शन किये थे, पश्चात् प्रणति पूर्वक विनीत भाव से मधुर स्वर से कहे थे ॥११२॥

आप अवनी मण्डल में निरुपम महिमानिधि हैं, संसार समुद्र का शोषण कार्य का विस्तार आप कर रहे हैं, तथा समुदाय देहधारीवृन्द का आनन्द वर्द्धित कर पाषण्डि हृदय को वित्रस्त कर रहे हैं ॥११३॥

हे भगवन् ! आप समुदाय लोक को परित्याग करने पर भी लोक समूह आपके चरणनलिनयुगल को आश्रय कर विद्यमान हैं, आश्चर्य है ! यद्यपि आप निरन्तर वैराग्य अवलम्बन कर अवस्थित हैं, तथापि आप में सुमहान् राग परिलक्षित हो रहा है ॥११४॥

इत्यूचिवान् सहनिजाङ्घ्रिसरोजभक्तैः
सङ्कीर्त्तनं समकरोन्नटनञ्च भूयः ।
तत्रावधूतपदधूलिभिरात्मलोक-
शीर्षं चकार परिपूततमं परं सः ॥११५॥

इत्थं व्रजन् पथि शचीतनयः स तैस्तै-
स्तस्यावधूतपरमस्य कथां जगाद ।
ज्ञानं पुरो भवति भक्तिरथो विरक्ति-
रित्थं वदत्ययमतः परमोऽयमेव ॥११७॥

इत्थं विचिन्त्य करुणाब्धिरथापरेद्यु-
र्भिक्षार्थमस्य नियतं निरतो बभूव ।
सद्भोजितं तदनु चन्दनकुङ्कुमाद्यैः
प्रत्यङ्गमेवमनुलिप्य ननन्द नाथः ॥११७॥

श्रीनित्यानन्द को उस प्रकार कहकर श्रीगौरहरि भक्तवृन्द के सहित सङ्कीर्त्तन एवं नृत्य प्रारम्भ किये थे, पश्चात् उक्त सङ्कीर्त्तन के मध्य में अवधूत नित्यानन्द की चरण धूलि के द्वारा भक्तवृन्द के मस्तक को सुशोभित किये थे ॥११५॥

शचीतनय श्रीगौरहरि कीर्त्तनावसान होने पर प्रत्यावर्त्तन के समय रास्ते में भक्तवृन्द को नित्यानन्द का विवरण कहे थे, इनके अग्रदेश में ज्ञान, भक्ति, विरक्ति वर्त्तमान हैं, अतएव नित्यानन्द अतिशय श्रेष्ठ हैं ॥११६॥

करुणासिन्धु श्रीगौरहरि परदिवस नित्यानन्द को भोजन प्रदान करने के निमित्त यत्नवान् हुये थे, एवं उत्तम रूप से उनको भोजन प्रदान कर पश्चात् चन्दन कुङ्कुमादि पङ्क के द्वारा उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग का अनुलेपन कर आनन्दित हुये थे ॥११७॥

अन्येद्युरेष भगवानवधूतवेशः
श्रीवासगेहमगमत् क्षुधितः प्रकामम् ।
आमन्त्र्य सोऽनुमुमुदे धरणीसुराग्र्यो
भिक्षां ददौ तदनु चन्दनकैर्लिलेप ॥११८॥

विश्राममत्र स चकार तथैव भुक्त्वा
तत्रैव सोऽपि करुणानिधिरुद्गतोऽभूत् ।
आगत्य देवनिलये वरकम्वलेन
रम्यं वरासनमुपेत्य रराज नाथः ॥११९॥

ऊचेऽवधूतमथ गौरसुधाकरोऽसौ
मां पश्य पश्य कृतवानसि यच्छ्रमं त्वम् ।
इत्युक्त एष नहि किञ्चन तस्यदेहे
प्रैक्षिष्ट नैव तदबुद्ध महानुभावः ॥१२०॥

अपर दिन नित्यानन्द क्षुधार्त्त होकर द्विजवर श्रीवास के भवन में उपस्थित हुये थे. श्रीवास भी आदर पूर्वक उनको भिक्षा प्रदान किये थे, एवं भोजनान्त में चन्दनादि पङ्क द्वारा तदीय अङ्गानुलेपन किये थे ॥११८

भोजन के अनन्तर नित्यानन्द विश्राम करने पर करुणानिधि गौरहरि वहाँ पर उपस्थित हुये थे, एवं देवमन्दिर के जगमोहन में जाकर रमणीय उत्तम कम्बलासन में विराजित हुये थे ॥११९॥

अनन्तर श्रीगौरचन्द्र अवधूत को कहे थे—आपने जो श्रम किया है, तन्निमित्त मेरा दर्शन आप करें, सुनकर अवधूत ने महाप्रभु के अङ्ग को देखा, किन्तु उन्होंने कुछ भी नहीं देख पाया, उक्त विवरण महाप्रभु जान गये थे ॥१२०॥

ज्ञात्वा स इत्थमति कारुणिकस्ततस्ता–
नूचे वहिर्व्रजत शीघ्रमितो भवन्तः ।
गच्छत्सु तेषु स च तत्र ददर्श तस्य
देहे दिनेशशतकोटिमहो महीयः ॥१२१॥

पुरः षड्भिर्दोर्भिः परमरुचिरं तत्र च पुन
श्चतुर्णां बाहूनां परमललितत्वेन मधुरम् ।
तदीयं तद्रूपं सपदि परिलोच्याशु सहसा
तदाश्चर्य्यं भूयो द्विभुजमथ भूयोऽप्यकलयत् ॥१२२॥

विलोक्येत्थं तत्तत् परमरमणीयं सुमधुरं
कृपासिन्धो रूपामृतमिदममन्दं प्रमुदितः ।
जहासोच्चैर्नृत्यन्नतिशयसुखास्फालनपरो
भृशं नित्यानन्दः सुखजलधिसंप्लावितततनुः ॥१२३॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये
भक्त सम्मेलनम् नाम षष्ठः सर्गः ।



करुणामय गौरहरि, अनन्तर भक्तवृन्द को कहे थे—आप सब यहाँ से सत्वर बाहर चले जाईये, आज्ञा प्राप्त कर भक्तवृन्द गमन करने पर प्रभुवर नित्यानन्द श्रीगौराङ्गदेव के अङ्ग में शतकोटि सूर्य के समान सुमहत् तेजः का दर्शन किये थे ॥१२१॥

पश्चात् षड्भुज में उक्त मूर्त्ति परम रुचिकर थी, पुनर्बार उक्त मूर्त्ति चतुर्भुज में परम मनोहर होने से उन्होंने उक्त मधुर रूप का सन्दर्शन किया, उसके बाद तत्क्षणात् प्रसिद्ध अत्याश्चर्य द्विभुज मूर्त्ति का दर्शन उन्होंने किया ॥१२२॥

कृपासिन्धु श्रीगौरहरि के परम रमणीय रूप को अवलोकन कर अवधूत् अतिशय प्रमुदित होकर उच्च हास्य करने लगे थे, एवं नृत्य करते-करते बाहु आस्फालन करत: सुख समुद्र की तरङ्गों से स्वीय तनु को आप्लावित किये थे ॥१२३॥



इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये

भक्त सम्मेलनम् नाम षष्ठः सर्गः ।



सप्तमः सर्गः

अपरेद्युरेषनिशि सुप्तिमितो
विरुरोद निर्भरमतिप्रकटम् ।
तनयं तथाविधमवेक्ष्य शची
सभयं जगाद जगदेकपतिम् ॥१॥

किमु तात ! रोदिति भवानवदत्
स तथेति मातरमुवाच ततः ।
अयि निद्रया विकलितेन मया
स विलोकितोऽस्ति मधुरो मधुरः ॥२॥

नवनील नीरदसमूह रुचि-
र्नवनीलकण्ठदलमण्डनकः ।
घनमेदुरातिकुटिलप्रसरत-
कचसञ्चयप्रसृतभालतलः ॥३॥

सुरसुनसञ्चयवतंसरस
प्रमदभ्रमद्भ्रमरविभ्रमभृत् ।

अपर दिवस श्रीगौरहरि रात्रि में निद्रितावस्था में रोदन कर रहे थे, शचीदेवी पुत्र को उस प्रकार देखकर जगत्पति श्रीगौराङ्ग देव को कही थीं ॥१॥

वत्स ! तुम क्यों रो रहे हो ? सुनकर श्रीगौराङ्गदेव ने कहा, अयि मातः ! निद्राभिभूत होकर मैंने एक मधुर मूर्त्ति को देखा ॥२॥ मा ! उस मूर्त्ति की आश्चर्य शोभा का वर्णन कैसे करूँ, नव नीरद समूह के समान जिनकी अङ्गकान्ति मयूरपुच्छ की चूड़ा से शिरोभूषित है, मेघ के सदृश घन कुञ्चित स्निग्ध नीलवर्ण केश कलाप ललाट देश पर्यन्त विस्तृत हैं ॥३॥

अलसोल्लसन्मधुरचिल्लिलतः
श्रवणान्तसञ्चरितनेत्रयुगः ॥४॥

अरुणारुणाक्षिकमलः प्रमदो
घनसान्द्रदृष्टिलहरीमधुरः ।
सदपाङ्गभङ्गिमजगन्मदनः
स्मितगण्डमण्डललसन्मुकुरः ॥५॥

तपनीयकुण्डलविलासलस-
च्छ्रवणद्वयीहृतजगद्धृदयः ।
नवविद्रुमद्रुमकड़म्बलस-
न्मधुराधरद्युतिसुधामधुरः ॥६॥

दशनप्रसून रुचिमञ्जरिका-
धरपल्लवारुणिमकस्रमुखः ।

जिनके लवङ्गपुष्प गुच्छरचित शिरोभूषण में मधुकर निकर रसलोलुप होकर चञ्चल होकर भ्रमण कर रहे हैं, जिनकी नेत्रलता अलसयुक्त एवं नेत्रयुगल श्रवण पर्यन्त विस्तृत हैं ॥४॥

लोचनपद्म, प्रभात कालीन अरुण के समान अरुणिमामण्डित है, घनतर दृष्टितरङ्ग से सुमधुर है, वह मनोरम उत्तम अपाङ्गभङ्गि के द्वारा जगत् के मदन स्वरूप हैं, एवं जिनके हास्यान्वित गण्डमण्डल प्रशस्त मुकुर तुल्य देदीप्यमान है ॥५॥

जो सुवर्ण निर्मित कुण्डल युगल सञ्चालन युक्त श्रवण युगल से जगत्वासि के चित्त को आकृष्ट कर रहे हैं, एवं अभिनव विद्रुमवृक्ष के कड़म्ब अर्थात् प्रवालाङ्कुर के तुल्य मनोहर सुधा विनिन्दित मधुराधर के हैं ॥६॥

दशन प्रसूनमञ्जरी अधर पल्लव की रक्तिमा से जिनके वदन

मधुमाधुरी मधुर सच्चिवुकः
शुचिकम्वुकण्ठतटहारधरः ॥७॥

नवमौक्तिकप्रकरहारलता-
विलसद्गलो विलसदंसतटः ।
तपनीयसूत्रपरिकल्पृतलस-
द्वरकौस्तुभस्फुरदुर.सरणिः ॥८॥

अमरप्रसूननवमाल्यकला-
ललितोरुपीनसदुरो मधुरः ।
वरजानुलम्बिमृदुपीनभुजा
विलसद्वराङ्गदसुकङ्कणकः ॥९॥

करमेयमध्यमविलासलस-
द्वरबन्धुरोदरकटीरतटः ।
अभिनाभिवीततपनीयधटी-
लसदश्वलाश्चितपदाग्रतटः ॥१०॥

अतीव मनोज्ञ है, सुमधुर चिवुक अर्थात ओष्ठ के निम्नदेश जिनके सुमधुर माधुरी मण्डित है शुचिकम्बुकण्ठतट हार से सुशोभित है ॥७॥

नूतन मुक्ताहार निकर से गलदेश अंसतट शोभमान है, एवं सुवर्ण सूत्र ग्रथित शोभाशाली कौस्तुभमणि के द्वारा जिनके वक्षःस्थल सुविराजित है ॥८॥

लवङ्ग प्रसून की माला से जिनके उन्नत वक्षःस्थल माधुर्य विस्तार कर रहा है, एवं उत्कृष्ट जानु पर्यन्त विलम्बित भुजयुगल अङ्गद कङ्कण से सुशोभित हैं ॥९॥

जिनके मुष्टि परिमित मध्यदेश स्थित उदर एवं कटितट निम्नोन्नत भाव से शोभित हैं, जिनके नाभिदेश के उपरी भाग में

स्मितदीधिति स्नपितदिग्वलयः
करुणाकटाक्षमधुरः कमलः ।
इति तं विलोक्य सहसाविरभूत्
सुखसञ्चयैर्मम सुविह्वलता ॥११॥

अथ रोदिमि प्रतिमुहुर्विकलः
सुखसागरेऽस्मि कृतसंप्लवनः ।
तनयोदितान्यथ निशम्य शची
सहसाभवत् सपुलकं मुदिता ॥१२॥

प्रभुरप्यसौ नयनवारिभरै-
र्जलधिद्वयं किमदधादुरसि ।
कियता दिनेन समुपेत्य वभौ
द्विज पुङ्गवालयवरं तदिदम् ॥१३॥

परिहित स्वर्णधाटी अर्थात् स्वर्णसूत्र स्वल्प परिसर वसनाञ्चल से दोदुल्यमान होकर श्रीचरणाग्र की शोभा का विस्तार कर रही है ।१०।

जिनकी सुमधुर स्मितच्छटा से दिङ्मण्डल परिप्लावित है, एवं जो करुण कटाक्ष से मधुर एवं कमल तुल्य हैं, इस प्रकार उनको देखकर सुख सञ्चय के द्वारा सहसा मुझ में विह्वलता आ गई ॥११॥

अनन्तर मैं आनन्द सागर में निपतित एवं विकल होकर मुहुर्मुहुः रोदन कर रेहा हूँ, शचीदेवी तनय के वाक्य को सुनकर सहसा सपुलक कलेवर से आनन्दित हो गयीं ॥१२॥

प्रभु श्रीगौरहरि नयन युगल से विनिःसृत वारिधारा से आप्लावित वक्षःस्थल को समुदयुगल के समान धारण किये थे, अनन्तर कियद्दिवस के पश्चात् द्विजवर जगन्नाथ मिश्र के भवन में नित्यानन्द शोभित हुये थे ॥१३॥

महनीयमूर्त्तिरवधूतविभुः
परिधूत सर्व्व कलिकालमलः।
सपुनरेव तत्र करुणाम्बुनिधे-
रतिसुन्दरीं मधुररूपसुधाम् ॥१४॥

अपिवद्विलोचनपुटेन मुहु-
र्नतृषोऽस्य पारमगमद्विभवः।
वरषड़्भुजं तमथ दक्षिणतो
दरचक्रनिर्मलगदास्त्रधरम् ॥१५॥

मुरलीवराम्बुरुह शार्ङ्गधरं
रुचिरैरथापरभुजत्रितयैः।
द्रुतशातकुम्भमय भूमिरुह-
स्तरुणाङ्कुरं करुणयारुणितम् ॥१६॥

वरकौस्तुभद्युतिविराजदुरः
स्थलशोभिमौक्तिकसरं सरसम्।

उस समय कलिमल क्षपण परायण महनीयमूर्त्ति अवधूत करुणानिधि श्रीगौरचन्द्र की सुमधुर रूपशोभा का पान स्वीय नेत्रपुट के द्वारा किये थे, दर्शन तृष्णा नित्यानन्द की एतादृशी रही कि— महाप्रभु का अपार रूपामृत उस तृष्णा को शान्त करने में अक्षम रहा, अनन्तर षड़्भुजमूर्त्ति जिनके दक्षिण दिक्‌वर्त्ति भुजत्रय शङ्ख, चक्र, एवं निर्मल गदा नामक अस्त्र से सुशोभित थे, वाम दिक्‌वर्त्ति भुजत्रय में मुरली पद्म, शार्ङ्ग थे, तथा उक्त षड़्भुजमूर्त्ति मानों विगलित सुवर्णमय वृक्ष का अङ्कुरस्वरूप रही ॥१४-१६॥

उक्त षड़्भुजमूर्त्ति के वक्षःस्थल में शोभमान एवं दोदुल्य

श्रवणद्वयान्त विलसन्मकरा-
क्रतिकुण्डलस्फुरित गण्डग्युमम् ॥१७॥

नवनीलरत्न वरहारलस-
द्वरकम्बुकण्ठरुचिरं कमलम् ।
प्रथमोदितार्क करगौरवरा-
म्वरमुल्लसद्‌गुरु नितम्वतटम् ॥१८॥

इति तं विलोक्य करुणाजलधिं
मुमुदेऽवधूतविभुरेष भृशम् ।
तदनन्तरं भुजचतुष्टयसत्-
कमनीयरूपमथ बाहुयुगम् ॥१९॥

अवलोक्य विस्मितमनाः सुमनाः
सुमनश्चयं रहसि तं व्यकिरत् ।
तदनन्तरश्च बहुहर्षभरै-
र्विदलन्मना नटितुमारभत ॥२०॥

मौक्तिक माला से सुशोभित थी, कर्णयुगलविलम्वि शोभमान मकराकृति कुण्डलों से जिनके गण्डस्थल विलसित था, अभिनव नीलरत्न निर्मित हारयुक्त उत्कृष्ट कम्वु अर्थात् शङ्खवत् रेखाङ्कित कण्ठ शोभित थी, तथा प्रथमोदित रवि किरण के समान वसन मण्डित एवं प्रशस्त नितम्वतट से उल्लसित उक्त मूर्त्ति रही ॥१७-१८॥

मनोरम षड़्भुज मूर्त्ति को देखकर श्रीनित्यानन्दप्रभु अतिशय आनन्दित हुये थे, एवं तदनन्तर कमनीय चतुर्भुज मूर्त्ति दर्शन किये। पश्चात् द्विभुज मूर्त्ति दर्शन करतः सुमना नित्यानन्द अत्यन्त विस्मित होकर तदुपरि पुष्पवृष्टि किये थे, अनन्तर हर्षातिशय्य से विगलित

परिरभ्य निर्भरमसौ स्वजनान्
स्वजनप्रमोदभरकृत् करुणः ।
भृशमेव नर्त्तनकलाकुलितो
हरिकीर्त्तनामृतनदीप्लवनात् ॥२१॥
मुदितो बभूव जगतीत्रितये
जपमात्मनः सममना कलयन् ।
पदपङ्कजद्वयपरागलव-
ग्रहणेन यस्य विधुराः विबुधाः ॥२२॥
विविधांश्रियं सपदि यत्कृपया
लभते सदा भुवि समस्तजनः ।
किमु तस्य भूरिमहिमाम्बुनिधे-
र्मनुजैः क्षितौ परिमितिः क्रियताम् ॥२३॥
बलराम इत्यवनिमध्यमधि
प्रथितो य एष महनीयगुणः ।

चित्त होकर नृत्य आरम्भ किये थे ॥१९-२०॥

अनन्तर अमृतनदी के प्लावन से अत्यन्त नृत्यकलाकुलित होकर स्वजनामोदकारी अति करुण नित्यानन्द भक्तवृन्दो को आलिङ्गन करतः त्रिजगत् के आत्मीयवृन्द को समचित्त से अवलोकन पूर्वक अतीव हृष्ट हुये थे, जिनके पादपद्म पराग के लव मात्र से ही जब देवगण अति हर्ष विधुर होते हैं, तब भक्तवृन्द उनको देखकर आनन्दित होंगे इसमें आश्चर्य क्या है ॥२१-२२॥

अनन्तर प्रचुर करुणाशाली कमनीय श्रीगौरहरि भक्तवृन्द को कहे थे—जिनके अनुग्रह से जन निकर भूमण्डल में विविध सम्पत् प्राप्त करने में सक्षम होते हैं, उन प्रचुर महिमाम्बुधि नित्यानन्द का

अथ गौरशीतकिरणः स्वजना-
न्निजगादभूरिकरुणः कमनः ॥२४॥

अवधूत एष परिभोगगतः
कमलाक्षदेवभवने झटिति ।
अमुना समं व्रजत तस्य पुरो-
ऽस्य च सन्महत्त्वमुपकीर्त्तयत ॥२५॥

तमुपेत्य ते सममनेन मुहु-
र्भुवि दण्डवन्नतिततिं विदधुः ।
भुवि रुद्र इत्यधिगतोऽस्ति हि यः
कमलाक्षसंज्ञ इह विप्रकुले ॥२६॥

अवतीर्णतामुपगतन्तममी
परिलोक्य नाथगदितं जगदुः ।
स निशम्य षड्भुज चतुर्भुजता-
मवनीतले विहित गौरतनोः ॥२७॥

क्षितितल में परिमाण करने में कौन व्यक्ति सक्षम होगा ? महामहिम नित्यानन्द अवनी में 'बलराम' नाम से विख्यात हैं ॥२३-२४॥

अवधूत नित्यानन्द—कमलाक्षदेव के भवन में भोग ग्रहणार्थ सम्प्रति गमन किये हैं, तुम सब वहाँ जाकर श्रीअद्वैत के समीप में नित्यानन्द का महत्व कीर्त्तन करो ॥२५॥

तब भक्तवृन्द, नित्यानन्द के समीप में उपस्थित होकर भूमि में निपतित होकर अनेकबार दण्डवत् प्रणति पूर्वक निवेदन किये थे, पृथ्वी में जो रुद्रनाम से प्रसिद्ध हैं, आप ही विप्रकुल में कमलाक्ष नाम से विख्यात हैं ॥२६॥

भक्तवृन्द ब्राह्मणावतार कमलाक्ष को अवलोकन कर प्रभु

करुणालयस्य मुमुदे सुभृशं
सुखसागरे विहित संप्लवनः ।
अथ तन्निवेदनवचोमुदिता
विनिवेद्य ते ह्युपनता अनमन् ॥२८॥

करुणालयस्य चरणाब्जरजः
परिगृह्य तत्पदयुगानुगताः ।
अपरेद्युरप्ययममन्दगुणः
कमलाक्षदेव उदियाय ततः ॥२९॥

अवलोक्य गौरशशिनं च तदा
मदसिंहनादरुचिरः समभूत् ।
समुपागतेऽत्र महनीयगुणे
गिरिशप्रभौ प्रभुरसौ जगताम् ॥३०॥

सहसाविरातनुत भूरिदयः
प्रकटप्रकाशमथ गौड़शशी ।

आदिष्ट वृत्तान्त निवेदन किये थे, एवं कमलाक्ष भी अवनीतल में धृत गौरदेह करुणालय श्रीगौराङ्गदेव के चतुर्भुज षड़्भुजरूप श्रवण करतः आनन्द सागर में मग्न होकर अत्यन्त हृष्ट हुये थे, अनन्तर कमलाक्ष के वाक्य से भक्तगण प्रमुदित होकर निवेदन पूर्वक विनीत भाव से प्रणाम किये थे, प्रणति पूर्वक कमलाक्ष की चरण रेणु ग्रहण करतः पादपद्म युगल के अनुगत हो गये, अपर दिन अनन्त गुणाकर कमलाक्ष महाप्रभु के समीप में उपस्थित हुये थे ॥२७।२८।२९॥

कमलाक्ष—श्रीगौरहरि को सन्दर्शन करके मदमत्त सिंह के समान शोभन गर्ज्जन किये थे, श्रीगौरचन्द्र भी गिरिशरूपी महात्मा कमलाक्ष के निकट चतुर्भुजादि मूर्त्ति आविस्कार किये थे, तदनन्तर

भुवि नारदोऽयमिति यः प्रथितो
भवनेषु तस्य स तु देवगृहे ॥३१॥

प्रकट प्रकाशमवदर्श्य तदा
सुखमस्य भूरिकरुणोऽतनुत ।
अथ तं तथाविधमवेक्ष्य भृशं
ननृतुर्जगुर्मुमुदिरे बहु ते ।
परिपूज्य पुष्पफलपूगधनै-
र्भुवि दण्डवद्बहुसुखैरनमन् ॥३२॥

परितस्तदर्च्चनमसौ कृपया
परिगृह्य तेभ्य इदमेव ददौ ।
वसनं प्रसूनमपि कारुणिकः
करुणालयस्य करुणा महती ॥३३॥

जगतीत्रयस्य जनताभिरति-
प्रतिमृग्यमत्यसुलभं बहुधा ।

पृथिवी में 'नारद' नाम से विख्यात, श्रीनारदावतार श्रीवास के भवन में जगत्पति गौरचन्द्र आत्म प्रकाश किये थे ॥३०-३१॥

प्रचुर करुणानिधि गौराङ्गदेव—कमलाक्ष विप्र को प्रकटरूप प्रदर्शन करवाकर अतुल सुख सम्पादन किये थे, अनन्तर भक्तगण तथाविधरूप सन्दर्शन कर नृत्यगीत करके बहुतर सुखानुभव किये थे' एवं पुष्प, फल, गुवाक, विविधोपायन के द्वारा श्रीगौरहरि की पूजा करके आनन्द चित्त से प्रणाम किये थे ॥३२॥

अनन्तर करुणानिधि गौरहरि कृपा पूर्वक भक्तगण प्रदत्त पूजोपहार ग्रहण पूर्वक आप सब को प्रसादि द्रव्य समूह प्रदान किये थे, कारण—करुणालय की करुणा महती होती है ॥३३॥

अपवर्गमप्यतिलघुं सहसा
सुखतन्मया विदधुरित्थममी ॥३४॥

न दिनं न रात्रिमथ तेऽथ विदु-
र्न सुखं न दुःखमपि ते परमाः ।
किमनीप्सितापि सतनूनभज-
ज्जड़तामिषेण भुवि मुक्तिरमून्॥३५॥

अभिभास्वदुद्गमतमित्थममी
ननृतुर्जगुर्मुमुदिरे बहु ते ।
रजनीं विनीय सकलाश्च पुन-
र्दिवसादिमेत्य विवशा अभवन् ॥३६॥

द्युनदीजलं समवगाह्य ततः
प्रथमं दिनस्य मुदितास्त इमे ।

त्रिजगत् के जननिकर अत्यन्त अभिनिवेश पूर्वक जिसका अन्वेषण विविध प्रकार से करते रहते हैं, उस असुलभ अपवर्ग अर्थात् मोक्षपद के प्रति भी गौरभक्तगण आनन्द से तन्मय चित्त होकर अतीव लघु ज्ञान किये थे, ॥३४॥

अनन्तर श्रीगौराङ्गदेव के भक्तवृन्द आनन्द विह्वल होकर दिन, रात, सुख, दुःख का अनुभव करने में असमर्थ थे, आश्चर्य तो यह है—मुक्ति अनभीप्सिता होने से भी तत्कालीन जड़ता के छल से शरीरधारी भक्तवृन्द का भजन करती रहती थी ॥३५॥

भक्तवृन्द उस प्रकार सूर्योदय पर्यन्त नृत्य गीत करके आनन्द विह्वल हो गये थे, एवं समस्त रात्रि जागरण से प्रभात काल में विवशता का अनुभव कर रहे थे ॥३६॥

भक्तगण प्रातःकाल में स्वर्नदी गङ्गा में अवगाहन स्नान करके

असुधारणैकपरमौषधिव-
च्चरणं प्रभोर्मृदुतरं ददृशुः ॥३७॥

अथ तस्य नर्त्तनविलासमिमं
परिलोकितुं सरभसं मुदितः ।
मुदिरः शनैर्नभसि किं विदधौ
सहसोद्गमं मधुरमेदुररुक् ॥३८॥

भुवि भाति गौरहिमरश्मिरयं
मधुरद्युतिः किमधुना भवता ।
इति भूरिशो नभसि चन्द्रमसं
जलदोद्गमः सपदि किं पिदधे ॥३९॥

इह गौरचन्द्रमहसा महता
परिनिर्ज्जितो दिनपतिर्नभसि ।
त्रपयैव किं विनिविवेश भृशं
जलदावलीष्वविरलासु ततः ॥४०॥

प्राण धारण के एकमात्र औषधि स्वरूप श्रीगौराङ्गदेव के चरणयुगल का दर्शन किये थे ॥६७॥

श्रीगौरचन्द्र के सङ्कीर्त्तन नृत्य विलास का दर्शन करने के निमित्त ही क्या सातिशय आनन्द के सहित मधुर मेदुर कान्ति से मण्डित होकर जलधर धीरे-धीरे जगत मण्डल में उदित हुआ ॥३८॥

भूमण्डल में मधुरकान्ति श्रीगौरचन्द्र शोभित हैं, सम्प्रति प्रसिद्ध चन्द्रमा की आवश्यकता ही क्या है? यह कहकर भूरि रूप में जलधर सहसा उदित होकर शशधर को आच्छादित कर दिया था ॥३९॥

भूमण्डलस्थ गौरचन्द्र के तेजपुञ्ज से पराजित होकर ही क्या

विकसत्कदम्बनवगन्धरसै–
रतिचारुवासिनवतीः ककुभः ।
परिरभ्य हर्षभवमश्रुभरं
जलदोद्गमः क्षणवशादमुचत् ॥४१॥

करुणासवेन मधुरे मधुरे
चरणाम्बुजेऽस्य भुवि राजति किम् ।
इह माहृशैरिति ममज्ज तदा
सरसीरुहां ततिरियं सरसि ॥४२॥

हरिणीदृशां कुटिलमेदुरसत्–
कचपाशभासुर रुचो जलदाः ।
चपलाचयैर्मधुरतां दधिरे
स्फुटकेतकाङ्कित तमालतरोः ॥४३॥

दिवाकर लज्जावशतः आकाश मण्डल में निविड़ जलधर माला के मध्यभाग में लुक्कायित हो गये हैं ? ॥४०॥

मेघोद्गम, विकसित कदम्ब पुष्प के सुगन्ध रस द्वारा सुवासित दिगङ्गना को आलिङ्गन करके अति आनन्द से अश्रुजल मोचन करने लगा ॥४१॥

करुणासब के द्वारा मधुर-मधुर गौराङ्गदेव के चरणपद्म की शोभा अवनी प्राप्त होने पर "हम सब का कोई प्रयोजन नहीं है" यह मानकर क्या पद्मश्रेणी सरोवर के जल में मज्जित हो रही हैं ? ॥४२॥

उस समय हरिणनयना कामिनीगण के कुटिल सुस्निग्ध नील वर्ण केशपाश के समान नवीन जलधर समूह केतकी पुष्प क्रोड़स्थ तमालतरु के तुल्य स्वीय क्रोड़स्थित विद्युत्पुञ्ज के सहित मधुरता धारण किये थे ॥४३॥

लघुनृत्यतोऽस्य चरणाम्वुरुहं
क्षितिसङ्गमो व्यथयते बहुशः ।
इति चिन्तया जलमुचः सलिलै-
र्मृदुलां सदैव धरणीं विदधुः ।।४४।।

स यदा सुखेन तनुते नटनं
विलसत्पदाम्बुजविलासरसः ।
जलदास्तदैव करुणैकनिधे-
र्ललितातपत्रसुषमां दधति ।।४५।।

नवविद्रुमद्रुमकदम्बरुचा
पदपल्लवस्य मधुरच्छटया ।
धरणीं चकार करुणाब्धिरसा-
वरुणायितामरुणपाणितलः ।।४६

तपनीयगौरवपुषो महसा
नटतोऽस्य वारिद बलवत्तिमिराः ।

श्रीहरि सङ्कीर्त्तनावेश में श्रीगौरहरि नृत्य कर रहे थे, सुतरां शुष्क भूमि संयोग पादपद्म को व्यथित कर रहा है, यह मानकर सजल जलधरगण सतत जलवर्षण द्वारा अवनीतल को मृदुल कर रहे थे ।।४४।।

श्रीगौरचन्द्र जिस समय पादपद्म की विलास भङ्गी के सहित सङ्कीर्त्तन में नृत्य विस्तार कर रहे थे, उस समय जलधरगण करुणा निधि गौरचन्द्र की मनोहर छत्र शोभा को धारण किये थे ।।४५।।

जिनके हस्ततल अरुणवर्ण है, उन करुणानिधि गौरचन्द्र, अभिनव विद्रुम पुञ्ज की कान्तिशालिनी स्वीय पादपद्म की सुमधुर छटा के द्वारा अवनीतल को अरुण वर्ण किये थे ।।४६।।

ककुभो विभिन्नरुचयो मिलितां
मृगनाभिकुङ्कुमरुचं विदधुः ॥४७॥

तत आगतश्च हरिदासमहा-
महिताशयं सुमहनीयगुणम् ।
निजपादपङ्कजमधून्मदस-
द्भ्रमरं विलोक्य मुमुदे स विभुः ॥४८॥

परिरभ्य निर्भरममुं सहसा
स्वपदाब्जभक्तमनुरक्ततमम् ।
वरमासनं करुणया स्वजनै-
र्नयनश्रियानयदनेककृपः ॥४९॥

अभिवाद्य तत्तु शिरसा प्रणतो
वरमासनं भुवि चकार पदम् ।

आरब्धनृत्य स्वर्णकान्ति गौरचन्द्र की अङ्ग कान्ति के द्वारा बलवत्तिमिर विशिष्ट मेघ समूह के द्वारा दिक् समूह विभिन्न कान्ति से मिलित होकर मृगमद एवं कुङ्कुम की रुचि को विस्तार किये थे, अर्थात् मेघ का नील वर्ण भी श्रीगौरहरि के गौरवर्ण विशिष्ट हो गया ॥४७॥

जो निज पादपङ्कज मधु से सम्यक् उन्मत्त तुल्य हैं, एवं जिनके गुण अतिशय महनीय है, उन महामहिम हरिदास को समागत देख कर गौरहरि अतिशय हृष्ट हुये थे ॥४८॥

कृपानिधि गौरहरि, निज पदाब्जानुरत्त भक्त को सहसा आलिङ्गन कर करुणापूर्वक नेत्रभङ्गी से स्वजन द्वारा उत्कृष्ट आसन संग्रह किये थे। किन्तु हरिदास प्रणत होकर उक्त आसन को मस्तक के द्वारा अभिनन्दित किये थे, एवं श्रीमन्महाप्रभु के पादपङ्कज

प्रभुपादपङ्कजपरागचयं
परिगृह्य भक्तिपरया सधिया ॥५०॥
तनुमस्य चन्दनरसेन तदा
परिलिप्य माल्यमवयोज्य हृदि ।
स चतुर्विधं मधुरमन्नमतः
परिभोज्य भूरिकरुणोमुमुदे ॥५१॥
अनुनृत्य सोऽपि हरिकीर्त्तनतः
सततं प्रभोर्निलयएव वभौ ।
अवलोक्य तञ्च निजपादयुग-
प्रियमानन्नन्द सतु गौरशशी ॥५२॥
अथ तत्र तेन सह देवघटा-
मुकुटार्घ्यरत्न रुचिराजिपदः ।
गमताय गेहमभितः सहसा
गतवन्तमाह गिरिशं स विभुः ॥५३॥

की धूलि को निज बुद्धि से ही भक्ति पूर्वक ग्रहण करतः भूमितल में उपवेशन किये थे ॥४९-५०॥

दयामय गौरहरि, उस समय हरिदास के अङ्ग में चन्दन लेपन एवं वक्षःस्थल में माल्यार्पण किये थे, एवं चर्व्य, चुष्य, लेह्य, पेयभेद से चतुर्विध अन्नादि भोजन करवा कर अतिशय हृष्ट हुये थे ॥५१॥

हरिदास भी श्रीगौराङ्गदेव के निलय में श्रीहरिसङ्कीर्त्तन में नृत्य करतः शोभित हुये थे, गौरशशी भी निजपादपङ्कजसेवी हरिदास को देखकर परमानन्दित हुये थे ॥५२॥

देववृन्द के मुकुटस्थ रत्नराजि निराजित पादपङ्कज श्रीगौरहरि हरिदास के सहित गृहागत गिरिश अर्थात् महादेव स्वरूप कमलाक्ष को

स तथेति तस्य वचनाद्गिरिशः
पृथिवीतलेषु कमलाक्ष इति ।
प्रथितो य एष भवनं मुदितः
स ययौ जगत्प्रभुगिरा परया ॥५४॥

अवधूतमीश्वरमथो विनया-
न्निजगाद तं जिगमिषुं यमिनम् ।
समनुव्रजन्निति विधेहि विभो
सुमहाप्रसादममलं वसनम् ॥५५॥

इति तद्बहिर्वसनमेकमसौ
परिगृह्य कारुणिकतां रचयन् ।
निजगाद जीवन धनेभ्य ऋते
कमलाक्षदेवमददात् करुणः ॥५६॥

अभिवाद्य तत्तु शिरसा त इमे
प्रभुणा समं स्वगृहमेव ययुः ।

सहसा निजगृह में प्रत्यावर्त्तन करने के निमित्त आदेश किये थे ॥५३॥

तब गिरिश, पृथिवी में जो कमलाक्ष नाम से विख्यात हैं, जगत् प्रभु श्रीगौरहरि के मधुर वाक्य से आनन्दित होकर निज गृहाभिमुख में यात्रा किये थे ॥५४॥

अनन्तर गौरहरि, गमनेच्छु अवधूत नित्यानन्द के अनुगामी होकर कहे थे—विभो ! यह महाप्रसाद एवं अमल वसन ग्रहण करें ॥५५॥

करुणामय श्रीनित्यानन्द करुणा विस्तार पूर्वक एक वहिर्वास अङ्गीकार किये थे, अपर वस्त्र समूह कमलाक्ष व्यतीत अन्य भक्तवृन्द को प्रदान किये थे ॥५६॥

द्युनदीजलेषु विहिताप्लवना:
कृतपूजना अपि यथाविधि ते ॥५७॥
अनुसन्ध्यमाययुरथो निलये
परमेश्वरस्य परमोल्लसिता: ।
स उपागत: सहृदयैः परमै-
र्जगतां प्रभु प्रभवता महसा ॥५८॥
महता महेन महनीयतनु-
र्निजकीर्त्तनं नटनमप्यकरोत् ।
स तु चक्रवद्भ्रमणविभ्रम सं-
प्रसरन्महःसमुदयेन तदा ।
तिरयन्निलावृतविलासरुचं
रुचिराननो रुचिरवागमृत: ॥५९॥

भक्तवृन्द वस्त्र को मस्तक के द्वारा अभिवादन करके प्रभु नित्यानन्द के सहित निज गृहाभिमुख में गमन किये थे, एवं यथारीति गङ्गाजल में स्नान पूजादि कृत्य सम्पन्न किये थे ॥५७॥

नित्यकृत्य सम्पन्न करने के बाद भक्तगण परम उल्लसित होकर सायंकाल में परमेश्वर श्रीगौराङ्गदेव के भवन में आगमन किये थे, एवं महातेजस्वी जगत् प्रभु श्रीनित्यानन्द भी वहाँ पर सहृदय भक्तगण के सहित अवस्थित हुये थे ॥५८॥

दिव्यतेज से महनीयतनु नित्यानन्द निज कीर्त्तन सम्पन्न किये थे, कीर्त्तन में नित्यानन्द चक्राकार भ्रमण किये थे, उक्त नृत्य भ्रमण की शोभा से उनकी अङ्गकान्ति इस प्रकार प्रसारित हुई थी—कि तद्द्वारा इलावृत वर्ष की शोभा म्लान हो गई थी, एवं नित्यानन्द के मुखारविन्द एवं वाक्यामृत अतीव मनोरम हुये थे ॥५९॥

नटनान्तरे निजजनान् परितः
परिरभ्य निर्भरमथो सह तैः ।
विलुठन् करणाम्बुजयुगेन मुदं
प्रहन्मृगेन्द्र इव संप्रबभौ ॥६०॥

चिरमेवमेव धरणीषु विभुः
परिलुठ्य भक्तनिचयान्तरतः ।
भुवि नारदो य इह विप्रवरः
परिगृह्य तं प्रभुवरोऽन्तरधात् ॥६१॥

न समीक्ष्यतेऽथ भृशमाकुलिता–
स्तमितस्ततः समनुसन्दधिरे ।
त इतस्ततोऽथ न समीक्ष्य भृशं
विकला बभूवुरतिदुःखभरैः ॥६२॥

अथ तांस्तथाविधहृदः करुणा–
नधिगम्य भूरिकरुणो मधुरः ।

सङ्कीर्त्तन के अवसान में सर्वतोभावेन भक्तवृन्द को आलिङ्गन करके उन सब के सहित भूमि में लुठन करते हुये कारुण्यमय अम्बुजाक्ष हरि अतीव हर्ष से मृगेन्द्र के समान शोभित हुये थे ॥६०॥

इस प्रकार श्रीनित्यानन्द, भक्तवृन्द के मध्य में बहुक्षण पर्यन्त भूतल में विलुठित होकर भूमण्डल में 'नारद' नाम से विख्यात श्रीवास के सहित अन्तर्हित हो गये ॥६१॥

भक्तगण प्रभुवर नित्यानन्द को अवलोकन न करके अतिशय व्याकुल चित्त से इतस्ततः अनुसन्धान करने लगे, किसी स्थान में उनको न देखकर अतीव दुःखभर से व्याकुल हो गये ॥६२॥

विकिरन्मनोज्ञतमदृष्टिसुधां
स तु गौरचन्द्र उदियाय ततः ॥६३

अभितोऽभितस्तमभिगौररुचम्
कमलाननं करुणया परया ।
परिलोकयन्तमतिसान्द्रमुदं
नयनैर्नितान्तमपिबन्निव ते ६४॥

तदनन्तरञ्च रभसाकुलितैः
सह तैः स्वपादयुगमात्रधनैः ।
निजकीर्त्तनामृतरसेन मुहु–
र्नटनं चकार रससिन्धुशशी ॥६५॥

अथ कर्हिचिद्बहुविलासनिधी
रजनीमुखे सुखमयाम्बुनिधिः ।

भूग्किरुण मधुराकृति गौरहरि करुणान्वित भक्तवृन्द को तथा विध अवलोकन कर मनोज्ञतम दृष्टिसुधा वितरण पूर्वक उपस्थित हुये थे ॥६३॥

जिनकी अङ्गकान्ति गौरवर्ण विमण्डित, जो अति निविड़ आनन्दमय है, एवं अति करुणापूर्ण नयनों से भक्तवृन्द को अवलोकन कर रहे हैं, उन कमल नयन श्रीगौरचन्द्र की माधुरी को इतस्ततः भक्तगण मानों अविरत नयनों से पान करने लगे थे ॥६४॥

रससिन्धुशशी गौरहरि अतीव हर्षाकुल होकर स्वीय पदयुगल ही जिनके एकमात्र सर्वस्व हैं, उन भक्तगण के सहित निज कीर्त्तन रूप अमृत रस में निमग्न होकर मुहुर्मुहुः नृत्य करने लगे थे ॥६५॥

आनन्दाम्बुधि बहुविलासनिधि गौरचन्द्र एकदिन प्रदोष के

अवकृष्य भक्तजनवस्त्रचयः
परितो विलस्य पुनरेव ददौ ॥६६॥

तदनन्तरं पुनरतीवसुखा-
दवधूत ईश्वर उपेत्य ततः ।
अवलोक्य गौरमतिसान्द्ररुचं
मधुरं जगौ नटनमप्यकरोत् ॥६७॥

नटनान्तरे तु भगवान् जगतां
प्रभुरादिदेश निजभक्तजनान् ।
अवधूतपादकमलस्य शुभा-
न्यवनेजनानि पिवत क्रमतः ॥६८॥

त इदं निशम्य वचनं शिरसा
प्रणतेन तत्पदपयांसि दधुः ।
उपजीविनश्चरणपङ्करुहो
वचने भवन्ति सततं निरताः ॥६९॥

समय भक्तवृन्द के वसन को लेकर कियत्क्षण सङ्कीर्त्तन करने के पश्चात् पुनर्बार वस्त्रसमूह उन सब को प्रत्यर्पण किये थे ॥६६॥

ईश्वर अवधूत नित्यानन्द उपस्थित होकर अति निविड़ गौर कान्ति युक्त गौरचन्द्र को अवलोकन करतः सुमधुर गान एवं नृत्य करने लगे थे ॥६७॥

नृत्यावसान में जगत्प्रभु भगवान् गौरहरि निज भक्तवृन्द को आदेश किये थे-अहे भक्तगण ! तुम सब अवधूत नित्यानन्द के पवित्र चरणामृत पान करो ॥६८॥

श्रीमन्महाप्रभु के आदेश से नतमस्तक होकर भक्तगण प्रभुवर

वचसा विलासगमनेन कृपा–
मृदुना विलोकितरसेन ततः ।
हसितेन सान्द्रमधुरेण सुखं
विदधे जनस्य जगतां करुणः ॥७०॥

विहरन्तमित्थमवलोक्य सदा
परमं प्रभुं नभसि देवगणाः ।
दयिताकुलैः प्रमवमत्तधियो
दिवसं निशाश्च गमयन्ति मुदा ॥७१॥

हरिदास ईश्वर इति प्रथितः
परमो जनो दयितगौरपदः ।
पुनरेत्य नूपुरमनोज्ञपद–
द्वितयो ननर्त्त परमेशपुरः ॥७२॥

नित्यानन्द के पादोदक धारण किये थे, कारण—श्रीचरणपद्म के आश्रित भक्तगण प्रभु की आज्ञा से सर्वथा अनुरक्त थे ॥६९॥

त्रिजगत् के कारुणिक गौरहरि, कृपा, मृदुवाक्य, विलासयुक्त गमन रसपूर्ण एवं निविड़ माधुर्यशाली दृष्टि के द्वारा भक्तजनों का आनन्द वर्द्धन करने लगे ॥७०॥

इस प्रकार विहरण परायण परम प्रभु को अवलोकन कर दयिताकुल के सहित देवगण आनन्द विभोर होकर समस्त रात्रि गगन मण्डल में शोभित हुये थे ॥७१॥

ईश्वर हरिदास अभिधेय प्रसिद्ध जन जो गौरहरि के अतीव प्रिय हैं, पुनर्बार आगमन करतः चरणद्वय में नूपुर धारण पूर्वक श्रीगौराङ्गदेव के अग्रभाग में नृत्य सङ्कीर्त्तन आरम्भ किये थे ॥७२॥

पुनरागतः स कमलाक्षविभुः
प्रभुपादपङ्कजयुगं मृदुलम् ।
परिलोक्य हर्षविभराप्लुतधीः
सुभृशं ननन्द जगतीसुखदः ॥७३॥

ललितेन पाद्यसलिलेन ततः
सह दूर्व्वयाक्षतचयैश्च ततः ।
सुमनश्चयैर्मलयजन्मरसैः
परिपूज्य तं प्रभुवरोऽन्नमदात् ॥७४॥

अतिसाध्वसादररसेन ततः
स महाप्रसादमवगृह्य मुदा ।
प्रभुना समं परि ननर्त्त भृशं
हरिकीर्त्तनामृतसुखाम्बुनिधौ ॥७५॥

अथ कश्चनातिशयदीनमना-
स्तनयेन भिक्षुरेनुसङ्गतया ।

तत् पश्चात् जगदानन्ददायक कमलाक्ष पुनर्बार समागत होकर श्रीमन्महाप्रभु के कोमल चरण युगल को सन्दर्शन करतः हर्ष से आप्लुतान्तःकरण होकर परमानन्दित हुये थे ॥७३॥

प्रभुवर श्रीगौरहरि–विशुद्ध पाद्य, दुर्बा सहित अक्षत अर्थात् आतपतण्डुल, पुष्प एवं मलयज चन्दन के द्वारा कमलाक्ष का पूजन करके उनको महाप्रसादान्न प्रदान किये थे ॥७४॥

कमलाक्ष अतीव भय एवं आदर के सहित श्रीप्रभुदत्त महाप्रसाद ग्रहण करके श्रीहरिकीर्त्तनामृतरूप आनन्द सागर में निमग्न होकर प्रभु के सहित नृत्य करने लगे थे ॥७५॥

उस समय दीनमना एक भिक्षु अनुगत निज पुत्र के सहित

नटतोऽस्य गौरशशिनः परमं
किमपीह वीक्ष्य विमुमोह ततः ॥७६॥

चिरमुत्थितस्तु स जगाद तदा
किमहो विलोकितमहो किमिति ।
तदनन्तरश्च सह तै र्मुदितः
समकीर्त्तयन् ललितगीतकलाम् ॥७७॥

इति भिक्षुरेष विपुलैः पुलकै-
र्द्विगुणीभवत्तनुरतीवसुखी ।
नयनाम्बुभिः सततधौततनू
रससागरे परिममज्ज भृशम् ॥७८॥

अथ कर्हिचिद्द्विजकुलैकशशी
भुवि यस्तु नारद इति प्रथितः ।
अपठद्बृहत्पदयुतं प्रथमं
सहस्रनामकृतपैत्रकृतिः ॥७९॥

वहाँ पर आगमन करके श्रीगौरहरि के अनिर्वचनीय विषय को अवलोकन करतः अत्यन्त विमुग्ध होकर भूतल में गिर गये थे ॥७६॥

बहुक्षण के अनन्तर भिक्षु उत्थित होकर "अहो मैंने क्या देखा, यह क्या आश्चर्य है ?" इस प्रकार विस्मय प्रकाश किये थे, पश्चात् भक्तवृन्द के सहित मनोहर श्रीकृष्ण कीर्त्तन करने लगे थे ।७७।

भिक्षु विपुल पुलकावृताङ्ग होकर अतिशय सुखी हुये थे, एवं नयनवारि से धौताङ्ग होकर आनन्दाम्बुधि में निमग्न हो गये थे ॥७८॥

अनन्तर एक समय भूमण्डल में नारद नाम से विख्यात द्विजकुल चन्द्रमा पितृ सेवारत महात्मा श्रीवास वृहत् पदयुक्त सहस्रनाम का पाठ प्रथमतः करने लगे थे ॥७९॥

स्वगृहे स्थितः स भगवान्नृहरे-
रभिधां निशम्य महितो महसा ।
नरसिंहभावमधिगत्य ततः
पुरुषर्षभोऽगमदमुष्य गृहम् ॥८०॥

महतीं गदां करपयोरुहयोः
परिगृह्य दुःसहमुपेत्य महः ।
अभिधावतिस्म पथि भूमितलं
दलयन् पदाम्बुजबलद्दलनैः ॥८१॥

अथ तं तथाविधमवेक्ष्य जनाः
पथि धावनेन परिदीप्तजवम् ।
अभितोऽभितो भयमुपेत्य भृशं
परिदुद्रुवुर्द्रुतमतिप्रचलाः ॥८२॥

स तु तान् पलायनपरान् मनुजा-
नवलोकयंस्तदिह सौस्थ्यमधात् ।

पुरुष श्रेष्ठ भगवान् गौरहरि—निज गृह से नृसिंहदेव का नाम को सुनकर अतिशय तेजः प्रकाश पूर्वक श्रीवास के सम्मुख में उपस्थित हुये थे ॥८०॥

गमन समय में श्रीमन्महाप्रभु हस्तद्वय में गदा धारण पूर्वक दु:सह तेजः प्रकाश कर सुवृहत् पदविक्षेप द्वारा भूतल को कम्पित किये थे ॥८१॥

मार्ग में अति द्रुतगत्ति से गमनरत नरहरिरूपी गौरहरि को अवलोकन कर जनगण भीत होकर इतस्ततः पलायन करने लगे ॥८२॥

किन्तु पलायनरत जनगण को अत्यन्त भीत देख कर किञ्चित् सुस्थ हो गये, एवं सुमहती गदा को परित्याग करके धीरे-धीरे

परिहाय तां सुमहतीश्च गदा-
मगमच्छनैर्भवनमस्य तदा ॥८३॥

उपगम्य तत्र मनसा मृदुना
जनता पलायनविलोकनतः ।
अपराधवानहममुत्र जने
सततं किमित्यथ जगाद विभुः ॥८४॥

न हि ते क्वचापि भगवन् भविता
निखिलापराधशमनस्य विभोः ।
अपराध एष करुणाविभव
स्तव सत्यमित्थमवदत् स्वजनः ॥८५॥

अपरेद्युरस्य करुणाम्बुनिधेः
पुरतश्च कश्चन सुगायनकः ।
शिवगीतमुत्तमसुखेन जगौ
करुणाशयास्य करुणस्य विभोः ॥८६॥

श्रीवास भवन में चले गये ॥८३॥

वहाँ पर उपस्थित होकर पलायन परायण जनगण को देख कर कहे थे— "मैं जनसमूह के समीप में अपराधी हूँ" श्रीगौरहरि सततही इस प्रकार कहने लगे थे ॥८४॥

यह सुनकर भक्तवृन्दने कहा—"हे भगवन् ! आप अपराधी नहीं हैं, आप निखिल अपराधी को दण्ड प्रदान करने में सक्षम हैं, आप स्वीय अपराध स्वीकार कर रहे हैं, यह आपका वैभव मात्र है ॥८५॥

एकदिन एक सुन्दर गायक, करुणानिधि श्रीगौरहरि के सम्मुख में उत्तम शिव सङ्गीत गान करने लगे थे ॥८६॥

निशमय्य गीतमतिधीरपदं
ललितं बभुव भगवान्मुदितः ।
अधिरुह्य तस्य लसदंसतटं
नटनं चकार स च धूर्जटिवत् ॥८७॥

मदघूर्णिताक्षियुगलो विपुलैः
पुलकैरतीवरुचिरो रुचिमान् ।
स तदंसमूलमधिरुह्य तदा
शिववन्ननर्त्त करुणाम्बुनिधिः ॥८८॥

भुवि यस्तु नारद इति प्रथितः
स पपाठ तत्र गिरिशस्तवनम् ।
अतिसुस्वरः स तु मुकुन्दभिषक्-
स्तवनं महिम्न इह हन्त जगौ ॥८९॥

तदनन्तरं सतु तदंसभुवं
परिमुच्य तत्र रभसादभजत् ।

भगवान् गौरचन्द्र -मनोहर शिव सङ्गीत श्रवण कर अतिशय हृष्ट हुये, एवं गायक के स्कन्ध देश में आरोहण पूर्वक धूर्जटि महादेव के समान नृत्य करने लगे थे ॥८७॥

करुणाम्बुधि गौरहरि विपुल पुलक के द्वारा अतीव शोभित होकर मनोरम मूर्त्ति में विराजित हुये थे ॥८८॥

उस समय अवनी में नाम से सुप्रसिद्ध श्रीवास पण्डित गिरिश स्त्रोत्र एवं मुकुन्द सुस्वर से महिम्न स्तव पाठ करने लगे थे ॥८९॥

अनन्तर गौरचन्द्र गायक के स्कन्धदेश को त्याग कर कुमुद बान्धव शशधर के समान निज जनगण को हर्षित करके उत्कृष्ट

वरमासनं निजजनान् सततं
परिहर्षयन् कुमुदबान्धववत् ॥९०॥

नटनावसानसमयेऽन्यदिने
पुरतः समेत्य विनिपत्य भुवि ।
भृशमग्रहीत् पदपयोजरजां-
स्यथ काचन द्विजवधूप्रवरा ॥९१॥

तदिदं विलोक्य सहसैव तया
विहितं वभार बहुःदुखभरम् ।
द्युनदीजलेऽथ निपपात तदा
चपलं प्रसृत्य बहुधा विकलः ॥९२॥

तममुं तथाविधमवेक्ष्य बली
सममुद्दधार परसोऽतिबलात् ।
अवधूतदेव इह गौरविभुं
गुरुदोर्द्वयेन सहसा विकलः ॥९३॥

आसन में उपविष्ट हुये थे ॥९०॥

अपर एकदिन नृत्यावसान में एक श्रेष्ठाब्राह्मणवधू श्रीप्रभु के सम्मुख में निपतित होकर पादपद्म की रजः ग्रहण किये थे ॥९१॥

यह देखकर अत्यन्त विह्वल होकर गङ्गाजल में सत्वर निपतित हुये थे ॥९२॥

उक्त अवस्था में गौरहरि को देखकर नित्यानन्द प्रशस्त बाहु युगल को प्रसारित करके बलपूर्वक श्रीगौरहरि को जल से उत्तोलन किये थे ॥९३॥

हरिदासकप्रभृतयोऽनुचराः
सहसा समेत्य बहुधा विधुराः ।
परिवव्रुरेनमतिकारुणिकं
सभयं सगद्गदममी रुरुदुः ॥९४॥

स मुरारिगुप्तनिलयं सह तै-
रुपगत्य भूरिकरुणः प्रबभौ ।
पुनरप्यगाद्द्विजगेहमथो
रजनीश्च तत्र करुणोऽगमयत् ॥९५॥

भगवान् प्रभातसमयेऽन्यदिने
द्युनदीं प्रतीर्य्य सह तैरगमत् ।
तटमुत्तरं विकलितेन हृदा
क्षणमेव विश्रमणमातनुत ॥९६॥

अथ ते भयेन महता विलयैः
परिसान्त्वनं किल विधाय मुहुः ।

अनन्तर हरिदास प्रभृति अनुचर वृन्द समागत होकर जलोत्थित गौरहरि को वेष्टन पूर्वक गद्गद अस्फुट स्वर से रोदन करने लगे थे ॥९४॥

भूरिकरुण गौरहरि भक्तवृन्द के सहित मुरारि गुप्त भवन में उपस्थित होकर शोभित हुये थे, पश्चात् द्विज हरिदास के गृह में गमन कर रात्रि यापन किये थे ॥९५॥

अपर दिवस भगवान् गौराङ्गदेव प्रभातकाल में उक्त भक्तगणों के सहित गङ्गा पार होकर उत्तर तीर में अति विकल चित्त से विश्राम सुख अनुभव करने लगे थे ॥९६॥

प्रभुमालयं समनयन्मुदिता
भजतां हि भाववश एष खलु ॥९७॥

श्रीवासस्य गृहं समेत्य स पुनः प्रोवाच धीराक्षरं
सर्व्वेषामवश्रृण्वतां हि पुरतः श्रीगौरचन्द्रः प्रभुः।
त्यक्त्वाहं जननीं व्रजामि किल चेत् कुत्रापि तस्माज्जनः
सर्व्वोऽयं कृतवान् विरुद्धमसकौ नूनं वदिष्यत्यदः ॥९८॥

मुरारि गुप्तोऽथ जगाद वाक्यं
श्रुत्वा तदीयं सुधयैव सिक्तम्।
न कोपि नाथेह भवत्सु तत्त-
द्वदिष्यति प्रेमदपादपद्मः ॥९९॥

श्रुत्वेत्थं वचनमसौ कृपासमुद्रः
संहृष्टः परमसुखस्तमालिलिङ्ग।

भक्तगण भीत चित्त से विनय कर बारम्बार सान्त्वना प्रदान करतः आनन्द चित्त से प्रभु को भवन में ले आये थे, कारण-श्रीप्रभु श्रीगौरहरि केवल भक्तगणों के भाव से वशीभूत थे ॥९७॥

श्रीगौरचन्द्र प्रभु पुनर्बार श्रीवास के आलय में समागत होकर भक्तवृन्द के समक्ष में धीर भाव से कहे थे—मैं यदि जननी को छोड़ कर अन्यत्र गमन करता हुँ, तब समस्त लोक कहेंगे—अकृतज्ञ गौराङ्ग अत्यन्त विरुद्ध कर्म किये थे ॥९८॥

मुरारि गुप्त ने कहा—नाथ ! आप निज चरणारविन्द में प्रेम प्रदान करते हैं, अतएव आप को कोई भी व्यक्ति ईदृश वाक्य नहीं कहेंगे ॥९९॥

सोप्येवं पुलकघटाविभिन्नदेहः:
श्लोकैकं मुदितमनाः पपाठ दैन्यात् ॥१००॥

क्वाहं दरिद्रः पापीयानित्यादि ।
श्रुत्वा स इत्थमुदितं भगवांस्तदैव
स्वैश्वर्य्यमुत्तममुपेत्य रराज नाथः ।
रम्यासनोपरि परिष्ठित उद्भटेन
तेजश्चयेन दिननाथसहस्रतुल्यः ॥१०१॥

इदं शरीरं परमं मनोज्ञं
सच्चिद्घनानन्दमयं ममैव ।
जानीत यूयं नहि किञ्चिदन्य-
द्विनास्ति भूमौ स इतीदमूचे ॥१०२॥

कृपासमुद्र गौरहरि, मुरारि के वाक्य श्रवण कर हृष्ट एवं परमसुखी होकर मुरारि को आलिङ्गन किये थे, मुरारि हृष्टमना होकर पुलकिताङ्ग से अतीव दैन्य करतः "क्वाह दरिद्रः पापीयान्" अर्थात् कहाँ मैं पापिष्ठ दरिद्र और आप कहाँ श्रीनिकेतन हैं" इस प्रकार भा० १०।८१।१४ श्लोक पाठ किये थे ॥१००॥

उक्त वचन श्रवण कर भगवान श्रीगौरहरि तत्कालीन स्वीय ऐश्चर्य मण्डित होकर अत्युद्भट तेजोराशि द्वारा सहस्रसूर्य के समान प्रकाशमान होकर रम्य आसनोपरि अधिष्ठित होकर शोभित हुये थे ॥१०१॥

एवं कहे थे-यह शरीर परममनोज्ञ नित्यचिद्घन एवं आनन्दमय है, भूमण्डल में मेरा शरीर व्यतीत अपर कुछ भी नहीं है ॥१०२॥

हृष्टास्तत्तन्नाथवाक्यं निशम्य
प्रोद्यद्रोमाञ्चाञ्चिताङ्गाः समन्तात् ।
श्रीवासाद्या नेत्रवारिप्रवाहैः
सम्यक् स्नातास्तत्र तत्रैवमासन् ॥१०३॥

श्रीवासोऽसौ पूर्व्ववद्गाङ्गतोयैः
स्वच्छस्वच्छैः स्नापयामास भूयः ।
श्रीगौराङ्गं तत्पदैकावलम्बः
प्रेमाम्भोभिर्धौतसर्व्वाङ्गरम्यम् ॥१०४॥

यावत् कुम्भैर्गौरचन्द्राङ्गयष्टौ
गङ्गातोयैर्भूसुरोऽयं सिषेच ।
तावत् स्वाङ्गे नेत्रपाथोरुहाभ्यां
प्रेम्ना निर्यत्तोयमुद्गीर्णवान् सः ॥१०५॥

एवं भूयः कौतुकं ते विलोक्य
प्रेमोद्भ्रान्ताः कीर्त्तनं नर्त्तनञ्च ।

श्रीमन्महाप्रभु के वाक्य को सुनकर श्रीवास प्रभृति भक्तगण सर्वतः समुद्गत रोमाञ्चिताङ्ग एवं नेत्रवारि से स्नात होकर उक्त स्थान में ही अवस्थित हुये थे ॥१०३॥

प्रेमवारि से सर्बाङ्ग विधौत होने से जो नित्य ही मनोज्ञ कान्ति यूक्त हैं, उन श्रीगौराङ्गदेव को गौरपदाश्रित श्रीवास अतिनिर्म्मल गङ्गाजल के द्वारा पूर्ववत् स्नान कराये थे ॥१०४॥

द्विजवर श्रीवास श्रीगौराङ्गदेव की अङ्गयष्टि को जितने वारि पूर्ण कुम्भ से स्नान कराये थे, आप प्रेमोद्गत उतने ही प्रेमवारि से निजाङ्ग को स्नापित किये थे ॥१०५॥

श्रीगौराङ्गदेव के प्रेमावलम्बी भक्तवृन्द पुनर्बार कौतुक

उच्चैरुच्चैश्चक्रुरुन्मत्तचित्ताः
श्रीगौराङ्गप्रेममात्रावलम्बाः १०६॥

अन्येद्युर्गौरचन्द्रो निजजनसहितो भक्तिशिक्षां वितन्व-
न्नत्यन्ताश्चर्य्यचेष्टः कमलभवभवाद्यैर्भृशं भावनीयः।
कुज्ञानाद्यैः समन्तात् सकलमनुपुरं देवतानां निकेतं
सन्मार्ज्जन्या च चक्रे जगति सुविदितो मार्ज्जितं शश्वदेव।१०७।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये सप्तमः सर्गः।



देखकर प्रेमोद्भ्रान्त एवं उन्मत्त चित्त होकर उच्चैःस्वर से श्रीहरि सङ्कीर्त्तन एवं नृत्य करने लगे थे ॥१०६॥

कमलभव ब्रह्मा एवं भव प्रभृति देववृन्द भी जिनकी चिन्ता निरन्तर करते रहते हैं, उन श्रीगौरचन्द्र, अन्यदिन निज जनगण के सहित भक्तिशिक्षा विस्तार करतः अत्यन्त आश्चर्यचेष्ट होकर परि दृश्यमान कुज्ञानादि व्याप्त जगन्मण्डल को एवं सन्मार्जनि के द्वारा देवालय समूह को निरन्तर मार्जित करके जगज्जन के निकट सुविदित हुये थे ॥१०७॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये सप्तमः सर्गः।



अष्टमः सर्गः

कदाचिदथ तं प्रीत्या गच्छन्तं परमं प्रभुम् ।
प्रणम्य विनयात् कश्चित् प्रोवाच मधुराक्षरम् ॥१॥
सर्व्वे त्वां देवदेवेशं सच्चिद्‌घनशरीरिणम् ।
पुरुषं परमं प्राहुस्तन्नोद्धरसि किं नु माम् ॥२॥
त्राहि मां सर्व्व सर्व्वेश कुष्ठात् परमगर्हितात् ।
दोधूयमानहृदयं कृपां कुरु कृपानिधे ॥३॥
श्रुत्वेदं तद्वचः श्रीमान् क्रोधारुणितलोचनः ।
जगाद वदनव्याजाद्‌द्विजराजेन शोभितः ॥४॥
आः पापात्मन् दुराचार मद्भक्तद्वेषकारक ।
त्वामुद्धरिष्ये चेन्नाहमुद्धरिष्यामि किं ततः ॥५॥
श्रीवासस्य सदा द्वेषं यतस्त्वं कृतवानसि ।
अतएव प्रतिभवं कुष्ठी खलु भविष्यसि ॥६॥

अनन्तर एक दिवस महाप्रभु को गमनरत देखकर एक व्यक्ति प्रणाम पूर्वक विनीत होकर मधुर वचन से कहा था ॥१॥

प्रभो ! समस्त लोक आपको देव देवेश्वर, सच्चिदानन्द विग्रह एवं परम पुरुष कहते हैं, अतएव आप मुझको क्या उद्धार करेंगे ॥२॥

हे सर्व ! हे सर्वेश्वर ! परम गर्हित कुष्ठरोग से मुझको रक्षा करें, हे कृपानिधे ! मेरा हृदय अत्यन्त दग्ध हो रहा है, मेरे प्रति आप कृपा करें ॥३॥

उक्त व्यक्ति का प्रार्थना पूर्ण वचन को सुनकर द्विजराज शोभित वदन श्रीगौरहरि क्रोधारुणित लोचन से कहे थे ॥४॥

पापात्मन् दुराचार ! तुम भक्त द्वेषी हो, तुम्हें उद्धार न करने से मेरा क्या होगा ? ॥५॥

अस्मिन् देहे तु ये प्राणास्ते न लक्ष्या कदाचन ।
वहिश्चरा इव प्राणा वैष्णवा इति विद्धि मे ॥७॥

ये ये येन प्रकारेण तान् द्विषन्ति मम प्रियान् ।
तेषां तेषां प्रतिभवं नरके पतनं भवेत् ॥८॥

वैष्णवेभ्यो नता ये च ये तदाज्ञापरायणाः ।
ते त एव तरिष्यन्ति संसारार्णवमुत्कटम् ॥६॥

इत्युक्त्वा गेहमगमत् श्रीवासस्य महाप्रभुः ।
तेन सार्द्धं तदा रेमे भगवान् भक्तभक्तिमान् ॥१०॥

एकदा नृत्यसमये द्रष्टुं गौराङ्गसुन्दरम् ।
चलितो द्वारपालेन वारितो धरणीसुरः ॥११॥

कारण—तुमने श्रीवास को विद्वेष किया है, अतएव प्रति जन्म तेरा शरीर कुष्ठ रोगाक्रान्त होगा ॥६॥

इस शरीर में प्राण परिलक्षित नहीं होता है, किन्तु वैष्णव मेरा वहिश्चर प्राण के समान हैं ॥७॥

जिस किसी प्रकार से जो भी व्यक्ति मद्‌भक्तों के प्रति विद्वेष परायण होते हैं, उससे उस सब का नरक गमन अवश्य ही होगा ॥८॥

जो व्यक्ति वैष्णव वर्ग के निकट प्रणत एवं आज्ञावह होते हैं, वे सब जनगण ही इस संसार समुद्र से उत्तीर्ण होंगे ॥६॥

इस प्रकार कहकर श्रीमन्महाप्रभु—श्रीवास भवन में प्रविष्ट हुये थे, एवं भक्त भक्तिमान् श्रीभगवान् गौरचन्द्र भक्त मण्डली के सहित श्रीहरिकीर्त्तन परायण हुये थे ॥१०॥

एकदिन सङ्कीर्त्तन नृत्य के अवसर में श्रीवास निलय में श्रीगौरहरि को देखने के निमित्त द्वार देश में एक ब्राह्मण उपस्थित

क्रुद्धोऽपरदिने सोऽयं गङ्गायास्तटसन्निधौ ।
दृष्ट्वा जगत्प्रभुं तत्र दुर्मुखो रोषलोहितः ॥१२॥
उपवीतं द्विधा छित्वा शापं दास्यन्निदं जगौ ।
त्वां नृत्यसमये द्रष्टुं गतवानहमेकदा ॥१३॥
तवैव द्वारपालेन वारितस्तेन दुःखितः ।
शापं ददामि तत्तुभ्यं संसारच्छित्तिरस्तु ते ॥१४॥
तच्छ्रुत्वा भगवान्नाथो ननन्द मनसा मुहुः ।
रुष्टस्य शापो विप्रस्य वरोऽभूदिति हर्षितः ॥१५॥
इति श्रुत्वा हरौ शापं ब्रह्मशापाद्विमुच्यते ।
तदिदं श्रद्धया लोकैः श्रोतव्यं शुद्धबुद्धिभिः ॥१६॥

होने पर द्वारपाल के निषेध से ब्राह्मण वहाँ से चले गये ॥११॥

अपर दिवस उक्त दुर्मुख ब्राह्मण गङ्गातट सन्निधान में जगत् प्रभु श्रीगौरहरि को अवलोकन कर अपूर्व क्रोधारुणित नयन हो गये, एवं यज्ञोपवीत को तोड़ कर शाप प्रदान करने उद्यत होकर कहे थे—मैं एकदिन सङ्कीर्त्तन के समय सङ्कीर्त्तन देखने निमित्त गया था, द्वारपाल ने मुझको मना किया, उससे मैं दुःखित होकर तुम्हें 'तुम्हारा संसार नष्ट हो' यह कहकर शाप दिया हूँ ॥१२।१३।१४॥

दीनबन्धु गौरहरि दुर्मुख ब्राह्मण का उक्त शाप को सुनकर अतिशय आनन्दानुभव किये थे एवं रुष्ट ब्राह्मण का शाप, मेरे पक्ष में वरदान है, यह मानकर अतिशय हृष्ट हुये थे ॥१५॥

श्रीगौरहरि के प्रति ब्राह्मण कर्तृक प्रदत्त शाप वार्त्ता श्रवण से जनगण ब्रह्म शाप से मुक्त होंगे, अतएव उक्त विषय श्रवण सब के पक्ष में हितकर है ॥१६॥

अन्येद्युः पद्मिनीं मुद्रां करेणाऽर्कोऽपसारयन् ।
उदयाद्रेः समुत्तस्थौ विलासी शयनादिव ॥१७॥

ततो गौराङ्गचन्द्रोऽपि ब्राह्मणान् सज्जनान् बहून् ।
पाठयन् पूर्णपीयूषरश्मिवत् स व्यरोचत ॥१८॥

क्षणाद्वैह्वल्यसम्भिन्नः स्खलत्सर्व्वतनुः प्रभुः ।
मधूनि देहि देहीति बभाषे मधुराननः ॥१९॥

आश्चर्य्यमाश्चर्य्यमिदं चरितं परमात्मनः ।
हाटकाचलगौरोऽयं रोप्याचल इवाभवत् ॥२०॥

सीरपाणि नीलवासः समलङ्कृतविग्रहम् ।
घूर्णापूर्णाक्षियुगलं मदमत्तविचेष्टितम् ॥२१॥

विलासी व्यक्ति जिस प्रकार शय्या से उत्थित होता है, उस प्रकार दिनकर मुद्रिता पद्मिनी को विकसित करते हुये उदयाद्रि से समुत्थित हुये ॥१७॥

श्रीगौराङ्गदेव भी बहुसंख्यक ब्राह्मण वर्ग को विद्या दान करके पूर्ण चन्द्र के समान शोभित हुये थे ॥१८॥

क्षणकाल में ही जिनके सर्वाङ्ग विह्वलता के कारण-स्खलित हो रहे थे, उन श्रीगौरहरि समधुर वाक्य से 'मधु प्रदान करो-मधु प्रदान करो' इस प्रकार कहने लगे ॥१९॥

अहो ! परमात्म गौरहरि का चरित्र अतीव आश्चर्य मण्डित है, स्वर्णपर्वत सदृश गौर विग्रह रौप्य पर्वत के समान हो उठा ॥२०॥

नील वसन से जिनका विग्रह सम्यक्रूप से अलङ्कृत है, नयन युगल आघूर्णित हैं, एवं मदमत्त करीन्द्र के समान जिनकी चेष्टा है,

एवं तत्तत्क्षणे सर्व्वे ददृशुस्ते मुदान्विताः ।
रोहिण्यङ्गभुवो भावं दधानां परमेश्वरम् ॥२२॥
कीर्त्तयद्भिस्ततः सर्व्वैर्जनैः सह महाप्रभुः ।
मुरारिगुप्तनिलये जगाम परमोत्सुकः –२३॥
मधूनि देहि देहीति तत्रापि मधुराक्षरम् ।
उक्ताम्बुपात्रं हस्तेन धृत्वाम्बूनि भृशं पपौ ॥२४॥
मदघूर्न्नितलोलाक्षः क्षणदानाथसुन्दरः ।
शुक्लैर्महोभिर्गेहस्य शैत्यं कुर्व्वन्ननर्त्त सः ॥२५॥
नाहं स कृष्णो वचसा योऽसौ शीघ्रं सुखी भवेत् ।
तदानयानय भृशं मधून्यद्य समर्पय ॥२६॥

उन रोहिणी नन्दन बलराम के भाव मण्डित परमेश्वर गौराङ्गदेव को उस समय जनगण अत्यन्त हृष्ट होकर लाङ्गली बलराम के समान सन्दर्शन करने लगे थे ॥२१-२२

तदनन्तर महाप्रभु परम उत्सुकता के सहित श्रीहरि सङ्कीर्त्तन रत जनगण के सहित मुरारि निलय में गमन किये थे ॥२३॥

वहाँ जाकर "मधु दो-मधु दो" मधुराक्षर से कहकर जल परिपूरित पात्र को हस्त में लेकर प्रचुर जलपान किये थे ॥२४॥

मदविघूर्णित विलोचन तथा क्षणदानाथ के समान कमनीय कान्ति गौराङ्ग सुन्दर निजाङ्ग की शुभ्र कान्ति के द्वारा भवन को धवलित करके सङ्कीर्त्तन करने में प्रवृत हुये थे ॥२५॥

उन्होंने कहा–"मैं यह कृष्ण नहीं हुँ" इस कथन से यदि कोई सुखी होता है तो वह सत्वर मधु लाकर मुझको समर्पण करे ॥२६॥

इत्युक्त्वैकेन हस्तेन द्विजैकं प्राक्षिपत् प्रभुः ।
आरादेव पपातासौ मल्लोऽपि बलवत्तरः ॥२७॥

प्रातरेव बलावेश विवशो रजनीमुखे ।
प्रबुद्ध स्यात्तदा स्नानं करोति कमलेक्षणः ॥२८॥

अपरेद्युर्दीप्यमानस्तेजोभिरतिदुःसहैः ।
मुहुर्मुमोह भगवान् विकीर्णकचसञ्चयः ॥२९॥

बलदेवावेशरम्यं मत्तद्विरदगामिनम् ।
मत्तसिंहसमोल्लासं मदघूर्णितलोचनम् ॥३०॥

रज्यद्गण्डस्थलं चण्डरश्मिकोटिसमप्रभम् ।
वैह्वल्यनुन्नहृदयं दृष्ट्वेत्थं ते तदा वदन् ॥३१॥

महाप्रभुने ऐसा कहकर एक ब्राह्मण को हाथपकड़कर अपसारित किया, वह ब्राह्मण अतिशय बलवान् होने पर भी दूर में जाकर गिर पड़ा ॥२७॥

श्रीमन्महाप्रभु प्रातःकाल में ही बलराम के आवेश से विवश हो गये थे, किन्तु सन्ध्या काल में सचेतन होने पर स्नान कृत्य सम्पन्न किये थे ॥२८॥

अपर एक दिवस भगवान् शचीनन्दन—अत्यन्त दुःसह तेजो राशि के द्वारा देदीप्यमान होकर केशकलाप विकीर्ण करतः बारम्बार मोहग्रस्त हुये थे ॥२९॥

बलराम के आवेश से जिनकी मूर्त्ति रमणीय हुई थी, गमन मदमत्त हस्ती के समान था, मत्तसिंह के समान उल्लास था, मत्तता हेतु नयन घूर्णित होता रहा, जिनके गण्डस्थल रक्तवर्ण हो गया था, प्रचण्ड रश्मि अर्थात् सूर्य के समान जो प्रभावशाली थे, एवं विह्वलता

किमिदं नाथ कोवायं वेशः किम्बा परं महः ।
किमत्र कारणं ब्रूहि भगवान् सर्वभावनः ॥३२॥

एवं बलावेशलीलाललितो ललितास्पदम् ।
उवाच स्खलितं शश्वद्वचनं मदघूर्णितः ॥३३॥

दृष्टो मया सीरपाणिर्नीलाम्बरधरः पुमान् ।
रोप्याचल इव श्रीमान् कोऽप्यसौ मादृशैरिह ॥३४॥

श्रीचन्द्रशेखराचार्यरत्नं तत्र जगाद तम् ।
यस्त्वया नाथ दृष्टोऽसौ कुत्रास्ते बलिनां वरः ॥३५॥

एवं वदन् ददर्शासौ तमेव हलिनः प्रभोः ।
आवेशावेशविन्यासं बिभ्रतं गौरसुन्दरम् ॥३६॥

से जिनका हृदय सर्वदा विच्छिन्न हो रहा था, एतादृश अवस्थापन्न श्रीगौराङ्गदेव को देखकर भक्तवृन्द इस प्रकार कहने लगे थे— हे नाथ! हे गौराङ्ग सुन्दर! यह क्या है? यह आपका कैसा आवेश उपस्थित हुआ, आप सर्वतोभावेन सर्वजीव स्रष्टा एवं षड़ैश्वर्य्यपूर्ण स्वयं भगवान् हैं, अतः आप स्वयं कहें— इसका कारण क्या है? ॥३०।३१।३२॥

श्रीगौराङ्गदेव बलराम के आवेश में मदघूर्णित लोचन होकर स्खलित वाक्य से कहे थे— मैंने रजत गिरि के समान शोभा सम्पन्न नीलाम्बराधारी लाङ्गलपाणि महापुरुष बलराम को देखा हूँ ।३३-३४।

तब आचार्यरत्न श्रीचन्द्रशेखर बोले थे—नाथ! आपने जिनको देखा है, वह बलिश्रेष्ठ महापुरुष कहाँ पर हैं? ॥३५॥

यह कहकर चन्द्रशेखर प्रभु बलभद्र का वेश धारी श्रीगौरहरि को अवलोकन किये थे ॥३६॥

ततस्तद्भावमापन्नः श्रीमान् कोटीन्दुसुन्दरः ।
गौराङ्गो नर्त्तनं चक्रे तैः सर्वैर्मुदितात्मभिः ॥३७॥

नृत्यतस्तस्य पीयूषद्रवसिक्तैः पदे पदे ।
जल्पितैस्ते स्वर्गसुखमधरीचक्रुरञ्जसा ॥३८॥

एवं दिनं स नृत्येन निनाय परमप्रभुः ।
कीर्त्तनामृतवापीषु स्नातैस्तैः स्वजनैः सह ॥३९॥

ततोऽपराह्णे भूयोऽस्मिन् नृत्यति श्रीयुते मरुत
मदगन्धैर्दिशः सर्वाः समन्तात् समपूजयत् ॥४०॥

तं तं गन्धं समाघ्राय मदोत्कटमतिस्फुटम् ।
आकस्मिकैरिव घनैर्भ्रमरैः पिदधे नभः ॥४१॥

तदनन्तर कोटि चन्द्र सुन्दर श्रीमान् गौरचन्द्र बलराम भावापन्न होकर उक्त हृष्टचित्त भक्तवृन्द के सहित सङ्कीर्त्तन नृत्यारम्भ किये थे ॥३७

गौरचन्द्र नृत्य करते करते जिस प्रकार बाक्य प्रयोग किये थे, भक्तगण सुधासिक्त श्रीप्रभु के वाक्य समूह के द्वारा अनायास स्वर्ग सुख को तुच्छ किये थे ॥३८॥

जिन्होंने कीर्त्तनामृत की दीर्घिका में अवगाहन किया है, परम प्रभु गौरचन्द्र उक्त भक्तवृन्द के सहित उक्त प्रकार श्रीकृष्ण सङ्कीर्त्तन से ही दिवस अतिवाहित करने लगे ॥३९॥

अपराह्ण काल में श्रीगौराङ्ग महाप्रभु पुनर्बार सङ्कीर्त्तन नृत्य प्रारम्भ करने पर तत् कालीन समीरण, कस्तुरी गन्ध के द्वारा दिक् समुह को सुरभित किया था ॥४०॥

उक्त मदोत्कट गन्ध का आघ्राण से आकृष्ट होकर मधुकर

श्रीरामनामा विप्राग्र्यो ददर्शाकाशमण्डलात् ।
समागतान् महाकान्तीन् महादीप्तीन् महाजनान् ॥४२॥
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गान् दिव्याभरणभूषितान् ।
दिव्यस्रग्वसनान् दिव्यान् दिव्यरूपगुणाश्रयान् ॥४३॥
एककर्णधृताम्भोजकर्णपूरमनोहरान् ।
उष्णीषपट्टसंश्लिष्टमस्तकान् हृष्टमानसान् ॥४४॥
अन्ये तस्य मुखाच्छ्रुत्वा ननृतुर्जगुरञ्जसा ।
कीर्त्तनेन हरेर्नाम्नामाम्नायसुधियो भृशम् ॥४५॥
तत्रैव कश्चिद्विप्राग्र्यो वनमाली महाशयः ।
अपश्यत् पर्वताकारं हलं काञ्चननिर्मितम् ॥४६॥

निकर आकस्मिक मेघमाला के समान समागत होकर मेघमण्डल को समाच्छन्न किये थे ॥४१॥

उस समय श्रीराम नामक जनैक विप्राग्रगण्य—आकाशमण्डल में समागत, महाकान्ति एवं महादीप्तिशाली बहुसंख्यक महापुरुष को अवलोकन किये थे, उक्त महापुरुषों के अङ्ग समूह दिव्यगन्धानुलिप्त, दिव्याभरण भूषित, दिव्यमाल्य, एवं दिव्य वसन युक्त थे, वे सब दिव्य पुरुष, सुदिव्य रूप गुण युक्त थे, उन सब के कर्ण में परिहित कर्णपुर द्वारा उन सब के अवयव समूह अति मनोरम हुये थे, उनके मस्तक पट्टवस्त्र उष्णीष से सुमण्डित थे एवं उनके मन अतिशय हृष्ट थे ॥४२।४३।४४॥

समस्त वृत्तान्त का श्रवण श्रीरामविप्र के मुख से करके वेदविद् ब्राह्मणगण श्रीहरिनाम कीर्त्तन के सहित अनायास आनन्द विभोर हुये थे ॥४५॥

दृष्ट्वा सविस्मयो भूत्वा लोचनाश्रुझराकुलः ।
पुलकौघपरीताङ्गो न सस्मार तदा तनुम् ॥४७॥
ततो ननर्त्त तैः सार्द्धं निजकीर्त्तनमङ्गलैः ।
हलायुधावेशरम्यो रम्यगौराङ्गसुन्दरः ॥४८॥
दिवि देवगणाः सर्वे समहेन्द्राः सपद्मजाः ।
प्रणेमुः कुसुमस्तोमं वर्षन्तो नतकन्धराः ॥४९॥
एवं निशावशेषोऽभून्नृत्यति श्रीयुते प्रभौ ।
चन्द्रश्चरमशैलान्तं चुचुम्वशनकैरिव ॥५०॥
नृत्यतस्तस्य नटनदर्शनार्थमियं किमु ।
पुरन्दराशा तरुणी बभूवात्यनुरागिणी ॥५१॥

वहाँ पर वनमाली नामक विप्रवर्य काञ्चन निर्मित पर्वताकार लाङ्गल का दर्शन किये थे, उसका दर्शन कर विस्मयाकुल होकर नेत्र से निपतित जलधारा एवं पुलकावलि से व्याप्तकलेवर होकर निज तनु को विस्मृत हुये थे ॥४६॥४७॥

अनन्तर बलभद्र वेश से अतीव रमणीय रम्यमूर्त्ति श्रीगौरहरि निज कीर्त्तन कल्याण सम्पादक भक्तगण के सहित श्रीकृष्ण सङ्कीर्त्तन आरम्भ किये थे ॥४८॥

गगन मण्डल से इन्द्रादि देवगण पुष्प वर्षा करने पर निशा का अवसान हुआ, एवं शशधर क्रमशः अस्ताचल चूड़ावलम्बिनी हो गये ॥४९॥

इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु सङ्कीर्त्तन में प्रवृत्त होने पर निशा का अवसान हुआ, एवं शशधर भी क्रमशः अस्ताचल चूड़ावलम्बी हो गये ॥५०॥

इस समय पूर्वदिक् रूपा तरुणी सङ्कीर्त्तन नृत्य विनोदी श्रीगौर सुन्दर को देखकर क्या अत्यन्त अनुरागिनी हो गई ॥५१॥

मन्दगन्धवहः शश्वत् ज्योत्स्नयाभ्युपगूहितः ।
कुमुदानि समाधुन्वन् गोराङ्घ्रिमभजत्ततः ॥५२॥
ततस्तैः स्वजनैः सार्द्धं स्वर्नद्यां जगतां प्रभुः ।
उपोयिवान् बभौ नाथो यथा मेरुः सहाद्रिभिः ॥५३॥
अवगाह्य ततो गङ्गां गाङ्गेयाचलसुन्दरः ।
करवारिभिरन्योन्यं चकार जलखेलनम् ॥५४॥
एवं नानाप्रकाराणि क्रीड़ितानि समापयन् ।
ययौ गेहं निजं गौरो यथेन्दुरुदयाचलम् ॥५५॥
हसन्नसौ सुमधुरं श्रीवासमवदत् प्रभुः
वेणुं प्रयच्छ मे शीघ्रं क्व सोऽस्ति न तु दृश्यते ॥५६॥

मृदुगन्धवह समीरण, ज्योत्स्ना द्वारा आलिङ्गित होकर कुमुदराजि को कम्पित करत श्रीगौराङ्गदेव के पादपद्म का भजन करने लगे ॥५२॥

तत् पश्चात् सुमेरु पर्वत यद्रूप अन्यान्य पर्वत माला से शोभित होता है, तद्रूप जगत्पति श्रीगौरहरि उक्त स्वजनवृन्द के सहित मिलित होकर स्वर्णदी गङ्गाकुल में उपस्थित होकर अतिशय रूप से शोभित हुये थे ॥५३॥

स्वर्णपर्वत के समान अति मनोरम श्रीगौरहरि—गङ्गा में अवगाहन स्नान करके भक्तगण के सहित पारस्परिक जलक्रीड़ा प्रारम्भ किये थे ॥५४॥

शशधर यद्रूप नक्षत्र माला के सहित विहार कर अस्ताचल रूप निलय में प्रविष्ट होता है, तद्रूप गौरचन्द्र भी नानाविध क्रीड़ा कौतुक समापनानन्तर निज भवन में गमन किये थे ॥५५॥

श्रीगौरसुन्दर समधुर हास्य से श्रीवास को कहे थे-"श्रीवास ! मेरी वेणु कहाँ है ? मैं देख नहीं रहा हूँ, सत्वर प्रदान करो" ॥५६॥

ततोऽयं विप्रप्रवरो हसन्निदमभाषत ।
वेणुस्तवास्ति गोपीभिः परितः परिरक्षितः ॥५७॥
वृन्दावनक्रीड़ितानि स्मृत्वा स्मृत्वा कृपानिधिः ।
सान्द्रानन्दैकसन्दोहमग्नस्तूष्णीमभूत् क्षणम् ॥५८॥
ततश्चातिशयाविष्टो हृष्टरोमा महाप्रभुः ।
ब्रूहि ब्रूहीति सततमुच्चैस्तं निजगाद सः ॥५९॥
वृन्दावनक्रीड़नञ्च यमुनाक्रीड़नं तथा ।
सर्वं ततोऽसौ श्रीवासो वर्णयामास भूरिशः ॥६०॥
पुरा वृन्दारण्ये तरुणहरिणाक्षीभिरनिशं ।
त्वयि प्रेमाविष्टे विलसति य आसीत् स विभवः ।
त्वयैवातृप्तेनाजनि न यदि तन्नाथ रभसः
कथङ्कारं नित्यं नव नव इवायं समभवत् ॥६१॥

विप्रवर श्रीवास हास्य पूर्वक कहे थे—"प्रभो! गोपियों ने आपकी वेणु को गोपन किया है" ॥५७॥

कृपानिधि गौरहरि वृन्दावनस्थ क्रीड़ा समूह का बारम्बार स्मरण पूर्वक निविड़ आनन्द सन्दोह निमग्न होकर क्षणकाल तूष्णीम्भूत हुये थे ॥५८॥

महाप्रभु अतिशय आवेश से पुलकिताङ्ग होकर "कहो कहो इस प्रकार निरन्तर उच्चैःस्वर से श्रीवास को कहने लगे थे" ॥५९॥

तब श्रीवास वृन्दावन क्रीड़ा तथा यमुना क्रीड़ा प्रभृति का भूरि रूप से वर्णन करने लगे थे ॥६०॥

पुराकाल में मृगलोचना तरुणीगण के सहित विलास पूर्वक प्रेमाविष्ट होने से जो विभव प्रेम सम्पत्ति उदित हुई थी, उससे आप परितृप्त नहीं हुये, यदि ऐसा नहीं होता तो, हे नाथ! आप कहें—

आमञ्जु गुञ्जदलिपुञ्जनिकुञ्जरम्यं
वृन्दावनं निरुपमं स पुरा प्रविश्य ।
क्रीड़ां चकर्थ रसकौतुककामतन्त्र–
मन्त्रस्वरूप इव यत्त्वमतिप्रियं तत् ॥६२॥
एवं निशम्य मदमत्त मृगेन्द्रनादं
भूयो वदेति मधुरं निजगाद नाथः ।
अत्रान्तरे द्विजवरः सच तत्कृपाभिः
सर्वं तदीयचरितं प्रकटं जगाद ॥६३॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये श्रीवृन्दावन विहार वर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ।



अति हर्ष से उक्त विभव कैसे नित्य नवनवायमान रूप से प्रतीत हुआ ॥६१॥

अतिशय मनोरम शब्दायमान अलिमाला से जो निकुञ्ज अतिशय मनोज्ञ हुआ है' उस निरुपम वृन्दावन में आप प्रविष्ठ होकर जो रस कौतुकमय कामशास्त्र का मन्त्र होकर क्रीड़ा करते थे, सुतरां उस श्रीवृन्दावन आपका अत्यन्त प्रीतिप्रद स्थान है ॥६२॥

यह सुनकर श्रीगौरहरि मदमत्त सिंह के समान गर्जन कर "पुनर्बार कहो" मधुर स्वर से कहे थे, पश्चात् द्विजवर श्रीवास उनकी कृपा से तदीय चरित्र का कीर्त्तन सुस्पष्ट रूस से किये थे ॥६३॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये श्रीवृन्दावन विहार वर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ।



नवमः सर्गः

इत्थमुद्भटसुखाम्बुधिमग्नं
गौरचन्द्रमथ यथा सोऽभिजगाद ।
श्रूयतां प्रभुवर स्वविहारं
प्राक्कृतं स्वयमहं कथयामि ॥१॥

वीक्ष्य तद्वदनमनिर्वचनीयं
रम्यरम्यमपि वल्गुमनोभिः ।
श्रेयसा सह विलासवतीभिः-
स्वाङ्गवल्लिभिरकारि विचित्रम् ॥२॥

प्रेयसा सह नवीनतमाल–
श्यामलेन विपिनं प्रविशन्तः ।
तत्पुरो नवघनेन विलासं–
विद्युतां दधुरमूर्व्रजबध्वः ॥३॥

उस प्रकार अगाध सुधासिन्धु में निमज्जित श्रीगौरहरि को अवलोकन कर श्रीवास कहे थे—प्रभुवर ! आप श्रवण करें, आपकी पूर्वकृत लीला का वर्णन मैं कर रहा हूँ ॥१॥

विलासवती गोपाङ्गनागण—अत्यन्त रमणीय अनिर्वचनीय प्रियतम के मुख सन्दर्शन करतः प्रियतम के सहित विलासेच्छा से स्वीय अङ्गलता द्वारा आश्चर्य कार्य सम्पन्न किये थे ॥२॥

व्रजबधूगण तमालतुल्य श्याम कान्ति प्रियतम के सहित विपिन में प्रविष्ट होकर प्रियतम के अग्र में नवघन के सहित विद्युत विलास का विस्तार किये थे, अर्थात् नवनीरद वर्ण श्रीकृष्ण के समक्ष मे गौराङ्गी व्रजङ्गनागण नव जलधर के ऊपर सौदामिनी के समान शोभित हुई थीं ॥३॥

रामणीयकमवेक्ष्य रमण्यो–
मानसेन मनसिजेन लसन्त्यः ।
चेष्टया रुचिरयालसभाजो–
भाविताः समभवन्नधिनाथम् ॥४॥

साभिलासमथ भाववतीनां
कृष्णचन्द्रमभिमुग्धबधूनाम् ।
साध्वसं प्रथमजं तिरयित्वा
मन्मथेन हृदये समुदासे ॥५॥

अंशुकं शिथिलितं द्रढ़यित्वा–
विभ्रती सचकित-त्रपमेका ।
सस्मितप्रियसखीजनपार्श्वे
लीलयालघुचलन्त्यभिरेजे ॥६॥

कापि मन्दमयता परिवृत्ते–
मारुतेन कुचयुग्मकचेले ।

मनसिज विलास युक्त एवं मनोज्ञ चेष्टा से सस्पृह रमणी समूह अधिनाथ रामणीयक श्रीकृष्ण को देखकर विशेष भावप्राप्त हुई थीं ।४।

अनन्तर श्रीकृष्ण को अवलोकन कर जो सब अति स्पृहयालु एवं भावयुक्त हैं, वे सब मुग्ध गोपबधुओं के हृदय में प्रथम दर्शनज साध्वस को विदूरित कर कन्दर्पराज उदित हो गये ।।५।।

उस समय एक गोपी सचकित लज्जित होकर एवं शिथिल वसन को दृढ़ीभूत करके अपर एक स्मितमुखी प्रिय सखी के निकट सविलास त्वरितगति से उपस्थित होकर अनिर्वचनीय शोभित हुई ।६।

मन्दगामी मरुत् कर्तृक कुचकलस की कञ्चुलिका अपसारित

सम्भ्रमात् प्रियसखीजनमुच्चै
रालिलिङ्ग परिपश्यति कृष्णे ॥७॥

उन्नमय्य भुजयुग्ममथान्या
पीवरस्तनयुगोन्नमनेन ।
साङ्गभङ्गमलसेन लसन्ती–
जृम्भतेस्म पुरतो दयितस्य ॥८॥

पीवरोरसिजकुट्नलकान्तां–
पाणिधूतनवपल्लवकान्तिम् ।
प्रोज्झ्य काननलतां –
वरनारी देहवल्लिमभजन्मधुपौघः ॥९॥

सुभ्रुवां तनुलतासु लतानां
श्रीरियं सपरितोषमभूत् किम् ।
सर्वतः सपदि तासु यदेतन्मञ्जु
गुञ्जदलिनां कुलमासीन ॥१०॥

होने से श्रीकृष्ण अवलोकन किये हैं, जानकर एक सखी ने अन्य प्रिय सखी को सम्भ्रम से आलिङ्गन किया ॥७॥

एक गोपी भुजयुगल उन्नत करने से पयोधरयुगल उन्नत होने पर अलस भाव से अङ्गभङ्गी पूर्वक अतिशय शोभिता होकर प्रियतम श्रीकृष्ण के सम्मुख में जिम्हाई लेने लगी ॥८॥

जो सब निविड़ कुच कुट्नल अति रमणीय हैं, एवं करकिसलय द्वारा नव किसलय की शोभा को तिरस्कार कर रही हैं, उन नवीन रमणीगण की देहलता को अलिकुल काननलता को परित्याग करत: अवलम्बन किये थे ॥९॥

लता समूह की श्री, व्रजसुभ्रूगण की तनुलता की शोभा से क्या

एकयौष्ठपतनेऽमृतपत्वं-
प्रेप्सुरुन्मदतरो मधुपायी ।
ओष्ठदंशनरतस्य सतोषं-
प्रेयसः स्मरणतो न निरासे ॥११॥

मन्थरं मदनविह्वलहंसी-
लास्यशंसि मधुरक्रमरम्यम् ।
आदधुश्चरणपङ्कजरम्यं-
सुभ्रुवोऽथ लघु तत्र विहर्त्तुम् ॥१२॥

उल्लसन्मदनमन्थरपादन्यास
भाजिगमने रमणीनाम् ।
श्रोणिविम्वकुचयोः परिणाहः
खेदयन्नपि बभूव सुखाय ॥१३॥

आप्यायित हुई है ? कारण—सर्व प्रकार से द्रुतगति से व्रजसुन्दरीगण की तनुलता में मनोहर गुञ्जनकारी अलिकुल उपवेशन कर रहे हैं ।१०।

अपर एक गोपी के अङ्ग में ओष्ठ निपतित होने से ही "मैंने अमृत पान किया" यह मान कर अलिकुल उन्मत्त होकर दंशन करने लगे थे, उससे गोपीगण ओष्ठ दंशन रत दयित कृष्ण स्मरण हेतु दंशनरत भ्रमरकुल को निरास नहीं किये ॥११॥

सुभ्रू व्रजाङ्गनागण—उक्त स्थान में विहार करने के मानस से मदविह्वल हंसी के समान सुमधुर क्रम विन्यास द्वारा रमणीय एवं मदमन्थर रूप से सत्वर पदविन्यास करतः चरण कमल की कमनीयता का विस्तार किये थे ॥१२॥

अहो ! जिस मदनमन्थर गति से मदनराज भी उल्लसित होते है, उस पदविन्यास युक्त गमन से निविड़ नितम्व एवं कुचमण्डल रमणीगण को खेदयुक्त करने पर भी वह सुखद हुआ था ॥१३॥

वीचिभङ्ग इव काञ्चनकाञ्ची-
कामडिण्डिमरवेण नितम्वः ।
सुभ्रुवां गमनविभ्रमभूषो-
मन्दमन्दमलसेन ननर्त्त ॥१४॥

कोमलं चरणपद्मशक्तं-
मास्म गा द्रुततरं मदिराक्षि ।
इत्यतीव विवशौ रुदतः-
किं नूपुरौ प्रणयतो रमणीनाम् ॥१५॥

तत्तदङ्घ्रिकमलस्य विलासे-
सस्पृहं कथयतीव महान्तम् ।
स्वानुरागमनुरागवतीनां-
यावकैररुणिता वनभूमिः ॥१६॥

कृष्णपृष्ठतटलग्नकुचाग्रा-
तत्तदंसविलसद्भुजमूला ।

व्रजरमणीगण के नितम्ब देश तरङ्ग भङ्ग के समान काञ्चन निर्मित काञ्ची शब्द से विभूषित होकर अलस भर से मन्द मन्द नृत्य किया था ॥१४॥

आश्चर्य है ! कोमल चरणनलिन अक्षम है, अतएव हे मदिराक्षि ! हे चञ्चललोचने ! "दुतगति से गमन न करो" यह कहकर क्या नूपुरयुगल व्रजरमणीवृन्द के प्रणय विवश निबन्धन रोदन कर रहे हैं ॥१५॥

अहो ! अनुरागवती रमणीगण के पद कमल के विलास से यावक रञ्जित वन भूमि साभिलाष से मानों अनुराग को परिव्यक्त कर रही है ॥१६॥

साचितद्रुवदनचुम्वितवक्त्रा-
कापि तत्र रुरुचेऽनुचलन्ती ॥१७॥

पृष्ठतः प्रियतमेन भुजाभ्यां-
श्लिष्टवक्षसिरुहाम्वुरुहाक्षी ।
इन्द्रनीलमणिहारमिवास्या-
कण्ठसीम्नि दधती चलितासीत् ॥१८॥

केशवांसतटराजिभुजाया-
मन्थरालसगतेः सह यान्त्याः ।
तन्नितम्वभुवि लग्नविलग्नो
वीचिवत् किल रराज नितम्वः ॥१९॥

अपर एक गोपी कृष्ण के पृष्ठ देश में पयोधराग्र संलग्न करके एवं कृष्ण के स्कन्ध देश में विलम्वित बाहुमूल अर्पण कर तथा साचि अर्थात् वक्रिम वदन द्वारा श्रीकृष्ण के मुख चुम्वन करतः पश्चात् गमन करने लगी ॥१७॥

एक कमलनयना गोपी दयित श्रीकृष्ण कर्तृक पश्चात् भाग में वक्षःस्थल के द्वारा आलिङ्गित होकर इन्द्र नीलमणि निर्मित हार के समान प्राणेश्वर श्रीकृष्ण को कण्ठ देश में धारण कर गमन करने लगी ॥१८॥

केशव के कण्ठ देश में जिसका भुजदेश शोभमान है, एवं अलसान्वित गमन मन्थर श्रीकृष्ण की सहगामिनी एक व्रजसुन्दरी के नितम्व देश के मध्यभाग, श्रीकृष्ण नितम्व में संलग्न होकर जिस प्रकार तरङ्ग शोभित होती है, तद्रूप शोभित हुआ था ॥१९॥

प्राणनाथमधि कापि सखिभि-
र्विभ्रती गतिमनङ्गविभङ्ग्या ।
साङ्गभङ्गमनुगांसतटेऽधाद्-
बाहुमूलमुदयत्कुचमूलम् ॥२०॥

तत्क्षणे क्षणत एव बधूनां
मन्मथेन बहुधा विवशानाम् ।
आययौ सपदि काननलक्ष्मीः-
सा यथेप्सितमुपायनभारम् ॥२१॥

मास्म मानिनि कृथाः श्रममुच्चै
स्त्यज्यतां विवशतां सरसाक्षि ।
हेमगौरि गरिमाणमुपेतो-
मान एष भवितैव चरिष्णुः ॥२२॥

एक व्रजसुन्दरी प्राणबन्धु को अधिकार कर स्वीय सहचरी वर्ग के सहित अनङ्गभङ्गी विस्तार पूर्वक गमन कर रही थी, किन्तु गमन समय में सम्यक् रमणेच्छा वर्त्तमान होने के कारण—अङ्ग भङ्गी के सहित प्रफुल्ल कुचयुग शोभित बाहु मूलोत्तोलन करतः अनुगामिनी एक सखी के स्कन्ध में उसने स्थापन किया ॥२०॥

इस समय क्षणकाल के मध्य में ही मन्मथ कर्तृक बहु प्रकार से विवशान्वित गोप बधूगण के सम्बन्ध में ईप्सित उपायन भार के सहित सहसा कानन लक्ष्मी का आगमन हुआ ॥२१॥

हे मानिनि ! हे सरसाक्षि ! हे हेमगौरि ! गुरुतर श्रम न करो, विवशता का त्याग करो, तुम्हारा यह गुरुतर मान स्थायी न रहेगा, अवश्य ही चञ्चल होकर विनष्ट होगा ॥२२॥

पश्य मत्तहरिणाक्षि धुनाना–
पल्लवं तव करस्य समानम् ।
माधुरी कुसुमयौवनरम्या–
वाध्यते मधुकरैरतिलुब्धैः ॥२३॥

धर्षितापि मधुपैरिह मल्ली–
वल्लिरुल्लसितकुट्नलरम्या ।
पाणिवत् किशलयं विधुनाना–
किं शशाक परिमर्द्दशमाय ॥२४॥

पश्य भृङ्गलुलिता दलकम्पै–
रेवमेव परिवक्ति लतेयम् ।
नैव नैव मदभाजि विरंसौ
सुभ्रुवो मनसि तिष्ठति मानः ॥२५॥

हे हरिणाक्षि ! देखो, तुम्हारे करसदृश पल्लव को चञ्चल कर कुसुमरूप यौवन के द्वारा रमणीय माधवीलता अतिलुब्ध मधुकर निकर के द्वारा पीड़ित हो रही है ॥२३॥

प्रस्फुटित कुट्नल अर्थात् कलिका की रम्यमूर्त्ति मल्लीवल्ली मधुकर समूह के द्वारा पीड़िता होकर क्या पल्लव रूप हस्त प्रसारित कर पीड़ादायक मधुकर को विदूरित करने में सक्षम हो रही है ? ।२४।

और भी देखो ! सम्मुखवर्त्तिणी लता भृङ्ग कर्तृक प्रपीड़िता होकर इस प्रकार कर रही है कि—सुभ्रू के मन ग्रहङ्कार युक्त होकर यदि रमणेच्छु होता है, तब कभी भी उस मन में मान रह ही नहीं सकता है ॥२५॥

आश्रवं तमिमाश्लिष कान्तं
मुञ्च मुञ्च सखि मानमसन्तम् ।
कापि भावचतुरा परिहासैः
प्राणनाथमभिकाञ्चिदवादीत् ॥२६॥ (कुलकं)

किं बलप्रियबलोत्तरमध्ये
स्वैरमाचरसि नो ललितानि ।
यत्र चूतलतिकाः करलभ्या
निर्भरं मुकुलिता विलसन्ति ॥२७॥

स्वागतं सखि चिरादसि दृष्टा
माश्लिषेति विकसत्कुचमूलम् ।
कापि भावविवशा रभसाभि-
स्तत्र कामपिलतां परिरेभे ॥२८॥

अतएव हे सखी ! वह यह वशम्वद कान्त है, इसको आलिङ्गन करो, एवं बारम्बार कह रही हुँ. अस्थायीमान को परित्याग करो, भाव विषय में अतीव चातुर्य शालिनी सखी, प्राणनाथ के निकट किसी एक भाव से उक्त वाक्य समूह पूर्वोक्त मानिनी को परिहासच्छल से कही थी ॥२६॥

जिस कानन के मध्य में करलभ्या आम्रलतिका मुकुलिता होकर अतिशय विलसित है, हे सखि ! वहाँ तुम क्यों बलप्रिय श्रीकृष्ण के उत्कृष्ट कानन मध्य में स्वेच्छाचारिणी होकर मेरे निकट ललित विस्तार कर रही हो ?

हे सखि ! सुख से तो आई हो ? बहुत दिनों के बाद तेरी भेंट हुई, आलिङ्गन करो, यह कहकर एक सखी कुचमूल को उत्फुल्ल

सुभ्रु वल्लिविटपेन विकृष्टं
वक्षसोऽञ्चलमलङ्कुरु मुग्धे ।
मा पतेदिह सरोरुहकोष-
भ्रान्तितो मधुकरः सखि मुग्धः ॥२९॥

चन्द्रिकाः किमिह तेन हि रम्या
वाञ्छितं तिमिरमेव भवत्योः ।
यत् कुहूरिति मुहुर्निगदन्तं
कोकिलं कलयसीह सतृष्णम् ॥३०॥

तद्व्रजाम इतएव विदूरं
तिष्ठ साम्प्रतमभिप्रियमेका ।
इत्यलीकवचनारचनाभि-
र्गन्तुमिष्टमतनिष्ट ततोऽन्या ॥३१॥

करके भाव विवश होकर शीघ्र एक लताको आलिङ्गन करने लगी ॥२७।२८॥

हे सुभ्रु ! हे मुग्धे ! तुम लता पल्लव के द्वारा समाकृष्ट वक्षःस्थल को अलङ्कृत करो, किन्तु हे सखि ! मुग्ध मधुकर जैसे पद्मकोष भ्रम से निपतित न हो जाय ॥२९॥

हे सखि ! यहाँ ज्योत्स्ना क्या तुम्हें रमणीय नहीं लगती है ? अन्धकार ही तुम्हें वाञ्छनीय है ? कारण— कुहूकुहू शब्दकारि कोकिल को बारम्बार सस्पृह भाव से अवलोकन कर रही हो ॥३०॥

अतएव तुम कान्त के निकट निर्जन में रहो, मैं जा रही हूँ, इत्यादि अलीक वाक्य कहकर एक सखी ने गमनेच्छा को प्रकाश किया ॥३१॥

एतदेव कुसुमं तव रम्यं
कर्णयोरिति समुन्नतबाहुः ।
कृष्णवक्षसि मिलत्कुचकुम्भा
काचनामुमभिभूषयति स्म ॥३२॥

ऊरुमूलमभिबध्य भुजाभ्या-
मुच्चकैः सुमनसोऽवचिचीषुः ।
काप्युरःस्थलविलग्ननितम्बा
माधवेन कृतहर्षमुदासे ॥३३॥

अम्बुज मुखमिदं तव राधे
कुन्ददामवदना कुसुमैः किम् ।
इत्थमुन्नयता चिवुकाग्रं
प्रेयसी प्रियतमेन चुचुम्बे ॥३४॥

आनता कुचभरैर्मुहुरुच्चैः
पुष्पसंग्रहपरा विकलापि ।

"यह कुसुम तुम्हारे कर्णयुगल में अतिमनोरम है" यह कहकर एक सखी ने भुजद्वय को उत्तलित करके श्रीकृष्ण को भूषणों से अलङ्कृत किया ॥३२॥

एक सखी पुष्पावचयन के च्छल से श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल में नितम्ब संलग्न करने पर श्रीकृष्ण ने अति हर्ष से निज बाहु युगल के द्वारा उसके ऊरुमूल को वेष्टन कर अद्धर्वदेश में निक्षेप किया ॥३३॥

"हे राधे ! तुम्हारा यह मुख साक्षात् पद्म है, एवं दन्तपङ्क्ति भी कुन्द पुष्प के माल्य स्वरूप हैं, तब और पुष्प का प्रयोजन क्या है ? " यह कहकर श्रीकृष्ण ने श्रीराधा का चिवुक—अर्थात् अधर का निम्नभाग को उत्तोलित करके चुम्बन किया ॥३४॥

उत्कराद्गलदुरःस्थलचेला
कापि कृष्णहृदये विजहार ॥३५॥

लीनमप्यलिमवेक्ष्य हरन्ती
केशवं कररुहैरथ वीक्ष्य ।
संभ्रमभ्रमिवशादवशाङ्गी
निर्म्ममज्ज दयितोरसि काचित् ॥३६॥

प्रोज्झ्य फुल्लकुसुमावलिमेतां
कुट्नलेषु निपतिष्यति मुग्धः ।
भृङ्गरागपरवानसि तत्त्वं
रज्यतां मनसि कोहि विवेकः ॥३७॥

श्यामलोऽसि सततं मधुमत्तः
पद्मिनीषु निरतश्चपलोऽसि ।

किसी गोपी—जिसका मध्यभाग कुचभर से आनत है, एवं वक्षःस्थल से उत्क्षिप्त वसन है, वह पुष्प संग्रह हेतु व्याकुल होकर श्रीकृष्ण के सहित विहार करने लगी ॥३५॥

अनन्तर अन्य गोपी श्रीकृष्ण के वर्णसाम्य प्रयुक्त विलीन भ्रमर को देखकर श्रीकृष्ण को ही नख द्वारा ग्रहण कर पश्चात् विलीन भ्रमर को देखकर अतीव आतङ्क से विवशाङ्गी होकर प्रियतम श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल में निमग्ना हो गयी ॥३६॥

हे भृङ्ग ! फुल्लकुसुमावली को परित्याग कर तुम मुग्ध होकर कुट्नल में पतित होकर पराग से रञ्जित हो गये हो, तुम्हारे चित्त में विवेचना शक्ति है क्या ? जिससे तुम अपने को कृष्णराग रञ्जित कर सको ॥३७॥

तुम श्यामल हो, सतत मधुमत्त हो, पद्मिनी समूह में अनुरक्त

चञ्चरीकसदृशोऽसि ततस्त्वं
कस्यचिन्ननु समस्तगुणेन ॥३८॥

संविमर्द्दनसहासहतां नो
वेत्सि मुग्धतम रागपरोसि ।
इत्थमात्तकुतुकं कृतरोषा
कापि कृष्णमपदिश्य जगाद ॥३९॥ (कुलकं)

घ्रातुमागतमवेक्ष्य मुखाब्जं
चञ्चरीकमपरा रभसेन ।
श्रोतुमेव न निरास कराभ्यां
माधवस्य परिहासवचांसि ॥४०॥

मन्थरा तव गतिः सहजैषा
तत्र चेत् प्रतिपदं रमणेन ।

होकर चञ्चलता का विस्तार कर रहे हो, तुम चञ्चरीक सदृश हो, अतएव तुम्हारे में किसी व्यक्ति के निखिल गुणग्राम परिलक्षित हो रहे हैं ॥३८॥

हे मुग्धतम ! पीड़ा सहन करने में स्त्रीगण ही सक्षम हैं, किन्तु तुम अनुरक्त हो, अतएव तुम जानने में अक्षम हो, इस प्रकार किसी गोपी कौतुकच्छल से ईषत् क्रोध करतः श्रीकृष्ण को लक्ष्य कर कहने लगी ॥३९॥

किसी गोपी ने मुखपद्म का आघ्राण ग्रहण करने के निमित्त समागत भ्रमर को अवलोकन कर श्रीकृष्ण के परिहास वाक्य समूह का श्रवण करने का अभिलाषी होकर कौतुक हेतु उसको मना नहीं किया ॥४०॥

"मैं देख रही हूँ—तुम्हारी गति स्वाभाविक मन्थर है, उससे

प्रस्थिता तदिह किं चलितव्यं
पश्य सुन्दरि तदत्र निकुञ्जम् ॥४१॥
य: श्रुतौ लपति ते भ्रमरोऽयं
श्यामलोत्पलदलान्तरित: सन्
नावगच्छसि किमेतदितीदं
कापि काञ्चिदिति सस्मितमूचे ॥४२॥
कीदृशीं स्रजमहं रचयेयं
कम्बुकण्ठि तव कण्ठतटाय ।
इत्यसौ सकुतुकं दयिताया
वक्षसो वसनमाशु जहार ॥४३॥
कापि पुष्पमयकन्दुकवृन्दं
प्राहिणोदघदिपुं परि शश्वत् ।
चन्द्रमोभिरिव तन्मधुरिम्ना–
मौपहारिकममन्दमकार्षीत् ॥४४॥

भी प्रतिपद विलास के सहित गमन कर रहे हो, तब क्या तुम यहाँ चले आओगे ? अतएव यहाँ निकुञ्ज है, अवलोकन करो ॥४१॥

और भी देख रही हूँ—कर्ण में परिहित श्यामवर्ण उत्पल दल द्वारा शरीर को आच्छन्न कर भ्रमर तुम्हारे कर्णमूल में आलाप कर रहा है, तथापि तुम क्यों नहीं जा रहे हो ? यह तुम्हारा कैसा व्यवहार है" यह सब किसी गोपी अपर एक गोपी को कह रही थी ॥४२॥

हे कम्वुकण्ठि ! तुम्हारे कण्ठतट के निमित्त मैंने किस प्रकार माल्य रचना किया हूँ, यह कहकर श्रीकृष्ण—सकौतुक से प्रियतमा के वक्ष:स्थल से वसन अपसारण किये थे ॥४३॥

एक गोपी श्रीकृष्ण के प्रति अनवरत पुष्पमय कन्दुक निक्षेप

फुल्लचूतलतिकापरिरम्भैः
पिञ्जरः पिकयुवा मधुमत्तः ।
मन्मथं कलयतीव विशेषं
मन्मनो विकलमेव बभूव ॥४५॥

माकृथाः कथमपि प्रथयानं
मानमानय मधूनि ददस्व ।
मानयोऽयमभिनाथमजस्रं
मानिनि प्रकटमानवशत्वम् ॥४६॥

पाययस्व मधुराधरसीधुं
जीवय प्रियतमं दयनीयम् ।
नूनमत्र भवती हृदयेशा
कातरं तु हृदयं न हि वेत्सि ॥४७॥

करने पर बोध होने लगा, मानों उसने बहु संख्यक चन्द्र के द्वारा श्रीकृष्ण को आनन्द उपहार प्रदान किया है, ॥४४॥

अनन्तर मधुमत्त युवा कोकिल प्रफुल्ल आम्रलता को आलिङ्गन कर पराग द्वारा पिङ्गलवर्ण होकर मानों मन्मथ को आह्वान कर रहा है, तज्जन्य मेरा चित्त भी व्याकुल हुआ है ॥४५॥

हे मानिनि ! किसी प्रकार से भी मान का विस्तार न करो, मधु लाकर अर्पण करो, किन्तु नाथ को लक्ष्य कर निरन्तर मानिनि होकर रहना, यह नीति कभी भी उत्तम हो सकती है ॥४६॥

अहे ! सुमधुर अधर सुधापान कराओ, दयनीय प्रियतम को जीवित करो, तुम निश्चय ही हृदयेश्वरी हो, यहाँ कातर हृदय को नहीं जान रही हो ॥४७॥

इत्यतीव मृदुलः स्मरमत्तः
श्यामलोऽपि सततं गुरुरागः ।
प्रेयसो गुणवशीकृतचित्तां
चित्तनाथ इतरामभजिष्ट ॥४८॥

भूषितं सुमनसा वपुरासां
काननश्रियमिमां यदहार्षीत् ।
तेन तेन शुशुभेऽतितरां तत्
सद्गृहीतमुपयाति गुणाय ॥४६॥

या द्रवन्ति सुरतश्रमभाजः
सौकुमार्य्यपरभागसदङ्गयः ।
ताश्चिरं वनविहारजखेदात्
स्वेदसिन्धुषु तथैवममज्जुः ॥५०॥

तज्जन्य अति कोमल स्मरमत्त एवं अत्यन्त अनुरक्त श्यामल श्रीकृष्ण —प्राणनाथ होकर भी स्वीयगुण से वशीकृतचित्ता अन्य प्रेयसी का भजन कर रहे हैं ॥४८॥

गोपी समूह ने पुष्प द्वारा विभूषित होकर जब कानन श्री को अपहरण किया है, तब उससे ही उस वपु अतिशय शोभान्वित हुआ है, कारण—सत् समूह जो कुछ ग्रहण करते हैं, वह गुण के निमित्त ही होता है ॥४६॥

सुरत श्रमयुक्त एवं सुकुमारता रूप उत्कृष्टांश में प्रशस्ता गोपीगण स्वेदजल से विगलित प्राय हो रही थीं, वे सब ही पुनर्बार वनविहार श्रम से उस प्रकार से ही स्वेदसिन्धुजल में निमग्न हो गई थीं ॥५०॥

नीलनीरधरकान्त्यमृताढ्यां
विस्फुटाम्बुजमनोरमनेत्राम् ।
भेजिरेऽथ यमुनामलसाङ्ग्यः
प्रेयसन्तनुमिव श्रमभाजः ॥५१॥

स्निग्ध-सान्द्र-घननीलतरङ्गै-
रुल्लसत्-पृषत-पुष्पसमूहैः ।
आससाद सहसा रविपुत्री
केशपाशललितं रमणीनाम् ॥५२॥

ईषदप्यहमुपैतुमशक्तः
सुभ्रु तत्तव तनूमबलम्बे ।
इत्यसावलसमूर्त्तिरथैका-
माश्लिषन्नुपययौ यमुनायाम् ॥५३॥

चुम्बितानि नखदन्तनिपातान्
प्रायशः सरभसं विलपय्य-

अनन्तर परिश्रान्त गोपाङ्गनागण अलसाङ्गी होकर श्रीकृष्ण तनु के समान नील जलधर कान्तिरूप अमृतयुक्ता एवं मनोरम नेत्रतुल्य विस्फुट पद्मशोभिनी यमुना में अवतरण कर गयीं ॥५१॥

उस समय सूर्यपुत्री यमुना स्निग्ध एवं निविड़ जलधर के समान नीलवर्ण तरङ्ग एवं उच्छलित जलकणारूप पुष्प समूह द्वारा सहसा रमणीवृन्द के केशकलाप के समान शोभिता हुई थी ॥५२॥

हे सुभ्रु ! "मैं स्वल्पमात्र भी चल नहीं सकता हूँ, अतएव तुम्हारे तनु को अवलम्बन कर रहा हूँ" श्रीकृष्ण उस प्रकार कहकर अलसमूर्त्ति से एक सखी को आलिङ्गन कर यमुनाके ओर गये थे ।५३।

तौ परस्परजयोत्सुकचित्तौ
सिञ्चतः करजलैर्हृदयेशौ ॥५४॥

वारि वारिततमा करनीरैः
प्रेयसा किमपि नित्यनवीना ।
वारिभिर्मिलति सूक्ष्मदुकूले
कूलमुज्जिगमिषुः किमुदस्थान ॥५५॥

सुभ्रुवोऽधियमुनं श्लथनीव्याः
श्लिष्यता प्रियतमेन सलीलम् ।
स्रोतसापहृतमंशुकमच्छे
वारि गोपितुमिवाङ्गमभाजि ॥५६॥

हावहारि जलमण्डुकलीलां
खेलया मधुरिपौ विदधत्याः ।

श्रीकृष्ण एवं उक्त गोपी परस्पर जयोत्सुक चित्त होकर कौतुक से बहुल रूप में चुम्बन नखराघात दन्ताघात से पलायन परायण होकर परस्पर को हस्त जल के द्वारा सेचन करने लगे थे ॥५४॥

किसी एक नित्य नवीना गोपाङ्गना यमुना के जलमध्य में निज सूक्ष्म वसन जल के सहित मिलित होने पर श्रीकृष्ण के हस्त निक्षिप्त जलताड़ना को सहन करने में अक्षम रही, इससे ही क्या वह यमुना कुल के ओर गमनेच्छु होकर उत्थिता हुई ? ॥५५॥

यमुना मध्य में व्रजसुन्दरी का नीविबन्धन शिथिल होने से आलिङ्गनकारी प्रियतम श्रीकृष्ण स्वविलास स्रोत से अवगत वस्त्र को निर्मल जल में गोपन करने के निमित्त निज अङ्ग को सङ्कुचित किये थे ॥५६॥

लोलशङ्खनिनदैरपरस्य
नृत्यतीव विपुलं कुचयुग्मम् ॥५७॥

पीवरस्तननितम्बनिवेशे
वीचिभिर्विघटनैर्घटनैश्च ।
गण्डशैलपदविस्खलितत्वं
सुभ्रुवामथ ययुः सलिलानि ॥५८॥

कापि कान्तममृताञ्जलिपूरै-
र्लोलशङ्खवलया स्नपयन्तम् ।
धारयन्त्यपि ददौ करकम्पैः
पारितोषिकमुरोरुहनृत्यम् ॥५९॥

एक व्रजाङ्गना शृङ्गाररस सूचक जलमण्डुक लीला का विधान श्रीकृष्ण के सम्मुख में उपस्थित करने पर शरीर चाञ्चल्य वशतः चञ्चल शङ्ख ध्वनि के सहित उस व्रजाङ्गना के विपुल स्तन युगल नृत्य करने लगे ॥५७॥

यमुनाजल विहारिणी व्रजाङ्गनागण के निविड़ स्तन एवं नितम्ब देश तरङ्ग माला के विघटन घटन से पर्वत के उच्च प्रदेश स्थित स्थूल प्रस्तर के उपरि भाग में जलपतन के समान शोभित हुये थे ॥५८॥

श्रीकृष्ण, अञ्जलीपूर्ण जलके द्वारा व्रजाङ्गनागण को अभिसिक्त कर रहे थे, इत्यवसर में एक गोपी ने उनको पकड़ कर हस्त द्वय सञ्चालित करके निज स्तन नृत्य रूप जल सेचन का पारितोषिक दान किया, एवं श्रीकृष्ण को सञ्चालित करते समय गोपी के करस्थित शङ्खवलय चञ्चल होने से उससे सुमधुर झन झन शब्द उद्‌गत हुआ था ॥५९॥

कापि मुग्धरमणीप्रियवक्षः
प्रेप्सुरच्छसलिलेऽप्यगभीरे ।
धुन्वति करदले बहुशङ्कं
प्रेयसः कनकहारलतासीत् ॥६०॥

ऊरुरोधसि चलच्छफरीणां
वृत्तिभिः सभयकौतुकगर्वम् (हर्षं वा) ।
चारुशीत्कृतिलसद्दशनाभिः
पाणिकम्पनमकारि बधूभिः ॥६१॥

सर्वतः करदलाहतिरोह–
द्वीचिवक्षसिरुहानथ तासाम् ।
आससाद सलिलं घनघर्मान्
स्नापयच्छ्रमविनोदपटीयः ॥६२॥

एक मुग्धा रमणी प्रियतम के वक्षःस्थल की अभिलाषिणी होकर श्रीकृष्ण के निकट शङ्ख शोभित करतल को अगभीर अर्थात् स्वल्प परिमित निर्मल जलमध्य में सशङ्क सञ्चालित कर प्रियतम के स्वर्ण निर्मित्त हार के समान शोभिता हो गई थी ॥६०॥

ऊरु के समीप में चञ्चल शफरीगण के इतस्ततः सञ्चलन से व्रजबधूगण भीति कौतुक एवं गर्व के सहित मनोहर शीत्कार शब्द पूर्वक हस्त चालन किये थे, एवं उक्त शीत्कार शब्द प्रयोग कालीन उन सब की दन्त श्रेणी शोभिता हुई थीं ॥६१॥

करतल के आघात से सर्वतोभावेन जिससे तरङ्ग उत्थित हो रही थी, एवं श्रान्ति अपनोदन कुशल उक्त सलिल गोपबधु निकर के घनतर स्वेदजल विशिष्ट स्तन मण्डल को क्षालित कर उसमें संलग्न हुआ था ॥६२॥

तत्र पद्मवदनेति बधूना-
माकलय्य रमणादभिधानम् ।
आननर्त्त नु तरङ्गगमब्जं
सम्पदेव हि सतामुपमापि ॥६३॥

कापि काञ्चनरुचिर्यमुनायाः
श्यामले पयसि भाववशाङ्गी ।
सर्वमङ्गमभिसम्भृतनीलं
कृष्णमप्यनिकटस्थममंस्त ॥६४॥

ओष्ठपल्लवमयावकमक्षि-
क्षीणकज्जलमुरोरुहकुम्भौ ।
वीतरागविलसन्नखरेखौ
प्रेयसा निधुवनान्तमिवैक्षि ॥६५॥

रमण श्रीकृष्ण से व्रजबधूगण का "पद्मवन्दना" नाम सुनकर क्या पद्म समूह तरङ्ग से सञ्चालित होकर आनन्द में नृत्य कर रहे थे, कारण—सज्जनगण का उपमास्थल होना भी साधारण के पक्ष में एक महती सम्पत्ति होती है ॥६३॥

काञ्चन कान्ति एक गोपी भावविवशाङ्गी होकर जो यमुना के श्यामल जल में निज समस्त अङ्ग को गोपन कर जलक्रीड़ा कर रही थी, श्रीकृष्ण, निकट में अवस्थित होने पर भी उनको जान न सकी ॥६४॥

अलक्तशून्य अधर पल्लव, कज्जलहीन नेत्र एवं विलासान्वित वीतराग कुचकुम्भ युगल को श्रीकृष्ण मानों निधुवनान्तरूप में अवलोकन किये थे ॥६५॥

रज्यदक्षि मृदिता वरकान्तिः
सर्वमङ्गमलसालसमासाम् ।
अंशुकं तनुतया तनुलग्नं
प्रेयसस्तदुपका.र बभूव ॥६६॥

कापि पद्मवनिकामभिलीना
याचिता प्रतिपदं रमरणेन ।
उल्लसन्मधुकरालिविरावै-
र्व्यक्तमेव समतर्कि सखीभिः ॥६७॥

काश्चिदत्र कमलानि जिहीर्षुं
पद्मिनीसमुदये मिलिताङ्गीम् ।
निर्भरं बलयिता विसवल्ली-
श्रोरिणरोधसि रुरोध रुषेव ॥६८॥

गोपाङ्गनागण के अरुणिम नयनयुगल, मृदित अङ्गकान्ति अलसाङ्ग एवं अति सूक्ष्म अङ्ग संलग्न बसन भी प्रियतम श्रीकृष्ण के पक्ष में अति उपकारी विलासोपयोगी सिद्ध हुये थे ॥६६॥

एक गोपी पद्मवनिका में अर्थात् क्षुद्रतर पद्मवन के मध्य में लुक्कायित होकर श्रीकृष्ण कर्त्तृक बारम्बार आहूत हुई थी, किन्तु पद्मवनसे समुत्थित मधुकर निकरके झङ्कार शब्दसे अन्यान्य सखीगण सुस्पष्टरूप से अनुमान किये थे कि-श्रीकृष्ण वहाँपर ही हैं ॥६७॥

एक व्रजाङ्गना पद्मिनी समूह में मिलिताङ्गी होकर पद्माहरण कर रही थी, इस समय विसवल्ली ने मानों क्रुद्ध होकर उसके नितम्बदेश को वलयकार से अवरुद्ध किया था ॥६८॥

प्राक् प्रति प्रियतमं श्लथनीव्याः
श्रोतसा शिथिलितं तनुचेलम् ।
तत्क्षणेन सुदृशो विसवल्ल्या
पद्मिनी प्रियसखीव रुरोध ॥६९॥

कापि निःसहतनुः प्रतिकूलं
निह्नुता समुदयन्त्यलसेन ।
प्रेयसा सह सखीभिरमन्दं
वारिभिर्द्विगुणमाकुलितासीत् ॥७०॥

काप्युदेतुमसकृद्यतमाना
कान्तपाणिदलसंयमितापि
ऊरुलग्नशफरीपरिवृत्ति-
त्रासिता तमपराधयति स्म ॥७१॥

श्रीकृष्ण सन्दर्शन से एक व्रजाङ्गना का नीवि बन्धन श्लथ होने से अङ्गस्थ वसन स्त्रोत से शिथिल हो जाने से मानों तत्काल पद्मिनी ने प्रियसखी के समान विसलता के द्वारा उक्त वसन को अवरोध किया था ॥६९॥

प्रतिकुलता के कारण पद्म वन में लुक्कायित किसी एक गोपी निःसहाय होकर शनैः-शनैः समुत्थित हो रही थी, इस समय श्रीकृष्ण उसको सखीगण के सहित आकर जल सेचन के द्वारा द्विगुणतर व्याकुल किये थे ॥७०॥

एक गोपाङ्गना पद्मवन से निष्क्रान्त होने के निमित्त बारम्बार प्रयत्न करने पर भी कान्त के हस्त से अवरुद्धा हुई थी, एवं उक्त पद्म वन में शफरी ऊरुदेश में संलग्न होने से परिवृत्ति होकर श्रीकृष्ण को अपराधी बनायी थी ॥७१॥

सूक्ष्मसार्द्रवसनेन तटान्तं
प्राप्तया कुचयुगं पिदधत्या ।
तादृशं तदपि वीक्ष्य कयाचिद्
व्रीड़याभिरमणं समहासि ॥७२॥

सुभ्रुवोऽथ विषमक्रमभूषा
वस्त्रमात्रकृतयत्नविशेषाः ।
स्नेहनुन्नमलसे रविपुत्र्यै
सत्प्रसादमिव तत्तदकार्षुः ॥७३॥

केशपाशकुसुमैर्मणिहारै-
र्निःसृतैश्चवलयै रसनाभिः ।
मज्जनाद्विगलितैरनुलेपैः
सत्सखीव यमुनापि रराज ॥७४॥

अपर एक गोपाङ्गना सूक्ष्म आर्द्रवस्त्र द्वारा स्तनयुगल को आच्छादित कर तटसीमा में समुपस्थित होकर स्वीय रमण श्रीकृष्ण को अवलोकन एवं स्वयं तादृश आच्छादित स्तनयुगल को निरीक्षण कर लज्जा से सम्यक् हँस पड़ी थी ॥७२॥

सुभ्रू व्रजाङ्गनागण—विषम क्रम से परिहित वसन भूषण में विशेष यत्न परायण होकर यमुना के प्रति मानों प्रसन्नता व्यक्त कर रही थीं, अर्थात् अनेक वसन भूषण ही प्रायः यमुना में निपतित हो गये थे ॥७३॥

व्रजाङ्गनागण के विगलित केशपाश कुसुम, मणिहार, वलय, रसना एवं अवगाहन हेतु अङ्गविगलित अनुलेपन अर्थात् अगुरु मृगमद् प्रभृति द्वारा यमुना सत्सखी की भाँति विराजमान हुई थी ॥७४॥

निर्भरं घनतरङ्गविभङ्गात्
संगलज्जललवः कचपाशः ।
तारकोद्गमनरम्यतराभो
ध्वान्तराशिरिव तत्र रराज ॥७५॥

आनितम्बपतितै रमणीनां
नीलनीरधरसान्द्रतमाभैः ।
आदधे रमणयोः किमिहैक्यं
प्रेमराशिमितयोः कचपाशैः ॥७६॥

निर्भरं मिलितमङ्गलतायां
रूपरूपममृतं बहुपीतम् ।
स्यन्ददम्बुवसनं मृदुसूक्ष्मं
प्रोच्छलत्तदिदमुद्गमतीव ॥७७॥

निविड़ घनाच्छन्न अतएव मनोहर अन्धकार राशि में यदि अनवरत तारकापात होता है तो—आकाश मण्डल जिस प्रकार दृष्ट होता है, यमुना के मध्य में गोपाङ्गनागण के केशपाश से अविरत जलविन्दु निर्गत होने से ततोधिकशोभा हुई थी ॥७५॥

नील-नीरद के समान कृष्णवर्ण नितम्ब पर्यन्त विस्तृत केश कलाप प्रेमराशि सदृश प्रियतम के सहित क्या निज प्रेम की एकता सम्पादन किये थे ? ॥७६॥

अङ्गलता में सम्मिलित मृदुल सूक्ष्म बसन से विन्दु-विन्दु जल निपतित होने से बोध हुआ था, जैसे अपरिमित रूप का पान करने के पश्चात् पुनर्बार उच्छलित अङ्गलावण्य का उद्गिरण हो रहा है ॥७७॥

कापि शीत्कृतिपरा भुजवल्या
स्वस्तिकेन पिदधे कुचयुग्मम् ।
अन्वहं विरहिणौ न भवेता-
मित्यरुद्ध लतया किल कोकौ ॥७८॥

रत्नभित्तिषु निजप्रतिविम्वै-
र्भूयसीं तनुरुचिं कलयन्त्यः ।
यत्र विस्मयवशं रभसेषु
प्राप्नुवन्ति चकितैणदृशस्ताः ॥७९॥

प्रेयसा परिहृते तनुचेले
दीप इत्यभिनिरीक्ष्य पिधित्सुः ।
यत्र रत्नकिरणान् प्रति बाला
सत्रपाजनि चिरं प्रतिविम्वैः ॥८०॥

एक व्रजसुन्दरी ने शीत्कार पूर्वक स्वस्तिकासन के समान भुजलता के द्वारा कुचयुगल को आच्छादन किया था, "किन्तु चक्रवाक् मिथुन जैसे प्रतिदिन विरही न हो" यह मानकर भुजलता के द्वारा चक्रवाक् मिथुन को आच्छादित नहीं किया था, ॥७८॥

जिन सब के नेत्र युगल चकित अर्थात् भीत मृग के समान चञ्चल वे सब हरिणाक्षी व्रजाङ्गनागण रत्न गृह भित्ति में निज प्रतिविम्व के द्वारा अङ्गकान्ति को अतिशय रूप में देदीप्यमान देख कर हर्षभर से विस्मयाकुल हुई थीं ॥७९॥

प्रियतम श्रीकृष्ण के द्वारा वसन अपहृत होने से एक व्रजबाला भवनस्थ रत्नकिरण समूह को दीप मानकर आच्छादन करने में उत्सुक होकर स्वीय प्रतिविम्व के द्वारा अतिशय लज्जित हुई थी ।

सुस्मितैर्हिममयूखमयूखैः
संश्रवन्त्यनिशमिन्दुमणीनाम् ।
वेदिरैक्षि किल यत्र पयोभिः
स्फाटिकैर्विरचितेति बधूभिः ॥८१॥

सुभ्रुवां चरणपल्लवपातै-
र्विम्ववत्यनवगाहमगाधात् ।
शोणरत्नसमलङ्कृतगर्भा
दृश्यते स्फटिकभूरपि यत्र ॥८२॥

यत्र चित्रलिखितैर्मणिभित्तौ
कीरकोकिल-मयूर-कपोतैः ।

अर्थात् श्रीकृष्ण वस्त्र हरण करने पर "मैं नग्ना हो गई हूँ" इस प्रकार विवेचना से प्रदीप ज्ञान से रत्न किरण समूह को आच्छादित करने में प्रयत्नवती होकर उस रत्न में निजाङ्ग प्रतिविम्व को देखकर लज्जिता हो गई थी ॥८०॥

सुस्मित अर्थात सुमधुर हास्य के समान चन्द्र किरण से चन्द्र कान्तमणि नियत गलित हो रही है, सुतरां गोपबधूगण गृहस्थित चन्द्रकान्तमणि निर्मित वेदी को स्फटिक प्रस्तर तुल्य निर्मल जल मान कर अवलोकन करती थीं ॥८१॥

सुनयनी व्रजाङ्गनागण के पादविन्यास से भवनस्थ प्रतिविम्व युक्त स्फटिक भूमि भी "रक्तवर्ण रत्न के द्वारा जैसे मध्य भाग अलङ्कृत हुई है" इस प्रकार प्रतीत होती थी, एवं पादपल्लव की रत्नप्रभा इस प्रकार गभीर प्रतीत होती थी, स्फटिक भू-भाग अतल स्पर्श हो गया है ॥८२॥

गृह की मणिभित्ति में चित्रित कीर—अर्थात् शुकसारिका, कोकिल, मयूर कपोत प्रभृति को सजीव प्राणी मान कर अन्यान्य

जीववद्भिरिव गेहसदोऽन्ये
ते त एव सहसं प्रलपन्ति ॥८३॥
यत्र चित्रपरपुष्टबधूनां
चारुचञ्चुपुटमम्वतिमुग्धाः ।
बालचूततरुमञ्जरिकालि-
गृंह्यतामिति मुहुः प्रलपन्ति ॥८४॥
उन्मिषद्विविधरत्नमयूखै-
र्यंत्र नित्यमितरेतरपृक्तैः ।
चारुनिर्मिति मनोज्ञमयत्न-
स्वस्तिकादि परिकर्म विभाति ॥८५॥
उल्लसन्मरकताश्ममणीनां
राजिषु प्रतिपदं व्रजबालाः

गृह निवासीगण "यह सब हमारे परिचित हैं" मान कर आलाप करते थे ॥८३॥

भवन में चित्रित कोकिल बधूगण के मनोज्ञ चञ्चुपुट को देख कर मुग्ध होकर उसके मुख के सन्निकट में जाकर "अभिनव चूत मञ्जरी अर्थात् आम्र मुकुल ग्रहण करो" इस प्रकार बारम्बार ललनागण कहती थीं ॥८४॥

गृहस्थित विविध रत्न किरण समूह नित्य समुत्थित होकर अन्यान्य किरण के सहित मिलित होने पर उससे निर्माण कौशल सुदृश्य एवं अयत्नसिद्ध स्वस्तिक प्रभृति का प्रकाशन स्वतः ही होता था ॥८५॥

व्रजवालागण-गृहस्थित मरकतमणि श्रेणी को अवलोकन कर क्रोड़ से मृग शिशु को अवतारित करतः सुकोमल बाहु युगल के द्वारा

अङ्कतः शिशुमृगीं मृदुदोर्भ्यां
प्रेरयन्ति किल यत्र सुखेन ॥८६॥

शोणरत्नमयवीथिषु काश्चि-
द्भूषणाय मुदिताः स्वमभीक्ष्य ।
यत्र कुङ्कुमरसेन कदाचि-
न्नाङ्गरागमनुरागत ईषुः ॥८७॥

यत्र कल्पतरवो विविधानां
ज्योतिषां व्यतिकरैः सुमणीनाम् ।
उच्चकैर्ज्वलदमन्दशिखाग्रै-
र्मण्डिता इव बभुर्वरदीपैः ॥८८॥

पक्वदाड़िमधिया शुकशावा-
स्तेषु शोणमणिषूपचरन्तः ।

तृण भोजन कराने के निमित्त उसको मरकत श्रेणी के ओर आनन्द से प्रेरण करती थीं ॥८६॥

उक्त भवन में एक रत्नमय वीथि में भूषण परिधान करने के निमित्त प्रस्तुत होकर आनन्द से देखा कि—उसका प्रत्यङ्ग रक्तमणि प्रभा रञ्जित हुआ है, अतएव—उसने पुनर्बार कुङ्कुम से अङ्गराग करने की इच्छा नहीं की ॥८७॥

गृह स्थित कल्पवृक्ष समूह विविध शोभन मणिगण के किरण पटल से मण्डित होने से बोध होता था कि—जैसे उसके शिखाग्र समुज्ज्वल है, एवं वृक्ष समूह समुन्नत एवं सुदृश्य तादृश दीप माला से ही विभूषित होकर शोभित थे ॥८८॥

शुकशावकगण गृहस्थित रक्तवर्ण मणिभित्ति में सुपक्व दाड़िम

नानुभूय चरणाहतिभिर्नो
चञ्चुमादधति यत्र कदापि ॥८९॥

पुष्पमिच्छति न हीरकबुद्ध्या
हीरकं श्रयति पुष्पधियैषः ।
यत्र दैववशतो मधुपत्वं
गच्छति स्म मधुपः खलु मौग्ध्यात् ॥९०॥

एकतः स्फटिकपाटलगौरै-
रन्यतो मरकतद्युतिभिन्नैः ।
चन्द्रिकातिमिरयोरिव वीथी
यत्र चारुसलिलैः किल वापी ॥९१॥

स्फाटिकं तटमभि प्रतिमग्नः
प्रोथितो द्युपतिरत्नतटान्ते ।

ज्ञान से विचरण पूर्वक पक्व दाड़िम का आस्वाद अनुभव न करके भी कदापि पदचालन नहीं करते थे ॥८९॥

जिस भवन में मधुपगण विमुग्ध होकर दैववशतः मधुपत्व प्राप्त होता है, अर्थात् प्रायशः मधुपान में असमर्थ होते हैं, कभी तो हीरक बुद्धि से पुष्प को ग्रहण नहीं करते हैं, कभी तो हीरक को पुष्प बुद्धि से ग्रहण करते हैं ॥९०॥

एकदिक्—स्फटिक प्रभा से गौरवर्ण है, अपरदिक्—मरकत प्रभा से उद्भासित है, उससे वापी समूह ज्योत्स्ना रञ्जित एवं पथ समूह तमसाच्छन्न हुये थे ॥९१॥

उक्त निलय में एक चक्रवाक्- स्फटिक प्रस्तर के किरण को

निर्भरं विलपति प्रतिकान्तां
यत्र चारु सरसीमभि कोकः ॥९२॥

भूषणाय विविशुर्लघुखेलं
तं मनोरमविशालविचित्रम् ।
आलयं कुवलयामलनेत्रा-
श्चन्द्रिका इव सुधामयसिन्धौ ॥९३॥

पञ्चदशभिः कुलकं ॥

श्रीमद्भिः परभृत-वर्हि-कीर-हंसैः
सत्पारावत-मधुपावली कपोतैः ।
अन्योन्यस्वपरिवर्द्धतोऽत्यपूर्वं
संभेजे श्रवणरसायणत्वमुच्चैः ॥९४॥

लक्ष्य कर जलभ्रम से वहाँ मग्न हो गया था, एवं पुनर्बार द्युपति सूर्यकान्त मणि के समीप में उत्थित होकर सरोवर ज्ञान से निज प्रेयसी चक्रवाकी को आह्वान पूर्वक विलाप करने लगा था ॥९२॥

नीलोत्पल तुल्य निर्मल लोचना व्रजाङ्गनागण—उक्त विशाल विचित्र आलय में भूषण परिधान हेतु सुधासिन्धु शशधर चन्द्रिका के समान मन्द-मन्द गति से गमन करती थीं ।

"रत्नभित्तिषु" श्लोक से आरम्भ कर "भूषणाय विविशुः" पर्यन्त पञ्चदश श्लोकात्मक कुलक के द्वारा गृह वर्णन है ॥९३॥

परम मनोहर कोकिल, मयूर, शुक, हंस प्रशस्त पारावत भ्रमर श्रेणी एवं कपोतगण परस्पर निज कण्ठस्वर वृद्धि करतः अपूर्व श्रवण सुख उत्पादन किये थे ॥९४॥

उद्गच्छन्तीष्वथ वरबधूष्वालयान्तेषु जाता
नानापुष्पैः सुरभिमधुरैः कल्पवल्ल्यः समन्तात् ।
चक्रुर्नीराजनमिव मुहुः कूजितैः कोकिलानां
संकुर्वत्यो जय जय जयेत्युच्चकैर्हर्षनादम् ॥९५॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये
नवमः सर्गः ।

व्रजबधूगण उक्त भवन में उपस्थित होने पर गृहजात कल्पलता समूह व्रजबधू निकर को मधुर सुरभि विशिष्ट विविध पुष्प द्वारा मानों नीराजित किये थे, एवं मुहुर्मुहुः कोकिलगण के कूजन से ही आरात्रिकस्थ हर्ष सूचक जय-जय शब्द सम्पन्न हुआ था ॥९५॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये
नवमः सर्गः ।



दशमः सर्गः

मालतीकुसुमतल्पमनल्पं
सोपवर्हमभिसंभृतवाञ्छाः ।
मण्डनार्थमथ मन्दिरमध्यं
मण्डितं व्यरचयन्मदिराक्ष्यः ॥१॥

सौरभोद्यदसितागुरुधूपै-
र्धूपितं निरवकाशविकाशैः ।
सञ्चरत्तरशशित्रसरेणु-
व्याप्तमाप्तगुरुगौरवगन्धम् ॥२॥

इत्थमुत्थितवती रतिभूमौ
वीक्ष्य गोकुलबधूर्दिननाथः ।
वर्द्धतां निधुवनोन्नतिरासा-
मित्यपास्तपटिमास्तमियाय ॥३॥

चञ्चललोचना व्रजाङ्गनागण—उपवर्ह के सहित मालती पुष्प की प्रशस्त शय्या रचना करने की अभिलाषिणी होकर भूषणार्थ मन्दिर के मध्यभाग को एतादृश सज्जित किये थे कि—उससे उद्गत सौरभ सम्पन्न कृष्णागुरु धूप के द्वारा वह सुवासित हुआ था, एवं गवाक्षजाल के द्वारा प्रविष्ट शशधर चन्द्रिका भी समधिक सौरभान्वित हुई थी ॥१-२॥

दिननाथ भास्कर गोकुलबधूगण को रतिभूमि में उपस्थित देखकर "इन सब की निधुवनोन्नति हो—अर्थात् शृङ्गार विलास वृद्धि हो" इस प्रकार विवेचना कर अपास्त पटिमा हो गये थे, अर्थात स्वीय किरण माला को संयत करके अस्ताचलावलम्बी हो गये थे ॥३॥

सर्वतः प्रसृमरास्तपतो मे
निर्भरं य इह ते यदि हेयाः ।
कीदृशैरहह तद्भवितव्यं
कर्षतीति किरणान् नु पतङ्गः ॥४॥

चन्द्रमाः स्वपिति तारकगेहे
कीदृशी त्वमिति वादशमाय ।
वारुणीदिगबलारुणमर्कं
लोहपिण्डमिव तप्तमधत्त ॥५॥

द्योतितानि विरचय्य तथान्य-
द्वीपवर्त्तिनि दिवाकररत्ने ।
अभ्यपूरि जगदुच्चतमिस्त्रं
श्वासधूमपटलैर्भुजगानाम् ॥६॥

"जो सब सर्वदेश में विस्तृत होकर मेरा तपनत्व सुसिद्ध करते रहते हैं, अर्थात् मेरा ताप प्रदत्व का सम्पादन कर रहे हैं, उन सब को यदि मैं परित्याग करूँ तब कैसा होगा ? अर्थात् अत्यन्त अन्याय कार्य होगा" इस प्रकार विमर्श करके ही क्या— सूर्यदेवने स्वीय किरणजालों को समेट लिया है ? ॥४॥

"शशधर—तारागृह में शयन करते हैं, तुम कैसी हो, अर्थात् तुम उनकी कैसी पत्नी हो, निज पति शशधर को भी अन्य के घर में देख रही हो ?" इस प्रकार अपबाद को उपशमित करने के निमित्त ही मानों पश्चिमदिक्रूप अबला ने अस्तगमनोन्मुख लोहितवर्ण सूर्य का उत्तप्त लौहपिण्ड के समान धारण किया ॥५॥

दिवाकर रूप रत्न—अपर द्वीप में किरणमाला का विस्तार कर गमन करने पर अर्थात् सूर्यदेव अस्तगत होने से भुजङ्गगण के

दिग्गजाः किमु परस्परयुक्ताः
किं पुनर्दिगचलाश्चलपक्षाः ।
इत्थमूहितविकारविशेषं
ध्वान्तमत्र न ममौ जगदण्डे ॥७॥

किं तमालतरुभिर्जगदेत-
न्निर्मितं ननु किमञ्जनपुञ्जैः ।
रञ्जितं नु हरकण्ठमयूखैः-
किन्वभूदिह दिगन्तरलोपः ॥८॥

पद्मिनीजनवियोगसुतप्तो
निर्ममज्ज जलधौ दिननाथः ।
सान्द्रधूमपटलैरिव तस्मा-
दुद्गतैर्जगदपूरि तमोभिः ॥९॥

निश्वासधूम से जगन्मण्डल अन्धकार से समाच्छन्न हुआ ॥६॥

सूर्यास्त के अनन्तर प्राणिगण का विलाप वर्णन कर रहे हैं। "दिग्गज समूह क्या परस्पर युक्त हो गये, अथवा दिक् पर्वत समूह क्या परस्पर पक्ष सञ्चालन कर रहे हैं" जन समूह के मध्य में इस प्रकार वितर्क उपस्थित होने पर अन्धकार जगन्मण्डल में अपरिमित हो उठा ॥७॥

यह जगत् क्या तमालतरु के द्वारा अथवा अञ्जनपुञ्ज से निर्मित किम्बा नीलकण्ठ के कण्ठकिरण से अनुरञ्जित है यह क्या अन्धकार के द्वारा दिक् समूह का मध्यभाग विलुप्त हो गया ? ॥८॥

हाय ! पद्मिनी को विरह से ही क्या सूर्य्यदेव अत्यन्त सन्तप्त होकर लोहितवर्ण धारण करतः जलनिधि में निमग्न हो गये ? एतज्जन्य ही क्या निविड़ धूमपटल के समान अन्धकार राशि उत्थित

पतिताः किमु दिशो गगनं वा
भ्रंशितं किमु समुद्गमिता भूः।
लोपितं किमथ वा खलु विश्वं
स्निग्धसान्द्ररुचिरैस्तिमिरौघैः १०॥

सम्मदादिव परस्परमाशा-
योषितो मृगमदोत्करचूर्णैः।
मन्मथोन्मथितमुग्धबधूनां
रञ्जयन्ति पुरकेलिवनान्तम् ॥११॥

आगतः किमु न वेत्यथ पत्यु-
र्वीक्षणोत्कमनसा रभसेन।
पूर्वदिक्तटमुखात् स्मितमुग्धा-
च्छ्यामया तिमिरचेलमुदासे ॥१२॥

होकर क्या जगन्मण्डल में व्याप्त हो गई है ? ॥९॥

अथवा क्या किसी ने दशदिक् को निपतित कर दिया ? गगन क्या गिर पड़ा है ? भूमण्डल क्या ऊर्द्ध्वदेश में उठ गया है ? अथवा विश्वराज्य क्या सुस्निग्ध निविड़ एवं रुचिर अन्धकार राशि में विलुप्त हो गया ? ॥१०॥

अतिशय आनन्दित होकर ही मानों दिक्‌रूप अङ्गनागण परस्पर अन्धकार स्वरूप मृगमद चूर्ण के द्वारा मदनोन्मत्त मुग्धबधू वर्ग के अग्रवर्ति केलिकानन के मध्यदेश को रञ्जित कर रही हैं ॥११॥

पति सूर्य-समागत हुये हैं अथवा नहीं ? इस प्रकार विवेचना कर पति सन्दर्शनार्थ अत्यन्त उत्कण्ठित मनोवेग से समुदभूत मधुर हास्य से जो अतिशय मनोज्ञ है, पूर्वदिगङ्गना का तादृश मुखमण्डल से श्यामा ने अर्थात् रजनी ने तिमिर रूप अबगुण्ठन वस्त्र को उत्तोलित

आश्लिषन्नतितरां तुहिनांशुः
प्रांशुना सुललितेन करेण ।
यामिनी मृगदृशः सुपिनद्धं
ध्वान्तनीलवसनं समुदासे ॥१३॥

अङ्कशैवलविभूषितपृष्ठो
बिभ्रदल्पतरभानुमृणालम्
पूर्वदिक्तटसरोवरमध्या-
दुन्ममज्ज शनकैः शशिहंसः ॥१४॥

रौप्यसम्पुट इवेन्दुरमन्दो
दिग्बधूनिचयमण्डनहेतुः ।
मण्डनार्थमथ मुग्धबधूना-
मुत्ससर्प विकिरन्नमृतौघम् ॥१५॥

किया, अर्थात् चन्द्रोदय के प्रारम्भ में पूर्वदिकस्थ अन्धकार विदूरित हो गया ॥१२॥

शशधर ने स्वीय सुदीर्घ एवं सुललिल किरणरूप करके द्वारा यामिनी रूप मृगलोचना कामिनी का अतिशय आलिङ्गन करतः यामिनी का परिहित तिमिररूप वसन को उत्क्षिप्त किया ॥१३॥

कलङ्कशैवाल जिनका पृष्ठदेश विभूषित है, उन शशधररूप राजहंस किरणरूप मृणाल सञ्चय करतः पूर्वदिक्रूप सरोवर के मध्य शनैः-शनैः उत्थित हुये हैं ॥१४॥

दिग्बधूगण के भूषण हेतु एवं रौप्य निर्मित सम्पुट सदृश पूर्ण मण्डल शशधर मुग्ध बधूवर्ग को विभूषित करने के निमित्त अमृत प्रबाह में निक्षेप करके उद्गत हुये हैं ॥१५॥

वासितानि पटवासविमर्द्दै-
र्निर्भरं तनुसुखानि तनूनि ।
अंशुकानि दधिरे मदिराक्ष्यो
मान्मथानि किमु शुद्धयशांसि ॥१६॥

अंशुकाञ्चललसन्निविड़ोरुः
सुभ्रुवां कनकसौभगकम्रः ।
मन्मथस्य नगरी सपताक-
स्तम्भदम्भमहरत् सविशेषम् ॥१७॥

गन्धवासितसितांशुकखण्डै-
र्मार्ज्जनाय समलङ्कृतगर्भः ।
राजतिस्म सुदृशां कचपासः
कौमुदीमिव पिवंस्तिमिरौघः ॥१८॥

मदिराक्षी व्रजाङ्गनागण पटवास अर्थात गन्ध चूर्णादि वस्तु के विमर्दन से सुवासित एवं सातिशय अङ्ग सुखद सूक्ष्म वसन धारण करके ही क्या मन्मथराज की विशुद्ध यशोराशि को धारण किये हैं? ॥१६॥

सुलोचना व्रजाङ्गणागण का सौभाग्य सुन्दर वसनाञ्चल सुशोभित निविड़ोरुदेश, मन्मथ नगरी का पताका युक्त स्तम्भदण्ड का वहन सविशेष रूप से करने लगा ॥१७॥

गन्धवासित शुभ्र वसनखण्ड द्वारा मार्जनार्थ सुकेशी रमणीवृन्द के केशकलाप का मध्यदेश सम्यक् अलङ्कृत होने से बोध हुआ मानों तिमिर राशि-ज्योत्स्ना पान कर शोभित है ॥१८॥

मृष्टमुक्तचिकुरा बलयन्ती
चारु-वामकरजैरलकाग्रम् ।
दर्पणार्पित-विलोचनलक्ष्मीः
कापि कामनगरीव रराज ॥१९॥

सत्प्रसाधनिकया लघुहेलं
मृष्टमुक्तचिकुरा वरनारी ।
अन्वलिप्त वपुरुत्तमसान्द्रैः
कुङ्कुमच्छिदुरचन्दनपङ्कैः ॥२०॥

सान्द्रचन्द्रमृगनाभिविभिन्नः
कौङ्कुमेन च रसेन विमुग्धः ।
आदधे वपुसि मुग्धबधूभि-
श्चन्द्रपङ्क इव चन्दनपङ्कः ॥२१॥

एक गोपाङ्गना सुमार्जित केशकलाप विमुक्त करके एवं मुखकान्ति को दर्पणोपरि स्थापन कर मनोहर वाम नखर द्वारा अलक अर्थात् ललाट में पतित क्षुद्र-क्षुद्र चूर्णीभूत् केश निकर को निरूपण करतः मानों कामनगरी के समान शोभिता होने लगी ॥१९॥

एक परमा सुन्दरी व्रजबाला ने परिस्कृत चिकुरराशि को विमुक्त करके अतीव सविलास चित्त से उत्कृष्ट एवं निविड़ कुङ्कुम छेद युक्त चन्दन पङ्कद्वारा शरीर को विलेपित किया ॥२०॥

मुग्ध व्रजबधूगण ने निविड़ कर्पूर एवं मृगनाभि युक्त तथा कुङ्कुमरस विशिष्ट चन्दनपङ्क को चन्द्रपङ्क अर्थात् सुधाकर खण्ड के तुल्य समान शरीर में धारण किया ॥२१॥

भूषणस्य च विभूषणमङ्गं
तन्न किमेभिरिति कापि वराङ्गी।
नाभजत् किमपि किन्त्वनुभेजे
केवले सदनुलेपनचेले ॥२२॥

स्पर्शनव्यवधिरेव किमन्य-
न्माकृथाः सुतनु तत्तनुबाधाम्।
इत्यदः प्रियसखीवचनान्ते
नानुलेपमपि काचिदियेष ॥२३॥

लोचनद्वयरुचैव समीपं
प्राप्तया श्रवणयोरतिशोभा।
जायते किममुनेति कयाचि-
न्नादधे कुवलस्य वतंसम् ॥२४॥

"शरीर- भूषण को विभूषित करता है" अर्थात् अङ्ग अलङ्कार को अलङ्कृत करता है, तब और भूषण धारण की प्रयोजनीयता क्या है? यह कहकर किसी उत्तमाङ्गी व्रजाङ्गना ने भूषण परिधान न करके केवल अनुलेपन एवं वसन धारण किया ।२२।

"अनुलेपन से केवल स्पर्श सुख का व्यवधान व्यतीत अपर कुछ नहीं होगा? अतएव हे सुतनु! बाधा उत्पन्न न करो" किसी गोपाङ्गना ने प्रियसखी के उक्त वाक्य सुनकर अङ्ग में अनुलेपन नहीं किया ॥२३॥

"समीपवर्त्तिनी लोचन शोभा से श्रवण द्वय शोभित हैं, कर्ण भूषण का और प्रयोजन क्या है" इस ज्ञान से एक व्रजसुन्दरी ने कुवलय का कर्णभूषण धारण नहीं किया ॥२४॥

मुक्तमुक्तमपि कैशिकमेत-
च्छोभते यदपि मुग्धसखीभिः ।
स्वीयशिल्पकलनादिव युक्त्या
बन्धनं तदपि चारु वितेने ॥२५॥

दर्पणस्य खलु दर्पणमेत-
ल्लोच्यतां कथमिति प्रवराङ्गी ।
अङ्गमैक्षत सविभ्रममङ्गे
स्वच्छमच्छतरहाटकगौरे ॥२६॥

घूर्णितारुणविलोचनभङ्ग्या
सादरं पुलकितो हृदयेशः ।
प्रेयसीविहितवेशविलासं
शश्वदैक्षत निजं सकलाङ्गम् ॥२७॥

एक गोपाङ्गना ने देखा कि—केशबन्धन मुक्त होने से अर्थात् केश आलुलायित होने से भी यद्यपि अतिशय शोभा होती है, तथापि शिल्प कौशल प्रदर्शन करना उचित है, इस प्रकार विवेचना कर अतीव कौशल के सहित सुन्दरी सखीगण के सहित निज केशकलाप का अतीव मनोहर रूपसे बन्धन किया ॥२५॥

"यह अङ्ग अवश्य ही दर्पण का दर्पण है, अतएव दर्पण को क्या देखें" इस बुद्धि से एक व्रजसुन्दरी ने विभ्रम अर्थात् अतीव हावभाव के सहित निर्मल सुवर्ण वर्ण निजाङ्ग में निजाङ्ग का दर्शन करने लगा ॥२६॥

हृदयेश श्रीकृष्ण घूर्णायमान अरुण विलोचन भङ्गी से पुलकित होकर प्रेयसी विहित वेशविन्यास धारण करतः नियत निजाङ्ग समूह का अवलोकन करने लगे थे ॥२७॥

इत्थमात्तवसनाः कृतभूषा-
स्ता विभूषयितुमासत भूयः ।
चन्द्रमा मधुमदः कुसुमेषुः
के भवन्ति महतां न सहायाः ॥२८॥

निर्भरः शशिमयूखसमूहो
लोपितद्रुमपुरादिविभागः ।
तूर्णमाविरभवत् कमनीयो
मान्मथः किमपि राजतसर्गः २९॥

चित्तनिर्वृतिकरीः शशीभासो
भासुराः सपदि वीक्ष्य बधूभिः ।
आदधे मनसि मन्मथलक्ष्मी-
रासवेन तदनन्तरमाभिः ३०॥

इस प्रकार व्रजबधूगण रसना अर्थात् चन्द्रहार ग्रहण पूर्वक विविध भूषा से विभूषित होने पर स्वीय कौमुदी से उन सब को पुनर्बार भूषित करने के निमित्त चन्द्रमा उदित हुये थे, कारण–चन्द्र, मधुमद कुसुमेषु के मध्य में कौन व्यक्ति उत्कृष्ट व्यक्ति का सहायक नहीं होता है ? ॥२८॥

कौमुदी माला परिव्याप्त सम्पूर्ण शशधर मण्डल से वृक्ष नगरादि समाच्छादित होने से प्रतीत हुआ कि—मानों कमनीय कान्ति कन्दर्प राज का राजत सर्ग समुद्भूत हुआ है ॥२९॥

चन्द्रोदय के पश्चात् व्रजाङ्गनागण चित्ताह्लाद कर शशधर के किरण कलाप को अवलोकन करतः आसव अर्थात् मधुपान से उन्मत्त चित्त होकर मनोमध्य में मन्मथलक्ष्मी की शोभा को धारण किये थे ॥३०॥

साधुरीतिरियमेव बधूनां
माधुरीति मधुरो मधुबारः ।
तां पुनः प्रथयति स्म विशेषं
मान्मथैर्नवविकारविभङ्गैः ॥३१॥

लोहितोत्पलदलं प्रति खेल-
च्चञ्चरीकघटयेव चिराय ।
अन्वरञ्जि नयनाञ्जनलक्ष्म्या
सुभ्रुवां प्रियमनः स्मरकेण ॥३२॥

क्लान्तकान्तरमणीमुखविम्बैः
पद्मवासित इवासव एषः ।
पातुमाहितरसस्य दृशाभूत्
प्रेयसोऽरुणरुचापि च पीतः ॥३३॥

बधूगण की यह ही साधुरीति है, एवं मधुबार की अति मधुर परिपाटी भी अनिमधुर है, उसको भी तिरस्कार करता है, मन्मथ जनित अभिनव विकार विभङ्ग ॥३१॥

रक्तोत्पल के ऊपर भ्रमर चञ्चल होने से जिस प्रकार शोभा होती है, तद्रूप कृष्णवर्ण तारका शोभित नेत्रकटाक्ष द्वारा स्मरपीड़ित व्रजाङ्गनागण ने प्रियतम श्रीकृष्ण के चित्त को अनुरञ्जित किया ॥३२॥

"यह मधु, क्लान्त कमनीय रमणी के मुख प्रतिबिम्ब द्वारा मानों पद्मवासित हुआ है" इस ज्ञान से पान करने के निमित्त प्रियतम श्रीकृष्ण की जिह्वा में रस आविर्भूत हुआ था, किन्तु उक्त प्रतिबिम्बित मधु के प्रति अनिमेष नयनों से दृक्पात करने पर मानों प्रियतम के नेत्रों ने ही उसका पान किया ॥३३॥

आययुः किमु परस्परयोगात्
सुभ्रुवोऽधरमधूनि मधूनि ।
स्वादुमिष्टमधिकं यदमादी-
सन्मुखात् परिपिबन् हृदयेशः ॥३४॥

यद्वचः श्रवणवर्त्मन यातं
प्रेयसः सपदि सापि नवीना ।
वारुणीमदवशादवदंशं
तत्सदोष्ठमतनिष्ट निकामम् ॥३५॥

या शिरीषकुसुमादपि मृद्वी
सौरभं सुखमुवाह सदैव ।
दुःखवन्मदवशादवसादः
कीदृगित्यपि न वेद चिरं सा ॥३६॥

परस्पर योग के कारण ही क्या सुलोचना कामिनीगण ने मधुतुल्य सुस्वादु मधुपान किया ? कारण—प्राणेश्वर भी इष्टस्वादु मधु को प्रियतमा के वदन लेकर पान कर अतिशय उन्मत्त हो गये हैं ॥३४॥

जो वाक्य कदापि कर्ण गोचर नहीं हुआ है, अर्थात् प्रियतमा प्रियतम के ओष्ठ में दन्ताघात करती है—यह अतीव असम्भव है, तथापि नवीना रमणी ने वारुणी पान की मत्तता हेतु प्रियतम के ओष्ठ को दन्ताघात चिह्न से सातिशय शोभित किया ॥३५॥

शिरीष कुसुम से भी कोमलाङ्गी जो कामिनी नियत सुरत सुख लाभ करती रहती है, वह दुःखप्रद मत्तता हेतु अवसाद किस प्रकार होता है, उसको जान न सकी ॥३६॥

वारुणीमभिगतो द्रवभावं
मन्मथः प्रविशतीव बधूषु ।
अङ्गमङ्गमभितः किल सर्व-
ग्रन्थयः शिथिलतां यदुपेयुः ॥३७॥

दत्तमात्ममुखतो मधु भूयः
किं जिघृक्षुरभिपीड्य रदाग्रैः ।
भर्त्तुरोष्ठदलदंशपरापि
प्रेयसी रचयतीव विदंशम् ॥३८॥

वारुणीमदवशादवशाङ्गी
भ्रश्यदप्यभिविवेद न वासः ।
पाणिरेव तदरुद्ध नितान्त-
न्यासतः किल तदेव विचित्रम् ॥३९॥

मानों मन्मथ ही द्रवत्व प्राप्त कर वारुणी रूप में व्रजबधूगण में प्रविष्ट हो गया है. कारण-वारुणी पान से बधूगण के अङ्ग प्रत्यङ्ग की ग्रन्थि समूह शिथिल हो गईं ॥३७॥

मधुमत्त कामिनीगण निज मुख से मधु प्रदान करतः पुनर्बार उस मधु को लेने के निमित्त दन्ताग्र के द्वारा भर्त्ता के ओष्ठोपरि दंशन करके पुनर्बार विदंश का आस्वादन करने लगीं, अर्थात् सुस्वादु वस्तु ज्ञान से कान्त के मुख में दशनाघात करने के निमित्त उद्यता हुईं ॥३८॥

कतिपय रमणी मदमत्तता से अवसाङ्गी होकर अङ्ग से स्खलित वसन का अनुसन्धान कर सकीं, किन्तु उक्त रमणीगण कर्तृक निक्षिप्त वस्तु को पाणि कमल ने ग्रहण किया, यह अतीव आश्चर्य है ॥३९॥

एकमस्ति मनसीतरदुक्तं
तत्र च प्रतिपदं स्खलनं हि ।
ईहितं किमपि वाञ्छितमन्यत्
किं प्रमाद इव भाति मदोऽयम् ॥४०॥

अर्द्धमर्द्धमिव भाषितमासा-
मर्द्धमर्द्धमिव चेष्टितमस्य ।
सुभ्रुवां हृदयलोपविधाने
मन्मथः किमसृजन्मधुवारम् ॥४१॥

उज्जगाम हृदयादनुरागो
लोचने मधुमदारुणशोभे ।
सुभ्रुवः किमिह यद्भरभारा-
दघूर्णया भ्रमति खञ्जमिवैतत् ॥४२॥

मनसि एकरूप, वचन द्वारा उसका विपरीत प्रकाशित हो रहा है, एवं प्रत्येक पद विन्यास से अङ्ग प्रत्यङ्ग स्खलित हो रहे हैं, कायिकी चेष्टा एकप्रकार, वाञ्छा उससे विभिन्न रूप हैं, सुतरां कामिनीगण की मत्तता मानों एक अनिर्वचनीय प्रमाद रूप में प्रतीत हो रही है ॥४०॥

वाक्य भी अर्द्धार्द्ध उच्चारित रो रहा है. एवं चेष्टा भी अर्द्धप्राय उद्गत है, सुतरां बोध होता है कि— मानों कामिनीगण के चित्त को विलुप्त करने के निमित्त ही मधुबार अर्थात् मधुपान पात्र की सृष्टि हुई है ॥४१॥

सुलोचना व्रजाङ्गनागण का अनुराग हृदय से आकर मधुमत्तता से अरुण शोभायुक्त नयन युगल में उपस्थित हुआ है, कारण-जिससे नेत्रयुगल खञ्जनपक्षी के समान घूर्णित हो रहे हैं ॥४२॥

दष्टवत्यभिमते दयितोष्ठं
रञ्जितत्वमगमन् दशनान्ताः ।
स्वच्छतामवकलय्य नु गच्छन्
यावकः स्थितिमियेष तदेषु ॥४३॥

चुम्वति प्रियतमेक्षि मृगाक्ष्याः
पानपाटलितमञ्जनहीनम् ।
तत्तदोष्ठरुचिभिर्घनघूर्णा
पक्ष्मराजिमनुरञ्जयतीव ॥४४॥

दष्टवत्यतितरां दशनाग्रै-
र्वल्लभे मधुमदादधरौष्ठम् ।
मन्दकण्ठनिनदैः कलकण्ठ्यः
कोमलं करुणमेव चुकूजुः ॥४५॥

अभिमत दयित प्रेयसी के ओष्ठ में दन्ताघात करने पर प्रेयसी गण भी पुनर्बार प्रियतम के ओष्ठ में दन्ताघात करने से दन्ताग्र समूह अतिशय रञ्जित हो गये, सुतरां प्रतीत होने लगा कि—"दन्त की स्वच्छता को देखकर ही दन्ताग्र में यावक—अर्थात् अलक्तक स्थित है" ॥४३॥

प्रियतम-मृगाक्षी के नयन चुम्वन करने पर उक्त नयन चुम्वन हेतु पाटलित अर्थात् श्वेत रक्तवर्ण मण्डित हो गये हैं, सुतरां अञ्जन हीन होकर ओष्ठ कान्ति के सहित घनघूर्ण पक्षराजि अनुरञ्जित हो रही हैं ॥४४॥

वल्लभ मत्तता हेतु दशनाग्र द्वारा अधरौष्ठ अतिशय दंशन करने पर कलकण्ठी मञ्जुभाषिणी कामिनीगण मन्द कण्ठध्वनि के सहित कोमल अतिकरुण शब्द प्रकट कर रही थीं ॥४५॥

ओष्ठपल्लवपुटं दयिताया
दष्टवत्यतितरां मधुमर्द्दे ।
पाणिपल्लवमपि प्रचकम्पे
सख्यमेकसुखदुःखगमेव ॥४६॥

धुन्वती करदले स्मितभाषा
शीत्कृतैरविरतोत्सवमेका ।
लोलशङ्खवलयध्वनिलक्ष्यं
मन्दमन्दमिव शङ्खमपूरि ॥४७॥

गण्डयुग्ममलिकं किमु किम्वा
लोचने किमधरः किमु वान्यत्
चुम्वनेन रमणो रमणीनां
भिन्नभिन्नरसपूर्णमबुद्ध ॥४८॥

मधुसूदन श्रीकृष्ण प्रियतमा व्रजाङ्गना के ओष्ठ पल्लव में सातिशय दशनाघात करने पर पाणि पल्लव भी कम्पित होने लगा, कारण सख्य ही सुखद एवं दुःखद होता है ॥४६॥

एक मञ्जुभाषिणी रमणी अविरत उत्सवान्वित होकर शीत्कार पूर्वक करदल को सञ्चालित कर मन्द-मन्द रूप से इस प्रकार शङ्खध्वनि करने लगी, जिससे चञ्चल हस्त स्थित शङ्ख वलय की ध्वनि अनुमित हुई ॥४७॥

गण्डयुग्म, अलिक, लोचनद्वय, किंवा अधर रमणीगण के जिस किसी अन्यान्य अङ्ग का चुम्वन श्रीकृष्ण ने किया, प्रत्येक अङ्ग से ही भिन्न-भिन्न रस का आस्वादन उनको हुआ अर्थात् प्रत्येक अङ्ग ही रस परिपूरित है, यह बोध श्रीकृष्ण का हुआ ॥४८॥

केशपाशवलनादवतीर्णः
सङ्गतः स्तनमतङ्गजकुम्भे ।
घूर्णया मदजया प्रियपाणि-
र्निर्म्ममज्ज तदुरःसरसीषु ॥४६॥

अन्तरीयमवकृष्य किमु स्वं
भावमाशु विदधे वसनं सः ।
लोहितौ कुचघटावनुरक्तौ
यच्चकार हृदयेशय एषः ॥५०॥

अर्द्धमिलितमथार्द्धनिमग्नं
भाषितं नननननेति वदन्त्या ।
मुग्धया वत गुरोरतशिक्षा
दक्षिणेव विदधे करकम्पः ॥५१॥

माधवस्य करपल्लवसङ्गा-
दाससाद पुलकं कुचयुग्मम् ।

प्रियतम श्रीकृष्ण का हस्त केशकलाप बन्धन से अवतीर्ण होकर स्तनरूप करिकुम्भ में सङ्गत होकर मत्तताजनित घूर्णा हेतु प्रियतमा के वक्षःस्थलरूप सरोवर समूह में निमग्न हो गया ॥४६॥

हृदयेशय श्रीकृष्ण, गोपाङ्गनागण के परिधेय वसनाकर्षण करके ही स्वीय भाव का विधान शीघ्र किये हैं ? कारण— उन्होंने उन सब के लोहित कुचकलसद्वय को अनुरक्त किया ॥५०॥

मुग्धा रमणी ने अर्द्धवर्ण प्रकाश एवं अप्रकाश कर "न-न-न-न" शब्दोच्चारण के सहित गुरु की रतिशिक्षा दक्षिणा के समान करकम्प का विधान किया ॥५१॥

माधव के करस्पर्श हेतु व्रजसुन्दरी के कुचयुगल पुलकित होने

कन्दुकीकृतममन्द-कदम्ब-
द्वन्द्वमुत्क्षिपति किं कुसुमेषुः ॥५२॥

नैव नैतदरविन्दयुगं तत
किं विमुग्ध नखमत्र ददासि ।
इत्यमुं त्रुटितमौक्तिकहार-
द्योतितं कुचयुगं हसतीव ॥५३॥

सौरतोत्सवविधेः कुसुमेषो-
र्मुख्यतः फलकरीव किमर्च्चा ।
मङ्गलं कनककुम्भमभीशो
यत्तमेवमभिवाहयति स्म ॥५४॥

साधु साधुरयमेव जिताः स्मो
निश्चितं शशिमुखि प्रतिजाने ।
इत्यसौ किमलिखञ्जयलेखां
प्रेयसीकुचयुगे स्वकरेण ॥५५॥

लगे थे, उससे प्रतीत होने लगा कि मानों कन्दर्प कदम्ब कुसुम समूह को सुदृढ़ कन्दुक निर्माण कर निक्षेप कर रहे हैं ॥५२॥

"हे विमूढ़ ! कमल युगल नहीं है. इसमें नखार्पण क्यों कर रहे हो ?" यह कहकर क्या कुचयुगल छिन्न सूत्र मुक्ताहार के किरण से विद्योतित होकर श्रीकृष्ण को उपहास करने लगे थे । ५३॥

यह क्या सुरत—अर्थात् शृङ्गारोत्सवकार्य में कन्दर्प की मुख्य फल सम्पादन कारिणी प्रतिमा है ? कारण-ईश्वर अर्थात् जगन्नियन्ता मङ्गलसुवर्ण कलसयुगलका वन्दन गोपाङ्गनाके द्वारा करा रहे हैं ।५४।

"हे शशिमुखि ! साधु साधु, मैंने जीता है, प्रतिज्ञा पूर्वक मैं कह रहा हूँ" यह कहकर क्या श्रीकृष्ण प्रेयसी के कुचयुगल में निज

कान्तवक्षसि निविष्टमुरोज-
द्वन्द्वमेव सुदृशः परिरम्भे ।
यद्द्रुतं हृदयमीक्षणरन्ध्रै-
रुच्छलद्बहिरभूत् सहघर्म्मैः ॥५६॥

ऊरुमूलममितः कृतवासा
श्लिष्यति प्रियतमे मदिराक्ष्याः ।
अंशुकेन सह विश्लथबन्धा
निर्ययौ स्वयमथो किमु लज्जा ॥५७॥

मन्मथद्विरदपुङ्गवसङ्ग-
स्तत्समाकलनशृङ्खलयैव ।
अंशुके वियति तत्र नितम्बः
केवलं रसनयैव रराज ॥५८॥

करार्पण के द्वारा जयलेख को अङ्कित किये हैं ॥५५॥

आलिङ्गन के समय सुलोचना के स्तन युगल प्रियतम के वक्षःस्थल में निविष्ट होने से स्वेदयुक्त हो गये, उससे प्रतीत हुआ स्वेदाम्बु के सहित वे बाहर निर्गत हो रहे हैं ॥५६॥

प्रियतम श्रीकृष्ण के द्वारा आलिङ्गित होने से चञ्चलाक्षी के ऊरुस्थल में धृतवस्त्र रूप लज्जा क्या शिथिल बन्धन के सहित बाहर निर्गत होने लगी ॥५७॥

मन्मथरूप द्विरदपुङ्गव अर्थात् गजराज उपस्थित हैं, सुतरां गजराज की आकर्षणी शृङ्खला के द्वारा वसन गगनमार्ग में आकृष्ट होने से कामिनीगण के नितम्ब केवल रसना के द्वारा ही शोभित हुये थे ॥५८॥

प्रस्खलन् कुचघटाद्वलिवीचि-
विभ्रमैरित इतः परिभूतः ।
नाभिकूपमभिनिर्भरमग्नो
निर्वृ‘तः कथमभूत प्रियपाणिः ॥५६॥

अन्तरीयविगमादलसाङ्गी
लोचने झटिति सा निमिमील ।
मन्यते निरसनेन गता ह्री-
र्लोचने बहुरुषेव रुरोध ॥६०॥

मुष्ठिना यदबलग्नमधासी
त्तेन योऽत्र सुचिरं प्रजगल्भे ।
आमृशन्नित इतः सनितम्बं
निर्जगाम न पुनः प्रियपाणिः ॥६१॥

प्रियतम श्रीकृष्ण के हस्त कुचकुम्भ से प्रस्खलित एवं तत्पश्चात् उदरस्थित त्रिबलिरूप तरङ्गमाला से इतस्ततः परिभूत होकर नाभि कूप में अतिशय मग्न होकर कैसे सुस्थ ,निवृ‘त हुआ ॥५६॥

व्रजसुन्दरीने अलसाङ्गी होकर परिधेय वसन का अभाव होने पर नयनद्वय को निमीलित किया, इससे बोध हुआ कि—अङ्ग में वसन न होने से लज्जाने स्वयं विगत होकर अति क्रोध से ही लोचन युगल का अवरुद्ध किया ॥६०॥

कारण—प्रियतम के करकमल प्रिया के अवलग्न को धारण किये थे, तज्जन्य प्रियतम अतिशय प्रगल्भ हुये थे, किन्तु प्रियतम के करकमल ‘यहाँ यहाँ’ यह कहकर नितम्बदेश को स्पर्श करतः प्रियाङ्ग से निर्गत हो न सके थे ॥६१॥

उन्नमय्य चिबुकं मधुरोष्ठीं
निर्भरं धयति गोकुलनाथे ।
सा बबन्ध तमथो भुजपाशैः
किं रुजा किमु रुषा नु मुदा किम् ॥६२॥

कोमलस्य कुसुमादपि दोष्णः
पीडनं दृढमिदञ्च सुखाय ।
हन्त ही तदपि चक्षुरुदस्रं
वाम एव मदनः सुरतेऽपि ॥६३॥

निर्भरं रतमदो व्रजनाथो
यत् पपात सहसैव नितम्बात् ।
आश्रयाश्रयवतोः किमु साम्या-
ज्ञातमत्र रसनैव रसज्ञा ॥६४॥

गोकुलनाथ श्रीकृष्ण, चिबुक अर्थात् अधरोष्ठ को उन्नत करके मधुरोष्ठी प्रियतमा को चुम्बन करने से प्रतीत हुआ—उन्होंने क्या रोग से अथवा क्रोध से किंवा हर्ष से ही प्रियतमा को भुजपाश द्वारा आबद्ध किया ॥६२॥

कुसुम से भी सुकोमल प्रियतम का भुजपीड़न दृढ़ होने से भी सुखद होता है, किन्तु यह अतीव आश्चर्य का विषय है कि—उस सुलोचना के नयनयुगल से जलोद्गम होने लगा, इससे प्रतिपन्न हुआ कि-कदाचित् मदन भी सुरत क्रीड़ में प्रतिकूल परायण होता है।६३।

व्रजनाथ श्रीकृष्ण—अत्यन्त रतिमत्त होकर सहसा नितम्ब से जब स्खलित हुये थे, तब किन्तु उस नितम्ब देश में रसना अर्थात् चन्द्रहार ही रसज्ञा हुई, इससे प्रतीत हुआ मानों आश्रय एवं आश्रित उभय ही समता सम्पन्न हो गये हैं ॥६४॥

वाधित निधुवने प्रमदानां
काम एव खलु कामद एषः ।
व्यत्ययं यदकरोदथ राधा–
कृष्णयोरतिविचित्रमिदं तत् ॥६५॥

किं भ्रमात् किमु मदात् कुतुकात् किं
किं स्वविक्रयपरीक्षणतो वा ।
काम एष विदधे वत राधा–
कृष्णयोर्विनिमयं चरितानाम् ॥६६॥

कापि मुग्धरमणी विपरीते
माधवेन सुरते तनुलग्ना ।
चुम्बिता कति न चुम्बति शश्वत्
सुस्मितं लघु विलोक्य विलोक्य ॥६७॥

प्रमदागण की क्रीड़ा में काम बाधायुक्त होकर वस्तुत ही कामद अर्थात् अभिलाष प्रद हुये, किन्तु आपने श्रीराधा-कृष्ण के शृङ्गार में वैपरीत्य साधन सम्पन्न किया, यह अतीव आश्चर्य है ॥६५॥

क्या कन्दर्पने भ्रम वशतः अथवा अहङ्कार हेतु किंवा कौतुक निबन्धन तथा स्वीय विक्रम की परीक्षा करने के निमित्त ही श्रीराधा कृष्ण के चरित्र में परिवर्त्तन किया है ? ॥६६॥

एक मुग्ध रमणी विपरीत शृङ्गार में अङ्गोपरि संलग्न होकर श्रीकृष्ण कर्त्तृक एकबार मात्र चुम्बित होने से उन्होंने सहास्य वदन से स्वल्प-स्वल्प अवलोकन करतः इतने अधिकबार चुम्बन किया जिसकी सीमा नहीं है ॥६७॥

कृष्णवक्षसि गता वरनारी
यद्यदुद्भटरसादतनिष्ट ।
तत्क्षणादननुभूतमभूतं
वल्लभो नवनवं तदबुद्ध ॥६८॥

साहसेन यदियं प्रजगल्भे
कृष्णवक्षसि भृशं मदिराक्षी ।
तत्तदा सुखभवोद्भटभावै-
र्मूच्छितेव समभूदनुवेलम् ॥६९

अक्षिमीलितमुरोरुहयुग्मं
कम्पितं शिथिलिता भुजवल्लिः ।
सर्वमेतदधिकं व्रजबध्वा
माधवोपकृतिकारि बभूव ॥७०॥

व्रज सुन्दरीने श्रीकृष्ण के वक्ष:स्थलोपरि शयाना होकर जो जो उद्भट कार्य सम्पन्न किया शृङ्गार पण्डित श्रीकृष्ण निम्नस्थ होकर ही उस अननुभूत एवं अभूतपूर्व नव-नव शृङ्गार क्रम समूह परिज्ञात हुये थे ॥६८॥

एक मदिराक्षी व्रजसुन्दरीने श्रीकृष्ण के वक्ष:स्थल में अत्यन्त प्रगल्भता का विस्तार किया, तज्जन्य ही वह सुखभर उद्भट भाव से क्षण क्षण में मूर्च्छित हो गई ॥६९॥

व्रजबधू के नयनयुगल निमीलित स्तनद्वय कम्पित भुजलता शिथिलित होने से यह समुदाय अङ्ग ही श्रीकृष्ण के उपकारी हुये थे ॥७०॥

माधवस्य मृदुलोरसि देहो
निःसहः स हरिणीनयनायाः ।
अर्पयन्निव सुधारसपूरः
पर्य्यपूरि निखिलेप्सितमेव ॥७१॥

प्रेयसी-चरित-साधु-सुधाभि–
स्तृप्तचित्त-मधुपो-मधुघाती ।
विभ्रमद्भ्रमरसम्पदमत्तः
सद्वितीयसुरते प्रबभूव ॥७२॥

ओषधिः समधुराधरसीधु–
स्तद्वचो मनुवरः कुचकुम्भौ ।
तौ मणी व्रजबधूरिह कृष्णं
किं न मोहयतु जीवयताद्वा ॥७३॥

हरिणनयना व्रजाङ्गना का निःसह देह श्रीकृष्ण के मृदुल वक्षःस्थल में स्थित होकर अमृतरस समूह अर्पण पूर्वक निखिल अभीष्ट पूर्ण किया ॥७१॥

प्रेयसी की चरित्र साधु सुधा से जिनका मधुप परितृप्त है, उन मधुघाती श्रीकृष्ण विलासशील भ्रमर के समान हर्ष से उन्मद होकर द्वितीयबार सुरत में सक्षम हुये थे ॥७२॥

जिनके मधुराधर के अमृत ही महौषध है, वाक्य ही मनुवर अर्थात् प्रशस्त मन्त्र है, कुचकुम्भद्वय मणिस्वरूप हैं, उन व्रजबधूगण श्रीकृष्ण को मोहित तथा जीवित किससे नहीं किये ? ॥७३॥

अशिथिल-परिरम्भैश्चुम्बनैर्दन्तपातै-
रजनि रजनिमध्ये कान्तयोर्याथ तृप्तिः ।
नवनिधुवनलक्ष्मीलक्ष्मभाजोस्तथाऽसौ
समधितपदमङ्गे सापराधा व्यरंसीत् ॥७४॥

स्मरसमरसमाप्तौ वीतभङ्गीभवद्भ्रूः
किमपि किमपि मन्दं मन्दमामीलिताक्षी ।
धनुरिव चिरसज्यं ज्याविहीनं विधत्ते
शरमिव चिरमुक्तं तूणमध्ये करोति ॥७५॥

मदनरणविरामे कान्तयोः श्रान्तिभाजो-
रलसभरविभुग्नं सुप्तयो रात्रिशेषे ।
नहि नहि नहि कुत्राप्येवमस्तीति हर्षा-
दिव विधुरति शीर्षं वातधूतः प्रदीपः ॥७६॥

अशिथिल परिरम्भ अर्थात् निविड़ आलिङ्गन चुम्वन दशनाघात प्रभृति विलास द्वारा रजनी के मध्य में अभिनव सुरत चिह्नधारी श्रीराधा कृष्ण की जो तृप्ति हुई थी, वह तृप्ति अङ्ग में स्थित होने से अन्यतृप्ति विरत हो गई ॥७४॥

कामसमर समाप्त होने से व्रजाङ्गना स्वीय भ्रूभङ्गी परित्याग कर कथञ्चित् अलसाङ्गी हो गयीं, इससे बोध हुआ—मानों कामदेव चिरन्तन ज्यायुक्त धनुष को ज्याशून्य कर धारण एवं चिरनिक्षिप्त बाणसमूह को तूणमध्य में धारण किये थे ॥७५॥

कामसंग्राम विरत होने पर अत्यन्त परिश्रमहेतु शिथिलाङ्ग होकर निशिशेष में श्रीराधा-कृष्ण निद्रित होने पर प्राभातिक समीरण प्रवाहित होकर रतिप्रदीप को विधूत किया, इससे बोध हुआ कि—प्रदीप जैसे शिरश्चालन पूर्वक सहर्ष कह रहा है "एतादृश काम संग्राम

अयमयमुदितोऽहं वर्त्तसे किं न्विदानी–
मिति परिणतकोपा लोहितस्तिग्मभानुः ।
अथ रजनिविरामे प्रेरयन् जालरन्ध्रे
करमिव किमु नैशं नाशयामास दीपम् ॥७७॥

विकल-कुवलय-श्रीर्धूसरा संविमृष्टा
मृदुलतरमृणाली धर्षितं कोकयुग्मम् ।
ललित-पुलिनवीथी पाणिजैरङ्किता त–
द्वद सरसि भवत्यां पुण्यवान् को ममज्ज ॥७८॥

वपुरतुलपरागैर्धूसरं नास्ति शक्ति–
र्लवमपि निजपक्षक्षेपणे घूर्णसीव ।
परिकलितमिदं तत् कोऽपि ते नास्ति दोषो
मधुकर कमलिन्या एव कोऽपि प्रभावः ॥७९॥

कुत्रादि त्रिभुवन में नही है" ॥७६॥

रजनी अवसान होने पर "मैं उदित हुआ हूँ, तुम अभी भी विद्यमान हो" इस प्रकार कह कर ही मानों तीग्मभानु अर्थात् सूर्यदेव कोप से लोहिताङ्ग होकर स्वीय किरणरूप कर को प्रसारित करतः क्या नैश दीप को विनष्ट किये थे ? ॥७७॥

नीलोत्पल की शोभा विफल हुई है, चक्रवाक् युगल, मृदुतर मृणाली कर्तृक धर्षित है, पुलिन अर्थात् बालुकामय तटप्रदेश समूह नखाङ्कित हैं, अतएव हे सरसि ! कहो तो ? कौन पुण्यवान् यहाँ पर निमग्न हुये हैं ? ॥७८॥

हे मधुकर ! निरुपम पराग से वपुः धूसरवर्ण, शक्तिहीन एवं स्वीय पक्ष चञ्चालन में भी अक्षम हो, सब मैं देख रहा हूँ, कुछ दोष तेरा नहीं है, यह सब प्रभाव एकमात्र कमलिनी के ही हैं ॥७९॥

इति रहसि दिनादौ सानुतर्षं समन्ता-
न्मसृणवचनलक्ष्मीलक्ष्यहासोपहासा ।
निभृत-निभृत-लीलालोलमन्योन्यमासी-
दभि-सहचरि भूयः कान्तयोः कापि चेष्टा ॥८०॥



इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये दशमः सर्गः ।



इस प्रकार प्रभात काल में अत्यन्त सानुतर्ष परिलक्षित हुआ, अर्थात् साभिलाष चित्तसे पूर्वोक्त वचन चातुरी द्वारा जिसका परिहास लक्षित हो रहा है, तादृश एक अनिर्वचनीय विलास चेष्टा श्रीराधा कृष्ण के चित्त में सहचरी को देखकर आविर्भूत हुई एवं परस्पर निभृत लीलारसास्वादन करतः चञ्चलचित्त हो गये ॥८०॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये दशमः सर्गः ।



एकादशः सर्गः

इतीदं तत्सर्वं विलसितमनुस्मृत्य सुदृशां
ससन्तोषं वृन्दावनमदन एषोऽतिमधुरः ।
विहर्त्तुं तद्भावैरकृत पुरतः स्वाङ्घ्रिदयितैः
समन्तादारम्भं द्रुतकनकगौरोज्ज्वलतनुः ॥१॥
क्रमादेतां रात्रिं प्रहरनियमेनैव विभजन्
दिदेश प्रायेण प्रियजनमसौ योग्यललितम् ।
विचिन्त्याथो नृत्यस्थलमनिशमाचार्य्यनिलये
मुदा रङ्गी चक्रे प्रसृमरतरं चत्वरमथ ॥२॥
ततो रम्ये स्थाने परिनियमिते निर्वृतिकरे
गुरूत्कण्ठाभाजो द्विजवररमण्योऽतिनिभृताः ।
समं शच्या देव्या प्रभुमतमभिज्ञाय समयो-
चितं धैर्य्यारम्भं गृहमभिदधत्यः प्रविविशुः ॥३॥

गलितकाञ्चननिभ उज्ज्वल गौरतनु अतिमधुर वृन्दावन मदन श्रीशचीनन्दन--श्रीवास कथित व्रजाङ्गना के समूह विलास को सुनकर परम सन्तोष से पूर्वलीला का स्मरण कर व्रजभाव विभावित चित्त होकर सर्वतोभावेन विहार के निमित्त भक्तवृन्द के सहित समारम्भ किये थे ॥१॥

सङ्कीर्त्तन नृत्यविनोदी गौरहरि—आनन्द से क्रमशः रात्रि को प्रहर क्रमसे विभक्त कर आचार्यगृहाङ्गन को मनोहर नृत्यस्थल किये थे, एवं प्रियतम भक्तवृन्द को सुयोग्य सेवा कार्य में नियोग कर उक्त अङ्गन को सुशोभित किये थे ॥२॥

ब्राह्मण पत्नीगण परस्पर अतिशय उत्कण्ठित चित्त से सुखद नियत रम्यस्थान में महाप्रभु की सम्मति को जानकर कालोचित धैर्यावलम्बन पूर्वक शचीदेवी के सहित भवन में प्रविष्ट हो गयी थीं ॥३॥

अलिन्दे गेहस्य प्रभुनटनसन्दर्शनमहोन्-
सुका लीना आसन्निभृतमुपविष्टाः सहभयैः ।
अमूश्चित्रोत्कीर्णा विनिमिषगतस्पन्दवपुषो
नवै रागैः कान्ताः फलकभुवि ता मूर्त्तय इव ॥४॥

नियम्यैकं द्वारे दृढ़ललितशौटीर्य्यवलितं
यथैकोप्यायाति क्षणमपि न तत्रेति निरतः ।
जनानाप्तानाप्तान् पुरमभिनिवेश्यैवमसकौ
महत्या निर्वृ त्या जयति सततं गौरशशभृत् ॥५॥

गृहैकं नेपथ्यस्थलमथ विधायाविशदसौ
प्रभुर्वेशं कर्त्तुं नटनकुतुकी प्रेमललितः ।
जनेनात्मीयेन स्वपदपरमप्रेमवहता
समारेजे श्रीमानतिशयकृपापूरसुभगः ॥६॥

ब्राह्मणीगण महाप्रभु के सङ्कीर्त्तन नटनदर्शन हेतु उत्सुक होकर सङ्कुचित चित्तसे गृह के अलिन्द प्रदेशस्थ निर्जन स्थान में गुप्त रूपसे अवस्थित हुईं, वे सब निर्निमेष एवं निस्पन्दाङ्ग होनेसे प्रतीत हुआ मानों अभिनव चित्रकर कर्तृक चित्रफलक में प्रतिकृति उत्कीर्ण हुई है ॥४॥

श्रीगौरहरि—भवन द्वार को अवरुद्ध कर शौटीर्य द्वारा अर्थात् वीरत्व भावाविष्ट होकर "जैसे क्षणकाल के निमित्त भी कोई व्यक्ति प्रवेश न कर सके" यह कहकर सविशेष निरत होकर निज निज प्रिय भक्तवृन्द को प्रथम प्रवेश करा कर अतिशय आनन्दित हुये थे ॥५॥

अतिशय कृपाप्रवाह में जो सुभग है एवं सङ्कीर्त्तन नटन में अत्यन्त कौतूहली प्रेमविवश है, वह गौरहरि स्वीय पादपद्म के प्रेम परवश हुए आत्मीय भक्तजन के सहित नेपथ्य गृह में प्रविष्ट हुये ॥६॥

गृहीत्वासौ वेशं पुरत ऋषिवर्य्यस्य परमं
निशादौ श्रीवासः प्रभुचरणपद्मप्रियतमः ।
जटाभिः पिङ्गाभिः स्फटिकमणिमालां कलयता
करेणोर्व्वीदेवप्रवर इव तत्राविशदथ ॥७॥

अथास्यैको दासो धृतकरकदर्भासनवरो
द्युवापीमृच्छुक्लो वपुसि भुविशुक्लाम्बर इति ।
सदैवेनाविष्टस्तमृषिवरमानम्य सहसा
गदाधृङ्नामानं प्रभुदयितमूचे सुमधुरम् ॥८॥

अये त्वं देवर्षिश्चरणमवनम्या वद इदं
कलौ भूयां श्रीमत्प्रभुचरणसेवासु निरता ।
इतीदं श्रुत्वासौ मुनिरवददेतत् सुवदने
सुरस्रोतःस्वत्यां स्नपनमधिमाघं कुरु सदा ॥९॥

निशा के प्राक्काल में प्रभुचरणपद्म प्रियतम श्रीवास प्रथमतः महर्षि नारद वेश धारण कर पिङ्गल जटाभूषित एवं दक्षिण कर में स्फटिक माला जय करते-करते श्रेष्ठतम ब्राह्मण के समान प्रविष्ट हुये थे ॥७॥

अति पवित्र शुक्लाम्बर नामक एक भृत्य सर्वाङ्ग में गङ्गा मृत्तिका के द्वारा तिलक रचना कर एवं कमण्डलु कुशासन लेकर सहसा आगमन करतः ऋषिश्रेष्ठ को प्रणाम पूर्वक प्रभुप्रिय गदाधर को मधुर वचन से कहे थे ॥८॥

गौरप्रिय ! आप देवर्षि चरणों में प्रणाम पूर्वक यह निवेदन करें कि—"जिस प्रकार मैं इस कलियुग में श्रीमन्महाप्रभु की चरण सेवा में रत रहूँ" यह सुनकर मुनिवर ने कहा—हे सुवदन ! "माघ मास में सुरनदी गङ्गा में अवगाहन स्नान नियत करो" ॥९॥

तदा तत्पुण्येन प्रभुचरणपाथोजमिलनं
भविष्यत्येवं ते तदनु भवतीभिः कृतमिदम् ।
इदानीं तेन त्वं मुनिवरवरेण प्रभुपद-
प्रियो भूत्वा यातः किमु न विदितं तत् सुवदने ॥१०॥
ततोऽसौ देवर्षिः स्वयमवददुच्चैः सुललितं
महत्त्वं तद्भक्तेरविदितगुरुत्वं पुलकितः ।
वदामः किं नाम्नः परममहिमानं यदघकृ-
द्द्विजाभासो दासीपतिरपि च मुक्तोऽघनिवहात् ॥११॥
इतीवोक्ते तस्मिन् परममुदिताः सर्वमनुजा
हरेर्नाम्नामुच्चैः किमपि विदधुः कीर्त्तनमथ ।
सहर्षं श्रीवासः पुलकिततनुस्तत्र कुतुकात्
पुरो नृत्यं चक्रे प्रथममिव नान्दीं विरचयन् ॥१२॥

जब तुम ऐसा करोगे, तब उक्त पुण्योदय से प्रभुपादपद्म का सम्मिलन होगा, इसमें सन्देह नहीं है, हे सुवदन ! तुम सम्प्रति मुनिवर के वर से प्रभुचरणारविन्द का प्रिय हो चुके हो, उसको क्या नहीं जान रहे हो ? ॥१०॥

देवर्षि पुलकित होकर जिनका गौरव अविदित है, एतादृश भक्ति का सुललित माहात्म्य का कीर्त्तन उच्चै स्वर से करते हुये कहे थे—परम पवित्र नाम माहात्म्य का वर्णन मैं कैसे करूँ ? देखो ! जिस नाम माधुरी एवं कृपामयी शक्ति से पापाचारी ब्राह्मणाधम दासीपति अजामिल पापराशि से मुक्त हो गया है ॥११॥

नारद इस प्रकार कहने पर सकल मानव हृष्टचित्त से उच्चरव से हरि सङ्कीर्त्तन में प्रवृत्त हुये थे, श्रीवास—हर्षभर से पुलकायित कलेवर होकर वहाँ पर सकौतुक से अग्रभाग में इस प्रकार नृत्य करने लगे—जो प्रथम नान्दीरूप में परिगणित हुआ ॥१२॥

ततोऽस्मिन्निष्क्रान्ते कृतनटनसङ्कीर्त्तनरसे
विवेशासौ श्रीमान् धृतपरमवेशः सुमधुरः ।
प्रविष्टोऽसौ रेजे हिमकरसमूहप्रतिकृति–
र्गृहीत्वा सद्वेत्रं सपदि हरिदासोऽङ्गन भुवि ॥१३॥
वदन्नुच्चैरुच्चैर्वद हरिमिति प्रेमविकलाः
कुरुध्वं तद्गाथामिति सरभसं चन्द्रललितः ।
दिशन् वेत्राग्रेण प्रतिपदबलद्धर्षविवश–
स्त्रिलोकीं संसुप्तामिव स यतते जागरयितुम् ॥१४॥
अकुण्ठाद्वैकुण्ठा॰ प्रभुचरणपाथोजनिकटा
त्तदा ज्ञातो भूमौ प्रथममवतीर्णोऽहमधुना ।
तदाज्ञावाचस्ताः शृणुत परमाः सीधुमधुराः
कलिव्यालग्रस्त–प्रकटतर–संजीवनकरीः ॥१५॥

श्रीवास—नृत्य सङ्कीर्त्तन कर रङ्गालय से निष्क्रान्त होने पर तत्क्षणात् चन्द्र समूह की प्रतिमूर्त्ति स्वरूप श्रीमान् हरिदास सुमधुर वेश धारण पूर्वक प्रवेश किये थे एवं हस्त में उत्तम वेत्र ग्रहण पूर्वक नृत्य प्राङ्गण में अतीव शोभित हुये थे ॥१३॥

"तुम सब उच्चस्वर से हरिनामोच्चारण करो एवं प्रेमविवश होकर सहर्ष से हरिकथा कीर्त्तन करो" चन्द्र के समान मनोज्ञ कान्ति एवं प्रतिपद हर्षविवश हरिदास इस प्रकार कहने पर वेत्राग्र के द्वारा निर्देश कर जिस प्रकार त्रिभुवन को निद्राभिभूत देखकर जागरित करने के निमित्त प्रयत्न किये थे ॥१४॥

एवं कहने लगे थे–"मैं अकुण्ठ वैकुण्ठरूप प्रभुपादपद्म के निकट से तदाज्ञा से सम्प्रति भूमण्डल में प्रथम अवतीर्ण हूँ, उनकी आज्ञा वाक्य का श्रवण करो, जो अमृत से भी सुमधुर है, एवं जिससे कलि युगरूप महासर्पग्रस्त जनसमूह सत्वर जीवन लाभ कर सकते हैं ॥१५॥

विना नाम्नां गाथामृतरसधुनीस्रोतसि सदा
कृतस्नानान् लोकानिति तदधुना वाञ्छितमिह ।
तदेतद्विश्वस्मिन्निह स विकिरन्नाजिगमिषु-
र्भवद्भिः कीर्त्त्यन्तां गुणसमुदयाः श्रीभगवतः ॥१६॥

इदानीं तस्याज्ञां श्रवसि परिपीय प्रतिपदं
भवन्तो नृत्यन्तु प्रतिविहितसङ्कीर्त्तनरसाः ।
इति श्रुत्वा तस्याननशशिसमुद्भूतवचसो
विलासं ते सर्वे विपुलपुलकाङ्गाः सुललितम् ॥१७॥

जगुर्गीतं रम्यं कलितकरतालध्वनिबल-
न्मृदङ्गालीभङ्ग्या स्वयमपि ननर्त्तैष परमः ।
असौ भूयोभूयः कृतनटनसङ्कीर्त्तनरसो-
विनिष्क्रान्तो भूत्वा तदनु विरराम प्रमुदितः ॥१८॥

नामरूप अमृत नदी में जो लोक निरन्तर अवगाहन कर रहे हैं, तद्भिन्न समस्त व्यक्ति श्रीभगवान् के नाम कीर्त्तन करें, तज्जन्य मैं विश्वमण्डल में नामामृत वितरण करने के निमित्त आगमनेच्छुक हूँ ॥१६॥

"सम्प्रत्ति श्रवण के द्वारा भगवान् के आज्ञामृत पान करके प्रति पद में सङ्कीर्त्तनरूप अमृतरस का विस्तार पूर्वक सङ्कीर्त्तन नृत्य करें" हरिदास के मुखचन्द्र से समुद्भूत सुललित वाक्य विलास का श्रवण कर वे सब विपुल पुलकाकुल कलेवर होकर गृहीत करताल ध्वनि एवं बलवत् मृदङ्ग श्रेणी की भङ्गी के सहित मनोहर हरि सङ्कीर्त्तन प्रारम्भ किये थे, एवं श्रीहरिदास भी उक्त श्रीहरि सङ्कीर्त्तन में नृत्य कर भूयोभूयः कीर्त्तनरस प्रकटित करके रङ्गालय से निष्क्रान्त होकर सानन्द चित्त से क्षान्त हुये थे ॥१७-१८॥

ततोऽद्वैतस्तत्रानुकृतभगवद्वेशचरित:
कराभ्यां सानन्दं कलितमुरलीक: समविशत् ।
प्रभु: स्वं स्वं वेशं निजमुरलिकां र्बाहणशिखा–
वतंसं स्वं पीतं वसनमपि लावण्यमपि च ॥१९॥

प्रदायामुं चक्रे कलितकलधौतोज्ज्वलतनु–
र्यथेच्छं नृत्येऽस्मिन् धृतपरमसन्नायकरुचि: ।
ततस्तैस्तै: सर्वै: परममधुराकारकमन:
प्रविष्टो भूत्वासौ किमपि कमलाक्ष: परिषदि ।
लघूद्यन्मार्द्दङ्गध्वनिसुमधुरं नृत्यमकरो–
ल्लयैस्तालैर्मानैर्मलयजरसैश्चर्चिततनु: ॥२०॥

तथा नृत्यत्यस्मिंस्तदनु जरतीवेशरसिको–
ऽवधूतो धूताङ्ग: पलितललिताकीर्णचिकुर: ।

अनन्तर श्रीअद्वैतप्रभु भगवद्वेश एवं भगवच्चरित्र का अनुकरण कर आनन्द के सहित हस्तद्वय से मुरली ग्रहण करत: प्रविष्ट हुये, प्रभु श्रीगौरहरि–निज निज वेश, निज मुरली, मयूरपिच्छ का अवतंस स्वीय पीतवसन एवं निज लावण्य ग्रहण करत: परिष्कृत कलधौत वर्ण श्रीगौराङ्ग महाप्रभु उक्त श्रीहरि सङ्कीर्त्तन नृत्य में परम नायक हुये थे, तत् पश्चात् उक्त भक्तवृन्द के सहित कमल लोचन गौरहरि माधुर्यमय अवयव, कमनीय कान्ति, एवं चन्दनरस से चर्च्चित तनु होकर प्रविष्ट कर भक्तमण्डली के मध्य में तुमुल उत्थित मृदङ्ग ध्वनि, लय, ताल एवं मान के सहित सुमधुर नृत्य करने लगे थे ॥१९-२०॥

श्रीहरि सङ्कीर्त्तन में उक्त रूप से श्रीगौरहरि नृत्यारम्भ करने पर तत् पश्चात् जरती वेश विभूषित अवधूत नित्यानन्द का प्रवेश

प्रविष्टस्त्वाविष्टः परमपरमोन्मादविवश-
स्तदा छित्वा भित्वा नटति जरतीभूमिकरुचिम् ॥२१॥

निवृत्तेऽस्मिंस्तैस्तैः कलितललनाभूमिकरुचि-
र्गदाधृक्संज्ञोऽसौ धृतवलयशङ्खोज्ज्वलकरः ।
प्रविष्टो गायद्भिर्लघु लघु मृदङ्गेऽतिमुखरे
तथा तालैर्मानैर्नटनकलया तत्र विबभौ ॥२२॥

तदा नृत्यत्यस्मिन् धृतमधुरवेशोज्ज्वलरुचौ
मृदङ्गालीभङ्गीशतमधुरसङ्गीतकलया ।
जनैर्भूयोभूयः सुखजलधिमग्नैर्निनिमिषैः
समन्तादासेदे जड़िमजड़िताङ्गैः किममृतम् ॥२३॥

हुआ, उनके केशकलाप पलित थे — अर्थात् बार्द्धक्य वशतः शुक्लता से अति सुदृश्य एवं आलुलायित थे, अङ्ग भी कम्पित हो रहा था, प्रविष्ट होकर श्रीनित्यानन्द अतीव उन्माद से विवश हो गये, एवं सङ्कीर्त्तन नृत्य करते करते स्वीय जरतीवेश की कान्ति को छिन्न भिन्न करने लगे थे ॥२१॥

अवधूत नित्यानन्द सङ्कीर्त्तन नृत्य से विरत होने पर श्रीगदाधर रमणी वेश से विमण्डित होकर शङ्ख वलय द्वारा उज्ज्वल हस्त होकर द्रुततर मृदङ्ग वाद्य के सहित सङ्कीर्त्तन परायण भक्तवृन्द के सहित ताल, मान एवं नृत्य भङ्गी से आगमन पूर्वक रङ्गालय में प्रविष्ट होकर शोभित हुये थे ॥२२॥

धृतमधुरवेश से समुज्ज्वल कान्ति गदाधर सङ्कीर्त्तन नृत्य करने पर मृदङ्ग श्रेणी की विविध भङ्गी से मधुर सङ्गीत के सहित रङ्गस्थलस्थ जनगण पुनः पुनः आनन्द सागर में निमग्न होकर अतिशय निर्निमेष नयनों से जड़ता वेष्टिताङ्ग होकर ही क्या अमृत को प्राप्त करने लगे ? ॥२३॥

प्रियावेशावेशस्फुरितरुचिरुद्यत्स्मितरुचा
परिध्वस्तध्वान्ता निभृतरभसा स्वादविवशा ।
घनस्निग्धा भुग्नोल्लसितकवरीभारविलसत् (विगलत्)
प्रसूनैरम्भोदोद्गत-भगणशोभां विदधती ॥२४॥

विलोलभ्रूभङ्गी नटनजितभृङ्गीविलसिता
स्मितापाङ्गी राजत्कुवलयदला लोलनयना ।
वहन्ती सत्ताम्रस्फुरदधरवीथी विलुठितां
रदच्छायां ज्योत्स्नामिव नवदिनेशांशुमिलिताम् ॥२५॥
स्फुरत्कम्बुग्रीवापरिसरविलासप्रणयिना
गुरूरोजद्वन्द्वोपरि घनविलोलत्वमयता ।
गिरेरुच्चैःपाताहितभयनिवृत्तेन खधुनी-
प्रवाहेणेवाति श्रियममलहारेण दधती ॥२६॥

श्रीराधा के वेश का आवेश होने पर मनोहर कान्ति प्रस्फुरित हो रही थी, उद्गत हास्य रुचि से अन्धकार अपसारित हो रहा था, श्रीमूर्त्ति निभृत हर्षभर से अत्यन्त विवश एवं घनस्निग्ध उल्लासयुक्त कवरी प्रसून समूह से सुशोभित होने से अथवा कवरी से पुष्प सकल विगलित होने पर मेघोद्गत नक्षत्र माला की शोभा से विमण्डित जिनकी भ्रूभङ्गी अति चञ्चल नृत्य कला से जो भृङ्गी को पराजित कर उसका मनोहर कौशल ग्रहण कर रही है, मधुर हास्य द्वारा जिनका अपाङ्ग अर्थात् नेत्र प्रान्त शोभमान है, एवं सुशोभित नीलोत्पल के समान जिनके लोचन युगल अतीव चञ्चल हैं, प्राभातिक सूर्य्य किरण सह सम्मीलित ज्योत्स्ना के समान प्रशस्त ताम्रतुल्य अधर वीथि में विलुठित दन्त कान्ति को धारण कर रही है. शोभमान कम्बु तुल्य ग्रीवा एवं वक्षजोपरि सातिशय दोदुल्यमान हार से प्रतीत

वहन्त्यूरुद्वन्द्वं कनककदलीकाण्डमसृणं
पदे रक्ताम्भोजप्रथमसदवस्थाप्रणयिनी ।
तनुक्षौमं वासः परिहितवती तत्र ललितं
प्रभोः श्रीमन्मूर्त्तिर्लघुपदमथैषा निविविशे ॥२७॥ (कुलकं)
तदा पीयूषांशुः परिणत इवैकादशकलो
रराज श्रीमूर्त्तौ रहसि विलसन्त्यां सुखपरः ।
तथा तत्र क्षोमाञ्चलललितखेलां विरचयन्
बबौ मन्दं तत्तन परिमलसखश्चन्दनमरुत् ॥२८॥
ततस्तैर्गायद्भिर्लघु लघु मृदङ्गध्वनिपरं
सहावं नृत्यन्ती लयवलिततालादि-ललितम् ।
तथा भज्यन्मध्या मधुरिमपरीपाकविलसत-
पदन्यासैः शिञ्जन्मणिमयतुलाकोटिमधुरा ॥२९॥

होता है कि—जैसे समुन्नत गिरिशृङ्गपतन सञ्जात भय से निवृत्त आकाश गङ्गा प्रवाह से वह मूर्त्ति अतीव शोभित है। सुवर्ण कदली स्तम्भ के समान मसृणतर ऊरुयुगल अभिनव अवस्थापन्न रक्त पद्म के तुल्य पदयुगल एवं सूक्ष्म वसन से जो मण्डित है, उन श्रीगौरचन्द्र मूर्त्ति का प्रवेश द्रुतपदसञ्चार के सहित रङ्गालय में हुआ ॥२४-२७॥

क्षौमाञ्चल ललित खेला विस्तार कर—अर्थात् वसन को आन्दोलित कर श्रीगौरहरि का प्रवेश होने पर पूर्णावयव एकादश विशिष्ट अमृतांशु शशधर श्रीमहाप्रभु की निभृत विलासिनी श्रीमूर्त्ति में प्रतिफलित होकर परमानन्द से शोभित हुये, एवं क्षौम वसनाञ्चल का अञ्चल गन्धवह चन्दन समीरण भी प्रवाहित होने लगा ॥२८॥

अनन्तर षट् श्लोकों के द्वारा पूर्वोक्त श्रीमूर्त्ति की वर्णना करते हैं —— नृत्य गीत परायण भक्तवृन्द के सहित लघु-लघु मृदङ्ग

तथा वक्त्राम्भोजं लघुसमुदयत्स्वेदकणिका-
विकाशं मुक्ताभिः खचितमिव चामीकरविधुम् ।
वहन्ती सिन्दूरं विलसदलिके रुज्यदलके
तमःस्पृष्टं सन्ध्यारुणितमिव रम्यार्ककिरणम् ॥३०॥
तथा पाणिन्यासैः कलितवलयध्वानमुखरै-
रलश्रेणीमुच्चैरुपरि परिलोलां विदधती ।
उदञ्चद्भ्रूवल्लीं मनसिजधनुष्काण्डकुटिलां
मुहुः क्षिप्त्वा श्यामं किमपि विदधत्यम्बरतलम् ॥३१॥
स्खलद्वक्षःक्षौमाञ्चलहति लसन्मध्यमलसं
वलीभङ्गैर्भङ्गीगरिमनटयन्ती करमितम् ।

ध्वनि एवं लय तालादि के सहित हावभाव प्रकाश पूर्वक जो मूर्त्ति सुमधुर नृत्य कर रही है, सुमधुर पदविन्यास से शब्दायमान मणिमय तुला कोटि अर्थात् नूपुर के द्वारा जो अतिशय माधुर्य मण्डित है, एवं अविरत विगलित स्वेदजलकणिका द्वारा जिसका विकाश अतिशय हो रहा है, तादृश मुखपद्म धृत होने से प्रतीत होता है कि—मानों मुक्ता खचित हेमचन्द्र ही है, तथा सुदृश्य चूर्णकुन्तल शोभित रक्तवर्ण ललाट फलक में सिन्दूर विन्दु शोभित होने पर बोध होता है कि—सन्ध्याकालीन अन्धकारयुक्त अरुणवर्ण सौरकिरण ही विलसित है ॥२९-३०॥

परिहित वलयध्वनि के द्वारा शब्दायमान हस्त सञ्चालित होने से जिसके उपरिभाग में अति चञ्चल अलिमाला भ्रमण कर रही है, जो मूर्त्ति कामदेव के धनुष्काण्ड के समान अति कुटिल उन्नत भ्रूलता को उत्क्षिप्त कर गगनतल को श्यामलिमा से मण्डित कर रही है ॥३१॥

त्रिवली भङ्ग द्वारा विशिष्ट भङ्गीयुक्त एवं वक्षःस्थल से

श्लथन्नीवीबन्धच्छुरित विमलद्योतिकलया
नितम्वस्वेदार्द्रं घनजघनमन्यादृशमिव ॥३२॥
मुहुश्चक्रप्रायभ्रमणविगलत्केशकुसुमै-
स्तथा भ्राम्यद्भृङ्गीललितपरभागैः प्रसृमरैः ।
स्वयं नृत्योल्लासादुपरि मुखचन्द्रस्य नु दधे
सितच्छत्रं चित्रं मरकतसुरेखाविलसितम् ॥३३॥
तथा नृत्योन्माद-प्रमदमधुरिम्नातिमहता
नताङ्गी सङ्गीतोज्ज्वलरुचिररोचिःपटलिका ।
ततो लक्ष्मीभावं तदनुगिरिजाभावमपि सा
क्रमादाविष्कृत्य प्रकटमविशद्देवभवनम् ॥३४॥

(एकादशभिः कुलकं)

विस्खलित क्षौमाञ्चल के आघात से अत्यन्त शोभमान उस नृत्य विशेष की दर्शकगण के समीप में जो मूर्त्ति हस्त के द्वारा परिमित कर रही है, एवं नीवी बन्ध शिथिल होने से प्रकाशमान सुनिर्मल कान्तिकला के द्वारा जो मूर्त्ति घर्माक्त घनतर जघनदेश को नटन द्वारा विभिन्न रूप से प्रदर्शित करती रहती है।

स्वयं नृत्योल्लास से पुनः-पुनः चक्रवत् भ्रमण करने से केश कलाप से कुसुम समूह विगलित होकर मस्तक के चतुर्दिक में विस्तृत हुये थे, एवं भ्राम्यमान भृङ्गगण द्वारा लालितरूप सरोवर के अशं ग्रहण कर मानों कुसुम समूह श्रीमूर्त्ति के मुखचन्द्र के ऊपर मरकत रेखा शोभित सितच्छत्र धारण किये हैं, एवं नृत्योन्माद जन्य सुमहती मत्तता माधुरी से जिनका अङ्ग विनत है, उनकी रोचिःपटली अर्थात् कान्तिमाला सङ्गीत के द्वारा समुज्ज्वल माधुर्यमय हुई है। वह मूर्त्ति लक्ष्मीभाव—अनन्तर पार्वतीभाव को आविष्कार करतः सुस्पष्ट रूप से देवालय में प्रविष्ट हुई ॥३२-३३-३४॥

ततस्तां तेन त्वा स्तुतिवचनभङ्गीविरचनै-
र्महत्याः खट्टाया उपरि सरसाङ्गीं स्थितवतीम् ।
विधेहि प्रेमाणं भगवति समन्तादिति जगु-
स्ततोऽङ्के सा चक्रे झटिति हरिदासं शिशुमिव ॥३५॥
इतीदं सा नानाविधकुतुकचेष्टाविलसितै-
र्निशां नीत्वा प्रातः स्वभवनमगाच्चित्रचरितः ।
तदा भूयस्तस्मिन्नकृत बहु नृत्यं सुमधुरं
महस्वान् सप्ताहं मलयजरसैश्चर्चिततनुः ॥३६॥
समन्तादुच्चैर्दिशि दिशि मृदङ्गादिनिनदा
मदोन्मत्ताः सर्वे कति कति रसाढ्यं न जगदुः ।
प्रसूनैः स्रग्गन्धैर्मलयजरसैः पूर्णमभव-
ज्जगत् सप्ताहं श्रीमति विलसति श्रीभगवति ॥३७॥

अनन्तर भक्तवृन्द नमस्कार पूर्वक महती खट्टोपरि समासीन सरसाङ्गी उन मूर्त्ति को "भगवति ! प्रेम प्रदान करें" इस प्रकार प्रार्थना कर विविध भङ्गी से स्तुतिवाक्य प्रयोग करने लगे, पश्चात् मूर्त्ति ने सत्वर हरिदास को शिशु के समान निज क्रोड़ में स्थापन किया ॥३५॥

विचित्र चरित्र श्रीगौरहरि विविध कुतुक चेष्टा विलास के द्वारा रजनी यापन करने के पश्चात् प्रत्यूष में निज भवन गमन किये थे, एवं उस समय भी चन्दन द्वारा चर्च्चिताङ्गी होकर महातेजस्वी श्रीगौरचन्द्र सप्ताह पर्यन्त पुनर्बार बहुविध सङ्कीर्त्तन नृत्य किये थे ।३६।

श्रीमान् भगवान् श्रीगौराङ्गदेव—इस प्रकार विलसित होने पर चतुर्दिक् में मृदङ्ग ध्वनि उद्गत होने लगी, भक्तगण प्रेममदोन्मत्त होकर विविध रसाढ्य सङ्गीत करने लगे एवं सप्ताहकाल पुष्प-माल्य

तथा सप्ताहान्ते दिनकरशतप्रायमहसा
स्फुरन्तं श्रीवासः सभयचकितोल्लासमवदत् ।
कलौ नाम्नां गाथा यदिह विहिता तत्र ननु किं
फलं नूनं शाठ्ये भवति किमु वा नेति वद तत् ॥३८॥

कृते त्रेतायाश्च द्विज त्वदनु द्वापरयुगे
समस्तं ध्यानाद्यैर्भवति नितरां साधिततमम् ।
कलौ तत्राशक्तिं स्वयमिह विलोक्य प्रकटितं
प्रभुर्नामाख्योऽभूत्तदिह किमिव न्यूनफलता ॥३९॥

वदन्नेवं गौरो नयनजलपूर्णोऽन्यदवद-
न्न शक्तोऽहं स्थातुं गृहमभि गमिष्यामि नियतम् ।

गन्ध एवं चन्दनरस से मानों जगत् परिपूर्ण हो गया ॥३७॥

सप्ताह के अनन्तर श्रीवास प्राय शतसूर्य के समान तेजस्वी गौरचन्द्र को भयचकित एवं उल्लास के सहित कहे थे—हे प्रभो ! आपने इस कलियुग में जिस हरिनाम गाथा का विस्तार किया है, उससे मानवीय शठता की न्यूनता होगी अथवा नहीं ? ॥३८॥

प्रत्यूत्तर में श्रीगौरहरि ने कहा—द्विजवर श्रीवास ! सत्य, त्रेता और द्वापर युग में समस्त कार्य ध्यानादि से अर्थात ध्यान, यज्ञ एवं परिचर्या से ही संसाधित होते थे, किन्तु कलियुग में सत् शिक्षा ग्रहण करने की स्वाभाविकी शक्ति मानवीय बुद्धि में नहीं है, स्वयं अवलोकन कर नामरूप में प्रभु प्रकटित हुये हैं, अर्थात् समस्त शक्ति का प्रकाश श्रीनाम में ही प्रकट किये हैं, तब यही नाम से न्यून फल क्यों होगा ? ॥३९॥

अधुना भवन को जाऊँगा, प्रभु के वाक्य को सुनकर मुरारि गुप्त ने कहा—हे भगवन् ! जो उचित हो आप करें, किन्तु समस्त

तदाकर्ण्य प्रोचे यदपि भगवन् कर्त्तुमुचितं
जनान् दृष्ट्वा नैवं मतमिति मुरारिः सचकितम् ॥४०॥
ततोऽन्येद्युः श्रीमान्नयनजलधौतः समवदत्
द्विजैकः स्वप्ने मे श्रुतिमभिमहावाक्यमवदत् ।
अतो हेतोर्हित्वा प्रभुचरणमन्यन्न किमुचितं
ममेति क्रन्दामि क्षणमपि न मे निर्वृतिरिह ॥४१॥
इति श्रुत्वा गुप्तः सपदि स मुरारिः समवदत्
प्रभो तत् षष्ठीतत्पुरुषवचनं तत्र कुरु भोः ।
तथा श्रुत्वा नाथः समुदितमनाः साम्प्रतमभू-
त्तथा ते च श्रुत्वा व्यथितमनसोगाढ़मभवन् ॥४२॥
ततः सन्न्यासी केशव इति स भारत्युपहितो
भुवि ख्यातः कश्चित् प्रभुपुरत आसीद्विधिवशात् ।

लोक को देखकर सम्प्रति ऐसा करना उपयुक्त नहीं होगा ॥४०॥

अनन्तर श्रीगौरहरि ने सजल नयन से कहा—"एक ब्राह्मण ने मुझको कर्ण में स्वप्न में महावाक्य कहा है" अतएव प्रभुचरण को छोड़कर अपर कुछ करना क्या मेरा उचित होगा? एतज्जन्य मैं नियत रोदन करता रहता हूँ, क्षणकाल भी निर्वृति नहीं होती है ॥४१॥

सुनकर मुरारि ने कहा—प्रभो! आपने जो महावाक्य कहा है, उसको आप षष्ठी तत्पुरुष कर पाठ करें, अर्थात् उनका तुम हो, सुनकर गौरचन्द्र आनन्दित होकर कहे थे—"साम्प्रत उपयुक्त अर्थ ही हुआ है, भक्तगण उक्त कथन को सुनकर व्याथितमनाः हुये थे ॥४२॥

भूतल में प्रथितनामा केशव भारती नामक एक सन्न्यासी दैवक्रम से प्रभु के समक्ष में उपस्थित हुये थे, उन्होंने गौरचन्द्र को

तथा दृष्ट्वा नाथं निरवधि रुदन्तं समवद-
च्छुको वा प्रह्लादस्त्वमिति बहुधा विस्मितमनाः ॥४३॥
प्रशंसां स्वां श्रुत्वा द्विगुणविकलोऽसौ पुनरपि
प्रकामं चक्रन्दायमपि पुनराहाति चकितः ।
भवान् देवो विष्णुर्विदितमिदमेवं खलु मये-
त्युपाकर्ण्य श्रीमान्नयसनमिह कर्त्तुं स चकमे ॥४४॥
मुकुन्दोऽथ प्रोचे विनिमिषममुं पश्यत मुहुः
प्रभुर्यावद्गेहे वसति न हि यावद् प्रचलति ।
ततोऽसो श्रीवासं प्रभुरवददेतन्नु भवता-
मितोऽहं प्रेमार्थं प्रतिदिशमटिष्यामि नितराम् ॥४५॥
पुनः श्रीवासोऽयं सभयमवदत्त्वद्विरहितैः
कथं स्थातुं शक्यं निरवधि विभो धक्ष्यति मनः ।

निरन्तर रोदन परायण देखकर विस्मित होकर कहा—तुम 'शुक' अथवा 'प्रह्लाद' हो ॥४३॥

गौरहरि स्वीय प्रशंसा को सुनकर द्विगुणतर विकल होकर पुनर्बार अतिशय रोदन करने लगे थे, देखकर केशव भारती भी पुनर्बार चकित होकर कहे थे—"आप तो देवोत्तम विष्णु हैं, मैं आपको जान गया हूँ" यह सुनकर श्रीमान् गौरचन्द्र सन्नयास ग्रहण हेतु मनस्थ किये थे ॥४४॥

अनन्तर मुकुन्द ने कहा—"जब तक प्रभु गृह में अवस्थित हैं गृहत्यागी नहीं होते हैं, तब तक प्रभु को निर्निमेष नयनों से बारम्बार सब व्यक्ति दर्शन करें" श्रीगौराङ्गदेव श्रीवास को लक्ष्य कर भक्तवृन्द को कहे थे—तुम सब के निकट से मैं प्रेमार्थ प्रतिदिक् में भ्रमण करूँगा ॥४५॥

भवद्गेहे स्थास्याम्यहमिति जगाद प्रभुरथो
तथेत्येष स्थैर्य्यं मनसि लभमानः क्षणमभूत् ॥४६॥
ततः सायं गत्वा गृहमभि मुरारेरुपदिशन्
जगादाद्वैते संश्रयितुमभिधायास्य चरितम् ।
ततोऽन्येद्युः श्रीमान् क्वच जनपदे भूरिकरुणः
प्रभुः पारेगङ्गं स सपदि तितिक्षुश्चलितवान् ॥४७॥
ततस्ते ते सर्वे निरवधि बलद्दुःखदलिताः
समुद्विग्ना नाथ क्व गत इति तेपुः सकरुणम् ।
विचार्य्यैस्तैरेतैरहह दिनसप्तान्तरमसौ
व्यदर्शि न्यासेच्छाकुलितहृदयः श्रीमयतनुः ॥४८॥

पुनर्बार श्रीवास कहे थे—हे प्रभो ! आप के विरह से हम सब कैसे घर में रहेंगे, मन आपके शोक से निरन्तर दग्ध होता रहेगा, तत् पश्चात् श्रीगौरहरि ने कहा—"मैं घर में ही रहूँगा" सुनकर श्रीवास सुस्थ हुये थे ॥४६॥

सायंकाल में गौरहरि—मुरारि गुप्त के गृह में जाकर अद्वैत को आश्रय करने के निमित्त उपदेश दिये थे, एवं अद्वैत चरित्र का वर्णन भी उन्होंने उनके समीप में किया, पश्चात् अपरदिन दयानिधि गौरचन्द्र तितिक्षु होकर गङ्गा के अपरपार में गमन किये थे ॥४७॥

भक्तवृन्द निरन्तर बलवद् दुःख से अभिभूत एवं सम्यक् उद्विग्न होकर "हा नाथ ! कहाँ चले गये" कहकर करुणस्वर से परिताप करने लगे, एवं विचार कर कहे थे—हाय-हाय ! सातदिन के बाद ही श्रीगौरचन्द्र को सन्न्यासेच्छा से व्याकुलित हृदय देखना पड़ा ॥४८॥

समन्तात्तत्रत्यास्तमथ परिलोक्यैवमसकृ-
द्विलापैः सन्तापैः किमपि परितेपुः प्रतिमुहुः ।
अहो धातः किन्ते विलसितमयं कामसुभग-
श्चिकीर्षुः सन्नयासं विलसति कठोरस्त्वमसि भोः ॥४९॥
स्त्रियः प्रोचुर्हाहा वत शिव शिवात्यन्तकठिनो
विधातुर्वैचित्र्यं कथमशनिपातोऽयमसकृत् ।
अहो रूपं शीलं मधुरिमसुलावण्यमहह
क्व सन्नयासो वा क्व प्रतिमुहुरिदं मुह्यति मनः ॥५०॥
रुदन्नेवं देवः प्रसृमरसुखाविष्कृतिरसौ
जनानूचे मातः पितरिति च सम्बोध्य रुदतः ।
यथा प्रेमा भूयात् प्रभुचरणपाथोरुहयुगे
तथाशीर्व्वादोऽसौ मयि खलु विधेयो मुहुरिति ॥५१॥

समस्त भक्तगण इस प्रकार देखकर विलाप एवं सन्ताप के सहित क्षण-क्षण में परितप्त होकर कहने लगे थे—"हा विधातः ! तेरा यह ही विचार है ? कन्दर्पमोहन गौरचन्द्र भी सन्नयासेच्छु होकर भ्रमण कर रहे हैं, अतएव तुम अत्यन्त कठोर स्वभाव के हो ॥४९॥

स्त्रीगण कहने लगीं—हा कष्ट हा कष्ट ! शिव शिव ! बड़ा ही कठिन है, विधाता का कैसा वैचित्र्य । यह क्या बारम्बार वज्रपात हुआ ? आहा ! कहाँ आश्चर्य रूप, आश्चर्य स्वभाव, आश्चर्य लावण्य, और कहाँ यह सन्नयास, हाय ! हमारे मन क्षण क्षण में विमुग्ध हो रहे हैं" ॥५०॥

इस प्रकार कहते रहने पर गौरहरि रोदन कर अन्यान्य पुरवासि को रोदन करते देखकर "हे मातः हे पितः" इस प्रकार

गुरोर्गेहं तैस्तैर्विनयनिरतोऽभ्येत्य बहुधा
प्रणामं चक्रेऽसौ प्रतिविहितशिष्योचितरुचिः।
ततो वैध्यं कृत्वा स्वपुरमभिवाद्यास्य निरतं
श्रुतौ स्वप्नप्राप्तं शिव शिव महावाक्यमवदत् ॥५२॥
समाहूयाथैकं क्षुरिणमतिधन्यातिसुभगं
दिदेशासौ श्रीमानहह निजकेशापहरणे।
सतु प्रेमाविष्टो निरवधिरुदन् कम्पिततनु-
र्भयात् किञ्चित् कर्त्तुं शिव शिव शशाकाथ न खलु ॥५३॥
ततः श्रीगौराङ्गः समवददतीवप्रमुदितो
हरेकृष्णेत्युच्चैर्वद मुहुरिति श्रीमयतनुः।

सम्बोधन कर आनन्द विस्तार पूर्वक कहे थे-"प्रभु के पादपद्म युगल में जिससे मेरा अकैतव प्रेम हो, सम्प्रति बारम्बार मेरे प्रति उस प्रकार आशीर्वाद करें" ॥५१॥

श्रीगौरहरि उक्त विनय वाक्य से विरत होकर पुरवासि जनगण के सहित गुरु गृह में उपस्थित होकर अनेक प्रणाम किये थे, पश्चात् शिष्योचित समस्त कार्य सम्पन्न कर यथाविधि निज गुरु केशव भारती को अभिवादन पूर्वक उनके कर्ण में महावाक्य कहे थे ॥५२॥

"अहह" हाय ! हाय ! कैसा दुःख ! श्रीमान् गौरचन्द्र ने अति भाग्यवान् नापित को आह्वान कर स्वीय केश मुण्डन निमित्त अनुमति दी, किन्तु नापित अतिशय प्रेमाविष्ट होकर निरन्तर रोदन करतः भय हेतु कम्पित कलेवर से कुछ भी करने में सक्षम नहीं हुआ ॥५३॥

अतिशय प्रमुदित होकर श्रीगौरहरि "उच्चैःस्वर से मुहुर्मुहु

ततोऽसौ तत् प्रोच्य प्रतिवलितरोमाञ्चललितो
रुदंस्तत्तत्कर्मारभत बहुदुःखैर्विदलितः ।।५४।।

तदानीं ये तत्र क्षणमपि च तस्थुः शिव शिव
प्रकामं ते मातः पितरिति गदन्तोऽतिकरुणम् ।
करौ दत्त्वा मूर्द्धनि प्रतिमुहुरधिक्षेपनिरताः
स्वजीवं निन्दन्तः कति नहि विलापं व्यरचयन् ।।५५।।

गुरुर्भूत्वा व्याजात् स्वयमिव पुरा शिष्यविधिना
ततो मन्त्रं लेभे जगति करुणामेव विकिरन् ।
ततो रोमाञ्चाढ्यं जिगमिषुमवेक्ष्य प्रभुमसौ
गृहाणेत्यह्नायारुणवसनदण्डादिकमदात् ।।५३।।

हरेकृष्ण कहो" यह कहने पर नापित ने हरेकृष्ण कहकर रोमाञ्चित कलेवर एवं दुःख से विदलित होकर रोदन करते करते क्षौरकर्म प्रारम्भ किया ।।५४।।

हा कष्ट ! गौरचन्द्र के केशकलाप के मुण्डन के समय क्षणकाल भी जो जो व्यक्ति वहाँ पर उपस्थित थे, वे सब ही "हा मातः ! हा पितः ! " इस प्रकार करुण स्वर से रोदन एवं मस्तक में कराघात करतः आत्म धिक्कार परायण होकर विलाप करने लगे थे ।।५५।।

श्रीगौरहरि भुवनत्रय के गुरु होकर भी छल पूर्वक स्वयं शिष्य होकर जगन्मण्डल में कारुण्य विस्तार पूर्वक केशव भारती के समीप से मन्त्र ग्रहण किये थे, पश्चात् केशव भारती रोमाञ्चिताङ्ग गौराङ्गदेव को गमनेच्छु देखकर 'ग्रहण करो' यह कहकर शीघ्र अरुणवर्ण वस्त्र एव दण्ड प्रभृति अर्पण किये थे ।।५३।।

गृहीत्वा दण्डाद्यं गुरुवचनसंपालनवशा-
दनैषीद्गौराङ्गो दिवसमवशात्मातिचतुरः ।
अथानुज्ञाप्यैनं सुकृतशतगाढ़ं जनपदं
ययौ राढ़ं गूढ़ोपमपरमलोकोत्तरकृतिः ॥५७॥
पथि ध्यायं ध्यायं स्वचरितमसौ सौख्यविवशः
स्वनामप्रेमार्द्रः प्रतिपदमशक्तः स्खलति सः ।
क्वचिद्गायत्यार्त्तः क्वचिदपि नदत्यार्त्तनिनदं
क्वचिन्मन्दं याति क्वचिदपि मृगेन्द्रद्रुतिगतिः ॥५८॥
प्रभुस्तस्मिन् देशे क्षणमपि न संश्रुत्य विवशः
स्वनाम त्यक्ष्यामि स्वतनुमिति गत्वोपतटिनि ।
जले मज्जन् डिम्भैर्वद हरिमिति ध्वान मुखरै-
रदर्शि प्रेमार्द्रः प्रतिपदपतद्बाष्पजड़ितः ॥५९॥

अनन्तर अतिमधुर श्रीगौराङ्गदेव अवशात्मा होकर भी दण्डादि ग्रहण करतः गुरु वचन प्रति पालनार्थ एकदिन वहाँपर कालयापन किये थे । पश्चात् परम गूढ़ोपम एवं लोकोत्तर कार्यकारी गौरहरि महापुण्यवान् केशव भारती की अनुज्ञा ग्रहण कर राढ़ देश की यात्रा किये थे ॥५७॥

पथ में स्वीय चरित्र चिन्तन करते करते आनन्द विवश एवं निज नाम प्रेम से द्रवीभूत तथा अशक्त होकर प्रतिपद में स्खलित हो रहे थे, कभी तो आर्त्त होकर गान करते थे, कभी आर्त्तनाद कभी मन्द गमन एवं कभी सिंह के समान द्रुतपद से गमन करने लगे थे ॥५८॥

प्रभु श्रीगौरहरि-उस देश में स्वीय नाम को न सुनकर अत्यन्त विकल हुये थे, एवं नदी में देहत्याग करने का सङ्कल्प से जलमग्न

ततः श्रुत्वा तैस्तैर्गदितमिदमुच्चैर्हरिरिति
प्रभुः प्रेमोन्मत्तः क्षितिमभिपतन् गाढ़मरुदत ।
कियद्दूरं गत्वा तदनुविदधे भैक्षमुचितं
हसन् नृत्यन् गायन् क्वचिदपि रुदंस्तत् समगमत् ॥६०॥
क्षणं गोपीभावैः क्षणमपि च दास्यैः क्षणमथो-
तथैश्वर्यैः श्रीमान्नटनकलया कौतुकपरः ।
असीमप्रेमार्द्रो निरवधि चलन् पश्चिमदिशं
न सस्मारात्मानं क्षणमपि दिनानां त्रयमभि ॥६१॥
ततो दैवादेवं भवति गमने दक्षिणदिशि
प्रबुद्धोऽभून् श्रीमान् क्वचन ननु यामीति मनसि
विचार्य्याद्वैतस्यालयमभि स गन्तुं समकरो-
न्मनो नित्यानन्दप्रभुमपि जगादातिमधुरम् ॥६२॥

हो गये थे, इस प्रकार बालकगण श्रीहरिनामोच्चारण कर श्रीगौरहरि को प्रेमार्द्र एवं वाष्पजड़िताङ्ग देखे थे ॥५६॥

बालकगण के मुख से उच्च हरिनाम श्रवण कर प्रेमोन्माद से भूमि में लुठित होकर गाढ़तर रोदन करने लगे थे, पश्चात् कियद्दूर गमन कर भिक्षालब्ध वस्तु भोजन करतः हास्य, नृत्य, गीत एवं कभी रोदन करतः गमन करने लगे थे ॥६०॥

कौतुक परायण श्रीगौरहरि क्षणकाल गोपी भाव से क्षणकाल दास्यभाव से एवं क्षणकाल ऐश्चर्य भाव से नृत्य करते करते असीम प्रेम से आर्द्राङ्ग होकर निरवच्छिन्न केवल पश्चिमाभिमुख में गमन करने लगे थे, दिनत्रय के मध्य में क्षणकाल के निमित्त भी निज का स्मरण नहीं किये थे ॥६१॥

अनन्तर दक्षिणदिक् में गमन करते करते दैवात् एक दिवस

प्रयाहि त्वं शीघ्रं विबुधतटिनीतीर मधुरे
नवद्वीपे तत्स्थान् मम निगदितैर्ब्रूहि मधुरम् ।
भवन्तोऽद्वैतस्यालयमभि चलन्त्वेव चपलं
प्रयास्ये तत्राहं सपदि स तथेति प्रचलितः ॥६३॥
ततो गत्वा तत्र प्रमुदितमना नाथगदितं
निगद्य प्रत्येकं समनयदमुत्रैव सहसा ।
शची चातिव्यग्रा परममुदिता तत्र चलिता
किमन्यद्वक्तव्यं गतमिव नवद्वीपमभवत् ॥६४॥
ततोऽन्येद्युः श्रीमान् धृतकरकदण्डः सदरुणं
वहन् वासोद्वन्द्वं बहलतड़िदर्च्चिः प्रतिकृतिः ।
अकस्मादेकस्मिन् पथि गुरुशिखो गैरिकमयो–
व्यदर्शि स्वर्णाद्रिप्रवर इव तैर्गौरशशभृत ॥६५॥

चेतन होने पर "मैं कहाँ जा रहा हूँ ?" मन में यह विचार कर अद्वैत के घर में जाने की इच्छा से नित्यानन्द को कहे थे–आप सत्वर सुरनदी तीरवर्त्ति सुमधुर नवद्वीप में गमन करें, एवं तत्रत्य जन समूह को कहें कि—"आप सब सत्वर अद्वैत के घर में गमन करें, मैं वहाँ जा रहा हूँ" नित्यानन्दप्रभु—महाप्रभु की आज्ञा से तथास्तु कहकर नवद्वीप गये थे ॥६२-६३॥

नित्यानन्द आनन्दित मन से नवद्वीप में उपस्थित होकर गौरहरि के आदेशानुसार भक्तवृन्द को शान्तिपुरस्थ अद्वैत के घर में ले आए थे—एवं शचीदेवी भी अतिशय व्यग्र होकर सानन्द चित्त से अद्वैत गृह में आ गई थीं, अधिक क्या कहें—मानों पूर्ण नवद्वीप का ही वहाँ पर आगमन हुआ ॥६४॥

एकदिन सौदामिनी माला के समान सुन्दराङ्ग गौरहरि दण्ड

एतां स आस्थाय परात्मनिष्ठा
मुपासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः ।
अहं तरिष्यामि दुरन्त पारं
तमो मुकुन्दाङ्घ्रि निषेवयैव ॥६६॥

इति श्लोकं भूयः पथि पथि पठित्वातिरभसं
नटन्तं नेत्राम्भः समुदय समुद्भ्रान्तवपुषं
विलोक्यैनं प्राणानिव चिरमृतास्ते प्रमुदिताः
प्रभुं हर्षोत्कर्षा क्षितिषु निपतन्त समनमन् ॥६७॥

प्रभु कांश्चिद्वाचा हसितसुधया कांश्चन कृपा-
बलद्दृष्ट्या कांश्चत् ससुखमपरान् स्पर्शकलया ।
चकारातिप्रीतान्निजचरणपङ्करुहरतां-
स्ततोऽगादद्वैतालयमतिसुखार्द्रातिकरुणः ॥६८॥

कमण्डलु धारण एवं प्रशस्त अरुणवर्ण वसन युगल परिधान कर गमन कर रहे थे, अकस्मात् पथ में लोकों ने सुदीर्घ शिखाविशिष्ट गौरिकमय स्वर्ण पर्वत के सदृश गौरहरि को देखा ॥६५॥

"पूर्वतन महर्षिगण कर्त्तृक उपदिष्ट होकर इस प्रकार परमात्म निष्ठा अवलम्बन करतः वह ब्राह्मण दृढ़ निश्चय किये थे, मुकुन्द चरणाम्बुज सेवा द्वारा मैं घोरतर तम से उत्तीर्ण हो जाऊँगा" ॥६६॥

श्रीगौराङ्गदेव यह श्लोक पाठ करते करते नेत्रजल से अभिषिक्त हो रहे थे, जनगण उनका दर्शन कर मृतव्यक्ति में प्राण सञ्चरित होने से जिस प्रकार आनन्द होता है, उसके समान आनन्दित होकर भूमितल में निपतित होकर प्रणाम करने लगे थे ॥६७॥

सुखार्द्र अतिकरुण गौरसुन्दर निज चरणानुरक्त भक्तगण के मध्य में किसी को वाक्य द्वारा, किसी को हास्यामृत के द्वारा, किसी

ततोऽसौ गौराङ्गः शुचि समविश्यासनवरं
परिष्वज्याद्वैतं नयनजलसंभिन्नवपुषम्
समं क्रन्दद्भिस्तैर्गुणगरिमगाम्भीर्य्यवलिताः
स्फुरन्नामोद्गाथाः समकथयदत्यन्तललिताः ॥६९॥
ततोऽसावद्वैतार्पित सुमधुरान्नं समभज
ततोऽन्येद्युः प्रातः प्रतिजनमुवाच प्रमुदितः ।
अहं यामि क्षेत्रं प्रभुचरणसन्दर्शनवशा–
द्भवद्भिः कर्त्तव्यं सततहरिसङ्कीर्त्तनमिह ॥७०॥
विसृज्यैवं तांस्तान्नयनसलिलैराप्लुततमं
परिष्वज्याऽद्वैतं चलितुमकरोदुद्यममसौ ।
तृणं कृत्वा दन्तैः क्षितिषु हरिदासोऽथ निपतन्
प्रभोः पादाब्जाग्रे निरवधि समुत्कण्ठितमतिः ॥७१॥

को कृपादृष्टि से एवं किसी को ससुख स्पर्श करके अतीव प्रसन्न कर अद्वैत गृह में गमन किये थे ॥६८॥

श्रीगौरहरि– उत्तम पवित्र आसन में उपविष्ट होकर नयन निर्गलित बारिधारा से अभिषिक्त अद्वैत को आलिङ्गन करतः रोदन शील भक्तवृन्द के सहित गुणगरिमा गाम्भीर्य वलित अतीव ललित स्फुर्त्तिशील नाम गाथा का कीर्त्तन करने लगे थे ॥६९॥

गौरहरि—अद्वैतार्पित सुमधुर अन्न भोजन किये थे, अनन्तर अपरदिन प्रातःकाल में आनन्द चित्त से प्रत्येक लोक को कहे थे—मैं श्रीप्रभु के श्रीचरण दर्शन के निमित्त श्रीक्षेत्र गमन कर रहा हूँ, आप सब यहाँ पर निरन्तर श्रीहरि नाम सङ्कीर्त्तन करें ॥७०॥

यह कहकर गौरहरि भक्तवृन्द को परित्याग कर नयन जल सिक्ताङ्ग अद्वैत को आलिङ्गन कर गमनार्थ उद्यत होने पर, हरिदास

अथैवं तं दृष्ट्वा प्रभुरवददेवं तव कृते
जगन्नाथस्याग्रे निरवधि वदिष्यामि विनमन् ।
तदुत्तिष्ठोत्तिष्ठाश्वसिहि परिरभ्येति तमिमं
विसृज्यैवं यान्तं तमवददथाद्वैत तनुभृत ॥७२॥

तवप्रस्थानेऽस्मिन् किमिह भविता तद्वद विभो
कथं धास्ये प्राणान् कथमिव तरिष्यामि विरहम् ।
इतिक्षोभोतक्रान्तं प्रभुरवददेवं यदि कृतं
भवद्भिस्तन किं मे गमनमिति सम्भाष्य चलित ॥७३॥

ततोऽद्वैतप्रीत्या प्रणतहरिदासस्य च मुदा
जगन्नाथक्षेत्रं जिगमिषुरपि स्वप्रियवशः ।
शचीदेव्या तत्पाचितमतुलमन्नं निजजनैः
समं तैर्भुञ्जानः कति च गमयामास दिवसान् ॥७४॥

दशन में तृण धारण पूर्वक निरन्तर समुत्कण्ठा से कातर चित्त होकर प्रभु के पादपद्म के समक्ष में निपतित हो गये ॥७१॥

गौरचन्द्र—हरिदास को तदवस्थ अवलोकन कर कहे थे—"मैं तुम्हारे निमित्त श्रीजगन्नाथदेव के निकट प्रार्थना करूँगा, अतः उठो उठो, आश्वस्त हो जाओ" यह कहकर उनको आलिङ्गन पूर्वक गमनार्थ उद्यत होने पर अद्वैत—महाप्रभु को कहे थे ॥७२॥

"हे विभो ! आप गमन करने पर हम सब का क्या होगा ? कैसे प्राण धारण करेंगे एवं विरह सागर से उत्तीर्ण होंगे ? आज्ञा करें। सुनकर प्रभु ने क्षुभित अद्वैत को कहा—यदि आप सब इस प्रकार करेंगे तो मेरा चले जाने का प्रयोजन ही क्या है ? यह कहकर आप प्रस्थान किये थे ॥७३॥

भक्ताधीन गौरहरि— जगन्नाथ क्षेत्र को जाने के इच्छा होकर

अथैवं गच्छन्तं प्रभुमहह कश्चिद्द्विजवरो–
ऽवदत् पश्याम्येतत् प्रभुवर वपुस्तेऽति मधुरम् ।
स इत्थं गात्रेभ्योवसनमपकृष्यैव करुण:
प्रभुर्मेघापाये शशभृदिव रेजेऽतिविमल: ॥७५॥
पुरो नित्यानन्दं मुदितहृदयं भूरिकरुणो
विधायासौ गच्छन्निजचरणपङ्करुहरतै: ।
गदाधृग्विप्राद्यैरहह समुकुन्दै: परिवृत–
स्तदा तैस्तै: सर्वै: कथमपि हि दु:खेन ददृशे ॥७६॥
स इत्थं गौराङ्ग: पथि निजगुणं नाम च गृणन्
प्रियै: सार्द्धं स्वाङ्घ्रेर्निरवधि रुदन्नेवरुरुचे ।
अमीं दानादानोल्लसितहृदयैर्दानिनिवहै–
र्नकुत्रापि श्रीमत्परिवृढ़कृपाढ्या रुरुधिरे ॥७७

श्री अद्वैत को प्रीति एवं प्रणत: हरिदास हर्ष के निमित्त शचीदेवी कर्त्तृक पाचित सुस्वादु अन्न भोजन भक्तवृन्द के सहित कर वहाँ पर कतिपय दिवस अतिवाहित किये थे ॥७४॥

महाप्रभु को गमनरत देखकर एक विप्र ने प्रभु के अङ्ग से वसन को आकर्षण कर कहा—"प्रभुवर ! आपका अङ्ग अतीव सुमधुर है" वस्तुत उत्तरीय वसन न होने से मेघमुक्त शशधर के समान गौरचन्द्र अतीव शोभित हुये थे ॥७५॥

भूरिकरुण गौरचन्द्र सन्तुष्ट चित्त नित्यानन्द को अग्रणी कर गमन कर रहे थे, इस समय निजपादपद्मरत गदाधर प्रभृति ब्राह्मण गण, मुकुन्द एवं अन्यान्य भक्तवृन्द कर्त्तृक परिवृत होकर अतिशय दु:ख से प्रभु को अवलोकन करने लगे थे ॥७६॥

इस प्रकार गौरहरि पथ में निजगुणनामोच्चारण पूर्वक भक्तवृन्द

ततो गोपीनाथं स्त्ववसतिलसद्रेमुणमति-
प्रभावं तं दृष्ट्वा क्षितिमिलितमौलीप्रणमतः ।
प्रभोः शीर्षे शीर्षादपि भगवतस्तस्य चलिता
प्रसूनानां चूड़ान्यपतदखिले पश्यति जने ॥७८॥

ततः श्रीगौराङ्गः कटकइति संज्ञे जनपदे
स साक्षी गोपीनाथ इति जगति ख्यातिमगमत् ।
उभौ गौरश्यामद्युतिकृतविभेदौ न तु महा-
प्रभावाद्यैर्भिन्नो सपदि ददृशाते जनचयैः ॥७९॥

करे दत्त्वा दण्डं पथि तमवधूतस्य पुरतः
स्वयं श्रीगौराङ्गः सुखविवशचित्तश्चलितवान् ।
असौ पश्चादगच्छन् मनसि परिचिन्त्य प्रतिमुहु-
र्बभञ्जैनं दण्डं कृतकुतुकचेष्टोऽतिमुदितः ॥८०॥

के सहित निरन्तर रोदन कर ही शोभित हुये थे, एवं प्रदान कर ही जिनके चित्त उल्लसित होते थे, ऐसे श्रीमन्महाप्रभु के कृपा सम्पन्न दानिनिवह भक्तवृन्द को अवरुद्ध नहीं किये थे ॥७७॥

रेमुणा ग्राम निवासी अतीव आश्चर्य मूर्त्ति श्रीगोपीनाथ का दर्शन कर श्रीगौरहरि भू-लुठित प्रणाम किये थे, प्रणति के समय दर्शकगण के साक्षात् में भगवान् गोपीनाथ के मस्तक से पुष्परचित चूड़ा विचलित होकर श्रीगौरहरि के मस्तक में निपतित हुआ ॥७८॥

जनगण-कटक नामक देशस्थित साक्षीगोपाल एव श्रीगौराङ्ग देव का दर्शन करने लगे थे, किन्तु प्रभुद्वय में केवल 'गौरवर्ण एवं श्यामवर्ण' द्युतिभेद था, प्रभावादिकाभेद नहीं था ॥७९॥

श्रीगौराङ्गदेव पथ में अवधूत के हस्त में दण्डार्पण पूर्वक आनन्द विवश चित्त से गमन कर रहे थे एवं कौतूहलाक्रान्त अवधूत

अथासौ नेदीयानहह जगदेतेन चकितं
क्व मे दण्ड ब्रूहि प्रतिवचनमेषोऽपि विदधे ।
क्षितौ दैवादङ्घ्रिस्खलनमभवत्तेन समभू-
दसौ भग्नस्तत् किं तदनु च स चुक्रोध बहुधा ॥८१॥
तथा क्षुब्धो भूत्वा मनसि बहु संचिन्त्य स ययौ
हरेर्नाम्नां गाथाकथनमधुरोल्लासिवदनः ।
पथस्थान् देवांस्तान्निरवधि विलोक्य प्रमुदितो
ययौ पुण्यां धन्यामतिसुललितां याजनगरीम् ॥८२॥
अथैकाम्रक्षेत्रे स्मरदमनमालोक्य शतधा
स्तवं कृत्वा भूमौ पतति सति नाथे प्रमुदितः ।
शिवो देवः सोऽयं मलयरुहगन्धागुरुरसैः
प्रसादैरन्यैश्चारचयदिव तत् पूजनविधिम् ॥८३॥

नित्यानन्द भी पश्चात् भ्रमण करते करते अति हर्ष से दण्ड भग्न किये थे ॥८०॥

श्रीमन्महाप्रभु समीपस्थ नित्यानन्द को कहे थे—"मेरा दण्ड कहाँ है? कहो" उत्तर में नित्यानन्द कहे थे—"भूतल में सहसा पदस्खलन से दण्ड भग्न हुआ है, मैं क्या करूँ?" यह सुनकर गौरहरि क्रुद्ध हुये थे ॥८१॥

हरिनामोच्चारण से जिनके मुखचन्द्र सुमधुर एवं उल्लासयुक्त है, उन गौरहरि क्षुब्ध होकर मनोमध्य में सोच कर गमन करने लगे, एवं पथ स्थित देवगण को देखकर निरतिशय प्रमुदित होकर पुण्य धन्य एवं अत्यन्त सुललित याजनगरी ग्राम में उपस्थित हुये थे ॥८२॥

एकाम्रक्षेत्र में स्मरदमन महादेव का दर्शन करतः शत-शत स्तव पूर्वक महाप्रभु भूतल में निपतित होने से महादेव—मलयच

अथैतस्माद्गच्छन् कमलपुरमासाद्य ललितं
कपालेशं नत्वा विधिवदिह भार्गीस्नपनकृत् ।
ततस्तं प्रासादं गुरुशिखरकैलासललितं
स्फुरच्चक्रं वातप्रचलितपताकं कलितवान् ॥८४॥

पतित्वा स क्षौण्यां नयनकमलोद्गीर्णपयसा
समं तैस्तैः सर्वैः क्षितितलमलं स्नानमकरोत् ।
ततो गत्वा क्षेत्रं कृतपरमभक्तिः प्रभुवरं
विवेशासौ श्रीमानथ समवलोक्यानमदमुम् ॥८५॥

मुहुर्दृष्ट्वा तस्याननशशिनमत्यन्तमधुरं
गलन्नेत्राम्भोभिः स्वतनुमभिषिक्तामरचयत् ।

चन्दन, अगुरुरस एवं अन्यान्य प्रसाद द्वारा मानों उनकी पूजा विधि का विरचन किये थे ॥८३॥

गौरहरि—वहाँ से निर्गत होकर कमलपुर नामक ग्राम में उपस्थित होकर वहाँ कपालेश महादेव को नमस्कार पूर्वक तत्रत्य भार्गी नाम्नी नदी में यथाविधि स्नान किये थे, तत्पश्चात् उच्चतर शिखर कैलास पर्वत के समान मनोज्ञ एवं वायुवेग से परिचालित पताकायुक्त चक्रसमन्वित कपालेश्वर के प्रासाद का दर्शन किये थे ।८४।

उस समय श्रीमान् गौरहरि भूतल में निपतित होकर नयन कमलजात जल द्वारा तत्तत् भक्तगण के सहित भूतल में अभिषिक्त हुये थे। पश्चात् श्रीक्षेत्र गमन कर परम भक्ति पूर्वक—प्रभुवर श्रीजगन्नाथदेव को नमस्कार किये थे ॥८५॥

श्रीगौरहरि—जगन्नाथदेव के अत्यन्त मधुर मुखचन्द्र को पुनः

जगन्नाथोऽप्येनं निमिषरहितैरक्षिकमलै-
र्विलोक्य प्रेमाब्धौ निरवधि निमग्नोऽभवदिव ॥८६॥

इत्थं चक्रे परमरभसं श्रीनवद्वीपभूमौ
गन्धैर्माल्यैर्मलयजरसैर्भूरि कर्पूरपूरैः।
श्रीमद्वेशोद्‌गतमधुरिमाप्लाविताशेषदेशः
स्वैः स्वैर्लोकैर्नटनकलया स्वैरमेष प्रकामम् ॥८७॥

गेहे गेहे समजनि सदा मूर्त्तिमत्येव लक्ष्मीः
स्थाने स्थाने सुखसमुदयो मूर्त्तिमानेव भूतः।
नित्यं नित्यं नवनवमभूत् प्रेम सर्वस्य नाथे
स्वैरं स्वैरं विलसति तदा श्रीनवद्वीपभूमौ ॥८८॥

नासीन्निद्रा न भयमभवत् नाभवत् क्षुत्‌पिपासा
न स्वैरत्वं न च यमगता कालदण्डादिभीतिः।

पुनः दर्शन कर विगलित नयन जल से निज तनु को अभिषिक्त करने लगे, जगन्नाथदेव भी मानों गौरहरि को अनिमेष नयनों से अवलोकन कर निरवधि प्रेमाम्बुधि में निमग्न हुये थे ॥८६॥

गन्ध, माल्य, चन्दनरस एवं भूरि-भूरि कर्पूर द्वारा सुशोभित वेश माधुर्य से मानों अशेष देश को प्लावित कर रहे हैं, उन गौरहरि निज निज भक्तवृन्द के सहित नृत्य सङ्कीर्त्तन कौशल विस्तार कर श्रीनवद्वीप नगर में महानन्द विस्तार किये थे ॥८७॥

भक्तनाथ गौरहरि श्रीनवद्वीप भूमि में स्वेच्छाक्रम से विलास करने पर तत्कालीन लक्ष्मीदेवी मूर्त्तिमती होकर सर्वदा प्रति भवन में विराजकरने लगीं, एवं वह स्थान सर्व सुखद हुआ ॥८८॥

एकस्यापि प्रभुकरुणया यस्य कस्यापि तस्मि-
न्नेवं क्रीड़त्यतिसुललितं श्रीनवद्वीपभूमौ ॥८६॥



इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये
एकादशः सर्गः ।



वहाँ पर निद्रा, भय, क्षुधा, पिपासा, स्वेच्छाचारिता तथा यमसम्बन्धिभीति प्रभृति श्रीगौरहरि की कृपा से नहीं रही ॥८६॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये
एकादशः सर्गः ।



द्वादशः सर्गः

प्रविश्य सत्क्षेत्रमदभ्रलीलः-
श्रीसार्वभौमालयमाययौ सः ।
आकस्मिकं वीक्ष्य जगन्मनोज्ञं
सन्न्यासिनं सोऽथ ननन्द विप्रः ॥१॥

उत्थाय पाद्यादि समर्प्य भक्त्या-
पुरो निवेद्यासनमप्युदारम्
कृतप्रणामो नु सुधीरमङ्गः
पप्रच्छ सर्वं विनयेन विप्रः ॥२॥

कुतः समेतोऽसि कुतोनु यासि-
हृद्यो भवान्निर्भरशान्तदान्तः ।
इत्थं प्रभौ तेन यथार्थं पृष्टे-
तदेकनाथाः सकलं तदूचुः ॥३॥

अदभ्रलील गौरचन्द्र पुरुषोत्तम क्षेत्रस्थित सार्वभौम भट्टाचार्य भवन में उपस्थित हुये थे, एवं विप्रवर सार्वभौम भी भुवन मनोहर सन्न्यासी को अकस्मात् अवलोकन कर अतिशय आनन्दित हुये थे ।१॥

सार्वभौम गात्रोत्थानानन्तर भक्ति पूर्वक पाद्यअर्घ्य अर्पण कर सम्मुख में उत्कृष्ट आसन प्रदान किये थे, एवं प्रणाम पूर्वक अतीव सुधीर भाव से विनय पूर्वक सहसा समस्त विषय पूछे थे ॥२॥

"प्रभो ? आपका आगमन कहाँ से हुआ है, आप कहाँ जायेंगे, अत्यन्त शान्त एवं इन्द्रिय दमनादि गुणों से मनोज्ञमूर्त्ति हुये हैं" सार्वभौम इस प्रकार यथार्थ जिज्ञासा करने पर महाप्रभु के भक्तगण तत् समुदाय निवेदन किये थे ॥६॥

यथा-तथा तत्र सकलं विदित्वा
ज्ञातं तदाज्ञातमिति प्रहृष्टः ।
ननन्द वृन्दारकवृन्दवन्द्य-
पादारविन्दस्य पुरः स विप्रः ॥४॥

ज्ञात्वाथ तस्याशयमेय सद्यः
स्वयं स्वपुत्रेण सदादरेण ।
प्रस्थापयामास सितेतराद्रौ
प्रभुं जगन्नाथदिदृक्षुमञ्जः ॥५॥

स तेन सार्द्धं समुपेत्य तत्र
सुखं ततः स्वैरमपि प्रविश्य ।
ददर्श नीलाचलमौलिरत्नं-
तदातिसौख्याम्बुधिमग्न आसीत् ॥६॥

विलोक्य भूयो नतिभिः स्तवैश्च
नेत्राम्बुभिः स्वामभिषिच्य मूर्त्तिम् ।

श्रीमन्महाप्रभु के अज्ञात विषय समूह को यथार्थ रूप से परिज्ञात होकर सार्वभौम हृष्ट हुये एवं अपरवृन्दवन्द्य तदीय पदारविन्द युगल के अग्र में निरतिशय आनन्द प्रकाश करने लगे थे ॥४॥

सार्वभौम श्रीमन्महाप्रभु के आशय को अवगत होकर तत्क्षणात् निज पुत्र के सहित आदर पूर्वक जगन्नाथ दर्शनेच्छु गौरहरि को नीलाचल में प्रेरण किये थे ॥५॥

श्रीगौरहरि—सार्वभौमनन्दन के सहित नीलाचल में उपस्थित होकर नीलाचल मुकुट रत्नस्वरूप जगन्नाथदेव का दर्शन कर आनन्द सागर में निमग्न हुये थे ॥६॥

प्रदक्षिणीकृत्य च पञ्चकृत्वः-
कृच्छ्रेण तस्माद्बहिराययौ सः ॥७॥

इति प्रभुस्तत्र विलोक्य कान्तं
ननन्द नीलाचलमौलिरत्नम् ।
स्वनामरत्नेन विधाय हारं
कण्ठे वहन्नेव रराज नित्यम् ॥८॥

मुकुन्ददत्तादिभिरात्मलोकैः
स तत्र नाथः कतिचिद्दिनानि ।
विलोकयन्नीलगिरीन्द्ररत्नं-
निनाय कौतूहलपूर्णचित्तः ॥९॥

स एकदा चेतसि सार्वभौमो
महीसुराग्रचः कलयाञ्चकार ।

गौरहरि-जगन्नाथदेव का दर्शन कर बारम्बार नमस्कार एवं पुनः पुनः स्तव कर नेत्राम्बु समूह के द्वारा निज मूर्त्ति को अभिषिक्त करतः पाँचबार प्रदक्षिण कर वहाँ से अति कष्ट से निर्गत हुये थे ॥७॥

महाप्रभु नीलाचल मुकुटरत्न कमनीय मूर्त्ति जगन्नाथदेव का दर्शन कर निरतिशय आनन्दानुभव किये थे एवं निज नामरूप रत्न हार कण्ठ में धारण कर अतिशय शोभित हुये थे॥८॥

गौरचन्द्र कौतूहल से पूर्णमना होकर मुकुन्द दत्त प्रभृति निज भक्तगण के सहित नीलाचल भूषण जगन्नाथदेव का दर्शन कर कतिपय दिवस श्रीक्षेत्र में अतिवाहित किये थे ॥९॥

एकदा विप्रवर्य सार्वभौम गौरचन्द्र के प्रभाव एवं ऐश्वर्यादि की समीक्षा मनोमध्य में करने लगे थे, किन्तु कृपा निधि का मनुष्य

प्रभावमैश्वर्य्यमिदं समस्तं
मनुष्यभावादविदन् कृपालोः ॥१०

अखण्ड पाण्डित्य समुद्रवीचि-
प्रवाह कल्लोलकुलैरमन्दै
र्यस्य प्रकामं वधिरीकृतोऽभू-
द्वृहस्पतिर्जाड्यमयंसमेतः ॥११॥

स एव सम्भावित दम्भराशि
र्गभीरधीर्यन्न प्रभुपादपद्मम् ।
न वेद तन्नो खलु चित्रमेतन्न
वेत्ति पाण्डित्यकुलादिलेशम् ॥१२॥

असौ महात्मा पुरुषप्रधानो
वयस्थ एव न्यसनं चकार ।
यदीदृशं स्वान्तरलं तदालं
विचिन्तितैर्नत्वयि कष्टमेतत् ॥१३॥

भाव हेतु किञ्चिन्मात्र भी अवगत होने में सक्षम नहीं हुये ॥१०॥

गौरचन्द्र की अखण्ड पाण्डित्यरूप समुद्र तरङ्ग की प्रवाहमय सातिशय महातरङ्ग से वृहस्पती भी बधिर होकर जड़तापन्न होते हैं ॥११॥

जिनके अहङ्कार समूह का समादर सब व्यक्ति करते हैं, तादृश गभीर बुद्धि सम्पन्न वृहस्पति श्रीप्रभु के पादपद्म को जान सकते हैं, यह आश्चर्य नहीं है, किन्तु श्रीप्रभु के पाण्डित्यादि गुणगण के लेश मात्र को भी नहीं जानते हैं, ॥१२॥

यह पुरुष श्रेष्ठ महात्मा नवीन वयस में ही सन्नयास ग्रहण

अनेकधा पुरुषरत्नचिह्नै
र्मनोरमः सर्वजगज्जनस्य ।
कथं नु कालं गमयिष्यतीमं
सन्न्यासधर्मप्रतिपालनेन ॥१४॥

असौ महावंशसमुद्भवश्च
महाशयश्चाल्पवयोविकाशः ।
कलौ तदार्हां यतितां सुदुर्गां
कथं तरिष्यत्यहहातिकष्टम् ॥१५॥

तदेतमत्यन्त सुशान्तचित्तं
संश्राव्य वेदान्तमजस्रमेव ।
करोमि वैराग्यरसेनभास्वज्-
ज्ञानैकतानेन च मोक्षपान्थम् ॥१६॥

किये है, कारण—निज रूप भी अति मनोहर है, चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है, यह सब आपके कष्ट कर नहीं है, ॥१३॥

यह महातमा अनेक प्रकार महापुरुष के चिह्न के द्वारा समस्त जगज्जन के मनोरम सन्नयास धर्म का प्रतिपालन कर कैसे काल व्यतीत करेंगे ? ॥१४॥

यह महाशय महावंश समुद्भूत हैं, एवं इनका वयःक्रम अल्प है, हा कष्ट ! कलियुग में तदुपयुक्त सुदुर्ग यतिधर्म का निर्वाह कैसे होगा ? ॥१५॥

अतएव अत्यन्त सुशान्त चित्त को निरन्तर वेदान्त श्रवण के द्वारा वैराग्यरस एवं भास्वत् ज्ञान स्वरूप ब्रह्मज्ञान सम्पन्न कर इनको मोक्षपथ का एकमात्र पथिक करना होगा ॥१६॥

इत्यस्य हृन्मन्त्रितमाकलय्य-
प्रभुः प्रफुल्लाम्बुजमञ्जुलास्यः ।
व्याप्य त्रिलोकीं स्फुरितानुकम्पा
विलोलचेता मनसा जहास ॥१७॥

अन्येद्युरुद्दामखरांशुराजि-
राजद्द्युतिः स्वैश्चरणानुरक्तै
र्जगाम तस्यालयमात्तजोषा-
द्दोषाकराकार मनोहरास्यः ॥१८॥

विलोक्य नाथं सह शिष्यवृन्दैः
समुत्थितः स प्रणनाम शश्वत् ।
सदासनं चाथनिवेद्य तस्मिं
स्तत्रस्थितोऽभूत् स्वयमासनस्थः ॥१९॥

प्रभु गौरचन्द्र- सार्वभौम की चित्त वृत्ति को जानकर विकसित कमल के समान प्रफुल्ल वदन एवं व्यापक करुणा के द्वारा चञ्चल चित्त होकर सार्वभौम के प्रति करुणा प्रकाश कर मन ही मन हसने लगे थे ॥१७॥

जिनकी अङ्गद्युति प्रखर दिवाकर के समान जिनका वदन अति मनोहर, उन श्रीगौरहरि अपर एकदिन निज पादानुरक्त भक्तगण के सहित सार्वभौमालय में उपस्थित हुये थे ॥१८॥

सार्वभौम-भक्तवृन्द के सहित श्रीप्रभु का दर्शन कर गात्रोत्थान पूर्वक प्रणाम किये थे, एवं प्रशस्त आसन प्रदान कर स्वयं एक आसन में उपविष्ट हुये थे, ॥१९॥

उवाच विप्रो विनयेन नाथं–
वेदान्त एतैः परिपठ्यतेऽत्र ।
भवादृशा योग्यतमाः शृणुध्वं
मनः कषायो यतआशु याति ॥२०॥

अधीतमध्यापितमेतदुच्चै
रनेकशस्तत् पुनरप्यमुष्य ।
प्रभोः समीपे धरणीसुराग्र्यो
बभूव संपाठयितुं प्रमत्तः ॥२१॥

साक्षान्महीगीष्पतिरेष चञ्चत्
प्रागल्भ्य संयुक्तवचा यथाधि
निर्वक्तितत्तत् स निशम्य नाथः
शनैस्तदोद्ग्राहविधिं चकार ॥२२॥

सार्वभौम विनय पूर्वक प्रभु को निवेदन किये थे, शिष्यगण—यहाँ वेदान्त पाठ कर रहे हैं, आप सब अति सुयोग्य हैं, अतएव श्रवण करें, जिसके श्रवण से मनःकषाय अर्थात् मनोमालिन्य बिदूरित होगा ॥२०॥

"वेदान्त शास्त्र का अध्ययन मैंने किया हे, एवं शिष्यगण को बहुबार अध्ययन कराया है' द्विजवर सार्वभौम यह कह कर पुनर्बार उन्मत्त के समान प्रभु को वेदान्त अध्ययन कराने में प्रवृत्त हुये थे ।२१।

साक्षात् भूलोक बृहस्पति सार्वभौम अत्यन्त प्रगल्भ वाक्य से यथाविधि वेदान्त मत का कथन कर रहे थे, गौरहरि—तत्तद्वाक्य श्रवण कर धीरे-धीरे उक्त वाक्य की विधि अर्थात् निज वाक्य की अवतारणा किये थे ॥२२॥

किमुच्यते कः खलु पूर्वपक्षः
किंवास्य राद्धान्तितमातनोषि ।
वेदान्तशास्त्रस्य न चायमर्थ
स्तच्छ्रूयतां यत्तु निरूपयामः ॥२३॥

इत्यस्य पक्षप्रतिपक्षरूपं–
स पक्षमेकं सतु सञ्जयित्वा ।
अद्वैतवादं विनिरस्य भक्ति
संस्थापकं स्वीयमतं जगाद ॥२४॥

इत्थं प्रमाणैरखिलैश्च शक्त्या
तात्पर्य्यतो लक्षणया च गौण्या ।
मुख्या जहत्स्वार्थं तदन्यमिश्र
स्वरूपया स्वम्मतमावभाषे ॥२५॥

असौवितण्डाच्छलनिग्रहाद्यै
र्निरस्तधीरप्यथ पूर्वपक्षम् ।

क्या कह रहे हैं ? इसका पूर्वपक्ष क्या है ? इसका सिद्धान्त क्या कह रहे हैं ? वेदान्त शास्त्र का यह अर्थ नहीं है, अतएव मैं जो कुछ निरूपण कर रहा हूँ, उसका श्रवण आप करें ॥२३॥

यह कहकर गौरहरि– सार्वभौम पक्ष का प्रतिपक्ष अर्थात् विरोधीरूप सपक्ष सज्जित कर अद्वैतवाद निरास पूर्वक भक्ति संस्थापक निजमत को कहने लगे थे ॥२४॥

श्रीगौरहरि—अमल प्रमाण के द्वारा तथा तात्पर्य, लक्षणा, गौणी, मुख्या, अजहत्स्वार्था नामक शब्द शक्ति के द्वारा स्वीय मत प्रकाश करने लगे थे ॥२५॥

चकार विप्रः प्रभुना सचाशु
स्वसिद्धसिद्धान्तवता निरस्तः ॥२६॥

अद्वैतवादी प्रथमः पदाब्जवादी
प्रभुश्च प्रतिभैकसिन्धू ।
तौ भक्तसेव्यौ बहु दीर्घकालं
वदावदैर्निन्यतुरन्यथैव ॥२७॥

अथैष विस्मेरमना द्विजाग्रयो
हृदाहृदिव्याकुलितो जगाद ।
क एष मत्प्रातिभ खण्डनार्थ
मिहावतीर्णः किमु गीष्पतिः स्यात् ॥२८॥

इतीह तर्कों मम सर्वदासी
बृहस्पतिर्मत्प्रतिभासमुद्रे ।
न पारमासदयिता कदापि
सदोद्यतः सन्नपि बुद्धिनावा ॥२९॥

विप्रवर सार्वभौम वितण्ड, छल एवं निग्रहादि के द्वारा निरस्त बुद्धि होकर पूनर्वार पूर्वपक्ष किये थे, एवं स्वभावसिद्ध सिद्धान्तविद् महाप्रभु शीघ्र पूर्वपक्ष को निरस्त किये थे ॥२६॥

प्रथम अद्वैतवादी सार्वभौम भट्टाचार्य एवं द्वितीय पदाब्जवादी प्रतिभा सिन्धु एकमात्र गौरचन्द्र, उभय जन ही निज निज भक्तवृन्द कर्त्तृक निषेवित होकर वादवितण्डासे सुदीर्घकाल यापन किये थे ।२७।

द्विजाग्रणी सार्वभौम विचार कर कहे थे—"मेरी प्रतिभा खण्डनार्थ कौन व्यक्ति अवतीर्ण हैं, यह क्या वृहस्पति होंगे ? ॥२८॥

इस प्रकार तर्क मेरा सर्वदा ही है, किन्तु वृहस्पति समुद्यत होकर अर्थात् उद्‌योगी होकर भी मेरी प्रतिभारूप समुद्र में बुद्धिरूप

अयन्तु कैशोरवयाः कियद्वा
प्यधीतमास्ते वद पाठितम् किम् ।
तथापि शक्तिर्मम नैव भूता
पराभवायास्य ममैव साभून ॥३०॥

तदेष कृष्णः खलु नान्यथैव
चरित्रमेतद्गमकं हि तत्र ।
इत्थं विचिन्त्यैव हृदा हृदीशं-
ननाम रोमाञ्चसमञ्चिताङ्गः ॥३१॥

निर्यद्विलोलाक्षिसराः स रेमे
समुद्गमोऽसौ स्तुतिनत्युपेतः ।
प्रसादयामास विभुं सचापि
कृपैकसिन्धुः प्रससाद तत्र ॥३२॥

नौका के द्वारा पार गमन करने में सक्षम नहीं होते हैं ॥२६॥

इनको तो मैं किशोर वयस्क देख रहा हूँ, अध्यापन कर रहे हैं? अथवा अध्ययन कर रहे हैं, ऐसा होने पर भी मुझको पराभूत करने की शक्ति इनको नहीं है, किन्तु वह शक्ति मुझमें है ॥३०॥

अतएव "यह निश्चय ही कृष्ण होंगे, इससे अन्यथा नहीं है, कारण—इनका चरित्र ही इस विषय में प्रमाण है" मन ही मन इस प्रकार चिन्ता कर सार्वभौम पुलकाञ्चित होकर ईश्वर को नमस्कार किये थे ॥३१॥

सार्वभौम—अश्रुविगलित चञ्चलनेत्र एवं रोमाञ्चित कलेवर होकर स्तुति करतः महाप्रभु को प्रसन्न करने लगे, कृपासिन्धु गौरहरि भी वहाँ पर प्रसन्न हो गये ॥३२॥

प्रदर्शयामास चतुर्भुजत्वं
दिवाकराणां शतकोटिभास्वत् ।
ततोऽधिकं सोऽपि ननन्द विप्र
स्ततोधिकश्च स्तवमप्यकार्षीत ॥३३॥
यद्यत् सभूमीसुरसङ्घमुख्य
स्तुष्टाव तुष्टः सुमहाप्रगल्भः ।
तत्तन्न वाचस्पतिरप्यभीक्ष्णं
प्रयासतोऽपि प्रभवेन्न्वविष्णुः ॥३४॥
अथैष नाथः कतिचिद्दिनानि नीत्वा
प्रयातुं दिशि दक्षिणस्याम् ।
चक्रे मनस्तं समनुव्रजन्तः
सर्वे च जग्मुर्हरिनामपूर्वम् ॥३५॥
गत्वा कियद्दुरमसौ कृपावान्
विसर्ज्जयामास तदा समस्तान् ।

श्रीगौरहरि—शतकोटि दिवाकर के समान दीप्तिशाली चतुर्भुज रूप दर्शन कराये थे, एवं सार्वभौम अतिशय आनन्दित होकर समाधिक स्तव किये थे ॥३३॥

भूसुराग्रगण्य एवं सुमहा प्रगल्भ सार्वभौम तुष्ट होकर जो स्तव किये थे—उस प्रकार स्तव करने में बृहस्पति भी अक्षम हैं ॥३४॥

गौरहरि—कतिपय दिवस वहाँ पर निवास कर दक्षिणदिक् में भ्रमण करने में मनस्थ किये थे, अन्यान्य भक्तवृन्द भी उनके अनुगामी होकर हरिनाम सङ्कीर्त्तन करते करते यात्रा किये थे ॥३५॥

कृपावान् गौरचन्द्र कियद्दूर गमन करने के पश्चात् भक्तवृन्द

तत्रान्तरे वर्त्मनि सोऽपि
गोपीनाथाह्वयो भूसुर आननाम ॥३६॥

प्रभुः करे तस्य विलोक्य पुस्ती-
मेकां स्तवानां प्रणयाद्विकृष्य ।
जग्राह गच्छन्नथ सर्वएव-
समागतास्तं समनुव्रजन्तः ॥३७॥

गतेषु सर्वेषु स एक एव
प्रभुर्व्रजन् कुत्र च वृक्षमूले ।
सुखोपविष्टः परिमुच्य पुस्ती
मालोकयामास चिराय हर्षात् ॥३८॥

स तत्र नाथः परितो विचार्य्य
श्रीसार्वभौमस्य कवित्वमेकम् ।
विलोकयामास तदा पदानां
मध्ये पदं कृष्ण इति व्यपश्यत् ॥३९॥

को विदा किये थे, इस समय वहाँ पर गोपीनाथ नामक एक ब्राह्मण आकर महाप्रभु को प्रणाम किये थे ॥३६॥

महाप्रभु उक्त विप्र के हस्त में एक पुस्तक को देखकर प्रीति पूर्वक हस्त आकर्षण कर उसे ग्रहण किये थे, तत्पश्चात् भक्तवृन्द महाप्रभु के निकट समागत हुये थे ॥३७॥

भक्तगण चले जाने पर एकाकी गौरहरि—एक वृक्ष मूल में उपविष्ट होकर पुस्तक उन्मोचन कर अतीव निविड़ हर्ष से सुदीर्घकाल देखने लगे थे ॥३८॥

सर्वतोभावेन विचार कर गौरहरि ने पुस्तक में सार्वभौम कृत कवित्व को देखा, एवं उसमें 'कृष्ण' यह पद भी देखा था ॥३९॥

विलोक्य तं कृष्णपदं तदैव
प्रेमातिरेकेण स विह्वलात्मा ।
पपात भूमौ नयनाश्रुधारा
समूहधौताङ्गलतो विचेष्टः ॥४०॥

तथैव भूमौ पतितः स वृक्ष-
मूलेऽवशेषं दिवसस्य यश्च ।
निशाञ्च सर्वामनयत् कृपालुः
श्रीसार्वभौमे करुणां विधित्सुः ॥४१॥

प्रातः प्रबुद्धोऽतिसुविह्वलात्मा
जगाम वाग्गद्गदरुद्धकण्ठः ।
अहो ममाभूद् बहुलापराधो
महानुभावात्मनि सार्वभौमे ॥४२॥

'कृष्ण' पद दर्शन मात्र से ही गौरहरि अतिशय प्रेम विह्वल होकर भूतल में निपतित हो गये, पतनकाल में तदीय नेत्र विगलित अश्रु धारा से समस्त अङ्गलता विधौत हो रही थी, आप निःश्चेष्ट हो गये थे ॥४०॥

उस अवस्था में ही कृपालु गौरहरि—सार्वभौम के प्रति करुणा विधान करने का इच्छुक होकर वृक्षमूल में निपतित अवस्था में ही दिवस का अवशिष्ट भाग एवं समस्त निशा अतिवाहित किये थे ॥४१॥

अनन्तर श्रीगौरहरि—प्रत्यूष में जागरित होकर अत्यन्त विह्वल चित्त से गद्गदायमान रुद्ध कण्ठ से कहे थे—'हाय ! हाय ! महाभावाढ्य सार्वभौम के निकट मेरा अपराध हुआ है, यह कहकर जाने लगे ॥४२॥

कथं नु वा तं परिहाय मोहाद्
गच्छामि दम्भैकवशेन तीर्थम् ।
क्षेत्रं पुनर्यामि तदस्य सेवां
करोमि स त्वेव महानुभावः ॥४३

अमूष्य सेवाविधिमन्तरेण
न किञ्चनापि प्रयतः करिष्ये ।
इत्येव भूयः करुणापयोधिः
क्षेत्रं समायात् प्रहरैकमध्ये ॥४४॥

आचार्य्यवर्य्यानयनाय कञ्चित्
संप्रेषयामास झटित्यथापि ।
सतु त्वरावान् समुपेत्य गोपी-
नाथं तमाचार्यवरं जगाद ॥४५॥

महाप्रभु विविध चिन्ता कर रहे थे, उसका वर्णन करते हैं, "हाय ! मैं कैसे सार्वभौम को परित्याग कर अज्ञान वशतः अहङ्कार वशीभूत होकर तीर्थयात्रा करूँगा ? पुनर्बार क्षेत्र में वास कर उनकी ही सेवा करूँ, कारण—आप महानुभाव पुरुष हैं ॥४३॥

शुद्ध भाव से उनकी सेवा को छोड़कर अपर कुछ भी नहीं करूँगा" इस प्रकार चिन्ता कर करुणानिधि गौरहरि प्रहर काल के मध्य में पुनर्बार श्रीक्षेत्र गमन किये थे ॥४४॥

तब सार्वभौम आचार्य श्रेष्ठ गोपीनाथ को आनयन करने के निमित्त एक भृत्य प्रेरण किये थे, प्रेरित भृत्य ने शीघ्र उपस्थित होकर आचार्य गोपीनाथ को निवेदन किया ॥४५॥

आचार्य शीघ्रं समुपैहि कृष्ण
चैतन्य देवोऽयमिहागतोऽस्ति ।
किमात्थ रे किं वितथं समस्तं
गतः सहर्षो दिशि दक्षिणस्यां ॥४६॥

अस्माभिरेवायमनुव्रजद्भि–
र्विदूरत स्त्यक्त इतः कथं स्यात् ।
इत्युक्तवानेष पुनश्च तेन–
सत्यं ब्रवीमीत्यसकृत् स उक्तः ॥४७॥

त्वरान्वितस्तन्निकटं स गोपी
नाथः सदाचार्यवरो जगाम ।
अवेक्ष्य तं हृष्टमना महात्मा
सविस्मयं सप्रियमाजगाद ॥४८॥

किमेतदाश्चर्य्यमतीव देव
कथं गतो वा कथमागतो वा ।

"हे आचार्य ! सत्वर आगमन कर, कृष्णचैतन्यदेव का यहाँ आगमन हुआ है" यह सुनकर गोपीनाथ कहे थे—"अरे ! तु ने क्या झूट कहा ? श्रीचैतन्यदेव दक्षिण देश भ्रमणार्थ गये हैं" ॥४६॥

"हम सब उनका अनुगमन कर उनको बहुत दूर में छोड़ आये हैं, सम्प्रति आप यहाँ सहसा कैसे आयेंगे ? गोपीनाथ इस प्रकार कहने से भृत्य ने पुनर्बार कहा—मैं बारम्बार कह रहा हूँ" ॥४७॥

तब महात्मा गोपीनाथाचार्य त्वरान्वित होकर महाप्रभु के निकट उपस्थित हुये थे, एवं उनको दर्शन कर हृष्ट मन से विस्मय प्रकाश कर मिष्ट वाक्य से कहे थे— ॥४८॥

ततः प्रभुर्दन्तविसूनरोचि-
श्छटा समापृक्तविलोहितौष्ठः ।।
उवाच माध्वीक रसाप्लुतेन
वचोविलासेन विलासवान् सः ।।४६।।

आचार्य भूयानपराधराशि-
र्ममाभवत् संप्रति सार्वभौमे ।
यतोऽहमेतं परिहाय दम्भा-
त्तीर्थाटनं कर्त्तुमना बभूव ।।५०।।

असौ महात्मा भगवत्स्वरूपो
जगत्रयीत्राणपरः सदीहः ।
यदस्य वक्त्रादुदभूत् स कृष्ण-
नामानवद्यं ललितैकपद्यम् ।।५१।।

"देव ! आपका गमन किस प्रकार से हुआ, एवं आगमन भी किस प्रकार हुआ ? यह अतीव आश्चर्य है ? आचार्य इसे प्रकट करने पर महाप्रभु शुभ्र दशन च्छटा से लोहितौष्ठ होकर रसाप्लुत मधुर वाक्य से कहे थे ।।४६।।

आचार्य ! सम्प्रति सार्वभौम के निकट मेरा महान् अपराध हुआ है, कारण मैं दम्भ के सहित उनको छोड़कर तीर्थ यात्रा करने का इच्छुक हूँ ।।५०।।

यह महात्मा भगवत् स्वरूप हैं, जगत्रय का रक्षक एवं सुचेष्ट हैं, कारण इनके—मुख से कृष्ण नामाङ्कित अनिन्दित एक मनोहर श्लोक समुद्गत हुआ है ।।५१।।

तदस्य सेवैव मया विधेया
मम त्वियं केवलमीशसेवा ।
इत्थं विचिन्त्यार्थमहं गतोऽपि
तीर्थप्रयाणे पुनरागतश्च ॥५२॥

इत्यस्य वाचं परमां दुरूहां
श्रुतिस्मृतीनामपि सारभूताम् ।
अथैव मृग्यां परिमृग्य विप्रः
क्षिप्रं जहास स्फुटदन्तपङ्क्तिः ॥५३॥

अहो महाकारुणिकस्य चेष्टां
पश्य प्रभोर्दीनजने कृपालोः ।
को वास्य जानातु महादुरापं
माहात्म्यमेते खलु कीटकल्पाः ॥५४॥

अहो महाकारुणिकस्य पश्य
जगत्कृपापूरभृतं चिकीर्षोः ।

अतएव इनकी सेवा करना ही मेरा कर्त्तव्य है, एवं इनकी सेवा ही मेरे पक्ष में ईश्वर की सेवा है, इस प्रकार विवेचना करके ही मैंने तीर्थ यात्रा से प्रत्यावर्त्तन किया हूँ ॥५२॥

विप्रवर्य गोपीनाथ गौरहरि से परम दुरूह श्रुति स्मृति का सार-स्वरूप श्रोतव्य वाक्य श्रवण कर शुभ्र दशन पङ्क्ति विकसन पुरःसर हास्य किये थे ॥५३॥

आहा ! महाकारुणिक कृपालु गौरहरि की दीनजन के प्रति करुणा को देखकर इनका दुर्गम माहात्म्य को कौन जान सकता है, हम सब तो साधारण कीट सदृश हैं ॥५४॥

अनुग्रहं सम्प्रति सार्वभौमे
देवेशकल्पैरपि यो दुरापः ॥५५॥

वेदान्तिनां मण्डल-सार्वभौमः
स सार्वभौमो गतभक्तिगन्धः ।
दैवेन पद्योद्गतकृष्णनामा
बभूव युष्मत् करुणाधिपात्रम् ॥५६॥

अहो महाकारुणिकं तमेनं
को मूढ़धीर्नानुभजेत लोकः
दोषान् बहून् प्रोज्झ्य लवं गुणस्य
गृह्णाति भूयः कुरुतेऽनुकम्पाम् ॥५७॥

न कस्य वक्त्रात् खलु कृष्णनाम
वहिः प्रयात्यस्य ततः किमासीत् ।
ज्ञातं तदा सम्प्रति सार्वभौमे
करिष्यसे भूरितरानुकम्पाम् ॥५८॥

अहो ! जगत् को कृपाप्रवाह से प्लावनेच्छु महाकारुणिक गौरहरि का सार्वभौम के प्रति अधुना अनुग्रह दर्शन करो, जो अनुग्रह देवेशकल्प अर्थात् इन्द्र प्रभृति देवगण के पक्ष में दुर्ल्लभ है ॥५५॥

सार्वभौम वैदान्तिकगण के मध्य सार्वभौम हैं, अर्थात् सर्वत्र भक्तिगन्धशुन्य रूप में विख्यात हैं. उनके पद्य से दैवात् कृष्ण नाम उद्गत होने से करुणा पात्र सम्प्रति हुये हैं ॥५६॥

अहो ! ईदृश महाकारुणिक प्रभु का भजन कौन मूढ़ व्यक्ति नहीं करेगा ? प्रभु—बहु दोष परित्याग पूर्वक लवमात्र गुण ग्रहण कर पुनर्बार अनुकम्पा करते हैं ॥५७॥

किसके मुख से कृष्ण नाम उच्चारित नहीं होता है, उससे क्या

इत्यस्य वाचं स निशम्य नाथः
सविस्मयोत्साहरसप्रफुल्लाम् ।
जगाद मैवं वद भो महात्मन्
सेवैव तस्येह मया विधेया ॥५९॥

इत्युक्तवांस्तं दिवसं निनीय
शेषे रजन्याः प्रथमावकाशम् ।
विलोकितुं तल्पतलादुदासी-
त्ततो जनैर्नित्यकृतिं चकार ॥६०॥

ततो वहिश्चेलकटीरसूत्रे
प्रगृह्य नामग्रहणोत्ककण्ठः ।
प्रासादमध्ये प्रविवेश नाथो
यथोदयाद्रिं शरदिन्दुरेषः ॥६१॥

होता है ? अतएव सुस्पष्ट प्रतीत होता है कि— केवल सार्वभौम को प्रचुर परिमाण में प्रभु ने कृपा की है ॥५८॥

गौरचन्द्र—गोपीनाथाचार्य्य के विस्मय एवं उत्साह रसद्वारा प्रफुल्लित वाक्य श्रवण कर कहे थे— हे महात्मन् ! आप वैसा पुनर्बार न कहें, सम्प्रति उनकी सेवा ही मेरा कर्त्तव्य है ॥५९॥

श्रीगौरहरि—उस प्रकार कहकर उस दिवस अतिवाहित किये थे, एवं रात्रि अवशेष होने पर प्रथमावकाश सन्दर्शनार्थ शय्या से उत्थित होकर परिजनवृन्द के सहित नित्यकृत्य सम्पन्न किये थे ॥६०॥

गौरचन्द्र—नाम ग्रहणार्थ उत्कण्ठित होकर कटि सूत्र एवं वहिर्वास धारण पूर्वक उदयाचल में शारदीय शशधर के समान प्रासाद के मध्य में प्रवेश किये थे ॥६१॥

खगाधिपस्तम्भवरस्य पश्चाच्चा
मीकरस्तम्भवदास्थितोऽसौ ।
ददर्श नीलाचलमौलिरत्नं
विलोचनाम्भोझरधौतदेहः ॥६२॥

ततः स धूपावधि सुस्थितोऽसौ
प्रत्यूषकृत्यानि विलोक्य तस्य ।
महाप्रसादान्नमतीवरम्यं
प्रगृह्य किञ्चिद्बहिराजगाम ॥६३॥

तथैव देव स तु सार्वभौमं
विलोकितुं तस्य गृहं जगाम ।
स तु प्रभाते खलु तल्पमध्या-
द्दैवेन नैवोद्गतवांस्तथासीत् ॥६४॥

ततोऽस्य केनाप्यनुगेन नाथं
विलोक्य तं बोधयितुं जगन्ते ।

नेत्रपतित जलधारा धौतदेह गौरसुन्दर गरुड़स्तम्भ के पश्चात् भाग में स्वर्णस्तम्भ के समान दण्डायमान होकर नीलाचल मौलिरत्न जगन्नाथदेव का दर्शन करने लगे थे ॥६२॥

गौरसुन्दर—जगन्नाथ के धूपावधि प्राभातिक कार्य समूह का अवलोकन कर अति रमणीय महाप्रसादान्न किञ्चित् ग्रहण पूर्वक वहिर्भाग में आगमन किये थे ॥६३॥

श्रीगौराङ्गदेव–सार्वभौम को देखने के निमित्त उनके घर गये थे, उस समय दैववशःत सार्वभौम शय्या त्याग नहीं किये थे ॥६४॥

उस समय सार्वभौम के एक भृत्य उनको जागरित करने के निमित्त जा रहा था, महाप्रभु ने उसको मनाकर पश्चात् शयन गृह

निवारयामास ततः प्रभुस्तं
तत्स्वापगेहान्तविलीन एव ॥६५॥
ततोऽस्य पार्श्वस्य विवृत्तिकाले
श्रीकृष्णकृष्णेति निशम्य नाथः ।
अर्द्धं प्रबुद्धार्द्धनिमग्नवाणीं जगाम
निर्व्याजमनेकसौख्यम् ॥६६॥
ततः प्रबुद्धोऽभवदेव भूमी
गीर्वाणसिंहः स तु सार्वभौमः ।
ददर्श चाथो यतिमण्डलीनां
चूड़ामणिं श्रीयुतगौरचन्द्रम् ॥६७॥
ततोऽति संभ्रान्तमतिस्त्वरावां
स्तल्पात् समुत्थाय ननाम हृष्टः ।
ततस्तु नानाकथया स काल
स्तयोर्महाकौतुकपूर्ण आसीत् ॥६८॥

के निकट विलीन भाव से अवस्थित हुये थे ॥६५॥

गौरचन्द्र—सार्वभौम के पार्श्व परिवर्त्तन के समय "श्रीकृष्ण, कृष्ण" इस प्रकार अर्द्धजागरित एवं अर्द्धनिद्रित का वाक्य को सुनकर निरतिशय अकपट सुखानुभव किये थे ॥६६॥

भूगीर्वाणसिंह अर्थात् ब्राह्मणश्रेष्ठ सार्वभौम जागरित होकर ही सम्मुख में यतिमण्डली चूड़ामणि श्रीयुत गौरचन्द्र का दर्शन किये थे ॥६७॥

सम्भ्रान्तमति सार्वभौम—हृष्ट होकर सत्वर शय्या त्याग कर प्रणाम किये थे, उस समय उभय का वाक्यालाप महाकौतुक से पूर्ण हुआ ॥६८॥

ततः प्रभुः कारुणिकोऽनुवेलं
समस्तलोकेषु महारसाब्धिः ।
आकृष्य वासोञ्चलतः प्रसाद
मन्नं स जग्राह करारविन्दे ॥६९॥

उद्यम्य बाहुं स महाप्रसादं
सिद्धौषधिव्यावृतकल्पवृक्षम् ।
उवाच काले कृतनित्यकृत्यो
भवानिदं भोक्ष्यते इत्यदाच्च ॥७०॥

उत्थाय सोऽतिस्पृहया त्वरावा
नादाय पाणौ सुमहाप्रसादम् ।
प्रसादलब्धौ यदि चेद्विलम्बः
कृतं कृतं तत् खलु विज्ञताभिः ॥७१॥

कारुणिक एवं प्रतिक्षण में समस्त लोकों के प्रति महारसाब्धि सदृश गौरचन्द्र—वसनाञ्चल से प्रसादान्न ग्रहण कर हस्तपद्म में धारण किये थे ॥६९॥

गौरचन्द्र—महाप्रसादयुक्त सुतरां महौषधि समन्वित कल्पवृक्ष सदृश निजबाहु उत्तोलन पूर्वक कहे थे—'आप नित्यकृत्य समापन कर यथा समय में महाप्रसाद ग्रहण करेंगे" यह कहकर प्रसाद अर्पण किये थे ॥७०॥

सार्वभौम—उत्थित होकर अतीव स्पृहा के सहित सत्वर प्रभुदत्त शोभन महाप्रसाद हस्त प्रसारण पूर्वक ग्रहण कर 'प्रसाद प्राप्त कर यदि विलम्ब करता हूँ, तब जन्म ही निष्फल है" यह

इत्येष सद्यः पुलकालियुक्तो
महाप्रसादं वदने ददौ तम् ।
प्रभुर्महामोद सुमेदुरात्मा
प्रगृह्य दोर्भ्यां तमथो ननन्द ॥७२॥

अन्योन्यदीर्घश्वसिताक्षिरणीव
रोमाञ्च-धर्माम्बु-विभूषिताङ्गौ ।
आनन्दसिन्धुप्लवतृप्तचित्तौ
बभूवस्तौ प्रभु सार्वभौमौ ॥७३॥

दृशौ गलद्वारिविलुप्ततारे
देहश्च रोमाञ्चसमूहलुप्तः ।
तयोस्तदा प्रेमनदीकृतेन
स्नानेन जाड्यं परमं बभूव ॥७४॥

सोच कर तत्क्षणात् पुलकित कलेवर से उक्त प्रसाद वदन में अर्पण किये थे, महाप्रभु—उक्त भृत्य को देखकर महाहर्ष से स्निग्धमना होकर बाहुद्वय के द्वारा सार्वभौम को ग्रहण कर अतिशय आनन्दित हुये थे ॥७१-७२॥

परस्पर का निश्वास, नेत्रजल, एवं धर्मजल से जिनके अङ्ग विभूषित हैं, गौरचन्द्र एवं सार्वभौम उभय ही आनन्द समुद्र में अवगाहन करत: परितृप्त चित्त हुये थे ॥७३॥

गौरचन्द्र एवं सार्वभौम प्रेमरूप नदी प्रवाह में अवगाहन जन्य महाजड़तापन्न हुये थे, कारण—नेत्रतारका विगलित वाष्पजल में एवं पुलकित अङ्ग समूह में विलुप्त हो गई ॥७४॥

इत्थं प्रभुर्विप्रघटाग्रगण्यं
वशे चकारातिकृपारसेन ।
चित्तं ततस्तत् करुणारसेन
संक्रान्ततां निर्भरमाजगाम ॥७५॥

ततः प्रभृत्येष महाकृपालो
गौराङ्गचन्द्रस्य पदारविन्दे ।
कायेन वाचा मनसानुरक्तो
भवन्निरस्ताखिलगर्वभारः ॥७६॥

इत्थं सचान्येद्युरसौ द्विजाग्र्यो
धूपावसाने प्रभुगौरचन्द्रम् ।
द्रष्टु जगामाथ महाकृपालु-
विमुक्तविद्यामद भावशान्तः ॥७७॥

दृष्ट्वा ननामावनिमुलराज-
न्मौलिर्महात्मा स्तवमप्यकार्षीत् ।

गौरचन्द्र विप्राग्रगण्य सार्वभौम को स्वीय कृपारस द्वारा वशीभूत किये थे, एवं विप्रवर का चित्त भी गौरचन्द्र के करुणारस के सहित अतिशयरूप में मिश्रित हो गया ॥७५॥

सार्वभौम—निखिल गर्व परित्याग पूर्वक महाकृपालु गौरचन्द्र के पदारविन्द में सर्वथा अनुरक्त हो गये थे ॥७६॥

विप्रवर सार्वभौम—विद्यामद परित्याग पूर्बक शान्त भाव अवलम्बन पूर्वक धूप आरति का अवसान होने पर महाकृपालु गौरचन्द्र के दर्शनार्थ गमन किये थे ॥७७॥

जिनका मस्तक अवनिमूल में अर्थात् भूतल में शोभमान है, उस अवस्था में महात्मा विप्रवर सार्वभौम गौराङ्गदेव को देखकर

अथो जगादाशु च भीतभीतो-
बद्धाञ्जलीः पाणिपुटेन विप्रः ॥७८॥

व्याख्याहि भो मय्यनुकम्पयेश
पद्यैकमेतद्गदितुं बिभेमि ।
व्याख्यायतेऽस्माभिरिदं न चात्र-
हृत्प्रत्ययः कोऽपि च संप्रति स्यात् ॥७९॥

इत्यूचिवान् पद्ययुगं प्रमोदा-
देकादशस्कन्धभवं पपाठ ।
निशम्य तत् कारुणिकाग्रगण्यो
व्याख्यां चकारातिसुदुर्गमार्थाम् ॥८०॥

पृथक् पृथक्त्वान्नवधा चकार
व्याख्यां सपद्यद्वितयस्य शश्वत् ।
अष्टादशार्थानुभयोर्निशम्य
महाविमुग्धोऽभवदेष विप्रः ॥८१॥

प्रणाम एवं स्तव किये थे, तत्पश्चात् सार्वभौम सहसा अत्यन्त भीत होकर अञ्जलि बन्धन करतः निवेदन किये थे ॥७८॥

"हे ईश ! मेरे प्रति अनुकम्पा करके इस श्लोक की व्याख्या करें" इस प्रकार कहने में भय होता है, हम सब ने भी इस पद्य की व्याख्या की है, किन्तु यहाँ पर व्याख्या करने में मानसिक विश्वास नहीं होता है ॥७९॥

यह कहकर श्रीसार्वभौम ने एकादश स्कन्ध के पद्य द्वय का पाठ किया एवं कारुण्याग्रगण्य गौरचन्द्र उक्त पद्य द्वय की दुरुहार्थ संघटित व्याख्या करने लगे थे ॥८०॥

गौरचन्द्र—तत्क्षणात् पद्य द्वय पृथक् पृथक् रूप में नव प्रकार

भूत्वा विमुग्धोऽतिशयं महात्मा
तुष्टाव कुर्वन्नधिकं स्वनिन्दाम् ।
अहो विमूढ़ो नृपशुर्न मादृक्-
तवानुभावं प्रविवेद देव ॥८२॥

इति प्रकामं स्तवनं विधाय
कश्चित् प्रभोः पारिषदं गृहीत्वा ।
ययौ स्वगेहं तदनन्तरे च
विलिख्य पत्रीमनवद्यपद्याम् ॥८३॥

भिक्षार्थमस्यैव महाकृपालो
र्महाप्रसादान्नमनन्यदृष्टम् ।
दत्त्वा तमेनं प्रभवे तु पत्री
देयेति प्रस्थाप्य ननन्द विप्रः ॥८४॥

व्याख्या किये थे, विप्रवर सार्वभौम उभय श्लोक के अष्टादश प्रकार अर्थ सुनकर अतिशय विमुग्ध हुये थे ॥८१॥

महात्मा सार्वभौम अतिशय विमुग्ध होकर महाप्रभु का स्तव कर समधिक आत्मनिन्दा कर कहे थे—"हे देव ! आश्चर्य है, मैं अत्यन्त मनुष्यरूपी पशु हूँ, कारण—मादृश व्यक्ति आपका अनुभाव जानने में अक्षम है ॥८२॥

विप्रवर इस प्रकार विविध स्तव पूर्वक महाप्रभु के एक परिजन के सहित निज गृह गमन किये थे, पश्चात् महाप्रभु के भिक्षार्थं अपरजन के द्वारा अदृष्ट महाप्रसादान्न एवं एक पद्य लिखित पत्र उक्त प्रभु परिषद को प्रदान कर कहे थे—"महाप्रभु को यह पत्रिका अर्पण आप करेंगे" यह कहकर पत्र प्रदान पूर्वक अतिशय

मुकुन्ददत्तोऽथ विलोक्य पत्रीं
निपठ्य च श्लोकयुगं तदीयम् ।
भित्तौ विलिख्यापि च नाथहस्ते
ददौ सचालोक्य पपाठ मन्दम् ॥८५॥

वैराग्यविद्या-निजभक्तियोग–
शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः ।
श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी
कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये ॥८६॥

कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः
प्रादुष्कर्त्तुं कृष्णचैतन्यनामा ।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे–
गाढ़ं गाढ़ं लीयतां चित्तभृङ्गः ॥८७॥

सन्तुष्ट हुये थे ॥८३-८४॥

मुकुन्द दत्त पत्र को देखकर उसमें लिखित श्लोक का पाठ कर गृह भित्ति में श्लोक द्वय लिख कर श्रीमन्महाप्रभु के हस्त में पत्रार्पण किये थे, महाप्रभु भी धीरे-धीरे उक्त श्लोक द्वय पाठ करने लगे थे ॥८५॥

"एक पुरातन पुरुष भगवान्, वैराग्य विद्या, एवं निज भक्ति योग प्रदान हेतु श्रीकृष्णचैतन्य नामक शरीर धारण किये है, उन परम कारुणिक परमेश्वर की मैं शरणागत हूँ ॥८६॥

जो काल प्रभाव से विलुप्त भक्तियोग को प्रदान करने के निमित्त श्रीकृष्णचैतन्य नाम से आविर्भूत हुये हैं, उनके श्रीचरणारविन्द में मेरा चित्त भृङ्ग प्रगाढ़ रूप में विलीन हो ॥८७॥

इति प्रपठ्यैव विहस्य दोर्भ्यां
विदारयामास कृपाम्बुधिस्ताम् ।
भित्तौ विलोक्याथ समस्तलोक-
श्चकार कण्ठे मणिवत्तदैव ॥८८॥

श्रीगौरचन्द्रस्य कृपा तु सैषा
वाचा कथं तत्प्रतिसङ्क्लेशात ।
अन्यैत्र रीतिः खलु चेतसः स्याद-
न्यच्च जन्मान्यदिवाप्यदृष्टम् ॥८९॥

यतोऽयमध्यात्मपथैकपान्थः-
स विप्रमुख्यः प्रभुपादसङ्गात् ।
मोक्षस्य नामापि न कर्णवर्त्म
नयत्यसौ गौरविभोः कृपैषा ॥९०॥

श्लोक द्वय को पढ़कर श्रीगौरहरि हँस-हँस कर हस्त द्वय के द्वारा पत्र को खण्ड-खण्ड कर निक्षेप किये थे। अनन्तर भित्ति में उल्लिखित उक्त श्लोक द्वय को देखकर भक्तगण मणि के समान कण्ठ में धारण किये थे ॥८८॥

अहो ! क्षणिक सङ्क्लेश मात्र से गौरहरि इस प्रकार कृपा करते हैं, उसका वर्णन करना असाध्य है, उस समय चित्त की भिन्न रीति होती है, जन्म भी अन्य प्रकार प्रतीत होता है, एवं अदृष्ट का भी भिन्न रूप से बोध होता है ॥८९॥

कारण—विप्रमुख्य सार्वभौम अध्यात्मपथ का एकमात्र पथिक थे, किन्तु सम्प्रति मोक्ष का नाम ग्रहण भी नहीं करते हैं, यह केवल श्रीगौराङ्गदेव की कृपा कहना होगा ॥९०॥

कदाचिदेष प्रभुपूर्वतस्तु
प्रस्तावतो भागवतीयपद्यम् ।
निपठ्य तन्मुक्तिपदे स दायभा-
गित्यत्र भक्तीति पठन्ननन्द ॥९१॥

प्रभुस्तदाकर्ण्य च मुक्तिशब्द-
स्यान्यार्थमाधाय तदैव देवः ।
समर्थयामास तथाप्युवाच-
सोऽयं तदीयप्रभुताभिषिक्तः ॥९२॥

तथाप्यसभ्यस्मृतिहेतुकत्वा
दश्लीलदोषोऽयमिति ब्रवीमि ।
इत्यादि यस्योक्तिर्मधु प्रसिद्धं
स सार्वभौमः कथया न कथ्यः ॥९३॥

एकदा सार्वभौम महाप्रभु के सम्मुख में प्रस्ताव क्रम से श्रीमद् भागवत का एक पद्य पाठ कर उक्त पद्यस्थ "मुक्तिपदे स दायभाक्" का "भक्तिपदे स दायभाक्" रूप पाठ परिवर्त्तन किये थे. एव 'मुक्ति' पद के स्थान में 'भक्ति' शब्द विन्यास कर अतिशय आनन्दित हुये थे ॥९१॥

श्रीमन्महाप्रभु यद्यपि 'मुक्ति' स्थल में 'भक्ति' शब्द विन्यास से तत्क्षणात् सन्तुष्ट हुये थे, तथापि सार्वभौम ने कहा—उक्त मुक्ति पद आपकी प्रभुता से अभिषिक्त है ॥९२॥

"उक्त मुक्ति शब्द असभ्य स्मृति जनक होने के कारण अश्लील है" इस प्रकार मधुमय उक्ति श्रीसार्वभौम की थी, अर्थात् समस्त जगत् में उनकी कीर्त्ति परिव्याप्त हुई है, उसका वर्णन सामर्थ अपर की नहीं है ॥९३॥

अष्टादशाहानि स तत्र नीत्वा
विलोक्य तं देवमतीवहर्षात् ।
प्रचक्रमे चंक्रमणाय नाथो-
विमोहयन् कांश्चन विप्रयोगैः ॥६४॥

दृष्ट्वा जगन्नाथमहाप्रभुं तं
महाप्रभु गौर सुधामयूखः ।
आदाय तस्यैव निदेशमादौ-
ययौ प्रमोदाद्दिशि दक्षिणस्याम् ॥६५॥

गच्छन्तमित्थं सतु सार्वभौमः
शोकाकुलात्मा करुणं बभाषे ।
कथं प्रभो मां बहुदुःखदग्धं-
कृत्वा कुतो वा प्रसभं प्रयासि ॥६६॥

कथं ममाभून्नहि पुत्रशोकः
कथं ममाभून्नहि देहपातः ।

श्रीगौरहरि—अष्टादश दिवस पर्यन्त वहाँपर अवस्थित होकर आनन्द से जगन्नाथ दर्शन पूर्वक निज भक्तवृन्द को विमोहित कर तीर्थ भ्रमणार्थ उपक्रम किये थे ॥६४॥

महाप्रभु गौरहरि—महाप्रभु जगन्नाथदेव को अवलोकन कर प्रथमतः उनकी आज्ञा से हर्षातिशय्य से दक्षिण देशाभिमुख में यात्रा किये थे ॥६५॥

किन्तु सार्वभौम-श्रीमन्महाप्रभु को यात्रारत देखकर शोकातुर होकर करुणास्वर से निवेदन किये थे, प्रभो! मुझको बहु दुःख दग्ध कर कहाँ चले जा रहे हैं? ॥६६॥

प्रभो! मेरा पुत्रशोक क्यों नहीं हुआ, देहपात क्यों नहीं

विलोक्य युष्मत् पदपद्मयुग्मं
सोढुं न शक्तोऽस्मि भवद्वियोगम् ॥६७॥

वत क्व गन्तासि पथा नु केन
कथं पथः क्लेशसहोऽथ भावी ।
यद्येव गन्तासि तदा कृपालो
गोदावरीतीरभुवं समीयाः ॥६८॥

तत्रास्ति कश्चित् परमो महात्मा
श्रीकृष्णपादाम्बुजमत्तभृङ्गः ।
नोपाजिहीथा विषयीति रामा-
नन्दं भवानन्दतनूजरत्नम् ॥६९॥

तथेतिकृत्वा भगवान् कृपालुः
कौर्मे जगाम प्रथमं प्रमोदात् ।
नमश्चकाराथ निजां स भक्ति-
प्रकाशयं स्तत् करुणैव सैषा ॥१००

हुआ ? आपके चरण नलिनयुगल का दर्शन कर आपका वियोग कैसे सहन करूँगा ? ॥६७॥

प्रभो ! आप किस पथ से जायेंगे ? एवं कैसे पथ क्लेश सहन करेंगे ? हा कष्ट ! हे कृपाला ! यदि निश्चय जायेंगे तब गोदावरी तीर भूमि होकर गमन करें ॥६८॥

गोदावरी तीर में श्रीकृष्ण पादपद्म मत्तभृङ्ग स्वरूप एक महात्मा हैं, उनका नाम रामानन्द राय है, आप भवानन्द के पुत्र हैं, उनको विषयी मानकर उपेक्षा न करें ॥६९॥

कृपालु गौरहरि 'तथास्तु' कहकर अतिहर्ष से प्रथमतः कूर्मक्षेत्र में उपस्थित हुये थे, अनन्तर निज भक्ति प्रकाश कर जो प्रणाम किये

दृष्ट्वा चिरं तं स निजावतारं
पुनर्नमस्कृत्य कृती कृतज्ञः ।
तत् कर्म माध्यन्दिनमस्यमानं
चकार शिक्षागुरुतामुपेतः ॥१०१॥

क्षेत्रे च तत्राति सुधीर्महात्मा
कूर्माह्वयो भूसुर वंशजन्मा ।
विलोक्य तं भूयश एव नत्वा–
स भीतभीतो मधुरं जगाद ॥१०२

अद्यैवमेतत् सफला जनिः स्याद–
द्यैव मे तत् सफलं समस्तम् ।
यदस्य पादाम्बुरुहद्वयस्य–
रजःप्रपातो भविताऽऽलयेऽस्मिन् ॥१०३॥

थे—वह उनकी करुणा जानना होगा ॥१००॥

कृती एवं कृतज्ञ श्रीगौराङ्गदेव–निजावतार कूर्मदेव को बहुक्षण पर्यन्त दर्शन कर पुनर्बार प्रणाम कर वहाँपर मध्याह्न कालीन कृत्य समापन पूर्वक उनका मान बर्द्धन किये थे ॥१०१॥

उक्त कूर्मक्षेत्र में भूदेववंश सम्भूत एवं अतीव सुबुद्धि महात्मा कूर्म नामक ब्राह्मण गौरचन्द्र को अवलोकन कर पुनः-पुनः नमस्कार करतः अत्यन्त भीत होकर सुमधुर स्वर से कहे थे ॥१०२॥

आज ही मेरा जन्म सफल हुआ, आज समस्त कर्म सफल हुए, कारण—श्रीगौरहरि के चरण नलीन युगल की रेणु मेरा भवन में पतित होगी ॥१०३॥

स कूर्मनामा द्विजपुङ्गवाग्रयो
बहु प्रकारार्ज्जित पुण्यपुञ्जः ।
विधृत्य पादौ स्वगृहं निनाय
प्रक्षालयामास च तौ पयोभिः ॥१०४॥

तथैव कृत्वा परमः कृपालु–
र्ननन्द तस्यैव शुभालयेऽसौ ।
भिक्षाञ्च तत्रैव तदोपनीतां–
चकार नाथश्च ततः प्रतस्थे ॥१०५॥

श्रुत्वेत्ययं श्रीपुरुषोत्तमात् स
महाप्रभोर्दक्षिणतो जगाम ।
श्रीवासुदेवाह्वय एक विप्रोऽ
कस्मात् कथञ्चित्तत आगतोऽभूत् ॥१०६॥

श्वित्रेण शश्वद् गलदङ्ग यष्टि–
र्महाशयोऽसौ सुमहातुरोऽपि ।

विविध पुण्य सम्पन्न द्विजराज कूर्म श्रीगौरचन्द्र के चरण युगल को धारण कर निज भवन में उनको भेज कर सुशीतल स्वच्छ वारि द्वारा तदीय चरणद्वय प्रक्षालन किये थे ॥१०४॥

परम कृपालु गौरचन्द्र उस प्रकार से ही उनके पवित्र गृह में आनन्दित हुये थे, एवं कूर्म द्विजराज से भिक्षा ग्रहण करतः वहाँ से प्रस्थान किये थे ॥१०५॥

वासुदेव नामक एक विप्र "श्रीजगन्नाथ क्षेत्र से दक्षिण देश गमन श्रीगौरहरि किये हैं" सुनकर अतिक्लेश से वहाँ उपस्थित हुयेथे ॥१०६॥

तत् कूर्मनाम्नो द्विज पुङ्गवस्य–
जगाम गेहं महितानुभावः ॥१०७॥

गत्वा च पप्रच्छ महाप्रभुं तं
तं कूर्मनामानमुपेत्य धीरः ।
सोप्येतदूचे सुमहाशयाय–
तस्मै समस्तं करुणालयस्य ॥१०८॥

इहैव देवः समुवास भिक्षां
चकार मादृश्यकरोत् कृपाश्च ।
यद्यागमिष्यः क्षणमात्र शीघ्रं
तदावलोकिष्य इहैव नाथम् ॥१०९॥

निशम्य सोऽयं सकलं महात्मा
गतः स इत्याकुलमेव भूमौ ।
पपात मूर्च्छामधिगम्य तत्र
निवृत्य भूयः प्रभुराजगाम ॥११०॥

जिनकी अङ्गलता नियत श्वित्र अर्थात् कुष्ठरोग से विगलित रही, उक्त पूज्य प्रभाव महाशय वासुदेव विप्र अत्यन्त आतुर होकर उक्त कूर्म नामक विप्र के गृह में उपस्थित हुये थे ॥१०७॥

वहाँ जाकर उन्होंने कूर्म नामक विप्र को श्रीमन्महाप्रभु के समस्त विवरण पूछा, कूर्म ब्राह्मण ने भी जिज्ञासानुरूप विषय समूह का विवरण उन विप्र को अवगत कराया ॥१०८॥

कूर्म विप्र ने कहा—"श्रीगौराङ्गदेव यहाँ थे, एवं शिक्षा ग्रहण कर मुझको कितार्थ किये थे, आपका यदि सत्वर आगमन यहाँ होगा तो आप उनका दर्शन यहाँ पर कर सकेंगे" ॥१०९॥

महात्मा वासुदेव उक्त समस्त वृत्तान्त सुनकर व्याकुल चित्त

आगत्य दोर्भ्यां परिरभ्य विप्रं
कुष्ठैः समं मोहमपाचकार ।
सचेतनां चारुतरां तनुश्च–
प्राप्यानमत्तं धृतहर्षशोकः ॥१११॥

क्वाहं दरिद्रः पापीयान्–
क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः ॥
इत्यादि पद्यं परिपठ्य चोचे
नानुग्रहोऽयं वत निग्रहो मे ।
दैन्यं कृथा मा निरहङ्कृतःसन्
मामेष्यतीत्यन्तरधाच्च देवः ॥११२॥

से निर्गत होकर मूच्छित होकर भूतल में गिर गये, महाप्रभु यह जानकर पुनर्बार वहाँ उपस्थित हुये थे ॥११०॥

गौराङ्गदेव ने विप्र को स्वीय बाहुद्वय के द्वारा आलिङ्गन कर कुष्ठरोग विनष्ट किये थे, अनन्तर विप्र चेतना एवं मनोहर शरीर प्राप्त कर हर्ष एवं शोक से प्रभु को प्रणाम किये थे ॥१११॥

"अहो! कहाँ मैं अति नीच दरिद्र हूँ, और कहाँ यह श्रीनिकेतन प्रभु श्रीकृष्ण हैं, मैं ब्राह्मण होने के कारण—श्रीकृष्ण स्वीय हस्त द्वय के द्वारा मुझको आलिङ्गन कर स्वीय सहोदर भ्राता के समान मुझको अति उत्कृष्ट पर्यङ्क में शयन कराये थे, मैं श्रान्त होने पर व्यजनहस्ता महिषी के द्वारा मेरी श्रान्ति विदूरित करवाये थे" इत्यादि पद्य पाठ पूर्वक कहे थे–प्रभो यह तो मेरे प्रति अनुग्रह नहीं है, निग्रह है, पश्चात् महाप्रभु 'दैन्य न करो–मुझको प्राप्त करोगे" यह कहकर वहाँ से प्रस्थान किये थे ॥११२॥

विलोक्य सोऽप्यत्र तथाविधं तं
मुमोह कूर्मः स्थितमर्मदुःखः ।
उत्थाय भूयः करुणं चकार-
विलापमालामपि वैष्णवाग्रचः ॥११३॥

अत्रैव भाग्योदय ईदृशोऽभू-
न्महाप्रभुः सर्वजगत्प्रभुः सः ।
स्थितः समागत्य तथेशबुद्धचा-
नज्ञात एष क्षणमात्रमेव ॥११४॥

अहो महामूढ़मतिर्मनुष्यः-
क्षुद्रो नृशंसः परमाघकारी ।
अमूल्यरत्ने स्वकरोपलब्धे-
न रक्षितं तद्वत हेलयैव ॥११५॥

स्वभावमूढ़स्तृणमात्रभोक्ता-
पशुः सुधास्वादरसं न वेत्ति ।

वैष्णवाग्रणी कूर्मदेव इस घटना को देखकर हृदय में दुःखानुभव करतः मोह प्राप्त किये थे, एवं पुनर्बार उत्थित होकर बहुतर विलाप करने लगे ॥११३॥

उक्त विलापमाला वर्णित हो रही है, "वासुदेव का ही सम्यक् भाग्योदय हुआ है, कारण—ईदृश सर्वजगत्प्रभु महाप्रभु पुनर्बार समागत हुये हैं, अथच मैं इनको क्षणमात्र भी ईश्वर रूप से जान न सका ॥११४॥

हाय ! मनुष्य महामूढ़बुद्धि नृशंस महापापकारी एवं क्षुद्राशय है, कारण—अमूल्यरत्न निज करलब्ध होने पर भी उसने उसकी अवहेलना की ॥११५॥

स्पृष्टेऽपि च स्पर्शमणौ न वेत्ति
मणिर्महानित्यसकृद्विमुग्धः ॥११६॥

अहोमहाकारुणिकस्य तस्य
जगत्पतेरेष वियोगदुःखम् ।
असह्य मेतन्न शशाक सोढ़ु
मति प्रमुग्धौ बहुधा मुमोह ॥११७॥

अथैष तस्मात् परमः कृपालु-
र्व्रजन्नृसिंहः सतु नारसिंहे ।
क्षेत्रे समागत्य नृसिंहदेवं
नमश्चकार स्तवमप्यकार्षीत् ॥११८॥

सदा मदोन्मादकरीन्द्रगामी
महाविलासी वरपीनबाहुः ।
नखेन्दुपीयूषनदीप्रवाहधारा-
भिराप्लाव्य रसां जगाम ॥११९॥

स्वभावत ही मूढ़ एवं तृणभोजी पशु कभी भी सुधारसास्वादन नहीं जानता है, जिस प्रकार स्पर्शमणि बारम्बार स्पृष्ट होने पर भी विमुग्ध व्यक्ति उसको उत्कृष्ट बुद्धि से नहीं जानता है ॥११६॥

हाय ! महाकारुणिक जगत्पति गौरहरि का असह्य वियोग दुःख कूर्मब्राह्मण के पक्ष में असहनीय हुआ था, आप अतिशय मुग्ध होकर बारम्बार मोह प्राप्त कर रहे थे ॥११७॥

परम कृपालु नृसिंह गौरहरि नरसिंह क्षेत्र में उपस्थित होकर श्रीनृसिंहदेव को नमस्कार एवं स्तव किये थे ॥११८॥

मदोन्मत्त गजराज के समान जिनकी गति, जिनके बाहुयुगल अतीव मनोहर एवं स्थूल हैं, इस प्रकार महाविलासी गौरचन्द्र नख

राम राघव राम राघव
राम राघव पाहि माम् ।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव–
कृष्ण केशव रक्ष माम् ॥१२०॥

संकीर्त्तयन्नित्थममन्दमुच्चैः
पथि प्रकामं पुलकाचिताङ्गः ।
आर्त्तस्वरं कुत्र च वीक्ष्य भीमं
वनं परेशःपरिरोदिति स्म ॥१२१॥

गोदावरीतुङ्गतरङ्गशीतै
र्मरुद्भिराश्लिष्टलतासमूहैः ।
इतस्ततो भूरि समेतमन्त–
र्वनं विलोक्यैष ननन्द नाथः ॥१२२॥

चन्द्ररूप अमृत नदी की प्रवाहधारा से भूमितल को आप्लावित कर गमन करने लगे थे ॥११६॥

हे राम ! हे रघुवंशमणि ! बारम्बार मैं प्रार्थना करता हूँ, मुझको आप रक्षा करें, हे कृष्ण ! हे ज्योतिर्मय दिव्य केशधारी भगवान् ! प्रार्थना करता हूँ, मेरी रक्षा आप करें ॥१२०॥

पथ में इस पद्य का कीर्त्तन उच्चैःस्वर से करके पुलकिताङ्ग हुये थे, स्थल विशेष में भयानक निविड़ वन का दर्शन कर आर्त्तस्वर से परमेश्वर गौरचन्द्र हरिनाम सङ्कीर्त्तन करते थे ॥१२१॥

गोदावरी की उत्तुङ्ग तरङ्ग माला से सुशीतल वायु के द्वारा आलिङ्गन एवं इतस्ततः सञ्चालित कानन के मध्य भाग को देखकर गौरहरि अतिशय आनन्दित हुये थे ॥१२२॥

कदम्ववीथीषु नदन्मृदङ्गैः
समुल्लसत्ताण्डवसत्कलापैः ।
विश्रब्धमुन्नेत्रयुगैः कृपालु-
र्ननन्द भूयोहरिणैः सकान्तैः ॥१२३॥

निष्कूजशान्ताः क्वच चण्डशब्द-
प्रतिध्वनिग्रस्तदिशः क्वचापि ।
क्वच प्रसुप्तोरुकरालसत्त्व-
श्वासाग्निदीप्ता वनभूमिभागाः ॥१२४॥

गोदावरीवेगमहानिनादा
भीमा गिरिप्रस्रवणा रवेण ।
श्रीगौरचन्द्रस्य वितेनुरुच्चैः-
सुकोमलं चित्तमनात्तधैर्य्यम् ॥१२५॥

क्षणात् स्खलत्पादविकम्प्रपक्षै-
श्चञ्चू पतद्वीजचयैः प्रपूर्णैः ।

कदम्बवीथि में शब्दित मृदङ्ग एवं तत्श्रवण से मेघाशङ्का से समुल्लासयुक्त मयूर एवं उत्तोलित पिच्छ, तथा सुविश्वस्त ऊर्द्ध्वनयन हरिणीगण के सहित हरिणीगण को अवलोकन कर पुनर्बार गौरचन्द्र अतिशय आह्लादित हुये थे ॥१२३॥

जिस अरण्य के भू-भाग समूह पशु पक्षी प्रभृति के शब्द शून्य होने से शान्त हैं, स्थान विशेष में प्रचण्ड शब्द की प्रतिध्वनि से दिक् समूह ग्रस्त प्राय हैं, एवं कहीं पर प्रसुप्त अति भयानक जन्तु समूह के निश्वासरूप अनल के द्वारा वन भू-भाग सुदीप्त है, गोदावरी का जल निनाद, भयानक गिरिप्रस्रवण प्रभृति श्रीगौरचन्द्र के सुकोमल चित्त को धैर्य शून्य किये थे ॥१२४-१२५॥

शुकैर्दलद्दाड़िमचुम्बवद्भि-
र्गोदावरीतीरवने स रेमे ॥१२६॥

ताम्बूलवल्लीदलवृन्दमुच्चै-
र्भिन्दद्भिरुग्रैः क्रकचैरसद्भिः ।
अजस्रदीर्घेण विमुग्धझिल्ली-
झङ्काररावेण निकामरम्ये ॥१२७॥

ज्योतिर्गणाचुम्बिभिरम्बुदाभै-
स्तमालमालार्ज्जुनकोविदारैः ।
नानाविधैः पत्ररथैरसद्भि-
श्चमूरुवृन्दैश्चमरैश्च युष्टैः ॥१२८॥

अर्कप्रभापर्कविहीनसान्द्र-
स्निग्धातिसच्छीतलचारुभूमौ ।
अकृत्रिमालेपनिपीतमूले
वापीतड़ागादिनिरन्तराले ॥१२९॥

जिसके ऊपर पद स्थापन से तत्क्षणात् पदस्खलन होता है, उस भूमि पक्षि समूह के पक्ष विधूनन से चञ्चु से निपतित वीजसमूह द्वारा व्याप्त थी, तथा विदीर्ण दाड़िम्बफल चुम्बनकारी शुक पक्षिगण शोभित गोदावरीतीर वन में गौरहरि विचरण कर सुखी हुये थे ।१२६।

उक्त वन ताम्बूल पत्र विदारणकारी शुक-पक्षी समूह द्वारा व्याप्त था, झिल्लीरव के द्वारा अतिशय रमणीय था ॥१२७॥

ज्योतिर्गण स्पर्शी अर्थात् गगन तल स्पर्शी अम्बुद सदृश तमाल श्रेणी, अर्जुनवृक्ष कोविदार प्रभृति वृक्षसमूह शोभित वन था, उसमें विचित्र शब्दायमान पक्षिसमूह एवं चमरीमृगसमूह विलसित थे ।१२८।

प्रभाकर प्रभाविहीन निविड़ सुस्निग्ध सुचारु सुशीतल उसका

ततः स गोदावरिकामुपेत्य
मनस्यथान्दोलिततां जगाम ।
संभाषिव्यः किमसौ नवेति–
श्रीमद्भवानन्दसुतो महात्मा ॥१३०॥

तथाप्यभिव्यज्य विभुर्विरागं–
न तं विलोक्यैव ययाववाचीम् ।
नानावनालोकनकोमलात्मा–
क्वचित् प्रविश्यातिशयं रुरोद ॥१३१॥

क्वचित्क्वचिद्गायति मुक्तकण्ठं
क्वचित् क्वचिन्नृत्यति च स्वयं सः ।
क्वचित् क्वचिद्रोदिति हृष्टरोमा–
रात्रिन्दिवं नैव विवेद गच्छन् ॥१३२॥

भू-भाग था, उसमें नैसर्गिक लेपन क्रिया से मूलदेश परिष्कृत था, दीर्घिका तड़ागादि द्वारा नियत घन सन्निविष्ट था, अर्थात् उक्त वस्तु समूह के द्वारा समाच्छन्न गोदावरी तीरस्थ वन भूमि श्रीगौरहरि विचरण कर सुतृप्त हुये थे ॥१२६॥

गोदावरी तीर में उपस्थित होकर गौरहरि मन ही मन विचार करने लगे थे कि–श्रीमद्भवानन्द पुत्र महात्मा रामानन्द राय के सहित सम्भाषण करना उचित है, अथवा नहीं ॥१६०॥

गौरहरि-विराग अभिव्यक्त कर रामानन्द राय को न देखकर ही दक्षिण दिक् में यात्रा किये थे, किन्तु विविध कानन सन्दर्शन से चित्त स्निग्ध होने पर एकस्थान में प्रवेश कर अतिशय रोदन करने लगे थे ॥१३१॥

कभी मुक्तकण्ठ से गान कभी स्वयं नृत्य करने लगे, कभी-कभी

कनककरिवरोऽयं किं चिरोन्मुक्तबन्धः
किमु झटिति चरिष्णुर्मेरुरेषः प्रभाति ।
अथ किमु चिररोचिः पुञ्जएष प्रकामं
स्फुरति चिरविलासः को नु वायं प्रपञ्चः ॥१३३॥

इति सकलनृलोको दाक्षिणात्यः सन्तोषं
विनिमिषमनुवेलं लोचनाभ्यां पिवन् सः ।
जड़िमजड़ितचेता दूरमप्यत्र देवे–
गतवति यतिचन्द्रे स्थाणुवत्तत्र तस्थौ ॥१३४॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये द्वादशः सर्गः ।

हृष्टरोमा होकर गमन करते-करते दिवस रजनी परिज्ञान शून्य हुये थे ॥१३२॥

यह क्या चिरबद्धमुक्त सुवर्ण करिवर है ? अथवा सञ्चरणशील सुमेरु पर्वत शोभित है ? किंवा चिरस्थायी दीप्तिराशि निरतिशय प्रकाशित है ? अथवा दीर्घकाल व्यापी किसी विलास विस्तार स्फूर्त्ति प्राप्त है ? ॥१३३॥

दक्षिण देशस्थ मनुष्यगण इस प्रकार विविध वितर्क कर निर्निमेष नयनों से गौरचन्द्र का दर्शन करने लगे थे, एवं यतिचन्द्र गौराङ्गदेव को दूरस्थित देख कर भी स्थाणु के समान निश्चल भाव से एकत्र अवस्थित हो गये थे ॥१३४॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये द्वादशः सर्गः ।



त्रयोदशः सर्गः

एवं स तीर्थाटनकौतुकेन
दीनैकबन्धुः करुणैकसिन्धुः ।
ततो ययौ भाग्यवतीमवाचीं
स्वनामरत्नग्रहणोत्सवोत्कः ॥१॥

विलोक्य तं वर्त्मनि कृष्णसारा-
स्तृष्णावताक्ष्णोर्युगलेन भूयः ।
रूपामृतं पातुमिवाप्तधैर्य्याः-
समं समन्तात् सविधं समीयुः ॥२॥

श्रीरङ्गकक्षेत्रमसौ दयालुः
कावेरिकावेष्टितमुच्चदेशम् ।
आसाद्य तत्रत्यमवेक्ष्य देवं
प्रियाकरोसौ मुदमाप तुङ्गाम् ॥३॥

त्रिमल्लभट्टस्य महाशयस्य-
गृहे कृतावासविधिः कृपालुः ।

दीनबन्धु करुणासिन्धु गौरहरि स्वनामरत्न ग्रहणरूप उत्सव में उन्मना होकर तीर्थाटनकौतुक से दक्षिण देश की यात्रा किये थे ॥१॥

पथ में कृष्णसार मृगगण अतिशय सतृष्ण नेत्र से गौरचन्द्र के रूपामृत पान करने के मानस से मानों एककाल में ही अत्यन्त सुधीर भाव में आकर उपस्थित हुये ॥२॥

दयालु गौरहरि, जिसका उच्च प्रदेश समूह कावेरी नदी के द्वारा परिवेष्टित हैं, तादृश रङ्गक्षेत्र में उपस्थित होकर तत्रत्य श्रीरङ्गनाथ का दर्शन कर प्रियाकर गौरहरि अत्यन्त सन्तुष्ट हुये थे ॥३॥

कुतूहलेनैव निनाय चातु-
र्मास्यं स आवश्यककर्म कुर्वन् ॥४॥

कावेरिकायां विहिताप्लवोऽयं
चकार तस्या बहुपावनत्वम् ।
श्रीरङ्गसङ्गं प्रविलोक्य देवं
निनाय मासांश्चतुरः कृपालुः ॥५॥

वर्षाशरन्मध्यगतः स काल
परिष्वजन्तीं शरदं चुचुम्वे ।
कान्ताद्वयान्तःशयितो विलासी
पार्श्वाविवृत्ताविव वीतनिद्रः ॥६॥

ततो नवोत्फुल्लसरोरुहास्या
नवोत्पलाक्षी गतपङ्कजाला ।

कृपालु गौरहरि यहाँ पर त्रिमल्लभट्ट के गृह में अवस्थित होकर चातुर्म्मास्य आवश्यक कर्म सम्पादन पूर्वक अतिवाहित किये थे ॥४॥

गौराङ्गदेव कावेरी में अवगाहन पूर्वक उसकी पवित्रता सम्पादन करतः श्रीरङ्गनाथ दर्शन कर चातुर्मास्य यापन किये थे ॥५॥

कान्ताद्वय के मध्य में शयान विलासी पुरुष जिस प्रकार निद्रा भङ्ग के पश्चात् जो कान्ता उसको आलिङ्गन करती है, उसको चुम्बन करता है, उस प्रकार वर्षा एवं शरत् ऋतु के मध्यगत समय आलिङ्गन कारिणी शरत् को ही चुम्बन किया अर्थात् शरत् काल उपस्थित हुआ ॥६॥

सुजीवना तत्करुणाप्तिकामा
दासीव भेजे शरदीश्वरं तत् ॥७॥

अथात आनन्दसमूहमग्नो-
ययौ प्रहृष्टो दिशि दक्षिणस्याम् ।
महाप्रभुः स्वीयगुणानुगाथा-
निरन्तरोत्कीर्त्तनमुग्धवक्त्रः ॥८॥

तत्र क्वचित् श्रीरघुनाथभक्तं
प्रशान्तचित्तं द्विजपुङ्गवं सः
सीता दशास्यापहृतेति शोका-
द्वहिर्व्रजत्प्राणमिवालुलोके ॥९॥

अभिनव पद्म जिसका विकशित वदन है, नवीन उत्पल ही जिसके नेत्र हैं, जिसका पङ्करूप जाल विदूरित हुआ है, एवं जिसका जीवन अर्थात् जल अति सुनिर्मल है, एतादृश शरत् काल मानों दासी के समान ईश्वर का भजन करने लगा। श्लेष पक्ष में गत पङ्कमाला अर्थात् पापशून्या कमल लोचना दासी जिस प्रकार नवोत्फुल्ल पद्म के समान हास्य वदन से प्रशस्त जीवन अर्थात् सुनिर्मल जल लेकर करुणा प्राप्ति के निमित्त ईश्वर अथवा निज प्रभु का भजन करती है, तद्रूप शरत् काल भी ईश्वर का भजन करने लगा ॥७॥

अनन्तर महानन्दमग्न महाप्रभु निरन्तर हरिकथा उत्कीर्त्तन से मुग्धवदन होकर अतीव हर्ष से दक्षिणदिक् में गमन किये थे ॥८॥

गौरचन्द्र—दक्षिणदिक्स्थ एक स्थान में श्रीरघुनाथ भक्त, प्रशान्तचित्त एक विप्रवर को अवलोकन किये थे। उस समय "दशवदन रावण ने सीता का अपहरण किया है" प्रसङ्ग सुनकर ब्राह्मण का प्राण शोक से निर्गत हो रहा था ॥९॥

लक्ष्मीरियं राक्षसहस्तयाता–
किमेतदित्यस्य मनो विदित्वा ।
आश्वासयन्नेव तमब्रवीद्गौ–
र्मैवं स्वरूपं शृणु यद्ब्रवीमि ॥१०॥

यद्वा मदीये वचसि प्रतीति
र्न ते भवित्री तदिदं नु पश्य ।
पुराणपद्यद्वयमित्यकस्मा–
ददर्शयत् स्वाञ्चलतो विकृष्य ॥११॥

सीतयाराधितो वह्नि
श्छायासीतामजीजनत् ।
तां जहार दशग्रीवः
सीता वह्निपुरं गता ॥१२॥

"पूर्णलक्ष्मी होकर भी सीता राक्षस हस्तगता हो गई है, कैसी बात है?" वाक्य सुनकर गौरहरि ने ब्राह्मण की मानसिकी व्यथा को जानकर आश्वास प्रदान पूर्वक कहा—ब्राह्मण! आप कभी इस वृत्तान्त का स्थान मन में न दें, इसका स्वरूप को मैं कहता हूँ, श्रवण करें ॥१०॥

मेरा वाक्य में यदि प्रत्यय न हो तब पौराणिक पद्य द्वय का अवलोकन आप करें, यह कहकर अकस्मात् स्वीय अञ्चल से आकर्षण पूर्वक पद्य द्वय को उन्होंने दिखाया ॥११॥

उक्त पद्यद्वय का अर्थ यह है–अग्निदेव सीता कर्त्तृक आराधित होकर छाया सीता उत्पन्न किये थे, दशग्रीव ने उस छाया सीता का हरण किया था, प्रकृत सीता अग्निपुर में सुरक्षिता रही ॥१२॥

परीक्षासमये वह्नि
छायासीता विवेश सा ।
वह्निः सीतां समानीय
स्वपुरादुदनीनमत् ॥१३॥

अथात्र कथञ्चिद्यतिनां वरिष्ठं
ददर्श नाथो बहुहृष्टचित्तम् ।
महानुभावं परमं पुरस्ता-
दानन्दमध्यं च पुरीं तदन्तम् ॥१४॥

विलोक्य संभाष्य सुजातहर्षौ
बभूवतुस्तौ परमप्रभावौ ।
अन्योन्यसंप्रीतिवशौ कृपालु
तस्मात् प्रयातुं दधतुश्च चेतः ॥१५॥

एको गतो गौरशशीत्ववाची-
मन्यः समागात् पुरुषोत्तमं च ।

अग्नि परीक्षा के समय छाया सीता का प्रवेश अग्नि में हुआ, एवं अग्निदेव निजपुर से साक्षात् सीता को आनयन पूर्वक श्रीराम को प्रदान किये थे ॥१३॥

गौरहरि—परमानन्द नामक हृष्टचित्त एक महानुभाव यतिश्रेष्ठ को दर्शन किये थे। दर्शन के अनन्तर परम प्रभाव विशिष्ट उभय ही अत्यन्त हृष्ट एवं परस्पर के प्रीतिवश से परस्पर कृपालु होकर वहाँ से प्रस्थान करने के निमित्त इच्छुक हुये। प्रथमतः श्रीगौरहरि दक्षिण दिक् में एवं परमानन्दपुरी श्रीजगन्नाथ क्षेत्र की ओर यात्रा किये थे। तदनन्तर पद्मतुल्य विकसित विलोचन गौरचन्द्र सेतुबन्ध

सेतुं समुद्दिश्य चलन्नथासौ
ररराज राजीवदलायताक्षः ॥१६॥

गच्छन् पथि प्रेमविभिन्नचेता
ह्सत्यलं रोदिति निर्भरार्त्तः ।
विभिन्नधैर्य्यस्खलितस्ततोऽसौ
ददर्श सप्तोच्छ्रित तालवृक्षान् ॥१७॥

विलोक्य तांस्तालतरून् कृपालुः
प्रत्येकमेवाश्लिषदात्तहर्षः ।
अत्रान्तरे ते दिवमीयिवांसः
शून्या स्थली सा सहसैव याता ॥१८॥

क एष गौराङ्गमहाप्रभोस्तत्
विचित्रनानानुभवस्य लोके ।
अतर्कनीयो महिमा कृपालो-
श्चित्रं कृपायाः किमशक्यमास्ते ॥१६॥

के उद्देश्य से गमन कर शोभित हुये थे ॥१४।१५।१६॥

गौरचन्द्र—प्रेम विह्वल चित्त होकर पथ में गमन करते-करते कभी तो अतिशय हास्य, कभी तो गुरुतर पीड़ा अनुभव कर रोदन करते थे, पश्चात् अधीर भाव से धावित होकर अतीव समुन्नत सप्त तालवृक्ष को देखे थे ॥१७॥

तालवृक्ष को देखकर कृपालु गौरहरि अति हर्ष से प्रत्येक को आलिङ्गन किये थे, उससे वृक्षगण गगन पथ में गमन करने पर उक्त स्थान हठात् रिक्त हो गया ॥१८॥

जिनमें विविध वैचित्र्य विद्यमान है, उन श्रीगौराङ्ग महाप्रभु

अथ व्रजन् दक्षिणदिग्विभागे
विलोकयन् कौतुकचेष्टितानि ।
अखण्डपाषण्डपथप्रविष्टान्-
ददर्श नानाविधलिङ्गसंघान् ॥२०॥

निकामवामे पथि वर्त्तमानाः
पाषण्डिनस्ते परिलोच्य नाथम् ।
नानाविधेन स्वमतेन शश्व-
द्विलोभयाञ्चक्रुरदभ्रपापाः ॥२१॥

यदीयमायैकविजृम्भितेन-
स्वं चातिपाषण्डपथप्रवृत्तम् ।
पश्यन्ति नैते तमिमं कथं वा
कुर्वन्तु नानाकुहकैर्विमुग्धम् ॥२२॥

की यह एक अभावनीय महिमा है, अथवा कृपामय की कृपा का आश्चर्य कुछ नहीं है, कुछ भी असम्भव उनके पक्ष में नहीं है ॥१९॥

दक्षिणदेश भ्रमण के समय श्रीगौ हरि विविध कौतुक चेष्टा अवलोकन पूर्वक अखण्डनीय पाषण्डमार्गारूढ़ विविध तपस्वि वेशधारी जनगण को अवलोकन किये थे ॥२०॥

विरुद्ध पथ में नियत स्थित महापापी पाषण्डगण महाप्रभु को देखकर नानाविध निजमत के द्वारा नियत विलोभित करने लगे थे ॥२१॥

अतीव आश्चर्य है कि--पाषण्डिगण दैवीमाया से स्वीय पाषण्ड पथ में प्रवृत्त होकर श्रीप्रभु को देखने में असमर्थ हैं, एवं विविध कुहक के द्वारा निज को विमुग्ध कर रहे हैं ॥२२॥

अथास्य सङ्गे जगदीश्वरस्य-
व्रजन्तमेकं परिलोलचित्तम् ।
तं कृष्णदासाख्यममी विलोक्य
विलोभयाञ्चक्रुरतीवमन्दाः ॥२३॥

अरे कुतो गच्छसि दुःखमात्रं
साध्यं तदस्मासु कुरुष्व मैत्रीम् ।
ततस्त्वनेनैव शरीरकेण
स्वर्गंगमिष्यस्यथ नो विचारः ॥२४॥

अस्त्वेक एवात्र स कोऽपि पन्थाः
कियद्विदूरेऽखिललोकदुर्गः ।
तदेहि तेनैव पथा भवन्तं-
संप्रापयिष्याम इतः खलु स्वः ॥२५॥

इत्येष पाषण्डपथप्रविष्टै-
स्तैर्मोहितो दोलितचित्तवृत्तिः ।

अतीव मन्दबुद्धि पाषण्डिगण---जगदीश्वर गौराङ्गदेव के सहचर चञ्चल चित्तयुक्त कृष्णदास नामक ब्राह्मण को देखकर विलोभित कर कहे थे ॥२३॥

अरे! तु कहाँ जा रहा है? केवल दुःख लाभ होगा, अतएव हमारे साथ मित्रता कर, उससे इस शरीर से ही स्वर्ग चला जायेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥२४॥

यह एक पथ है, वह पथ कुछ दूरवर्त्ती है एवं दुर्गम है, अतः तु यहाँ आ—तेरे को स्वर्ग मार्ग में ले जायेंगे ॥२५॥

इस प्रकार लोलचित्त कृष्णदास ने पाषण्डिजनगण कर्त्तृक विमोहित होकर महाप्रभु के सहित गमन करते-करते कुछ शैथिल्य

शैथिल्यमीशस्य पथि प्रयाते-
चकार किञ्चित् क्रमतो विमुग्धः ॥२६॥

प्रभुस्तदाज्ञाय दुरात्मभाजां
विचेष्टितं तस्य च लोलताञ्च ।
कृपैकसिन्धुर्जगदेकबन्धु-
र्दुराशयैस्तैरकरोद्विवादम् ॥२७॥

भो न्यासिनः किं मम दास एष
प्रलोभ्य बालः खलु नीयते क्व
नैतच्छिवं वो न च साधुचेष्टा
तत्त्यज्यतामेष विदूरमाध्वम् ॥२८॥

इत्थं विवादी न चिरं कृतेन
कथं कथञ्चिद्विमुखीचकार ।
निजप्रभावेन कृपामयाब्धि-
स्तंसुप्रसन्ने हि विधौ तथा स्यात् ॥२९॥

प्रकाश किया था ॥२६॥

कृपासिन्धु गौरहरि दुरात्मावृन्द की दुश्चेष्टा एवं कृष्णदास की चञ्चलता को जानकर दुरात्मागण के सहित विवाद उपस्थित कर कहे थे ॥२७॥

सन्न्यासीगण! यह क्या हुआ? यह मेरा दास है, बालक को प्रलुब्ध कर कहाँ ले जाओगे? यह कार्य अच्छा नहीं है, एवं साधुजनोचित्त चेष्टा भी नहीं है, अतः इसे छोड़ो और यहाँ से तुम सब भाग जाओ ॥२८॥

दयानिधि गौरहरि—इस प्रकार विवाद कर शीघ्र सम्पादित

इत्थं विलोक्यापथवर्त्तिनस्तत्
कुचेष्टितं किञ्चिदसौ विहस्य ।
न किञ्चिदूचे खलु कृष्णदासं
सेतुं समुद्दिश्य ततो जगाम ॥३०॥

पथि प्रभुः स्वैर्गुणनामधेयै-
र्निरन्तरं कीर्त्तनमेव कृत्वा ।
प्रेमाश्रुभिर्धौतसमस्तदेह-
श्चकार पूतामटवीं समस्ताम् ॥३१॥

एवं स सेतुं प्रययौ कृपालुः
कृपापरिप्लावित सर्वदेशः ।
रामेश्वरं रामसमर्हितं तं-
दृष्ट्वा ननाम स्तवमप्यकार्षीत् ॥३२॥

विलोक्य सेतुं रघुनाथकीर्त्ति
सेतोस्ततः श्रीमयगौरचन्द्रः

स्वीय प्रभाव के द्वारा पाषण्डिगण को कथञ्चित् विमुख किये थे, विधि सुप्रसन्न होने से इस प्रकार ही हाता है ॥२९॥

महाप्रभु—इस प्रकार कुपथवर्त्ति जनगण की कुचेष्टा को अवलोकन कर स्मित हास्य किये थे एवं कृष्णदास को कुछ न कहकर सेतुबन्ध के उद्देश्य से यात्रा किये थे ॥३०॥

गौरहरि पथ में निज नामगुण कीर्त्तन कर प्रेमाश्रु के द्वारा समस्त देह सिक्त करत. समुदाय अरण्य को पवित्र किये थे ॥३१॥

जिनके कृपारस से समस्त देश ही आप्लावित हुये हैं, उन कृपालु गौरहरि—सेतुबन्ध में उपस्थित होकर श्रीरामचन्द के द्वारा पूजित श्रीरामेश्वर का दर्शन कर नमस्कार एवं स्तव किये थे ॥३२॥

निर्वर्त्तितुं तत्र कृपासमुद्र-
श्चकार चित्तं परमप्रभाव: ॥३३॥

स तेन तेनैव पथा विलोक्य
श्रीरङ्गदेवं पुनरार्द्रचित्त: ।
गोदावरीमेत्य तथैव रामा-
नन्दस्य सन्दर्शनमेष चक्रे ॥॥३४॥

उपेत्य गोदावरीकां स नाथ:
प्रमोदतस्तत्परिलोचनाय ।
जगाम तद्वेश्मनि शीतरश्मि-
रिवोदयाद्रिं जलदागमान्ते ॥३५॥

विलोक्य नाथं सतु कृष्णचित्तो
ननाम हर्षाद्भुवि संनिपत्य ।
अनन्तरे कोटिगुणप्रवृद्धा-
माह्लादलक्ष्मीमुदितां बभार ॥३६

महाप्रभाव युक्त कृपामय श्रीमान् गौरचन्द्र—श्रीरामचन्द्र के कीर्त्तिस्वरूप सेतुबन्ध का दर्शन कर वहाँ से प्रत्यावर्त्तन करने के निमित्तइच्छुक हुये थे ॥३३॥

गौरचन्द्र पूर्वोक्त आगमन पथमें ही आर्द्रचित्त से श्रीरङ्गनाथ दर्शनकर पूनर्बार गोदावरी में उपस्थित होकर पूर्वोक्त रीति से ही रामानन्द का सन्दर्शन किये थे ॥३४॥

वर्षाऋतु का अवसान होने पर शीतरश्मि शशधर का उदयाचल गमन के समान गोदावरी में आगमन पूर्वक रामानन्द के सहित परिचयार्थ तदीय आलय में गमन किये थे ॥३५॥

कृष्णगतचित्त रामानन्द—गौरचन्द्र का दर्शन कर अतीव हर्ष

ईशस्तु तद्दर्शनमात्रतोऽसौ–
द्रुतो भवच्चेतसि हर्षभारैः ।
अथोपरिष्टाज्जगदेककान्ति–
र्बभ्राज कन्दर्पसमूहकम्रः ॥३७॥

उवाच किञ्चित् स्तनयित्नुधीरं
सकैतवं भोः कवितां पठेति ।
तदा तदाकर्ण्य महारसज्ञः
पपाठ वैराग्यरसाढ्यपद्यम् ॥३८॥

वैराग्यं चेज्जनयतितरां पापमेवास्तु यस्मात्
सान्द्रं रागं जनयति न चेत् पुण्यमस्मासु भूयात् ।
वैराग्येण प्रमुदितमनोवृत्तिरभ्येति रागं–
रागेण स्त्रीजठरकुहरे ताम्यति ब्राह्मणोऽपि ॥३९॥

से भूतल में पतित होकर नमस्कार किये थे, एवं कोटिगुण वृद्धिशील आनन्दानुभाव किये थे ॥३६॥

गौरचन्द्र भी रामानन्द को अवलोकन कर विगलितचित्त हुये थे, एवं उच्चासन में उपविष्ट होकर कन्दर्प समूह के समान कमनीय कान्ति से शोभित हुये थे ॥३७॥

मेघमन्द्र गम्भीर स्वर से अकैतव भाव से कहे थे—"अहे रामानन्द ? कविता पाठ करो" आदेश प्राप्त कर रसज्ञ रामानन्द वैराग्यरस समन्वित एक कविता पाठ किये थे ॥३८॥

वह कविता इस प्रकार है—वैराग्य यदि उत्पन्न होता है, तो यह सर्वोत्तम है, कारण—वैराग्य से गाढ़ राग उत्पन्न होता है, वह पुण्योदय का फल है, यदि वैराग्य से मनुष्य की चित्तवृत्ति में निविड़ आनन्दोदय होता है तो वह पाप है, कारण—उस राग से विषय

इतीदमाकर्ण्य स गौरचन्द्रो
वाह्यातिवाह्यं वत वाह्यमेतत् ।
इति स्फुरद्वाग्विभवोत्थतापोद्-
गमान्तकृन्नातिमुदं प्रपेदे ॥४०॥

ततश्च संशुद्धमतिः स रामा-
नन्दो महानन्दपरिप्लुताङ्गः ।
पपाठ भक्तेः प्रतिपादयित्री-
मेकान्तकान्तां कवितां स्वकीयाम् ॥४१॥

नानोपचारकृतपूजनमार्त्तबन्धो
प्रेम्नैव भक्तहृदयं सुखविद्रुतं स्यात् ।
यावत् क्षुदस्ति जठरे जरठा पिपासा
तावत् सुखाय भवतो ननु भक्ष्यपेये ॥४२॥

वासना का लाभ होता है, उससे ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मज्ञ होने पर भी उनको निरन्तर स्त्री-के उदररूपग ' में नियतखिन्न होना पड़ेगा ॥३९॥

यह सुनकर गौरहरि-"यह वाह्य है, अतिशय वाह्य है, हाय ! अत्यन्त वाह्य है" यह कहकर वाक्य विभवजनित तापसे क्षुण्णमना होकर अतिशय आनन्दित नहीं हुये ॥४०॥

निर्मल मति रामानन्द परिप्लुत होकर अत्यन्त मनोहारिणी भक्ति प्रतिपादिनी एक स्वरचित कविता पाठ किये थे ॥४१॥

आर्त्तबन्धु श्रीकृष्ण की विविध उपचार द्वारा पूजा करने से उससे परमानन्द का उदय नहीं होता है, केवल प्रेममात्र से भक्तहृदय परमानन्द से द्रवीभूत होता है, इसमें दृष्टान्त यह है—यावत् पर्यन्त उदर में क्षुधा एवं दुःसहा पिपासा रहती है, तावत् पर्यन्त ही भक्ष्य एवं पेय वस्तु सुखद होती है, अन्यथा नहीं ॥४२॥

इत्थं च संश्रुत्य तथैव वाह्यं
वाह्यं तदेतच्च परं पठेति।
जगाद नाथोऽथ कचैः सुदीर्घैः-
संवेष्ट्य नाथस्य पदौ पपात ॥४३॥

निकामसम्मोहभरालसाङ्गो
गाङ्गेयगौरं तमनङ्गरम्यम् ।
प्रभुं प्रणम्याथ पदाब्जमूले-
निपत्य संप्रोत्थित आननन्द ॥४४॥

ततः स गीतं सरसालिपीतं
विदग्धयोर्नागरयोः परस्य ।
प्रेम्नोतिकाष्ठाप्रतिपादनेन-
द्वयोः परैक्यप्रतिपाद्यवादीत् ॥४५॥

सुनकर प्रभु ने कहा—"यह वाह्य, यह वाह्य है" अन्य पाठ करो, श्रीगौरहरि उस प्रकार कहने पर रामानन्द राय निज सुदीर्घ केशकलाप द्वारा तदीय चरणद्वय वेष्टन पूर्वक भूतल में निपतित हो गये ॥४३॥

रामानन्द राय—अतिशय मुग्धता से अलसाङ्ग होकर सुवर्ण सदृश गौरवर्ण एवं कन्दर्प तुल्य कमनीय गौराङ्ग को प्रणाम किये थे, अनन्तर चरणनलिन मूल में पतित होकर उत्थित होकर अत्यन्त आनन्दित हुये थे ॥४४॥

रामानन्द अनुरागिणी सखी के द्वारा आस्वादित एवं विदग्ध नागर एवं नागरी अर्थात् श्रीराधा-गोविन्द की प्रेम पराकाष्ठा को प्रतिपादन कर उत्कृष्टता की मूर्त्तिरूपी एक कविता पाठ किये थे ॥४५॥

❀ भैरवी रागः ❀

पहिलहि राग नयनभङ्ग भेल ।
अनुदिन बाढ़ल अवधि ना गेल ॥
ना सो रमण ना हाम रमणी ।
दुंहु मन मनोभव पेशल जानि ॥
ए सखि सो सब प्रेमकाहिनी ।
कानुठामे कहवि विछुरल जानि ॥
ना खोजलुँ दूती ना खोजलुँ आन ।
दुँहुकेरि मिलने मधत पाँचवाण ॥
अब सोइ विराग तुँहु भेलि दूती ।
सुपुरुखप्रेमक ऐछन रीति ॥
वर्द्धनरुद्र नराधिपमान ।
रामानन्दराय कवि भाण ॥४६॥

एक दिवस मानावसान होने पर प्रयत्न विशेष द्वारा परस्पर मिलन के पश्चात् परस्पर निज-निज स्थान में गमन करने पर पुनर्बार श्रीराधा का एकमात्र जीवन सर्वस्व स्वरूप श्रीकृष्ण— संशय एवं उत्कण्ठा से "आगामी कल्य किसी एक निपुणा सखी प्रेरण द्वारा कोपना राधा की अनुनय विनय द्वारा प्रसन्नता सम्पादन कर्त्तव्य है" इस प्रकार मनोमध्य में स्थिर करने पर, उस रात्रि में श्रीराधा स्वप्न में देखी थी, श्रीकृष्ण के समीप से एक दूती आकर श्रीकृष्ण द्वारा कथित वाक्य कहने लगी, श्रीकृष्ण का कथन यह है—"हे मानिनि! तुम मेरी कान्ता हो""मैं तुम्हारा कान्त हूँ, अतएव मेरे द्वारा कभी अपराध होने पर भी मेरी प्रार्थना अङ्गीकार कर मुझे क्षमा करना उचित है" इत्यादि सहेतुक एवं साधारण प्रणय परायण श्रीकृष्ण का

ततस्तदाकर्ण्य परात्परं स
प्रभुः प्रफुल्लेक्षणपद्मयुग्मः ।
प्रेमप्रभावप्रचलान्तरात्मा-
गाढ़प्रमोदात्तमथालिलिङ्ग ॥४७॥

इत्थं दृढ़ाश्लेषकला कलाप-
कल्लोललोलान्तरयोः स कोऽपि ।
कालस्तदासीत सुखसागरोस्मि-
कदम्वकैः पर्वतया परीतः ॥४८॥

विनय एवं स्तुतिवाद को अनुभव कर उससे असहिष्णु होकर उस दूती को स्वप्नावेश में राधा कह रही थीं–हे सखि ! पहले नयनभङ्गी द्वारा पूर्वराग उत्पन्न होकर दिनों दिन वृद्धिशील होकर निःसीम हो गया, श्रीकृष्ण मेरा पति नहीं है, मैं भी उनकी पत्नी नहीं हूँ, तथापि हम दोनों का मन कन्दर्प कर्तृक पिष्ट हुआ है, अर्थात् अभिन्न हो गया है, मैं इसको जानती हूँ, अतएव हे सखि ! यह सब प्रेम का कार्य है, श्रीकृष्ण को कहना, भूल न जाना, कारण भूलक्कड़ कृष्ण की दूती तुम हो, मैंने कभी दूती का अन्वेषण नहीं किया, उभय का मिलन में कन्दर्प ही मध्यस्थ है, सम्प्रति वह मेरे प्रति विरक्त है, सुतरां तुम उसकी दूती बन कर आई हो, जो भी हो, सत् पुरुष में जो प्रेम है, उसकी रीति यह ही है ॥४६॥

गीत सुनकर विकसित कमल नयन प्रभु "परातूपर सर्वोत्तम" कहकर प्रेम-प्रभाव से प्रचलात्मा होकर अति हर्ष से रामानन्द राय को आलिङ्गन किये थे ॥४७॥

इस प्रकार निविड़ आलिङ्गन महा-तरङ्ग से उभय का चित्त अत्यन्त सतृष्ण हुआ, सुतरां सुखसागर की तरङ्ग माला से उस समय महा-महोत्सव का दिन उपस्थित होने से वह एक अनिर्वचनीय आनन्दप्रद हो उठा ॥४८॥

इति स्वभावप्रणयामृतेन
चिराद्गतेनानुभवस्य वर्त्म ।
संभाष्य तं कत्यपि वासरान् स
नीत्वा जगन्नाथदिदृक्षुरासीत् ॥४६॥

अथाययौ क्षेत्रमदभ्रभूषं-
भ्रमापहं गौरसुधामयूखः ।
पूर्वं ततः स्नानमहोत्सवस्य-
ददर्श नीलाचलमौलिरत्नम् ॥५०॥

नीलाचले प्रोद्यति गौरचन्द्रे
पयोनिधिः पूरमुवाह तुङ्गम् ।
जनाश्च विध्वस्त शुगन्धकारा-
बभूवुरुत्फुल्लदृगुत्पलान्ताः ॥५१॥

गौरहरि—इस प्रकार चिरसम्भूत नैसर्गिक प्रणयामृत द्वारा मूर्त्तिमान् अनुभव मार्गरूप सम्भाषण श्रीरामानन्द के सहित करके बहुदिन वहाँ अतिवाहित कर पश्चात् श्रीनीलाचलनाथ का दर्शनेच्छुक हुये थे ॥४६॥

गौरहरि—विविध भूषणों से भूषित एवं भ्रमविनाशक श्रीक्षेत्र में समागत होकर स्नान यात्रा के पूर्व में ही श्रीनीलाचलनाथ का दर्शन किये थे ॥५०॥

उदय-गिरि में चन्द्रोदय होने से जिस प्रकार समुद्र की तरङ्ग वृद्धिशील होती है, उस प्रकार नीलाचल में श्रीगौरचन्द्र का उदय होने से जलनिधि उत्तुङ्ग जलप्रवाह का धारण किया, एवं क्षेत्रवासि जनगण भी शोकान्धकार विदूरित होने पर प्रफुल्ल उत्पल के समान विकसित नयनों से शोभित हुये थे ॥५१॥

केचिज्जगन्नाथविलोकनाच्च
केचित् प्रणामादथ पूजनाच्च ।
प्रदक्षिणात् केचन सेवनाच्च-
सर्वे समं तत्सविधं समीयुः ॥५२॥

प्रभुश्च कांश्चिद्धसितेन कांश्चित्
विलोकनेन स्मितसादरेण ।
कांश्चित् समाश्लेषरसेन सर्वान्
मनोरथैः फुल्लहृदश्चकार ॥५३॥

अथैष नाथः पुरतो ह्यमीषां
साक्षित्वमाधाय च कृष्णदासम् ।
तत् क्षेत्रमानीतमतिप्रयत्ना-
दूगच्छेति सम्यग्विससर्ज तत्र ॥५४॥

पश्यन् स नीलाचलमौलिरत्नं-
गौराङ्गचन्द्रः शतरत्नरम्यम् ।

उस समय जगन्नाथ दर्शनरत, प्रणामरत, पूजनरत, प्रदक्षिण एवं सेवानिरत व्यक्तिगण निज-निज कार्य परित्याग पूर्वक श्रीगौरचन्द्र के निकट आकर उपस्थित हुये थे ॥५२॥

समागत व्यक्तिवृन्द को गौरचन्द्र-हास्य द्वारा, कृपादृष्टि द्वारा, सुमधुर हास्य द्वारा समादर एवं समालिङ्गनरस द्वारा विविध भाव से प्रफुल्लचित्त किये थे ॥५३॥

गौरहरि—समस्त लोकों के सम्मुख में क्षेत्र में पुनरानीत उस चञ्चलमति कृष्णदास को अति प्रयत्न से 'तुम जाओ' कहकर परित्याग किये थे ॥५४॥

गौरहरि—शत-शत रत्न के समान रमणीय मूर्त्ति नीलाचल

स्वकीयनेत्राम्बुझरेण भूयो-
निजां तनुमेव सिषेच हृष्टः ॥५५॥

अथासकौ स्नानमहोत्सवं स
ददर्श रम्यं विबुधैर्दुरापम् ।
आनन्दसन्दोहसमुद्रमुच्चं-
समुद्रतीरेऽन्यमिवेक्ष्यमाणः ॥५६॥

अथ प्रभातावसरे तथैव
विलोकितुं तं गतवान् कृपालुः ।
गूढ़ं तथा तत्र विलोक्य नासौ-
बभूव दुःखी कृतवाष्पमोक्षः ॥५७॥

वहिः प्रयाय त्वरितं महोत्को
विचित्रचेष्टो मर्दसिहरम्यः ।
आलालनाथं प्रययौ तथामी
ययुस्तदान्वेषणकातराज्ञाः ॥५८॥

शिरोरत्न जगन्नाथदेव का दर्शन कर अतिहर्ष से स्वीय नेत्रजल धारा से निज तनु को पुनर्बार सेचन करने लगे थे ॥५५॥

गौरचन्द्र—समुद्रतीर में एक अपर आनन्द समुद्र के समान श्रीजगन्नाथदेव की देवदुर्ल्लभ रमणीय स्नानयात्रा का दर्शन किये थे ॥५६॥

कृपालु गौरचन्द्र-प्रभात समय में पूर्वदिन के समान श्रीजगन्नाथ दर्शन हेतु गये थे, किन्तु श्रीजगन्नाथदेव गूढ़रूप में अवस्थित होने पर दर्शन प्राप्त न होकर वहाँ वाष्पमोचन कर अतिशय दुःखित हुये थे ॥५७॥

वहिर्गत होकर महाउत्कण्ठित चित्त से मदमत्त सिंह के समान

विचार्य्यं तस्मिन्नवलोक्य नैव
प्रतेपुरुच्चै रथ तेऽतिखिन्नाः ।
अथाययुः क्षेत्रमतीवदुःखैः–
क्षणं च कल्पानिव मेनिरे स्म ॥५९॥

प्रभुस्तथा तेन पथैव गोदा–
वरीं वरीयान् प्रययौ कृपालुः ।
तेनैव सार्द्धं प्रियभाषणेन–
निनाय मासांश्चतुरोऽ परांश्च ॥६०॥

हेमन्तकालेऽथ तथैव तेन–
समं समन्तात् करुणां वितन्वन् ।
समाययौ क्षेत्रवरं वरीयान्–
जानातु कस्तच्चरितं विचित्रम् ॥६१॥

आश्चर्य चेष्टा से आलालनाथ गमन करने पर उस प्रकार भक्तवृन्द उनके अन्वेषणार्थ कातराङ्ग होकर वहिर्गत हुये थे ॥५८॥

भक्तगण अतीव खिन्नमानस से विचार करतः वहाँ पर दर्शन लाभ न कर अतिशय परितप्त हुये थे, पश्चात् अति दुःख से क्षेत्र में प्रत्यावर्त्तन कर क्षणकाल को कल्पतुल्य अनुभव किये थे ॥५९॥

प्रभुवर गौरहरि—उस पथ से ही गोदावरी में उपस्थित होकर श्रीरामानन्द के सहित प्रियकथा से चातुर्मास्य एवं अपर कतिपय मास यापन किये थे ॥६०॥

हेमन्तकाल में श्रीप्रभु करुणा विस्तार कर रामानन्द राय के सहित क्षेत्र में आगमन किये थे, कौन व्यक्ति उनका विचित्र चरित्र अवगत होने में सक्षम होंगे ? ॥६१॥

समेत्य नीलाचलमुत्सुकोऽसौ–
हेमाचलाभः कमनीयदेहः ।
शश्वज्जगन्नाथमहाप्रभुं तं–
विलोक्य हर्षेण निनाय कालम् ॥६२॥

समागतं तं परिकर्ण्य काशी–
मिश्रः क्षतागःपटलीतमिस्रः ।
विलोक्य नत्वा मुमुदे प्रकाम–
मभीप्सितं बाहुचतुष्टयाढ्यम् ॥६३॥

तत्कृपाभिरभिचुम्बित एष–
श्रीमदङ्घ्रिकमलस्य रजोभिः ।
रञ्जितः पुलककण्टकिताङ्गः–
सान्द्रसौख्यविवशः स रराज ॥६४॥

यो यदीयकृपया सुमहत्या–
नीलशैलतिलकालयलक्ष्मीम् ।

हेमाचल सदृश कमनीयदेह गौरचन्द्र उत्सुक चित्त से नीलाचल में उपस्थित होकर जगन्नाथदेव का दर्शन कर अतिहर्ष से कालयापन करने लगे ॥६२॥

जिनकी पापश्रेणीरूप अन्धकार रात्रि विनष्ट हो गई है, अर्थात् जो निष्पाप हैं, उन काशीमिश्र—गौराङ्गदेव की आगमन वार्त्ता को सुनकर अभीप्सित बाहुचतुष्टययुक्त प्रभु को दर्शन एवं नमस्कार कर परम आनन्दित हुये थे ॥६३॥

काशीमिश्र—गौरचन्द्र की कृपा से श्रीमत्पादपद्म की रजः के द्वारा संसृष्ट होकर रञ्जिताङ्ग एवं पुलकरूप कण्टक व्याप्त कलेवर होकर निविड़ानन्द से विवश होकर निरतिशय शोभित हुये थे ॥६४॥

स्वे वशे प्रकुरुते स्म गरीयां–
स्तस्य केन महिमापरिमेयः ॥६५॥

गौरचन्द्रचरणाद्वितयस्या–
ज्ञापनं सकलमातनुते यः ।
ईप्सितं परिकलय्य स काशी–
मिश्र एष कथया किमु वेद्यः ॥६६॥

यो महोत्सवविधौ विविधानि
प्रायशो निजमतानि विशेषात् ।
निर्मितानि विदधे प्रभुचित्तं
प्राकलय्य किमयं जनवेद्यः ॥६७–

कश्चनैष परमोऽथ महात्मा–
विष्णुदास इति निर्मलबुद्धिः ।

अहो ! जो काशीमिश्र—गौरचन्द्र की सुमहती कृपा से नीलाचल तिलक जगन्नाथ की गृहलक्ष्मी को निज वशः में किये हैं, उन महात्मा की गुरुतर महिमा का परिमाण का वर्णन कौन कर सकता है ? ॥६५॥

जो काशीमिश्र—गौरचन्द्र के चरणद्वय को जिस किसी प्रकार ईप्सित आज्ञा को ममत्वबाध से सम्पन्न करते हैं, उन महात्मा क्या वाणी का विषय होंगे ? ॥६६॥

काशीमिश्र—महोत्सव विधि से श्रीप्रभु के चित्त को जानकर निज मनोमत विविध वस्तु का निर्माण विशेष रूप से करते हैं, आप क्या साधारण जनगण वेद्य हो सकते हैं ? ॥६७॥

परम महात्मा एवं निर्मल बुद्धि विष्णुदास नामक एकजन

सर्वमेव परिहाय ददर्श-
श्रीशचीसुतपदाम्बुजयुग्मम् ॥६८॥

सद्य एव स तदीयकृपाभि-
र्व्यानशे सुकृतसञ्चयधन्यः।
लोचनद्वयगलज्जलधारा-
धौतसर्वतनुरेव तदासीत् ॥६९॥

कोऽपि भूरिसुकृतः सुभयः
प्रद्युम्नमिश्र इति भाग्यमयाब्धिः।
गौरचन्द्रचरणाम्बुजयुग्मं-
लोचनातिथि सुखेन चकार ॥७०॥

लोचनातिथितयैव तदस्मि-
न्नस्य कारुणिकता कलितासीत्।
यद्विलोचनगता जलधारा-
श्रावणाम्बुदपयोधर एव ॥७१॥

भक्त समस्त परित्याग पूर्वक समागत होकर श्रीशचीनन्दन गौरहरि के पादपद्म युगल का दर्शन किये थे ॥६८॥

पुण्यराशि से धन्यात्मा विष्णुदास सद्यः ही गौरचन्द्र का कृपा भाजन हुये थे, उस समय उनके नयनयुगल विगलित जलधारा से विधौत होने लगे थे॥६९॥

तत् पश्चात् भूरि पुण्यशाली एवं सुन्दर प्रचुर भाग्य सम्पन्न प्रद्युम्नमिश्र नामक भक्त श्रीगौरचन्द्र के पादपद्म युगल को अतीव हर्ष से स्वीय लोचन युगल का अतिथि किये थे ॥७०॥

दर्शन मात्र से ही प्रद्युम्नमिश्र में गौरचन्द की कारुणिकता सार्थक हुई, कारण—नयन से निर्गलित जलधारा ही श्रावण मास

एकदा निजविहारविशेषं
संस्मरन्नुपवनेषु स नाथः ।
मञ्जुलेषु रभसेन स वृन्दा-
रण्यसंस्मृतिकरेषु जगाम ॥७२॥

तत् प्रविश्य वनमुत्तमशोभा-
रामणीयकमवेक्ष्य स नाथः ।
आत्मना सह सनाथमतीव
प्रेमपूर्णहृदयो व्यजनिष्ट ॥७३॥

भृङ्गधर्षितप्रसूनसञ्चयां
वेपमाननवपल्लवावलीम् ।
ओष्ठदंशनरतं प्रियं प्रियां
पाणिपल्लवमिवावधुन्वतीम् ॥७४॥

के वर्षुक जलधर की विलासभूमि हुई थी ॥७१॥

अनन्तर एकदिन गौरचन्द्र निज विशेष विहार स्मरण पूर्वक वृन्दावनोद्दीपनकारक मनोहर उपवन में सहर्ष गमन किये थे ॥७२॥

गौरहरि उक्त सनाथ अर्थात् सस्वामिक उपवन में प्रविष्ट होकर उत्कृष्ट शोभा की रमणीयता सन्दर्शन करतः प्रेमपूर्ण हृदय हुये थे ।७३।

जहाँपर लता के पुष्पसमूह भृङ्ग कर्त्तृक समाक्रान्त हैं, जिसके नवपल्लव समूह कम्पमान हैं, सुतरां मानों ओष्ठ दंशनासक्त प्रिय के प्रति प्रिया करपल्लव ताड़ना कर रही है, जिनमें मनोहर मधुकर निकर शोभित हैं, ताल, मान, लय, हाव एवं भाव जिसमें विद्यमान है, एवं जिसका अवयव रमणीय एवं कृशतर है, सुतरां नृत्यकारिणी वनिता समूह के समान लता समूह को गौरचन्द्र अवलोकन किये थे।

उक्त विशेषण समूह वनितापक्ष में प्रयोज्य होंगे, वनितापक्ष में

तां ददर्श कमनीयकृशाङ्गी–
मावलीं ललितभृङ्गवतीनाम् ।
तालमानलयहावववतीनां–
नर्त्तकीपरिषदं व लतानाम् ॥७५॥ (युग्मकम्)

एवमत्र सुचिरं लघुलास्यं
निक्षिपन् पदपयोरुहयुग्मम् ।
तत्र तत्र च विलासवतीनां
लास्यसंस्मरणविस्मृतचेष्टः ॥७६॥

अश्रुसंश्रवणसंभृतहार–
श्रीविराजित मनोहरवक्षाः ।
विभ्रदुत्पुलकमङ्गलतान्तं
पूर्णिमेन्दुवदनः स विरेजे ॥७७॥

भृङ्ग शब्द से लम्पट का बोध होगा, यहाँ उपमा अलङ्कार है, इवार्थ वाचक परिषदं व यह 'व' शब्द ही द्वितीय श्लोक में फलित होगा। इवार्थ वाचक 'व' शब्द का प्रयोग "यथा शा एवं व यश पपुरिति" रघुवंश में कालिदास की उक्ति है, कादम्ब खण्डित दलानि 'व' पङ्कजानि ४।४२) ॥७४।७५॥

गौरहरि—उपवन में लतागण का नृत्य दर्शन कर स्वयं भी अनेकक्षण पर्यन्त पादपद्म निक्षेप पूर्वक ईषत् नृत्य करके वहाँपर विलासवती व्रजाङ्गनागण का नृत्य स्मरण कर अवशाङ्ग हुये थे।७६।

नियत नेत्रजल पतन से जिसका हार संसिक्त हेतु परम शोभा से मनोहर वक्षःस्थल विराजित हैं, उन पूर्णेन्दुवदन गौरचन्द्र उत्पुलक रूप अङ्गलता को धारण कर विराजित हुये थे ॥७७॥

एवमत्र विलसत्यनन्तरं–
सार्वभौमकथितैः प्रलोभितः ।
उत्सुकस्तमभितो गजाधिपः
साहसादिह समाययौ द्रुतम् ॥७८॥

श्रेयसि प्रथममेव भूयते
वाञ्छितेन सफलैर्मनोरथैः ।
साहसेन यदकारि भूभुजा–
तत्तु कोटिगुणसौख्यमादधे ॥७९॥

केन तस्य महितात्मना लसत्–
पुण्यराशिमहितस्य निर्भरम् ।
भागधेयजलधेर्विधीयतां–
भूयसी परिणतिर्महीपतेः ॥८०॥

उस रीति से उपवन के मध्य में श्रीगौरचन्द्र विलसित थे, उस समय गजपति प्रतापरुद्र, सार्वभौम भट्टाचार्य के वाक्य से प्रलोभित होकर समधिक उत्सुक चित्त से एवं अति साहस एवं शीघ्रता से श्रीप्रभु के निकट आये थे ॥७८॥

जब मङ्गल का समय आता है, उस समय वाञ्छित वस्तु के सहित मनोरथ प्रथमतः ही सफल होता है, अर्थात् कार्य सिद्ध भी होता है, एवं इच्छा भी फलवती होती है, कारण—गजपति प्रताप रुद्र का साहस पूर्वक आगमन हुआ था, उससे ही उनका कोटि सुख उत्पन्न हुआ था ॥७९॥

पूज्य स्वभाव शोभित पुण्यराशि के द्वारा पूजित महीपति प्रताप रुद्र के भाग्यरूप जलनिधि का परिमाण कौन कर सकता है? अर्थात् प्रतापरुद्र का भाग्यसमुद्र अतिशय गभीर है ॥८०॥

स प्रविश्य वनमुत्तमं ततो
भूरिभाग्यमहितो महीपतिः ।
तप्तकाञ्चनमहीधरप्रभं–
तं ददर्श करुणापयोनिधिम् ॥८१॥

दण्डवत् भुवि निपत्य च धृत्वा
पादपद्मयुगलं गलदश्रुः ।
अस्तुवत् सहजमेव महात्मा
रासलास्यमनुवर्ण्य विशेषम् ॥८२॥

स स्तुवन्निति तदा समुदासे
दोर्द्वयेन दृढ़मेव निबध्य ।
मत्तवारणकरप्रतिमेन–
श्रीमता परमकारुणिकेन ॥८३

अश्रुणा विगलता पुलकेन
प्रोद्यता विलसितः स गजेशः ।

तत् पश्चात् भूरि भाग्यशाली महीपति प्रतापरुद्र, शोभित वन मध्य में प्रविष्ट होकर तप्तकाञ्चन पर्वत के समान प्रभाशाली करुणा निधि गौरचन्द्र को सन्दर्शन किये थे ॥८१॥

महात्मा प्रतापरुद्र गलदश्रु नयन से भूतल में निपतित होकर प्रभु के पादपद्म युगल धारण पूर्वक नैसर्गिक रासनृत्य विशेष का वर्णन कर स्तव करने लगे थे ॥८२॥

महीपति उस प्रकार स्तव कर रहे थे, उस समय परम कारुणिक श्रीमान् गौरचन्द्र मदमत्त गजशुण्ड के समान बाहु युगल के द्वारा सुदृढ़ बन्धन कर अत्यन्त उदासीन चित्त अर्थात् प्रेम विह्वल हुये थे ॥८३॥

मल्लराजबलवानपि राजा-
तस्य बाहुदलितः क इवाभूत् ॥८४॥

तं विहाय निजगाद स भूयः
कस्त्वमित्यतिशयार्द्रतनूकः ।
दास एष जन एव तवैत-
द्देहि दास्यमिति सोऽपि जगाद ॥८५॥

क्वापि नाहमभिधेय एव भो-
स्त्वादृशेति निजगाद स प्रभुः ।
निर्भरं प्रमुदितो भृशं तथा
रुद्रदेव उदवोचदुत्सुकः ॥८६॥

सत्वरं तत इतो मुदितात्मा
निययौ बहलहर्षभराढ्यः ।
भाग्यवद्भिरतिभूरिसुचेष्टै-
र्दक्षिणे सति विधौ किमलभ्यम् ॥८७॥

विगलित अश्रुधारा एवं समुद्गत पुलक द्वारा विलसिताङ्ग राजा गजपति प्रतापरुद्र मल्लराज के समान बलवान् होने से भी गौरचन्द्र के बाहु विदलित होकर मानों अन्य प्रकार हो गये थे ॥८४॥

महाप्रभु—राजा को परित्याग कर पुनर्बार कहे थे—तुम्हारा शरीर अतिशय आर्द्र अनुभूत हो रहा है, तुम कौन हो? तब राजा ने कहा—"यह व्यक्ति आपका दास है, आप दास्य प्रदान करें" ॥८५॥

"अहे ! मैं तुम्हारा उच्चारण का योग्य नहीं हूँ" गौरचन्द्र यह कहकर समधिक हर्ष से उत्सुकता के साथ प्रतापरुद्र को 'रुद्रदेव' सम्बोधन किये थे ॥८६॥

अति सत्वर बहुल परिमाण से आनन्दित होकर वहाँ से निर्गत

यत् प्रभुः प्रतिजनं परां कृपा-
माततान करुणैकसागरः ।
तत्तु किं कथयितुं भवेदहो
गीष्पतिः प्रभुरमी कुतोऽपरे ॥८८॥

अस्ति तत्र विमलः शिखिनामा
माहितीति पुरुषोत्तमभूमौ ।
नीलशैलतिलकस्य महात्मा
दासवत् करुणतां समुपेतः ॥८९॥

अस्य कोप्यवरजोऽस्ति मुरारि-
र्नाम तस्यच तथानु कनिष्ठा ।
शुद्धबुद्धिरथ माधवदेवी-
भ्रातरस्त इति तत्र समासन् ॥९०॥

हुये थे, जिनकी सुचेष्टा निरवधि है, तादृश भाग्यवान् पुरुषगण विधि अनुकूल होने पर सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं ॥८७॥

करुणानिधि महाप्रभु प्रत्येक जन के प्रति जो प्रचुर कृपा विस्तार किये थे, उसका वर्णन क्या साक्षात् बृहस्पति भी कर सकते हैं ? अपर की वार्त्ता दूर है ॥८८॥

पुरुषोत्तमक्षेत्र में विमलबुद्धि 'शिखि माहिती' नामक महात्मा निवास करते थे, आप अत्यन्त करुणाशाली एवं नीलाचल रत्न श्रीजगन्नाथदेव का दास स्वरूप थे ॥८९॥

इनका एक कनिष्ठ भ्राता था—उनका नाम मुरारिगुप्त है, एवं एक कनिष्ठा भगिनी रही उनका नाम माधवी देवी है, यह अति शुद्ध बुद्धि सम्पन्न रही, इनके गुण से जनसमाज में आप सब भ्रातृत्रय नाम से परिचित थे ॥९०॥

भ्रातरौ पुनरिमौ प्रियानुजौ
गौरचन्द्रनिरतो बभूवतुः ।
निश्चला हि सहजा मतिः शुभा
विस्मृतिं नहि दधाति कर्हिचित् ॥९१॥

नाथ एष परमः कृपानिधिः
प्रेमसंप्रकटनार्थमुद्यतः ।
कान्त एष कमनीयतामयः
श्रीशचीजठरसिन्धुचन्द्रमाः ॥९२॥

गौरचन्द्र इह संप्रति वृन्दा-
रण्यचन्द्र उदियाय धरण्याम् ।
एतयोरिति शुभा मतिरासीत्
सन्ततं विदधतो रतिराशिम् ॥९३॥

अग्रजं प्रति च नीलगिरीन्द्र
प्रेमभृत्यमनयोरतियत्नः ।

कनिष्ठ व्यक्ति द्वय अर्थात् मुरारि एवं माधवी देवी, उभय ही श्रीगौरचन्द्र में अनुरक्त थे, कारण—शुभावह सहजमति कभी भी विस्मृति पथारूढ़ नहीं होती है ॥९१॥

परम कृपानिधि गौरहरि—केवल प्रेमधन वितरण निमित्त ही उद्यत हुये हैं, इनकी मूर्ति अति कमनीयतामय अर्थात् मनोहर सौन्दर्य गठित कान्त एवं श्रीशचीगर्भ समुद्र का चन्द्रमा स्वरूप रही ॥९२॥

श्रीवृन्दावनचन्द्र ही गौरचन्द्र होकर सम्प्रति धरणीतल में उदित हुये हैं, अत्यन्त रागयुक्त मुरारि एवं माधवी देवी में यह शुभावह बुद्धि नियत उदित हुई थी ॥९३॥

गौरचन्द्रभजनार्थमथासी-
न्नैष तत्र निरतश्च बभूव ॥६४॥

सोऽपरेद्युरनुजोपदेशतः-
सन्ततं बहुमनःकथाच्युतः ।
यामिनीचरमकाल आगते
स्वप्नदर्शनसमाकुलोऽभवत् ॥६५॥

भ्रातरौ पुनरनेन कनिष्ठौ
गौरचन्द्रपदपङ्कजदृष्टौ ।
तत्क्षणे स्वमपि जागरयन्तौ-
स्वप्नदृष्टिचकितं ददृशाते ॥६६॥

चित्रदर्शनभवत्पुलकौघै-
र्हर्षतोद्विगुण एव बभूव ।

श्रीजगन्नाथदेव प्रेमभृत्य अग्रज शिखि माहिती के प्रति मुरारि एवं माधवी देवी श्रीगौरहरि का भजनार्थ अतिशय प्रयत्न करते थे, किन्तु शिखि माहिती तद्विषय में निरत नहीं होते थे ॥६४॥

एकदिन शिखि माहिती अनुज मुरारि के उपदेश वशतः विविध चिन्तन कर निद्रित थे, रजनी अवसान के समय उपस्थित होने पर आप स्वप्न देखकर व्याकुल हो उठे थे ॥६५॥

शिखि माहिती स्वप्न दर्शन से भीत होकर "गौरचन्द्र के पादपद्म के अनुगृहीत कनिष्ठ मुरारि गुप्त एवं माधवी मुझको जागरित करते हैं" उस समय अनुज द्वय को उस प्रकार अवस्था में अवलोकन किये थे ॥६६॥

आश्चर्य स्वप्न दर्शन से पुलक एवं हर्षाधिक्य वशतः द्विगुणतर

उन्मिमील शनकैर्जलपूर्णे-
लोचने तदनु तौ च ददर्श ॥९७॥

तौ विलोक्य निजजागरणार्थ-
मागतौ सविधमेव महान्तौ ।
आलिलिङ्ग स दृढं परिहृष्टो
विस्मितावभवतां च तदा तौ ॥९८॥

भ्रातरौ शृणुत मे तदीक्षितं
स्वप्नतो यदिति चित्रमेव तत् ।
अप्रमेयमहिमा शचीसुतः
प्रत्ययोऽद्य खलु केवलमासीत् ॥९९॥

नीलशैलतिलकं विलोकयं-
स्तत्र स प्रविशति प्रतिक्षणम् ।
भूय एव वहिरेत्य पश्यति
प्रायशो व्यतनुतैवमेव सः ॥१००॥

चकित होकर सजल लोचन युगल उन्मीलन कर अनुजद्वय को प्राप्त किये थे ॥९७॥

जागरणार्थ समागत महाहृष्ट अनुज द्वय को निकटागत देखकर सुदृढ़ आलिङ्गन किये थे, एवं उस समय अनुज द्वय भी विस्मित हुये थे ॥९८॥

उस समय शिखि माहिती ने कहा-हे भ्रातृद्वय ! स्वप्न वृत्तान्त का श्रवण करो, यह अतीव आश्चर्यजनक है, "शचीसुत गौरहरि की महिमा अप्रमेय है" आज उसका प्रत्यक्ष मैंने किया है ॥९९॥

गौरहरि—श्रीजगन्नाथ का दर्शन कर बारम्बार उनके शरीर में प्रवेश एवं निर्गत होते रहते हैं, एवं पुनः-पुनः श्रीजगन्नाथदेव को

चित्रमेव बहुचित्रमेव तत्
सोऽधुनापि तदवस्थ ईक्ष्यते ।
ईश्वरः परमविभ्रमेक्षण–
भ्रान्तिभागिव विलोचनद्वयम् ॥१०१॥

मां च तन्निकटगं खलु नाम
ग्राहमाश्लिषदसीमकृपाब्धिः ।
दीर्घपीवरभुजा द्वितयेन–
श्रीमता ललितजानुगतेन ॥१०२॥

इत्थमुत्पुलकमङ्गमावहन्–
प्रेमगद्गदवचा महोत्सुकः ।
निर्यदम्वुनयनद्वयंवहन्–
निर्ववार निगदन्निदं न सः ॥१०३॥

अवलोकन कर रहे हैं, प्रायशः इस प्रकार आश्चर्य विस्तार कर रहे हैं ॥१००॥

अहो कैसा आश्चर्य है ! उन ईश्वर गौरचन्द्र को अधुनाभी उस प्रकार ही देख रहा हूँ, मेरा लोचन क्या महाविलासपूर्ण दर्शन कर भ्रमित हो रहा है ॥१०१॥

जगन्नाथदेव के समीप में अवस्थित होने के कारण—नाम ग्रहण पूर्वक मुझको आपने सम्बोधन किया एवं असीम कृपासिन्धु गौरहरि आजानुलम्वित सुदीर्घ, पीवर एवं सुश्री बाहु युगल द्वारा मुझको आलिङ्गन भी किया ॥१०२॥

शिखि माहिती समुत्सकचित्त एवं पुलकिताङ्ग होकर विगलित जलधारा विशिष्ट नेत्र युगल से उक्त प्रकार कहकर ही वहाँ से निर्गत हुये थे ॥१०३॥

तन्निशम्य सुखमापतुरेतौ–
तत्र गन्तुमवलोकितुमेनम् ।
नाथमादिदिशतुर्गतवन्तं
नीलशैलपतिमीक्षितुमेव ॥१०४॥

तत्तथेति चपलं त्रय एव
भ्रातरोऽसितमहीधरनाथम् ।
जग्मुरीक्षितुमतीव महान्तो
गौरचन्द्रचरणे कृतवाञ्छाः ॥१०५॥

तत्र तौ मुदितमानसौ–
जगन्मोहने प्रथमतः शचीसुतम्
तं विलोक्य विगलद्विलोचन–
द्वन्द्ववारिभरमापतुर्मुदम् ॥१०६॥

मुरारि एवं माधवी देवी ने उस प्रकार वाक्य को सुनकर श्रीप्रभु दर्शन के निमित्त शिखि माहिती को श्रीजगन्नाथदेव दर्शन करने के निमित्त कहे थे ॥१०४॥

श्रीगौरहरि के श्रीचरण नलिन युगल में जिनकी वाञ्छा है, उस प्रकार माहिती, मुरारि एवं माधवी देवी तथास्तु कहकर असित महीधरनाथ को अर्थात् श्रीजगन्नाथ देव को दर्शन करने के निमित्त सत्वर निर्गत हुये थे ॥१०५॥

मुरारि एवं माधवी देवी वहाँ पर उपस्थित होकर अति हृष्ट चित्त से जगन्मोहन में प्रथमतः शचीनन्दन गौरसुन्दर का दर्शन कर विगलित नेत्र युगल से जलधारा वर्षण करतः अतिशय आनन्दित हुये थे ॥१०६॥

अग्रजः पुनरयं शिखिनामा
स्वप्नतः खलु ददर्श यथैनम् ।
तं तथैव परिलोच्य समन्तात्
प्रेमहृष्टहृदयो व्यजनिष्ट ॥१०७॥

सोऽपि भूरिकरुणोऽथ मुरारे-
रग्रजस्त्वमिति दोर्द्वितयेन ।
आलिलिङ्ग स च तन्मतिरासीत्
मूर्त्तिमान् समुदयः सुखराशेः ॥१०८॥

तत्प्रभृत्ययममुष्य पदाब्ज-
द्वन्द्वगन्धलवविस्मृतसर्वः ।
सर्वदैव निजदैवतमेनं-
सेवते प्रतिदिनं गुरुभाग्यः ॥१०९

एवमेव पुरुषोत्तमभूमा-
वाचकर्ष सहसा सुरनद्याः ।

अग्रज शिखि माहिती—गौरचन्द्र को स्वप्न में जिस प्रकार देखे थे, उस प्रकार ही श्रीमन्दिर में दर्शन कर अतीव हृष्ट मनाः हुये थे ॥१०७॥

प्रचुर करुणाकर गौरहरि भी "तुम मुरारि का अग्रज हो" कहकर बाहु युगल के द्वारा आलिङ्गन किये थे, तत् पश्चात् शिखि माहिती गौरगत प्राण होकर मानों मूर्त्तिमान सुखनिचय हुये थे ।१०८।

तदवधि महाभाग्यवान् शिखि माहिती गौरचन्द्र के पादपद्म युगल का अनुग्रह लेश मात्र से ही समस्त विस्मृत होकर सर्वदा निज अभीष्टदेव गौरचन्द्र की सेवा में आत्म नियोग किये थे ॥१०९॥

करुणासिन्धु गौरहरि—अति स्नेह वशतः गङ्गातीरवासी निज

तीरभूमिवसतीर्न्निजलोकान्
स्नेहकृष्टहृदयः करुणाब्धिः ॥११०॥

अस्ति माधवपुरीति स कोऽपि
श्रीशचीसुतवतारणपूर्वः ।
विष्णुभक्तिरस एव शरीरी
कोऽपि भूमिषु महामतिरासीत् ॥१११॥

शिष्यतामधिगतोऽस्य महात्मा
सूर्यकोटिरिव निर्मलतेजाः ।
सत्यवाक् शुचितमः सरसात्मा–
सागराद्दुरवगाहगभीरः ॥११२॥

ईश्वरः फणिपतेरवतारो–
मूर्त्तिमानिव स भक्तिरसोऽभूत् ।
पूजकः समजनिष्ट स पूर्वं–
भूमिषु न्यसनमप्यतनिष्ट ॥११३॥

भक्तवृन्द को पुरुषोत्तम भूमि में आकर्षण किये थे, श्रीमन्महाप्रभु के स्नेहपरवश होकर नवद्वीप एवं तत् समीपस्थ भक्तवृन्द नीलाचल में उपस्थित हुये थे ॥११०॥

श्रीशचीनन्दन गौरहरि का आविर्भाव के पहले माधवपुरी नामक एक महात्मा भू-मण्डल में मूर्त्तिमान् विष्णु भक्ति रूप में विद्यमान् थे ॥१११॥

कोटि सूर्यसम जिनका अति निर्मल तेजः, सत्यवाक्, अति पवित्र, सरसचित्त एवं समुद्रवत् दुरवगाह स्वभावयुक्त अर्थात् जो दुर्गम्य एवं गभीर थे ॥११२॥

जो फणिपति का साक्षात् अवतार एवं मूर्त्तिमान् भक्तिरस

येन सार्द्धमभवत् समागमो
दक्षिणे प्रभुवरस्य निर्भरः ।
शीतलः स्थिरमतिः सहिष्णुता-
राशिरेव किमु मूर्त्तिमानभूत् ॥११४॥

जगतां परमः प्रियः प्रभुः
परमानन्दपुरीति शब्दितः ।
अथ सोभिययावटाख्यया-
तदकस्मात् सुरदीर्घिकातटम् ॥११५॥

अथ नाथविहारभूषितं
स नवद्वीपमुपेत्य सस्पृहः ।
कुतुकात् परमप्रभोरयं-
निलये विश्रमणं चकार च ॥११६॥

स्वरूप हैं, उन ईश्वरपुरी से, साक्षात् माधवेन्द्रपुरी का शिष्य होकर पूर्वज एवं भू-मण्डल में प्रथमतः न्यसन् अर्थात् सन्नयास विधि का विस्तार हुआ ॥११३॥

श्रीगौरहरि का समागम जिनके सहित दक्षिण देश में हुआ था, उन महात्मा शीतल स्वभाव स्थिर मति ईश्वरपुरी जैसे मूर्त्तिमान् सहिष्णुता का राशिस्वरूप हुये थे ॥११४॥

जगत् प्रिय प्रभु परमानन्दपुरी भ्रमण करते-करते अकस्मात् गङ्गातट में उपस्थित हुये थे ॥११५॥

सन्नयासिवर, गौरहरि के विहार विभूषित नवद्वीप नगर में उपस्थित होकर साभिलाष चित्त से कौतूहलाक्रान्त होकर महाप्रभु के आलय में उपस्थित होकर विश्राम किये थे ॥११६॥

जननी जगतीत्रयस्य या
पृथिवीकोटिसहिष्णुरञ्जसा ।
सुरनद्यधिकातिपावनी-
सततस्नेहमयी महाशया ॥११७॥

ननु भक्तिसुधा तनूमयी किं
प्रियता किं ननू माधुरीमयी ।
तमवेक्ष्य तदैव भिक्षया सा
सुतभावादवृणोन्महामतिम् ॥११८॥ (युग्मकम्)

अन्येद्युरेषोऽतिमहानुभावः
प्रभोः प्रियस्यालय एव हृष्टः ।
आचार्य रत्नस्य चकार भिक्षां
वसन् सुखं तस्य मुहुर्वितन्वन् ॥११९॥

अथ कश्चन गौरचन्द्रम-
श्वरणप्रेमसुधासरस्वती ।

जो त्रिजत जननी हैं, कोटि पृथिवी का भी सहन समर्थ है, सुरधुनी गङ्गा से भी जो समधिक पवित्रकारिणी, सतत स्नेहमयी, महाशया एवं भक्तिरूप सुधा की मूर्त्तिमती, प्रियता अथवा माधुर्यमयी कहकर जिनको निश्चय करना असम्भव है, उन शची देवी ने सन्न्यासीवर महामति परमानन्दपुरी को अवलोकन कर भिक्षा प्रदान द्वारा सम्मानित किया ॥११७-११८॥

महानुभव परमानन्दपुरी प्रियतम गौरचन्द्र के आलय में निवास कर महा हर्ष से आचार्यरत्न सुखविस्तार पूर्वक वहाँपर एक दिवस भिक्षा ग्रहण किये थे ॥११९॥

गौरहरि के पादपद्म प्रेमामृत की सरस्वती नदी के स्वरूप,

नितरां बहुधावगाहना-
न्मुहुरन्तर्वहिरेव तन्मयः ॥१२०॥

दयितोऽस्य महान्महामतिः
कमलानन्द इति प्रकीर्त्तितः ।
निजगाम च तत्र सत्वरं-
जननीं तामवलोकितुं मुदा ॥१२१॥

जननीं परिलोक्य तं पुनः
परमानन्दपुरीं प्रभुं ततः ।
स ददर्श तथास्य दर्शनात्
परमस्निग्धमतिर्बभूव सः ॥१२२॥

कतिचिच्च दिनानि तत्र ते
गमयित्वा युगपत्तथा ययुः ।
स गदाधरपण्डितोऽप्ययं
जगदानन्दमहाशयोऽपि च ॥१२३॥

अर्थात् अत्यन्त गौरप्रेममय एक महात्मा बारम्बार समधिक गौर प्रेमामृत में अवगाहन करने से ही अन्तर्वाह्य में केवल गौरप्रेममय हुये थे ॥१२०॥

जो "कमलानन्द" नाम से विख्यात हैं, उक्त महाशय कमलानन्द—जननी शचीदेवी को अवलोकन करने के निमित्त सहर्ष से वहाँ उपस्थित हुये थे ॥१२१॥

कमलानन्द जननी का दर्शन कर प्रभुवर परमानन्द पुरी का दर्शन किये थे, पुरी महाशय का दर्शन से आप अतिशय स्निग्धमति हुये थे ॥१२२॥

परमानन्दपुरी, आचार्यरत्न, कमलानन्द, गदाधर पण्डित

यतिराट् सतु गौरसुन्दर-
प्रभुसन्दर्शनभाग्यसोत्सुकः ।
पुरुषोत्तममुत्तमं ययुः
समुपेत्याददृशुः प्रभुं ततः ॥१२४॥

अथ गौरमहाप्रभोः पद-
द्वयपद्मं यतिराड् व्यलोकयत् ।
अनमत् स्वयमीश्वरोऽपि तं
स्थविरत्वेन कृतादरोदयः । ॥१२५॥

आचार्यविद्यानिधिरप्यसीम-
गुणाम्बुधिः प्रेममयः सुखात्मा ।
आचार्यरत्नं महितो महात्मा-
महानुभावोऽपि ययौ तथैव ॥१२६॥

एवं जगदानन्द पण्डित नवद्वीप में कतिपय दिवस अवस्थान कर वहाँ से युगपत् गमन किये थे ॥१२३॥

तन्मध्य में यतिराज परमानन्दपुरी, गदाधर पण्डित एवं अन्यान्य भक्तवृन्द, प्रभु गौरचन्द्र का सन्दर्शनरूप महाभाग्य से उत्सुक चित्त होकर पुरुषोत्तम धाम में उपस्थित होकर श्रीप्रभु दर्शन किये थे ॥१२४॥

यतिराज परमानन्दपुरी ने महाप्रभु गौरहरि के पादपद्म युगल का सन्दर्शन किया, पश्चात् गौरहरि स्वयं ईश्वर होकर भी अत्यन्त समादर पूर्वक वृद्धज्ञान से पुरी महाशय को प्रणाम किये थे ॥१२५॥

असीम गुणनिधि प्रेममय सुख स्वरूप आचार्य विद्यानिधि एवं महानुभाव पूज्य महात्मा आचार्य रत्न का आगमन भी उस समय हुआ ॥१२६॥

मुरारिगुप्तेन समं प्रयातः
श्रीमान् शिवानन्द इति प्रसिद्धः ।
व्यलोकयत्तत् प्रथमं तमीशं
स्वसौभगस्तोममिवाथ मूर्त्तम् ॥१२७॥

सतु दीनदयार्द्रमानस–
श्चरणाङ्ग्रुछदलेन तच्छिरः ।
मुहुरस्पृशदूचिवानिदं–
ननु जानामि भवन्तमित्यपि ॥१२८॥

सुकृती कृतपुण्यसञ्चय–
स्तदनुप्रेममयः स राघवः
रभसेन ददर्श तं क्षणात्
करुणार्द्रः करुणां चकार सः ॥१२९॥

अथ शुद्धमतिर्महाशयः स
तु गोविन्द इति प्रकीर्त्तितः ।

प्रथित कीर्त्ति श्रीमान् शिवानन्द सेन भी मुरारि गुप्त के सहित गमन कर सर्व प्रथम मूर्त्तिमान् स्वीय सौभाग्य राशि के समान गौरहरि का दर्शन किये थे ॥१२७॥

दीन दयार्द्रमनाः गौरहरि स्वीय चरणाङ्गुष्ट पल्लव के द्वारा शिवानन्द सेन के मस्तक को बारम्बार स्पर्श किये थे, एवं आपको मैं जानता हूँ इस प्रकार कहे थे ॥१२८॥

पुण्य राशि सुशोभित मङ्गलालय एवं प्रेममय राघव नामक भक्त अति हर्ष से गौर चन्द्र का दर्शन किये थे, एवं गौरचन्द्र तत्क्षणात् करुणार्द्र हृदय से उनके प्रति करुणा किये थे ॥११९॥

गोविन्द नामक जनैक विशुद्धमति महात्मा अनेक तीर्थ भ्रमण

बहुतार्थपरिभ्रमाद्वहिः–
सुमहान् पुण्यपयोनिधिर्ययो ॥१३०॥

पुरुषोत्तममेव तत्र तं
दयितं गौरकृपामहानिधिम् ।
स ददर्श च पादपद्मयोः–
परिचर्यासु रतोऽभवन्मुहुः ॥१३१॥ (युग्मकम्)

अयमप्यतिभाग्यवांस्ततः
प्रभृति श्रीप्रभुपादपद्मयोः ।
निकटस्थ इतो दिवानिशं–
परिचर्यामकरोद्गतक्रियः ॥१३२॥

अथ शुद्धमतिर्महाशयो–
गुणवान् सच्चरितस्तदा प्रभुम् ।
प्रददर्श सुखौघभूषितः–
स भवानन्द इति प्रकीर्त्तितः ॥१३३॥

हेतु सुमहान् पुण्यराशि सञ्चय कर यात्रा प्रारम्भ किये थे ॥१३०॥

उक्त महात्मा पुरुषोत्तम धाम में उपस्थित होकर कृपानिधि गौराङ्गदेव का दर्शन किये थे, एवं श्रीप्रभु के पादपद्म युगल की परिचर्या में निरन्तर आत्मनियोग किये थे ॥१३१॥

तदवधि अति भाग्यवान् गोविन्द समस्त कार्य त्याग पूर्वक प्रभु पादपद्म के निकटस्थ होकर दिवानिशि केवल श्रीमहाप्रभु के सेवा कार्य में निरत हुये थे ॥१३२॥

शुद्धमति गुणवान्, सच्चरित्र महात्मा, भवानन्द नाम से विख्यात थे, आपने उस समय परमानन्द प्लुत होकर श्रीमन्महाप्रभु का सन्दर्शन किया ॥१३३॥

प्रभुरप्यतिशुद्धमानसं—
भुजयुग्मेन दृढ़ं समाश्लिषत् ।
अयि पाण्डुसमोऽसि भाग्यवा—
निति वाचं मधुरां जगाद च ॥१३४॥

अथास्य पुत्रा अपि पञ्च रामा—
नन्दादयोऽस्यैव महाकृपालोः ।
अतिप्रिया एव बभूवुरञ्जः
पार्श्वस्थिताः सेवनमेव कृत्वा ॥१३५॥

मृदुर्महात्मा परमप्रियोऽसौ
शान्तः सुहृत् सर्वजनस्य शश्वत् ।
चैतन्यचन्द्राङ्घ्रि रतश्च वाणी
नाथस्तमेव प्रतिसेवमानः ॥१३६॥

आचार्ययुक्तः पुरुषोत्तमाख्यो
महामतिः कश्चन चारुशीलः ।

प्रभु भी शुद्धचित्त भवानन्द को ततकाल भुजयुगल से वेष्टन कर आलिङ्गन किये थे, एवं "अयि भवानन्द ! तुम तो पाण्डुराज के सदृश भाग्यवान् हो" इस प्रकार मधुर वाक्य से सम्भाषण भी किये थे ॥१३४॥

भवानन्द के पुत्र रामानन्द के सहित पञ्च भ्राता महाकृपालु गौरहरि के पार्श्व स्थित होकर सेवा करके सत्वर अतिशय कृपापात्र हुये थे ॥१३५॥

मृदु स्वभाव, समस्त जनहित कर्त्ता, परमप्रिय सुशान्त चित्त, वाणीनाथ पट्टनायक, श्रीप्रभु की सेवा करतः तदीय पादपद्म में अतिशय अनुरक्त हुये थे ॥१३६॥

श्रुत्वा तदीयं चरितं प्रयत्नाद्-
ययौ तमेवेक्षितुमुत्सुकात्मा ॥१३७॥

पुरुषोत्तममेत्य विह्वलः
प्रददर्शाथ कृपानिधेः पदम् ।
सतु दर्शनमात्रकौतुका-
दभवत् कीदृश एव सम्मतः ॥१३८॥

तनुरप्यहहैव विस्मृता-
रसमात्रं सुखमात्रमीक्षितम् ।
अपि जीवितनाथदर्शना-
ज्जड़ता तेन सदैव संश्रिता ॥१३९॥

अथ नयने जलनिर्झराकुले-
वपुरुद्यत्पुलकैकभूषितम् ।

महामति पुरुषोत्तमाचार्य नामक एकजन सु-स्वभाव भक्त, श्रीगौराङ्गचरित श्रवण कर उनका दर्शन हेतु उत्सुक चित्त से गमन किये थे ॥१३७॥

पुरुषोत्तम आचार्य—पुरुषोत्तम क्षेत्र में उपस्थित होकर अति विह्वल चित्त से श्रीगौरचन्द्र का पादपद्म दर्शन किये थे, एवं दर्शन मात्र से ही अति कौतुक से आनन्दित हुये थे, प्रतीत होता था कि—आप में परिवर्त्तन आ गया है ॥१३८॥

शरीर बिषयक स्मृति उनकी विनष्ट हो गई, केवल भाव एवं आनन्द ही परिलक्षित होता था, जीवितनाथ को देखकर नियत ही जड़ अर्थात् स्पन्दन हीन हो गये थे ॥१३९॥

महात्मा के नेत्रद्वय जलधारा से आकुल हो गये थे, शरीर

पृथुवेपथुभङ्गभङ्गुरं-
गुरुमुरुद्वितयं तदादधे ॥१४०॥

दयितेक्षणभावभाविता
दयितेवाभवदेष भावितः ।
अयमप्यतिकोमलोऽभवत्
प्रियताभिः प्रियतैकसागरः ॥१४१॥

बहुधा मधुरां श्रियं प्रभुः
परिलोच्याशु बभूव कोमलः ।
नितरामकरोदमुत्र च
प्रथितं प्रेममहारसाम्बुधिः ॥१४२॥

अभजिष्ट तदा सदाशयः
सतु सन्न्यासमदभ्रभाग्यवान् ।
अगमत्तु रस स्वरूपता
मिह दामोदर इत्युदीरितः ॥१४३॥

पुलक विभूषित हुआ, विपुलतर कम्प एवं गुरुतर भङ्गुर ऊरुयुगल धारण किये थे ॥१४०॥

प्रिय दर्शन से ही भावाक्रान्त होकर दयिता भावाक्रान्त हो गये थे, एवं प्रियता का एकमात्र सागर गौरचन्द्र भी प्रियता गुण से अतिशय कोमल हो गये थे ॥१४१॥

महारससागर गौरहरि विविध मधुर शोभा सन्दर्शन कर कोमल हुये थे, एवं पुरुषोत्तम आचार्य के प्रति प्रेम विस्तार किये थे ॥१४२॥

महाभाग्य सम्पन्न सदाशय पुरुषोत्तमाचार्य सन्न्यास ग्रहण किये थे, तत्पश्चात् रसरूपता प्राप्त होने से स्वरूप दामोदर नाम से विख्यात हुये थे ॥१४३॥

इति तेन निरन्तरं प्रभोः
पदपाथोजसमीपसङ्गतः ।
निमिषं सहते स्म नो दृशोः
परिपश्यन्निव तृष्णया पिवन् ॥१४४॥

श्रीवक्रेश्वरपण्डितोऽतिमधुरः कश्चिन्महात्मा सदा
सान्द्रानन्दरसामृतोदधिरिति प्रेमास्पदं श्रीप्रभोः ।
आगत्याथ विलोक्य चाभवदयं यस्यास्य नृत्योद्गमे
सोऽयं गौरमहाप्रभुः प्रवणतां यातः स्वयं सर्वदा ॥१४५॥

श्रीवासुदेव इति दत्तकुलैकरत्नं
गौराङ्गचन्द्रमवलोक्य झटित्यमन्दम् ।
शश्वद्बभूव खलु जीवननिर्विशेषो-
निःशेषतत्प्रणयसिन्धुनिमग्न एषः ॥१४६॥

अथान्य एको भगवानितीह
ख्यातः सदाचार्यवरो महात्मा ।

स्वरूप दामोदर श्रीप्रभु पादपद्म के निकटस्थ होकर अति तृष्णा से ही पादपद्म सुधापान करने से निमेषकाल भी अदर्शन सहन करने में असमर्थ हुये थे ॥१४४॥

निविड़ आनन्दामृत का उदधिस्वरूप अति मधुर वक्रेश्वर पण्डित नामक एक महात्मा आगमन पूर्वक दर्शन कर नृत्यारम्भ करत: महाप्रभु का अतिशय प्रेमास्पद हो गये, वक्रेश्वर के प्रति सर्वदा ही स्वयं गौरहरि अतिशय स्निग्ध भाव अवलम्बन किये थे ॥१४५॥

श्रीमान् वासुदेव नामक दत्तकुलोत्पन्न रत्नस्वरूप एक भक्त गौरचन्द्र का दर्शन कर शीघ्र सम्पूर्ण जीवन स्वरूप नियत ही असीम प्रणयार्णव में निमज्जित हुये थे ॥१४६॥

श्रीगौरचन्द्रं प्रणतोऽनुवेलं-
श्रीमज्जगन्नाथ प्रभुं सिषेवे ॥१४७॥

इत्थं श्रीपुरुषोत्तमे स्थितवति प्रत्यासमासीद्ध्वनिः
सर्वासां विदिशां दिशाश्च जनता सोत्कण्ठमेवागता ।
ये चान्ये खलु सत्यराजसुमतिस्तद्भ्रातृपुत्रादयो-
ये चान्ये रघुनन्दनो नरहरिः श्रीमन्मुकुन्दादिकः ॥१४८॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये त्रयोदशः सर्गः ।



भगवान् आचार्य नामक एक महात्मा—नियतकाल गौरचन्द्र के प्रति प्रणत होकर जगन्नाथ प्रभु की सेवा करने लगे थे ॥१४७॥

इस प्रकार श्रीगौरहरि पुरुषोत्तम क्षेत्र में अवस्थान कर रहे थे, उक्त संवाद समस्त दिक्स्थ भक्तवृन्द को उत्कण्ठित किया था, भक्तवृन्द का समागमन होने लगा, सत्यराज भ्रातृपुत्रादि एवं अन्यान्य रघुनन्दन नरहरि प्रमुख भक्तवृन्द भी समागत हुये थे ॥१४८॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये त्रयोदशः सर्गः ।



चतुर्दशः सर्गः

एकदा प्राह नाथोऽयं निजपादपयोरुहम् ।
द्रष्टुं तत्रागतान् स्वीयानद्वैतप्रमुखान् जनान् ॥१॥
आचार्य हे महाबुद्धे हे पण्डित महाशय ।
यद्वदामि शृणु श्रीमज्जगन्नाथविचेष्टितम् ॥२॥
श्रीजगन्नाथदेवोऽसौ सदा सर्वरसाश्रयः ।
करोतिगुण्डिचायात्रां विलासपरया धिया ॥३॥
गुण्डिचागारगमने वर्त्मनः पार्श्वयोर्द्वयोः ।
य एष पुष्पितारामो रामणीयकवानिह ॥४॥
वृन्दारण्य स्मृतिकरमेनं विद्धि विशेषतः ।
तत्र गत्वा जगन्नाथो गुण्डिचामण्डपे प्रभुः ॥
एकाधिकाष्टदिवसं विहरं स्तत्र तिष्ठति ॥५॥
तदिमां परमां यात्रां देवाद्यैरपि दुर्लभाम् ।
द्रष्टुं प्रत्यब्दमेवात्रागन्तव्यं हि भवादृशैः ॥६॥

एकदा गौरहरि स्वीय पादपद्म दर्शनार्थ समागत श्रीअद्वैतादि निज परिकरवृन्द को कहे थे—हे आचार्य ! हे महाबुद्धे ! हे पण्डित वरेण्य ! मैं श्रीजगन्नाथदेव का वर्णन कर रहा हूँ, आप सब श्रवण करें ॥१-२॥

जगन्नाथदेव सर्वदा निखिल रसाश्रय हैं, विविध विलास एवं मनोरथ से गुण्डिचा यात्रा करते हैं ॥३॥

गुण्डिचा मन्दिर गमनस्थ मार्ग के पार्श्वस्थ पुष्पित उपवन समूह रमणीयता विशिष्ट हैं। यह उपवन वृन्दावनोद्दीपक है। प्रभु गुण्डिचा मण्डप में गमन कर वहाँपर नौ दिन विहार करते हैं। अतएव देवादिदुर्लभ यह गुण्डिचा यात्रा दर्शनार्थ आप सब यहाँ पर

इति स्वीयविलासानां दर्शनाय महाप्रभुः ।
तानुवाच कृपाम्भोधी रथयात्राच्छलेन सः ॥७॥
ततः प्रभृत्येवमेते रथस्य समये प्रभुम् ।
श्रीगौरचन्द्रं द्रष्टुं तं प्रत्यब्दं यान्ति सस्पृहम् ॥८॥
यत प्रत्यब्दं प्रयान्त्येते द्रष्टुं गौराङ्गसुन्दरम् ।
तत्कथां किं सुरगुरोः शतं कथयितुं भवेत् ॥९॥
तथाप्युत्कण्ठया शश्वत् प्रथयन्नविशेषतः ।
एकबारस्य गमनं समन्ताद्वर्णयामहे ॥१०॥
अद्वैताचार्यदेवोऽसौ श्रीमच्छ्रीवासपण्डितः ।
गृहीत्वानेकशो लोकानन्याब्दे गमनोत्सुकः ॥११॥
प्रवृत्ते माधवे मासि वहन्मलयमारुते ।
रुते कोकिलभृङ्गाद्यैश्चारु ते गन्तुमुद्यताः ॥१२॥

आयेंगे। कृपानिधि गौरहरि रथयात्राच्छल से स्वीय विलास सन्दर्शन के निमित्त अनुमति प्रदान किये थे। तदवधि श्रीअद्वैत प्रभृति भक्तवृन्द, प्रतिवत्सर रथ यात्रा के समय सस्पृह होकर श्रीगौरहरि के दर्शन हेतु आते थे। वे सब प्रतिवत्सर गौरसुन्दर को देखने के निमित्त आते थे, उसका वर्णन सुरगुरु भी करने में अक्षम हैं ॥४-९॥

तथापि निरन्तर उत्कण्ठा से विशेष रूप से विस्तार कर एक बार का आगमन वृत्तान्त वर्णन कर रहा हूँ ॥१०॥

श्रीअद्वैताचार्य एवं श्रीवासपण्डित अनेक व्यक्ति को साथ लेकर अपर एक वत्सर गमनोत्सुक हुये थे। वैशाख मास में प्रवहमान मलय समीरण उपस्थित होने पर कोकिल, भ्रमरादि का चारु शब्द उद्गत होने लगे थे, समस्त भक्तवृन्द गमनोद्यत हुये थे।

प्रथमं हृष्टहृदयः श्रीमान् श्रीवासपण्डितः ।
श्रीगौरचन्द्रप्रेमातिनिर्भरस्निग्धमानसः ॥१३॥

श्रीवासुदेवदत्तं तं श्रीशिवानन्दसेनकम् ।
हृष्ट ऊचे स्वहृदयं मोदयन्ननयोरपि ॥१४॥

आगतोऽयं स समयो रथस्य तद्दिनं कुरु ।
प्रशस्तमस्मद्गमने युवयोरपि साम्प्रतम् ॥१५॥

ततो यात्रादिनं कृत्वा सर्वे परमसस्पृहाः ।
श्रीनवद्वीपगमने बभूवुरतिसोत्सुकाः ॥१६॥

श्रीशचीं तां भगवतीं विष्णुभक्तिस्वरूपिणीम् ।
मातरं सर्वजगतो दद्दशुः परमाशयाः ॥१७॥

स्थिता दिनद्वयं तत्र ततस्नेहभरनिर्वृताः ।
श्रीमदद्वैतदेवं तं दद्दशुर्बहुधोत्सुकम् ॥१८॥

श्रीगौरचन्द्र के प्रेम से विह्वलचित्त श्रीवासपण्डित हृष्टचित्त से प्रथमतः श्रीवासुदेव एवं श्रीमान् शिवानन्द सेन को आनन्दित कर कहे थे—रथयात्रा का समय समागत है, अतएव यात्रा हेतु दिन स्थिर करें, जिस दिन गमन का प्रशस्त समय हो उसका निर्णय करें। पश्चात् यात्रा का दिन स्थिर करने के निमित्त भक्तवृन्द नवद्वीप आगमनोत्सुक हुये थे, एवं विष्णुभक्ति स्वरूपिणी भगवती जगन्माता शचीदेवी का दर्शन किये थे ॥११-१७॥

पश्चात् तदीय स्नेहभर से सुस्थ होकर वहाँ दिवसद्वय काल अवस्थान कर अत्यन्तोत्सुक चित्त श्रीअद्वैतदेव का दर्शन किये थे ॥१८॥

ततो जगाद मधुरमद्वैताचार्य ईश्वरः ।
यात्रादिनं यद्‌युष्माकं प्रशस्तं तन्ममापि च ॥१९॥
ततः प्रमुदिताः सर्वे नृत्यकीर्त्तनतत्पराः ।
बभूवुस्तत्र गौराङ्गचरणस्नेहनिर्वृताः ॥२०॥
श्रीमदद्वैत ईशोऽपि चलितः परमोत्सुकः ।
भक्तिलीलारसस्येव मर्यादापर्वतो महान् ॥२१
ततः श्रीहरिदासोऽसौ भक्तिलीलामहाम्बुधौ ।
मग्नो महापर्वतवन्मैनाक इव वारिधौ ॥२२॥
गुणकीर्त्तनमेवास्य सन्ततं महिमार्णवात् ।
आहृत्य सस्पृहं चक्रे यः सोऽप्यत्रैव सम्मतः ॥२३
तत एते महात्मानो हरिदासादयो जनाः ।
आचार्यपण्डितावादौ पुरस्कृत्य ययुः सुखम् ॥२४॥

ईश्वर अद्वैत आचार्य सुमधुर स्वर से कहे थे— आप सब का जो यात्रा का दिन है, वह ही मेरा प्रशस्त दिन है ॥१९॥

प्रमुदित चित्त से नृत्यगीत कर श्रीगौरचन्द्र के पादपद्म के स्नेहाभिलाष से सब व्यक्ति परमानन्दित हुये थे ॥२०॥

भक्तिरस एवं लीलारस का मर्यादामहापर्वत स्वरूप ईश्वर श्रीअद्वैत भी परमोत्सुकता से यात्रा किये थे ॥२१॥

समुद्रमग्न महापर्वत मैनाक के समान भक्ति एवं लीला समुद्र मग्न श्रीहरिदास भी गौराङ्गदेव का माहात्म्य समुद्र से निरन्तर गुण कीर्त्तन आहरण कर साभिलाष चित्त से नीलाचल यात्रा में सम्मत हुये थे ॥२२-२३॥

महात्मा हरिदासादि समस्त भक्तगण आचार्य एवं पण्डित को अग्रणी कर सुख पूर्वक गमन किये थे ॥२४॥

श्रीवासुदेवदत्तोऽपि श्रीशिवानन्दसेनकः ।
अन्योन्यं परमप्रीतौ तत्सङ्गे ययतुर्मुदा ॥२५॥

श्रीवासपण्डितस्यायादनुजो रामपण्डितः ।
यस्य गानेन गौराङ्गः सततं तद्वशोऽभवत् ॥२६॥

शुचिः स्निग्धमतिः श्रीमान् मुकुन्दः परमः प्रियः ।
मधुरः शान्तिमान् सान्त्ववचाः परमकोमलः ॥२७॥

ततो मुरारिगुप्तश्च प्रेमभक्तिरसार्णवः ।
द्वितीय इव तत्सङ्गे द्वितीयः सन्मुदं ययौ ॥२८॥

(युग्मकम्)

अथ ते श्रीलगौराङ्गचरणप्रेमविह्वलाः ।
तस्यैव गुणनामादि कीर्त्तयन्तो मुदं ययुः ॥२९॥

कीर्त्तनं प्रातरारभ्य सन्ध्यायामथवा निशि ।

श्रीवासुदेव दत्त एवं श्रीशिवानन्द सेन परस्पर महाहर्ष से उन सब के सहित गमन किये थे ॥२५॥

श्रीवास पण्डित के कनिष्ठ भ्राता श्रीराम पण्डित थे, उनका गायन से श्रीगौराङ्गदेव सतत प्रसन्न रहते थे, आप भी उन सब के सहित पुरुषोत्तमक्षेत्र यात्रा में सम्मिलित हुये थे ॥२६॥

पवित्रात्मा स्निग्धमति, परमप्रिय, परमकोमल, शान्तिमान् मधुर चरित्र विनीत श्रीमान् मुकुन्द भी गमन किये थे। अनन्तर प्रेमभक्ति रसार्णव अभिन्न हृदय होकर आनन्द से उनसब के सहित गमन किये थे ॥२७-२८॥

भक्तवृन्द श्रील गौराङ्गदेव के पादपद्म प्रेम से विह्वल होकर श्रीगौराङ्गदेव के नाम कीर्त्तन परायण होकर गमन किये थे ॥२९॥

भक्तवृन्द प्रातःकाल में कीर्त्तन आरम्भ कर सन्ध्या अथवा

कुर्वन्ति तेऽथ विश्रामं पथिकृत्यं तथा ततः ॥३०॥
एवं दिनं कीर्त्तनेन नृत्येन च महाशयाः ।
विनीय वर्त्मनि ययुः परमोत्सुकचेतसः ॥३१॥
तेषां तेषां वासराणां वर्णनीयं न किञ्चन ।
सुखसागर एवासीत् सर्वा विप्लावयन् दिशः ॥३२॥
एवं ते हर्षपाथोधिकल्लोलाकुलमानसाः ।
लालसा गौरचरणे रेमुणायां ययुर्मुदा ॥३३॥
अस्ताद्रिमस्तके न्यस्य समस्तकरमेव सः ।
अर्को विषीदति मुहुस्तेषां दृष्टिमनाप्नुवन् ॥३४॥
तत्र ते नगरे श्रीमद्गोपीनाथं समीक्षितुम् ।
विविशुस्तत्पुरीं रम्यां पुलकाक्ताङ्गयष्टयः ॥३५॥

रात्रि में विश्राम करते थे। पथस्थित अन्यान्य आवश्यक कार्य समूह को सम्पन्न कर महात्मा भक्तगण परमोत्सुकता से कीर्त्तनानन्द में विभोर होकर गमन करते थे ॥३०-३१॥

उक्त दिवसीय वार्त्ता अवर्णनीय है, मानों सुमहान् आनन्द समुद्र ही दिक् समूह को आप्लावित कर उपस्थित हुआ ॥३२॥

भक्तवृन्द आनन्द सागर की महातरङ्ग से आकुल चित्त होकर सहर्ष रेमुणा में उपस्थित हुये थे, किन्तु उनसब की एकान्त लालसा श्रीगौरपदारविन्द में ही रही ॥३३॥

उस समय आनन्दाधिक्य इस प्रकार हुआ कि—सूर्यदेव भी भक्तवृन्द का दर्शन प्राप्त न कर अस्ताचल के मस्तक में किरणमाला विन्यास कर विषण्ण हो गये थे, अर्थात् रेमुणा में भक्तवृन्द उपस्थित होने से ही सूर्यदेव अस्तङ्गत हुये थे ॥३४॥

भक्तगण—पुलकिताङ्ग होकर श्रील गोपीनाथ के मुखचन्द्र दर्शन के निमित्त रेमुणा नगरी में प्रविष्ट हुये थे ॥३५॥

दृष्ट्वा तन्मुखचन्द्रं ते परमां प्रीतिमाययुः ।
नमस्कृत्य महात्मानः कृच्छ्राग्निववृतुर्वहिः ।।३६।।
प्रातः प्रतस्थिरे सर्वे सर्वदोत्सुकचेतसः ।
श्रीगौरचन्द्रचरणदर्शनार्त्ता महाशयाः ।
तेषामोघः स परमः सततं सुखतन्मयः ।
पारावार इवारेजे पारावारविवर्जितः ।।३७।।
अद्वैतोऽयं निधिरभूत् श्रीवासो भक्तिपर्वतः ।
अमृतं कीर्त्तनमभूत् हरिदासो महामणिः ।।३८।।
तेषामन्योन्यसंप्रीतिर्लक्ष्मीरभवदुत्तमा ।
हिण्डीरो यशसां राशिस्तेजश्च बड़वानलः ।।३९।।
कल्लोलो जयनिस्वानस्तरङ्गोनिर्भराप्लुतिः ।

महात्मा भक्तवृन्द—श्रीगोपीनाथ के मुखचन्द्र दर्शन कर परम आनन्दित हुये थे, एवं अति कष्ट से वहाँ से वहिर्गत हुये थे ।।३६।।

गौरचन्द्र के पादपद्म दर्शनार्थं कातर महात्मा भक्तगण समधिक उत्सुक चित्त से वहाँ से प्रत्यूष में प्रस्थान किये थे। गमन काल में परमानन्द से तन्मय चित्त भक्तवृन्द समुद्रभिन्न होकर भी द्वितीय समुद्र के समान शोभित हुये थे ।।३७।।

समुद्र के मध्य में जिस प्रकार विविध वस्तु राजि विन्यस्त है, उस प्रकार भक्त समुद्र के मध्य में भी श्रीअद्वैत महानिधि, श्रीवास भक्तिपर्वत, श्रीहरिनाम सङ्कीर्त्तन अमृत एवं श्रीहरिदास कौस्तुभमणि हुये थे ।।३८।।

भक्तवृन्द की परस्पर प्रीति ही उत्कृष्ट लक्ष्मी, यशोराशि ही समुद्र फेन एवं तेज ही बाड़वानल हुआ ।।३९।।

जयध्वनि कल्लोल, अर्थात् महातरङ्ग समधिक आप्लावन,

मीनाश्च पादाङ्गुलयो मुक्तास्तन्नखपङ्क्तयः ॥४०॥

सर्पा अपि भुजा आसन् रक्षांसि द्वीपसञ्चयाः ।
आश्चर्यकमलान्यासन् वदनानि विभान्त्यपि ॥४१॥
(कुलकम्)

ततो जयपुरे ग्रामे सार्वभौमो महामतिः ।
समागमेन तत्रैव परमोत्सुक आगतः ॥४२॥

मुञ्चन्नयनयोर्वारि तान् प्रति स्नेहमेव तत् ।
बिभ्रत्पुलकसङ्घेन समन्तादाकुलां तनुम् ॥४३॥

अद्वैतं तत्र दृष्ट्वासौ महात्मानं महाशयः ।
अस्तुवच्छ्लोकबन्धेन स्वकवित्वेन सत्कविः ॥४४॥

अद्वैताय नमस्तेऽस्तु महेशाय महात्मने ।
यत्प्रसादेन गौराङ्गचरणे जायते रतिः ॥४५॥

अर्थात् बहुस्थान विस्तृत ही तरङ्ग, पदाङ्गुलि समूह मीन एवं नख पङ्क्ति समूह ही मुक्ता हुई थी ॥४०॥

भुजसमूह सर्प, वक्षःस्थल समुदाय द्वीपराजि एवं शोभमान वदन समूह ही कमल हुये थे ॥४१॥

महामति सार्वभौम परम उत्सुक होकर भक्तवृन्द के सहित सम्मेलनार्थ जयपुर ग्राम मेंउपस्थित हुये थे ४२॥

भट्टाचार्य महाशय—भक्तगण के प्रति समधिक स्नेह प्रकाश पूर्वक लोचन युगल से अश्रु विमोचन करते-करते विपुल पुलकावली से आकुलाङ्ग महात्मा अद्वैत को देखकर सत्कवि महाशय श्लोक बन्ध से विरचित स्वीय कविता द्वारा स्तव करने लगे ॥४३-४४॥

आप महात्मा हैं, महेशरूपी अद्वैत हैं, आपको नमस्कार करता हूँ, आपकी प्रसन्नता से गौरचरण में प्रीति उत्पन्न होती है ॥४५॥

एवमुक्त्वा पपाताऽसौ दण्डवद्धरणीतले ।
पुलकप्रेमजड़ितो महात्मा भाग्यतोयधिः ॥४६॥
हरिदासं समालोच्य भक्तिमानभवन्महान् ।
दण्डवद्भुवि हृष्टोऽसौ पतित्वा पुलकाचितः ॥४७॥
चकार भूयशः श्रीमान् प्रणामान्नतकन्धरः ।
कुलजात्यनपेक्षाय हरिदासाय ते नमः ॥४८॥
ततः सगद्गदां वाचमुवाच द्विजपुङ्गवः ।
पुलकैः कण्टकीभूतं वपुर्बिभ्रत गलतक्लमः ॥४९॥
श्रीगौरचन्द्रचरणकमलस्याप्यज्ञया ।
वेदान्तान्यार्थकृतये तज्ज्ञानां तारणाय च ॥५०॥
चिरादध्यात्मयोगस्य भावनाशुष्ककण्ठिनः ।
एतया भक्तिसुधया जीवयामीति गम्यते ॥५१॥

सौभाग्य समुद्र महातमा सार्वभौम उस प्रकार कहकर पुलक एवं प्रेम से जड़ीभूत होकर दण्डवत् धरणीतल में निपतित हो गये ॥४६॥

हरिदास को देखकर हृष्ट एवं पुलकाकुल कलेवर से दण्डवत् के समान भूतल में पतित होकर भक्तिनत हुये थे ॥४७॥

श्रीमान् सार्वभौम "जिसमें जाति कुल की अपेक्षा नहीं है, उन हरिदास को नमस्कार" इस प्रकार कहकर नतकन्धर होकर बारम्बार प्रणाम करने लगे ॥४८॥

द्विजराज सार्वभौम गतश्रम एवं विपुल पुलक से कण्टकीभूत् शरीर होकर गद्गद अर्थात् अस्फुटाक्षर से कहे थे ॥४९॥

"श्रीगौरचन्द्र चरण आज्ञा ग्रहण न कर मैं वेदान्तवेद्य साकार ब्रह्म स्थापन पूर्वक वेदान्तविद्गण के उद्धार हेतु, तथा चिरकाल से अध्यातम भावना से शुष्ककण्ठ जनगण को जीवित करने के निमित्त मैं गमन कर रहा हूँ" ॥५०-५१॥

अत्र प्रभो मत्प्रतिज्ञाश्रवणानन्तरं यथा ।
वाचोविलासं माकार्षीर्वृथाश्रममतिस्फुटम् ॥५२॥
अथाप्युत्कण्ठया गन्तुकामं मां करुणानिधिः ।
प्रत्युवाच न ते शक्तिर्भविष्यति कथञ्चन ॥५३॥
मास्म गा मा कृथा व्यर्थं परिश्रममिमं द्विज ।
यस्य नो वर्त्तते भाग्यं किं तु त्वं कारयिष्यसि ॥५४॥
तथाप्युत्कण्ठया यामि काशीं परमनिस्त्रपः ।
मनोरथो मे सफलो यथा स्यात्तत्कृपां कुरु ॥५५॥
इत्युक्तवान् सार्वभौमो भूमिगीर्वाणपण्डितः ।
नमस्कृत्वा महाभागो जगाम सुखतन्मयः ॥५६॥
ततः एते महात्मानो रम्यां याजपुरीं ययुः ।
कृत्वा वैतरणीस्नानं जग्मुर्नगरमध्यतः ॥५७॥

सार्वभौम भट्टाचार्य की प्रतिज्ञा को सुनकर श्रीगौरचन्द्र के मुखपद्म से इस प्रकार स्फुट वाक्य निर्गत हुआ था—"वृथा परिश्रम न करो" पश्चात् अतिशय उत्कण्ठावशतः नितान्त गमनोद्योगी भट्टाचार्य को देखकर करुणानिधि गौरहरि कहे थे—"किसी प्रकार से ही उस कार्य सम्पादन में आपकी शक्ति नहीं होगी, हे द्विज ! आप काशी गमन न करें, वृथा क्लेश न करें, आपका सौभाग्य नहीं है, सन्न्यासीओं को भगवदुन्मुख करने में आपकी शक्ति नहीं है, आप क्या कर सकते हैं ? वाक्य सुनकर भी उत्कण्ठाधिक्य से एवं निर्ल्लज्ज होकर "मैं काशी जा रहा हूँ, जैसे मेरा मनोरथ सफल हो, तद्विषय में आप कृपा करें" भूमिगीर्वाणपण्डित सार्वभौम उस प्रकार कहकर सुख तन्मयचित्त से प्रभु को नमस्कार पूर्वक गमन किये थे ॥५२-५६॥

महात्मा भक्तगण रमणीय याजपुरी गमन कर वैतरणी नदी

अथ प्रतापरुद्रेण स्वप्नं दृष्ट्वा महात्मना ।
प्रेषितो यानमुत्थाप्य तदीयोऽद्वैतमानयत् ॥५८॥
राजसम्भाषणं कर्त्तुं गन्तुं मामिति संविदन् ।
किं वदिष्यत्ति नाथोऽसाविति चिन्ताकुलोभवत् ॥५९॥
ईश्वरोप्येष गौराङ्गचन्द्रभीताशु वेपितः ।
श्रीवासुदेवदत्तं तं निनाय निजसङ्गतः॥६०॥ (युग्मकम्)
केचित् तत्सङ्गतो जग्मुरद्वैतानुगता जनाः ।
कटकस्य पथा ते च श्रीगौरचरणाश्रयाः ॥६१॥
अन्ये तु हरिदासाद्या महात्मनो महाशयाः ।
श्रीवासं पुरतः कृत्वा हंसेश्वरपथैर्ययुः ॥६२॥
तद्दिनं तत्र संनीय दृष्ट्वा च तमुमापतिम् ।
प्रातरुत्थाय सुखिता परितस्ते मुदा ययुः ॥६३॥

में अवगाहन स्नान कर नगर के मध्य में गमन किये थे ॥५७॥

महात्मा प्रतापरुद्र स्वप्न देखकर यान में आरोहण करवाकर अद्वैत को आनयन किये थे ॥५८॥

मैं राज सम्भाषणार्थ जा रहा हूँ, यह जानकर गौरचन्द्र क्या कहेंगे, इस प्रकार चिन्ता से अद्वैत व्याकुल हुये थे। अद्वैतप्रभु ईश्वर होकर भी गौरचन्द्र के भय से कम्पित होकर श्रीवासुदेव दत्त को निज सङ्गी किये थे ॥५९-६०॥

गौराङ्ग पदाश्रित कतिपय भक्त अद्वैत के अनुगामी होकर उनके सहित कटक गमन किये थे ॥६१॥

अन्यदिक् में महात्मा हरिदासादि भक्तवृन्द श्रीवास पण्डित को अग्रणी कर हंसेश्वर पथ से गमन किये थे ॥६२॥

भक्तवृन्द उमापति का दर्शन कर उस दिन वहाँ पर रहकर

कियद्दूरे हि ते तिष्ठन् श्रीवासप्रमुखा जनाः ।
निकटं गच्छतां तेषामुत्कण्ठा द्विगुणाभवत् ॥६४॥
विलोकितव्या गौराङ्गनखचन्द्रच्छटा इति ।
अद्वैतोऽपि ततस्तत्र मिलितोऽभून्महामतिः ॥६५॥
एकत्रैव मिलित्वा ते ययुः कमलके पुरे ।
मुदा परमया युक्ताः कीर्त्तयन्तोऽभितः ॥६६॥
नदीमासाद्य सुस्नाताः प्रसादं ददृशुर्मुहुः ।
औत्तुङ्गेन विवस्वन्तं नभस्थं पातयन्निव ॥६७॥
तेजसा कोटिसूर्याभः सुधया च समुन्वितः ।
स नीलपर्बतपतेः प्रासादः सुखदर्शनः ॥६८॥
सुखदः सर्वभूतानां तैरदर्शि महाशयैः ॥६९॥

प्रत्यूष में गात्रोत्थान पूर्वक सुख एवं हर्ष से गमन किये थे ॥६३॥

श्रीवास पण्डित प्रभृति पण्डितगण कियद्दूर गमन कर अवस्थान करने पर उन सब के निकट अन्यान्य भक्तगण समागत होने से श्रीवासादि की उत्कण्ठा द्विगुणतर हुई थी ॥६४॥

"श्रीगौराङ्गदेव की नखचन्द्रच्छटा का दर्शन होगा" इस वासना से अद्वैत भी वहाँ मिलित हुये थे, एवं एकत्र मिलित होकर परमानन्द से श्रीहरिसङ्कीर्त्तन कर कमलपुर गमन किये थे ।६५-६६।

पथ में नदी प्राप्त होने पर वहाँ सुन्दर रूप से स्नानक्रिया समापन करते- बारम्बार उत्तुङ्ग चूड़ाशिखर द्वारा आकाशस्थ सूर्यदेव को निपातित कर रहा है, एवं कोटि-कोटि सूर्यतुल्य उनकी तेजोराशि एवं सुधायुक्त सुदृश्य सर्वप्राणी सुखद नीलाचलपति जगन्नाथदेव का प्रासाद, श्रीमन्दिर का दर्शन महात्मा भक्तवृन्द किये थे ॥६७-६९॥

दृष्टा प्रासादमुत्तुङ्गं तुङ्गरोमाञ्चसञ्चयैः ।
हर्षस्तेषां समजनि तत्समो भृशमुच्छ्रितः ॥७०॥
विलोक्य हर्षसन्दोहनिर्भराः स्फूर्त्तिविह्वलाः ।
नमश्चक्रुर्महात्मानो हरिकीर्त्तनतत्पराः ॥७१॥
अथ प्राप्य महात्मासौ मालां परमपावनीम् ।
श्रीगौरचन्द्रप्रहितां मुमुदेऽद्वैत ईश्वरः ॥७२॥
कीर्त्तयद्भिर्निरवधि प्रेमहृष्टैर्महात्मभिः ।
अद्वैतोऽपि सुखाविष्टो नटनायोपचक्रमे ॥७३॥
नृत्यन्नसौ कीर्तयन्तस्तेऽपि गौराङ्गलालसाः ।
नरेन्द्राख्यसरस्तीरमासाद्य सुखमाययुः ॥७४॥
अथ भूयोऽपि गोविन्दान्मालामासाद्य पावनीम् ।

उत्तुङ्ग प्रासाद को देखकर भक्तवृन्द के अङ्ग में तुङ्ग रोमाञ्चराजि उत्थित होने से जैसे समधिक हर्ष भी प्रासाद सदृश समुन्नत हुआ ॥७०॥

हरि सङ्कीर्त्तन तत्पर महात्मा भक्तगण श्रीमन्दिर दर्शन कर परमानन्द सन्दोह से विह्वल होकर नमस्कार किये थे ॥७१॥

महात्मा ईश्वर अद्वैत श्रीगौरचन्द्र प्रेरित परम पवित्र कारिणी माला प्राप्त कर महाहृष्ट हुये ॥७२॥

श्रीहरिकीर्त्तनपरायण एवं निरवधि प्रेमहृष्ट महात्मा भक्तवृन्द के सहित अद्वैत भी सुखाविष्ट होकर नृत्य आरम्भ किये थे ॥७३॥

अद्वैत नृत्यारम्भ करने पर अन्यान्य भक्तवृन्द भी गौराङ्ग के प्रति लालसायुक्त होकर नरेन्द्र नामक सरोवर के तीर में सुखपूर्वक गमन करने लगे थे ॥७४॥

अद्वैत पुनर्बार गोविन्द के निकट से पवित्र माला प्राप्त कर

अद्वैतस्तन्निगदितं शुश्राव भृशमुत्सुकः ॥७५॥
समुद्रतटसंस्थस्य निदेशोऽयं महाप्रभोः ।
उपवासोऽस्ति विहितो नात्र युष्माकमागमः ॥७६॥
भविष्यति हि तत्रैव पुण्डरीकाक्ष ईक्ष्यताम ।
अहं तत्रैव यास्यामि विलम्बेन सुनिश्चितम्
भविष्यति समालापस्तत्र मिश्रालयान्तरे ॥७७॥
इति श्रुत्वाद्वैत ईशो मायैषेति वितर्कयन् ।
तथैवानुमतिं चक्रे तद्वशोऽसौ यतः स्वयम् ॥७८॥
मुरारिगुप्तोऽथ महानिर्वेदपरया धिया ।
पतित्वा दण्डवद्भूमौ रुदन्निदमभाषत ॥७९॥
दीनोऽयं दुःखिततमो जीवलोकः सुपामरः ।
एतावद्दुरमानीतो भवद्भिर्महिताशयैः ॥८०॥

समधिक उत्सुक चित्त से उक्त वाक्य श्रवण किये थे ॥७५॥

समुद्रतटसंस्थित महाप्रभु की अनुमति यह है कि—श्रीक्षेत्र में आगमन आप सब का हुआ है, अतएव उपवास करना कर्त्तव्य है, अतएव इस समुद्र तीर में आकर मेरा दर्शन न करें, वहाँपर ही श्रीजगन्नाथ का दर्शन होगा, मैं कुछ देर के बाद वहाँ आऊँगा, मिश्र भवन में मेरे साथ सम्यक् आलाप होगा ॥७६-७७॥

ईश्वर अद्वैत उस प्रकार सुनकर "यह माया है" इस प्रकार वितर्क कर उस विषय में अनुमति प्रदान किये थे, कारण—स्वयं प्रभु उनके वश में हैं ॥७८॥

मुरारि गुप्त महानिर्वेदग्रस्त होकर भूतल में दण्डवत् निपतित होकर रोदन करते-करते इस प्रकार कहे थे ॥७९॥

मैं अति दीन हूँ, अत्यन्त दुःखी एवं समधिक पामर हूँ, मुझको

न पारयेऽहं व्रजितुं न शक्तिर्मम वर्त्तते ।
न साहसं मेऽस्ति तावद्द्रष्टुं जगदधीश्वरम्
भवद्भिर्ज्ञापिते पश्चाद्गन्तुं शक्तिर्भविष्यति ॥८१॥
इत्युक्त्वा बहुनिर्विण्णो दुःखी तत्रैव सुस्थिरः ॥८२॥
तदनन्तरमद्वैतप्रमुखास्ते महाशयाः ।
पुण्डरीकाक्षयुगलमीक्षां चक्रुर्जगत्पतेः ॥८३॥
महोरसं महाबाहुं विशालायतलोचनम् ।
तं विलोक्य जगन्नाथं मुदमापुर्महत्तराम् ॥८४॥
अथ श्रीश्रीगौरचन्द्रश्चन्द्रकोटिर्महोज्ज्वलः ।
उदियाय सुखाविष्टः स्रवदश्रुभरप्लुतः ॥८५॥
पादन्यासैर्दलन् भूमिं मत्तपञ्चीन्द्रविक्रमः ।

यहाँ पर महाशयगण ही आनयन किये हैं, मैं और चल नहीं सकता हूँ, मेरी शक्ति एवं साहस नहीं है, जिससे मैं जगन्नाथ दर्शन करूँ, आप सब यदि श्रीप्रभु को ज्ञापित करें तो पश्चात् गमन करने की शक्ति मुझमें होगी ॥८०-८१॥

यह कहकर सुदुःखित मुरारि गुप्त अतिशय दीन होकर वहाँ पर सुस्थिर होकर रह गये ॥८२॥

महात्मा अद्वैतादि भक्तवृन्द जगत्पति श्रीजगन्नाथ का दर्शन किये थे एवं महाबाहु सुविशाल लोचन जगन्नाथदेव का दर्शन कर भक्तगण परमानन्दित हुये थे ॥८३-८४॥

अनन्तर कोटि-कोटि चन्द्र के समान महोज्ज्वल श्रीश्रीगौरचन्द्र सुखाविष्ट एवं विगलित अश्रुधारा से आप्लुताङ्ग होकर वहाँ पर उदित हुये थे ॥८५॥

पादन्यास से जो भूमि को विदलित करते हैं, जिनका विक्रम

मत्तसिंहमहोल्लासो लसदाजानुदोर्द्वय: ॥८६॥
जङ्गम: काञ्चनगिरि: साक्षादिव सुधाकर: ।
गलदश्रुझरासारझरनिर्झरसञ्चय: ।
सुधांशुकोटिर्युगपदेकीभूय समुद्गत: ।
विकिरन् सततासारां पीयूषद्रवदीर्घिकाम् ॥८७॥
सिन्दूरारुणकौपीन वहिर्वास: सुशोभित: ।
ऊरुद्वन्द्वविनिर्धूतरम्भास्तम्भयुगद्युति: ॥८८॥
नखेन्दुसुन्दरज्योत्स्नापीयूषच्छटया तया ।
प्रकाशयन् पुण्यवतीं रसां रसपयोनिधि: ॥८९॥
मुखचन्द्रस्निग्धसान्द्रज्योत्स्नास्नपितदिङ्मुख: ।
सुखसागर एवान्यो मूर्त्तिमान् कम्बुकन्धर: ॥९०॥
सिंहग्रीवो महापीनवक्ष:स्थलविलोभन: ।

मत्तपक्षीन्द्र के समान है, जिनका उल्लास मत्तसिंह के समान है, सुन्दर बाहुयुगल आजानुलम्बित हैं, जङ्गम अर्थात् सचल काञ्चनगिरि सुमेरु एवं सुधाकर के समान एवं विगलित अश्रुधारा वर्षण से जिनका अङ्ग निर्झर समूह से परिव्याप्त प्रतीत हो रहा है, मानों कोटि-कोटि शशधर एकत्र समुदित हैं, जिसमें सतत धारा सम्पात होता रहता है, तादृश अमृत द्रव दीर्घिका को जैसे विक्षिप्त कर रहे हैं। जो सिन्दूर के समान अरुणवर्ण कौपीन एवं वहिर्वास से सुशोभित हैं, जिनके ऊरु युगल रम्भास्तम्भ की द्युति को तिरस्कार करते रहते हैं, नख की सुन्दर चन्द्रिकारूप अमृत च्छटा से रससमुद्र गौरचन्द्र रसा अर्थात् पुण्यवती पृथिवी को पवित्र कर रहे हैं, समस्त दिङ्मण्डल जिनकी मुखचन्द्र को स्निग्ध निविड़ ज्योत्स्ना से स्नपित हो रहे हैं, जो सुख सागर में द्वितीय मूर्त्तिमान कम्बुकन्धर हैं, जो सिंहग्रीव हैं, एवं

क्षीणावलग्नसंलग्नकटिसूत्रमनोहरः ॥९१॥
'नौमीड्य तेऽव्भ्रवपुषे' इति ब्रह्मस्तवं पठन् ।
स्वयमद्वैतदेवं तं प्रणनाम महाप्रभुः ॥९२॥
अद्वैतोऽपि सुखाविष्टो हृष्टरोमा ननाम तम् ।
द्वयोस्तवमनत्यादौ द्वौ न प्रभवतः क्षणम् ॥९३॥
तयोर्गलद्वारिधारा लक्षमुक्तास्रजो मुहुः ।
आसीन प्रणामस्तुतिभिः कोऽपि कालः सुखावहः ॥९४॥
ततो महाप्रभुर्धृत्वा श्रीवासस्य पदाम्बुजम् ।
बहुधा विह्वलो भूत्वा चकार स्तुतिमुत्तमाम् ॥९५॥
सोऽपि द्विजाग्र्यो विकलो मर्त्तुकाम इवाभवत् ।

जिनके पीनवक्षःस्थल को देखकर जन निकर विलोभित हो रहे हैं, जिनका अति क्षीण मध्य देश में मनोहर कटिसूत्र संलग्न है, वह गौरचन्द्र "नौमिड्य ते ऽव्भ्र वपुषे" श्रीभागवतोक्त ब्रह्मस्तुति का आद्यिम श्लोक पाठ कर स्वयं अद्वैत को प्रणाम किये थे ॥८६-९२॥

अद्वैत सुखाविष्ट एवं पुलकिताङ्ग होकर गौरहरि को प्रणाम किये थे, एवं परस्पर स्तुति नति का प्रयोग अनवरत करने लगे थे ॥९३॥

मुहुर्मुहु विगलित नेत्र जलधारा रूप लक्ष मुक्तामाला से उभय ही विभूषित हुये थे, उभय की स्तुति एवं प्रणति से उस समय अति सुखकर हो उठा था। उभय-उभय को स्तव एवं प्रणाम किये थे, उभय के नयन युगल से अश्रुधारा विगलित होने से मुक्ताहार के समान बोध होता था ॥९४॥

महाप्रभु विह्वल होकर श्रीवास पण्डित के चरण धारण कर विविध उत्तम स्तव किये थे ॥९५॥

द्विजश्रेष्ठ पुण्यवान् श्रीवास पण्डित भी विकल होकर उस समय

ननाम भूरिसुकृतो वचनेनास्तुवद्भृशम् ॥९६॥
ततोऽस्यावरजो रामपण्डितोऽतिमहाशयः ।
श्रीवासुदेवदत्तोऽपि नेमतुर्युगपत् प्रभुम् ॥९७॥
तौ जग्राह भुजस्तम्भयुगलेन महाप्रभुः ।
श्रीशिवानन्दसेनोऽपि तत्पश्चादनमन्मुदा ॥९८॥
गङ्गाजलस्य च पुरो भाण्डद्वयमथानयत् ॥९९॥
तत्तु दृष्ट्वा कृपाम्भोधिर्गङ्गामाहात्म्यमुज्जगौ ।
उवाच मधुरं चातुदन्तद्योतोज्ज्वलाधरः ॥१००॥
स्नानोत्सवायैकमिदं मह्यमेकं च दीयताम् ।
तद्द्वयं श्रीवासुदेव श्रीशिवानन्दयोः पृथक् ॥१०१॥
उभयोरेव विज्ञाय वासनां पुनरुक्तवान् ।
तयोरर्द्धं विभज्यादौ जगन्नाथाय दीयताम् ।

मरणाभिलाषी हुये थे, एवं भूतल में निपतित होकर स्तव करने लगे थे ॥९६॥

श्रीवास पण्डित के कनिष्ठ भ्राता श्रीराम पण्डित तथा श्रीवासुदेव दत्त उभय ही युगपत् श्रीमन्महाप्रभु को प्रणाम किये थे ॥९७॥

श्रीमन्महाप्रभु भी व्यक्तिद्वय को भुजस्तम्भ युगल के द्वारा ग्रहण किये थे, शिवानन्द भी महाहर्ष से प्रणाम कर गङ्गाजल पूर्ण भाण्ड श्रीप्रभु के सम्मुख में स्थापन किये थे ॥९८-९९॥

कृपानिधि गौरसुन्दर भी गङ्गामाहात्म्य उच्चारण पूर्वक गङ्गा जल दर्शन कर अधरयुगल उद्दीपित करतः मधुर वाक्य से कहे थे, एक जलपात्र श्रीजगन्नाथदेव की स्नान यात्रा के निमित्त रखो, एवं अपर पात्र मुझको दो, अनन्तर श्रीवासुदेव दत्त एवं श्रीशिवानन्द सेन के मनोभाव को जानकर पुनर्बार कहे थे—घट द्वय के अर्द्धांश जल

अन्यदर्द्धं ततोऽत्रैव स्थाप्यतामिति स प्रभुः ॥१०२॥
अथ श्रीमान् कृपाम्भोधिः प्रपच्छ विस्मयान्वितः ।
मुरारिः क्व मुरारिः क्व क्वासौ सत्वरमानय ॥१०३
इति श्रुत्वा प्रधावन्तः शतशो भृशमुत्सुकाः ।
सत्वरं तत्र गत्वा च नरेन्द्रसरसस्तटे ॥१०४॥
विह्वलं पतितं भूमौ रुदन्तं दीनचेतसम् ।
ददृशुस्ते तथैवोचुः शीघ्रमागम्यतामिति ॥१०५॥
तथा निशम्य तद्वाक्यं मुरारिः परमोत्सुकः ।
विह्वलोऽश्रुजलैः शश्वदाप्लुतो धूलिधूसरः ॥१०६॥
तथैव विरुदन् भूरिकाकुप्रोक्तैर्महाशयः ।
ययौ परमनिर्विण्णः प्राणप्रभुमवेक्षितुम् ॥१०७॥
(युग्मकम्)

श्रीजगन्नाथदेव को प्रदान करो एवं अर्द्धजल यहाँपर रखो, कारण—उभय की इच्छा थी, प्रत्येक घट का अर्द्धेकजल जगन्नाथदेव को देना है एवं अर्द्धेकजल श्रीमन्महाप्रभु को देना है ॥१००-१०२॥

कृपानिधि श्रीमान् गौरहरि विस्मयापन्न होकर जिज्ञासा किये थे, मुरारि कहाँ है ? सत्वर यहाँ पर उनको ले आओ ॥१०३॥

यह सुनकर शत-शत भक्त अतिशय उत्सुक चित्त से धावित होकर नरेन्द्र सरोवर के तटदेश में विह्वल चित्तसे भूमिमें पतित होकर रोदन करता हुआ मुरारि को कहे थे-आप शीघ्र आइये ॥१०४-१०५॥

महात्मा मुरारि संवाद सुनकर परम उत्सुक, विह्वल निरन्तर अश्रु जल से आप्लुत एवं धुलि धूसरित होकर रोदन करते-करते भूरि-भूरि काकुवाक्य प्रयोग कर प्राणप्रभु श्रीगौरचन्द्र का दर्शन करने के निमित्त गमन किये थे ॥१०६-१०७॥

स्तम्भघर्माम्बुभिः शश्वत् स्खलत्पदयुगः पतन् ।
सम्वीतस्यैव चेलस्य गले वद्धार्द्धमञ्चलम् ।
दन्ते निधाय बहुधा तृणानि तृणवद्व्रजन् ।
गलदश्रुपयोयुक्तवक्षोमौक्तिकहारधृक् ।
प्रेमान्ध इव तत्रैव चिरं प्रभुमलोकयत ॥१०८
सवाष्पकण्ठं किमपि चक्तुं शक्तो नच क्षणम् ।
तथापि गद्गदोद्गारलक्षकाकूक्तिवानसौ ।
दधार चरणाम्भोजे प्रभोः परमदीनधीः ।
तत्पादाम्बुजयुग्म तत सिषेच खलु भूयशः ।
लोचनद्वयनिर्गच्छदश्रुधारासमुच्चये ॥१०९॥
सोऽपि प्रभुस्तस्य पृष्ठं सिषेच नयनोद्भवैः ।
अम्भोभिरायतारक्तलोचनाम्बुरुहद्वयः ॥११०॥

मुरारि गुप्त स्तम्भ एवं घर्मजल से नियत पादस्खलन होने से पतित होकर परिहित वस्त्र का अर्द्धाञ्चल गल देश में बन्धन कर तृणवत् लघुगति से दन्त में तृण धारण कर विगलित नयन वारि से बक्षःस्थल को मुक्ताहार के समान शोभित कर प्रेमान्ध होकर दीर्घ काल प्रभु का दर्शन करने लगे थे ॥१०८॥

वाष्प के द्वारा रुद्धकण्ठ होकर यद्यपि क्षणकाल कुछ भी कह नहीं सके थे, तथापि गद्गदाक्षर से लक्ष-लक्ष काकु वाक्य प्रयोग कर अतिशय दीन चित्त से प्रभु पादपद्म धारण किये थे एवं पादपद्म युगल को विगलित अश्रु धारा से बारम्बार सेचन करने लगे थे ॥१०९॥

सुविशाल कमल लोचन गौरहरि भी नयनोद्भूत जलद्वारा मुरारि के द्वारा पृष्ठ देश को सेचन करने लगे थे ॥११०॥

तत्रस्थः सकलो लोकस्तस्य रोदनकाकुभिः ।
अरुदत् तत्सम इव तन्मयः समयोऽभवत् ॥१११॥
प्रभुश्च तत् काकुवादं रोदनं च महत्तरम् ।
दृष्ट्वा श्रुत्वा क्षणमपि न सेहे विकलोऽभवत् ॥११२॥
ततो बभौ तत्र नाथोऽद्वैतादिकसमन्वितः ।
स्निग्धो राकानिशानाथ इव नक्षत्रमण्डितः ॥११३॥
उद्यद्विद्रुमशोणास्य हास्यरञ्जितचन्द्रिकः ।
स्वाङ्गज्योत्स्नाच्छटा शश्वत् स्नापिताशावधूमुखः ॥११४॥
अथ ते कृष्णचैतन्यचरणासवलम्पटाः ।
स्नानयात्रादर्शनाय बभूवुरनिशोत्सुकाः ११५॥

वहाँपर जो सब व्यक्ति उपस्थित थे—मुरारि का रोदन एवं काकूक्ति द्वारा वे सब भी तत्सदृश होकर रोदन परायण हुये थे, सुतरां उक्त समय भी मानों तन्मय होकर मुरारिमय हो उठा था ॥१११॥

महाप्रभु भी मुरारि का काकुवाद एवं सुमहत् रोदन को सुनकर क्षणकाल असहिष्णु होकर विकल हो गये थे ॥११२॥

तत् पश्चात् राकानिशापति अर्थात् पूर्णचन्द्र जिस प्रकार नक्षत्र माला से परिशोभित होते हैं, तद्रुप गौरचन्द्र भी अद्वैतादि भक्तगण समन्वित होकर परम सुशोभित हुये थे ॥११३॥

आहा ! जिनका शोभमान् विद्रुम अर्थात् प्रवाल सदृश रक्तवर्ण अधर का हास्य ही सुरञ्जित चन्द्रिका है, उन श्रीगौराङ्गदेव निजाङ्ग च्छटा से नियत दिग्बधू के वदन मण्डल को सिक्त करते रहते हैं ॥११४॥

श्रीकृष्णचैतन्य चन्द्र के चरणासवलम्पट अर्थात् चरणपद्म मधु मत्त भक्तगण स्नानयात्रा दर्शनार्थ निरन्तर उत्सुकचित्त हुये थे ।११५।

एकादश्यां च ददृशुर्विवाहोत्सवमुत्सुकाः ।
ततश्च पूर्णिमायां ते स्नानयात्राञ्च पावनीम् ॥११६॥
तत्र नीलगिरौ रम्ये सौधाट्टालकगोपुरे ।
पुरे महितसौन्दर्ये रमणीये सुखावहे ।
शुभ्रावभ्रं लिहसश्रीकप्रासादवति कश्चन ।
स्नानमञ्चः सञ्चरति सुधाभिररनुञ्जितः ॥११७॥
ततः पूर्वेद्युरस्ताद्रि द्युमणौ याति सुन्दरम् ।
तं मञ्चं मण्डितं कर्त्तुमारेभे तत्परो जनः ॥११८॥
तथैव तत्र कलया हीनः पूर्णवदुद्गतः ।
रराज रजनीकान्तः कान्तयंस्तत् पुरं महत् ॥११९॥

भक्तगण परम उत्सुक होकर एकादशी में विवाहोत्सव एवं पूर्णिमा में पवित्र कारिणी स्नानयात्रा का दर्शन किये थे ।११६॥

जिसका गोपुर अर्थात् पुरद्वार में सौधसुधा अर्थात् चूर्णलिप्त अट्टालिका शोभित है, जिसका सौन्दर्य अतीव सुदृश्य है, एवं जो शुभ्रवर्ण अभ्रंलिह है, अर्थात् मेघ के समान शोभायुक्त है, जिसका प्रासाद रमणीय नीलगिरि के उपरिस्थत है, उस सुरम्य एवं सुखावह पुर के मध्य में एक आश्चर्य स्नानमञ्च सुखानुरञ्जित होकर सञ्चरित है, प्रतीत होता है कि—मानों स्नानमञ्च अचल होकर भी सचल हो गया है ॥११७॥

पूर्वदिन सूर्यदेव अस्तगत होने पर सेवा परायण जनगण सुशोभित मञ्च को अलङ्कृत करना प्रारम्भ किये थे ॥११८॥

कलाहीन अथात् चतुर्दशी के चन्द्र के समान पूर्णवत् उदित मञ्च महत्पुर को सुदृश्य कर शोभित हुआ ॥११९॥

स्नानमञ्चमपि श्रीमान् सुधांशुः सुधयान्वितः ।
करौ संमार्जयामास सेवापर इव प्रभोः ॥१२०॥
जालेन महता राजत्क्षुद्रघण्टासुघर्घरैः ।
सतोरणेन दीव्येन पुष्पमाल्यैरनेकधा ॥१२१॥
मण्डिते स्नाननिलये तच्छोभानां समुद्गमे ।
अभूत् क इव निर्वाच्यो जगज्जनमनोरमः ॥१२२॥
ततो गौराङ्गचन्द्रस्याज्ञापनेन महाशयाः ।
स्नानसंदर्शनोत्कण्ठाः प्राकारोपरि सुस्थिराः ॥१२३॥
विरेजुरन्तरीक्षस्था देवा इव हरेः पुरः ।
श्रीगौराङ्गकरालिप्तचन्दनै राजितोरसः ॥१२४॥
यामिन्याश्चरमे काले आगते दयितादयः ।
सन्नाहपट्टं विमलं श्रीमदङ्गे न्ययोजयन् ॥१२५॥

सुधायुक्त श्रीमान् सुधांशु शशधर भी मानों प्रभु सेवापरायण होकर स्वीय कररूप किरण द्वारा स्नानमञ्च को सम्मार्जित करने लगे थे ॥१२०॥

सुवृहत् जाल, शोभित क्षुद्र घण्टिका की सुश्राव्य मर्मर ध्वनि एवं पुष्पमाल्य से सुसज्जित स्नान मण्डप जगन्मनोहारी अनिर्वचनीय विविध वस्तु की शोभा से समुल्लसित था ॥१२१-१२२॥

जिनके वक्षःस्थल श्रीगौरचन्द्र कर द्वारा आलिप्त चन्दन से शोभित है, उन सब महात्मा भक्तवृन्द तदीय आज्ञा से स्नानदर्शनार्थ उत्कण्ठित होकर प्राचीर के उपरिभाग में सुस्थिर भाव से इन्द्र के सम्मुख में आकाशस्थ देवगण के समान गौरचन्द्र के सम्मुख में विराजित हुये थे ॥१२३-१२४॥

यामिनी का चरमकाल अर्थात् अरुणोदयकाल उपस्थित होने

ततः पूर्वं हलधरो विजयोद्यममावहन् ।
सिंहासनादवतरन् बभौ क कोटीन्दुवद्विभुः ॥१२६॥
ततो भगवती देवी सुभद्राथ जगत्पतिः ।
जगन्नाथोऽप्यवतरन् विचित्रां श्रियमाययौ ॥१२७॥
ततो गौरसुधारश्मिः पुरतः पुरतो व्रजन् ।
ददर्श वर्त्मविजयं क्रमशस्तं त्रयस्य च ॥१२८॥
पादन्यासैर्दलन् भूमिं कशिपोः कशिपूत्तमम् ।
व्रजन् बभौ जगन्नाथो यथा भाद्भान्तरं शशी ॥१२९॥
तं सोपानपरस्पराभिरमलं स्वच्छद्युतिं मण्डपं
चञ्चद्वीचिपरस्पराप्रविलसत्क्षीराब्धिशोभामुषम् ।

पर दयितादि अर्थात् तन्नामक सेवकवृन्द श्रीअङ्ग में विमल पट्ट अर्थात् पट्टडोरी संयोजित किये थे ॥१२५॥

प्रथमतः हलधर, विजयोद्यम कर अर्थात् यात्रा का उद्योग कर सिंहासन से अवतीर्ण होकर कोटि-कोटि चन्द्र के समान शोभित हुये थे ॥२६॥

भगवती सुभद्रादेवी एवं पश्चात् श्रीजगन्नाथदेव अवतीर्ण होकर विचित्र शोभा प्राप्त हुये थे ॥१२७॥

गौरचन्द्र प्रथम गमन कर क्रमशः जगन्नाथ, बलभद्र, सुभद्रा का रथ विजय दर्शन करने लगे थे ॥१२८॥

जिस प्रकार शशधर एक नक्षत्र से अपर नक्षत्र में गमन करते हैं, उस प्रकार श्रीजगन्नाथदेव भी पादविन्यास से भूमि विदलित करतः कशिपु से कशिपूत्तम में गमन कर शोभा विस्तार करने लगे थे ॥१२९॥

वहमान तरङ्गमाला से शोभमान क्षीर सागर के समान जिसमें सोपान परम्परा में सुनिर्मल स्वच्छकान्ति बिराजित है,

घण्टाघर्घरनादलक्षितजयध्वानैश्च जालोच्चयैः
सम्यग् भूषितमारुरोह भगवान् नीलाद्रिचूड़ामणिः ।१३०।

श्रीचैतन्यमहाप्रभुश्च पुरतो भक्तैर्जनैरावृतः
शश्वल्लोचनपङ्कजद्वयगलद्धारां वहन् वक्षसि ।
धाराभिर्विलसन्नसावपि जगन्नाथः स्वयं स्नापितो
रेजेऽन्योन्यसमानविभ्रमसमालोकेन हर्षाकुलः ॥१३१॥

उच्चैरुच्चवदुल्लसज्जयजयस्वानैः समानोत्थितैः
पुष्पस्तोमसमानवृष्टिभिरपि श्रीमान् महानुत्सवः ।
आसीत् सर्वजनस्य लोचनयुगानन्दामृतायास्फुटं
ब्रह्माद्यैरपि दुर्लभो सितगिरिश्रीमन्मणेः साम्प्रतम् ।१३२।

जिसमें घण्टा का घर्घर नाद से जयध्वनि लक्षित हो रही है, एवं जलोच्चय है, अर्थात् समुन्नत जाल से सम्यक् निबद्ध है, भगवान् नीलाचल चूडामणि जगन्नाथदेव उक्त प्रचुरतर स्नानमण्डप में आरोहण किये थे ॥१३०॥

श्रीचैतन्य महाप्रभु—अग्रभाग में भक्तजन समावृत होकर अविच्छिन्न लोचन कमल युगल से विचलित जलधारा को वक्षःस्थल में धारण करते रहते हैं, एवं जगन्नाथदेव भी स्वयं जलधारा से स्नापित हो रहे हैं, सुतरां मानों परस्पर—परस्पर की समान शोभा सन्दर्शन से हर्षाकुल होकर विराजित थे ॥१३१॥

उच्चरव से समुद्गत एवं उल्लासयुक्त एवं समान अर्थात् समकाल में उच्चारित जय-जय ध्वनि तथा पुष्पराशि का समभाव से वर्षण के द्वारा सञ्जात, सुतरां ब्रह्मादि देववृन्द का सुदुर्लभ नीलाचल मणि श्रीजगन्नाथदेव का श्रीमान् महोत्सव अर्थात् स्नानयात्रा महोत्सव

स्नानाम्बुधाराप्लुत एष नील-
गिरीश्वरो गौरसुधाकरस्य ।
विच्छेदभावेन रुदन् विरेजे-
च्चिराय गुप्तो भवितेति देवः ॥२३३॥

एवं स्नानमहोत्सवामृतरसस्निग्धोरुवक्षःस्थलः
श्रीनीलाचलमौलिरम्यतिलकः स्थित्वा क्षणं सक्षणः ।
आरेभे पुनरप्यसौ कशिपुभिर्गच्छन् शुभं दक्षिणा
वर्त्तं सेवकसञ्चयैर्वृतभुजस्तम्भद्वयः श्रीयुतः ॥१३४॥

कूर्मः सीदति शेष एष चलितः सर्वैः फणामण्डलैः
क्षौणी क्षुभ्यति भूभृतो विदलिता ब्रह्माण्डमुत्खण्डितम् ।

स्पष्टरूप से सब के लोचन युगल का आनन्दामृत का हेतु हुआ था, अर्थात् उस प्रकार महोत्सव सन्दर्शन से सब के लोचन युगल परितृप्त हुये थे ॥१३२॥

नीलाचलपति श्रीजगन्नादेव स्नानाम्बुधारा से आप्लुत होकर "श्रीगौराङ्गदेव दीर्घकाल के निमित्त गुप्त होंगे" एतादृश श्रीगौरचन्द्र का विच्छेदभाव से ही मानों रोदन कर विराजित थे ॥१३३॥

स्नानरूप महोत्सव रस से जिनके ऊरु वक्षःस्थल सुस्निग्ध हैं, नीलाचल मस्तक का रमणीय तिलक स्वरूप श्रीमान् जगन्नाथदेव कियत्काल उत्सव में अवस्थान कर पुनर्बार कशिपु अर्थात् तुलिका द्वारा सेवकगण कर्त्तृक भुजावृत होकर मनोहर भङ्गी से दक्षिणावर्त्त से गमन करने लगे थे ॥१३४॥

विजयशील नीलाद्रि चूड़ामणि मुरवैरी श्रीजगन्नाथदेव के प्रस्थान समय में गमनवेग से प्रतीत होता था जैसे कूर्मदेव अवसन्न हैं, अनन्त

मर्यादामपि सागरोप्यतिगतो दुद्राव भास्त्रानसौ
प्रस्थाने मुरवैरिणो विजयिनो नीलाद्रिचूड़ामणेः ॥१३५॥



इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये
चतुर्दशः सर्गः ।



देव फणामण्डल समूह में प्रचलित हैं, मेदेनीमण्डल क्षुब्ध है, ब्रह्माण्ड उत्खण्डित है, समुद्र स्वीय मर्यादा को उलङ्घन कर उच्छलित है, एवं सूर्यमण्डल द्रुतगति से धावमान होने लगा है ॥२३५॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये
चतुर्दशः सर्गः ।



पञ्चदशः सर्गः

असितगिरिपतिस्ततोऽयमन्तः-
पुरपरिचारिकया श्रिया समेतः ।
अनवसरमुपेत्य गूढ़वेशो-
वसति जनस्य विलोचनातिदूरः ॥१॥

असितगिरिनिवासिभक्तलोकान-
तिशयितार्त्तिपरान् विधातुकामः ।
स निभृतमथवा श्रिया विहर्त्तुं-
रहसि निलीय रराज देव एषः ॥२॥

अथ तदनवलोकनातिदुःख-
क्षुभिततमानि मनांसि बिभ्रतस्ते ।
असितगिरिनिवासिनो महान्तो
भृशमतपन् प्रभुदर्शनेन हीनाः ॥३॥

अनन्तर नीलाचलपति जगन्नाथ लक्ष्मीयुक्त होकर अन्तःपुर परिचारिका के द्वारा अनवसर प्राप्त कर प्रच्छन्नवेश से जन समागम छोड़कर जननयन अगोचर में अवस्थित हुये ॥१॥ इस सर्ग में १०४ पर्यन्त पुष्पिताग्राच्छन्द है। लक्षण—अयुजि नयुग चेतको यकारो युजिर नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।

नीलाचलवासी भक्तवृन्द को अतिशय दुःखित करने के निमित्त अथवा निर्जन विलास वासना से ही जगन्नाथदेव निर्जन में गुप्तरूप से विराजित हुये थे ॥२॥

अनन्तर नीलाचलवासी महद् व्यक्तिगण श्रीप्रभु के दर्शन विहीन होकर दुःख से क्षुभित चित्त धारण करतः अतिशय सन्तप्त हुये थे ॥३॥

प्रभुरपि स शचीसुतोऽथ दुःखी-
भृशमभवद्‌विकलो न तं विलोक्य ।
प्रकटयति च तच्छलेन वृन्दा-
वनरमणीजनविप्रयोगदुःखम् ॥४॥

निरवधि हृदयस्थितानि वृन्दा-
वनरमणीविरहस्य दुःखितानि ।
अनुभवति स तच्छलेन लब्धा-
वसरमुदेति हि चेतसो विकारः ॥५॥

निरवधिगलदश्रुणोऽवतारै
रुरसि सुसंभृतहार विभ्रमाढ्यः ।
कृशिमभिरवशिष्टशिष्टनामा-
चिरविरहाद्‌विषसाद गौरचन्द्रः ॥६॥

विकिरति बहुदीर्घमुष्णमुच्चैः
श्वसितसमीरणमम्बुलोचनाभ्याम् ।

प्रभुवर शचीनन्दन भी जगन्नाथदेव को न देखकर अतिशय दुःखी एवं विकल हुये थे, एवं छल से वृन्दावनस्थ रमणी जन वियोग दुःख को प्रकट किये थे ॥४॥

निरवधि हृदयस्थित वृन्दावन रमणीवृन्द के विरह दुःख समूह को छल से अनुभव करने लगे थे, कारण—अवसर प्राप्त होने से ही चित्तविकार उपस्थित होता है ॥५॥

जो निरवधि विगलित अश्रुधारा से वक्षःस्थल में परिहित हार की शोभा से शोभित हैं, एवं अत्यन्त कृशता से जिनका विशिष्ट नाम मात्र ही अवशिष्ट है, एतादृश अवस्था में गौरचन्द्र चिर-विरह अतिशय विषण्ण हुये थे ॥६॥

सदरुणकमलद्वयारुणाभ्यां
कृशतनुरन्वहमेवमेव भूतः ॥७॥

असितगिरिपतेरदर्शनेन-
द्विगुणितदुःखदवानलः कृपाब्धिः ।
कियदिव स जगाम तत्र गोपी-
पतिविजयं परिलोच्य चित्तधैर्यम् ॥८॥

सुललितमुरलीकरः स दोला-
मति मधुरामधिरुह्य राजमानः ।
निरवधि वरवारनागरीणां
नटनकलाकुतुकी त्रिसन्ध्यमेव ॥९॥

विलसति पटहप्रकृष्टभेरी-
मधुरमृदङ्गविभङ्गरम्यगीतैः
निरवधि सुमनःसमूहवृष्टचा-
गुरुधवलीकृतवेश्ममध्यभूमौ ॥१०॥ (युग्मकम्)

इस प्रकार प्रतिदिन ही गौरचन्द्र अतिशय कृश होकर प्रशस्त अरुणवर्ण कमलयुगल के समान लोचनद्वय द्वारा अतीव उष्णजल एवं सुदीर्घ निश्वास परित्याग करने लगे थे ॥७॥

नीलाचलपति का अदर्शन से जिनका दुःखदावानल द्विगुणतर हुआ, उन कृपासागर गौरचन्द्र वहाँपर गोपीपति श्रीकृष्ण की विजय पर्यलोचना करतः किञ्चिन्मात्र सुस्थचित्त हुये थे ॥८॥

सुमधुर दोलारोहण पूर्वक त्रिसन्ध्या उत्कृष्ट वाराङ्गनावृन्द के नृत्य कौशल से कौतूहलाक्रान्त होकर जो निरवधि शोभित हैं, वह सुललित मुरलीकर श्रीकृष्ण, पटह, भेरी, मधुर मृदङ्ग विभङ्गी द्वारा रमणीय गान के सहित निरवधि पुष्पवृष्टि के द्वारा गुरुतर धवलीकृत

इति विरह विषण्णचित्तवृत्ति-
र्निजजनवीक्षणकिञ्चिदात्तधैर्यः ।
निरवधि विरुदन् विमुक्तकण्ठं
कति दिवसानि निनाय गौरचन्द्रः ॥११॥

अथ निजचरणाम्बुजैकभक्तैः-
सह सतु गौरशशी समुद्यतोऽभूत् ।
रचयितुमभिमार्जनां समन्तात्
प्रथितवतो भवनस्य गुण्डिचेति ॥१२॥

अथ सकलजनैश्चकार पूर्वे-
ऽहनि शचितनुजो विधाय युक्तिम् ।
झटिति रुचिरमार्जनीसमूह-
मुदितमना भवनस्य मार्जनार्थम् ॥१३॥

अथ रजनीविरामकालपूर्वं-
रभसवशादुदियाय तल्पमध्यात् ।

गृहाभ्यन्तर में विलसित हैं ॥९-१०॥ (युग्मकं)

विरह विषण्ण गौरहरि निजजन को देखकर किञ्चिन्मात्र धैर्यावलम्बन करतः नियत विमुक्त कण्ठ से रोदन करते-करते कतिपय दिवस अतिवाहित किये थे ॥११॥

गौरहरि स्वीय चरणपद्म के एकान्त अनुरक्त भक्तवृन्द के सहित "गुण्डिचा" नाम से प्रसिद्ध भवन की सम्यक्‌रूप से मार्जना करने के निमित्त उद्यत हुये थे ॥१२॥

शचीनन्दन गौरहरि—पूर्वदिन जनगण के सहित युक्ति कर हृष्टचित्त से गृह मार्जन के निमित्त शीघ्र सुदृश्य मार्जनी समूह प्रस्तुत किये थे ॥१३॥

विमलसलिलसञ्चयैर्विधातुं-
स्नपनमथो भगवान् समुद्यतोऽभूत् ॥१४॥

विमलसुरभीशीतलवारिवृन्दैः
स्नपनमथैष विधाय चेलमन्यत् ।
सदरुणमभजत् यथासुमेरु-
र्निविड़मुपाश्लिषदुत्सुकेन सन्ध्याम् ॥१५॥

सुरुचिरकटिसूत्रकेण वद्ध्वा
वसनमतीव दृढं महाकृपाब्धिः ।
मलयरुहविशेषकं विधाय-
श्रियमतिनिर्भरसुन्दरीमवाप ॥१६॥

अथ वहिरुपगत्य सर्वलोका-
नरुणकटाक्षतरङ्गितेन दृष्ट्वा ।

भगवान् गौरचन्द्र—रजनी प्रभात होने के पहले अति सत्वर शय्या से गात्रोत्थान करतः सुनिर्मल जल से स्नानक्रिया सम्पादनार्थं उद्यत हुये थे ॥१४॥

दिवसावसान होने से सुमेरु पर्वत जिस प्रकार सन्ध्या को निविड़ भाव से आलिङ्गन करता है, उस प्रकार गौरचन्द्र विमल एवं सुस्निग्ध जलराशि से स्नान कर उत्सुक चित्त से अपर एक अरुण वसन परिधान किये थे ॥१५॥

महाकृपाब्धि गौरहरि—सुदृश्य कटिसूत्र के द्वारा वसन को सुदृढ़ भाव से आबद्ध कर मलयज चन्दन विशेषक अर्थात् तिलक विधान कर परम शोभित हुये थे ॥१६॥

गौरचन्द्र वहिर्गत होकर अरुणवर्ण कटाक्ष के द्वारा सकल को

निजपुर उपनीय मार्जनीनां
शतमददात् क्रमतः पृथक् पृथक् सः ॥१७॥

प्रभुचरणपयोजभक्तवर्गः-
स च सुखभूरुमञ्जरीमिवैताम् ।
प्रभुकरकमलादवाप्य चार्वी
सपदि रहोतिमार्जनीं ननन्द ॥१८॥

अथ मदकरिराजराजिगामी
कनकमहीध्र इवातिजङ्गमोऽसौ ।
परमरभसलोलचित्त खेल-
स्त्वरितमधावत माधुरीधुरीणः ॥१९॥

चिरसमयनिरुद्धशीघ्रमुक्तः-
प्रमदकरीव निरङ्कुशोऽभिधावन् ।

अवलोकन कर एकशत मार्जनी निज सम्मुख में स्थापन कर पृथक् पृथक् रूप से प्रत्येक को प्रदान किये थे ॥१७॥

प्रभु पादपद्म के भक्तवृन्द आनन्द महीरुह की मञ्जरी स्वरूप मनोज्ञ मार्जनी को श्रीप्रभु के करकमल से ग्रहण कर निर्जन में अतीव आनन्दित हुये थे ॥१८॥

जिनका गमन मदमत्त करिराजराजि अर्थात् उत्कृष्ट गजयूथ के सदृश है, जो माधुर्यशाली के अग्रगण्य हैं, कनकाचल सदृश हैं, उन गौरचन्द्र परम कौतुकोल्लसित चित्त होकर क्रीड़ा विस्तार कर शीघ्र धावित हुये थे ॥१९॥

दीर्घकाल अवरुद्ध पश्चात् शीघ्रमुक्त मदमत्त करिवर के समान निरङ्कुश अर्थात् शासन विहीन होकर गौरचन्द्र धावमान होकर

पदकमलविहारभूरिभारै-
रवनितलं तरलीचकार शश्वत् ॥२०॥

द्रुतगतिरथ गुण्डिचालयस्य
प्रभुवरगम्यसमीपमुत्कचित्तः ।
सुखजलधिमिवाविशत् पुरं-
तच्चिरसमयेन तु ते समीपमीयुः ॥२१

प्रथममयमतीवहर्षपूर्णः-
पुरमभिविश्य निजैर्जनैस्तदैव ।
इत इत उपगृह्य मार्जनीं तां
सपदि ममार्ज पृथक् पृथक् क्रमेण ॥२२॥

अथ युगपदयं प्रमार्ज्जनोत्को-
जननिचयः प्रभुकीर्त्तनातिमुग्धः ।
अनुगृहमनुभित्ति चान्वलिन्दं-
त्वनुवड़भि प्रममार्ज मार्जनीभिः ॥२३॥

पदकमल सञ्चालन के द्वारा निरन्तर भूतल को चञ्चल करने लगे थे ॥२०॥

गौरचन्द्र-समुत्सुक चित्त होकर द्रुतगति से गुण्डिचालय के समीप में उपस्थित होकर सुख-समुद्र के समान पुरमध्य में प्रवेश किये थे, किन्तु भक्तगण पश्चात् अति विलम्ब में उनके समवर्त्ती हुये थे ॥२१॥

प्रथमतः गौरचन्द्र—अतीव हर्षपूर्ण होकर उस समय निज जनगण के सहित पुनमध्य में प्रविष्ट होकर मार्जनी ग्रहण पूर्वक पृथक्-पृथक रूप से मार्जन करना प्रारम्भ किये थे ॥२२॥

भक्तवृन्द—मार्जनार्थ उत्सुक एवं श्रीमन्महाप्रभु के सङ्कीर्त्तन में अत्यन्त मुग्ध होकर प्रत्येक गृह भित्ति एवं अलिन्द (वहिर्द्वार के

प्रभुवदननिरीक्षणेन मुग्धा–
रहसि च केचन मार्जनीं गृहीत्वा ।
नयनजलभरेण धौतदेहा–
श्चिरमिव विस्मृतमार्जनक्रियाः स्युः ॥२४॥

सुपुलकमपि केचिदीशसूक्ति–
श्रवणपरेण हृदा विनिद्रिताङ्गाः ।
गृहमपि च तथैव मार्जयन्तः
कृतमपि कर्म नचाविदन् विमुग्धाः ॥२५॥

प्रभुरपि परमप्रहर्षमुग्ध–
स्त्वमित इतस्ततस्ततस्त्वम् ।
सुललितमिति मार्जयेति लोका–
नदिशदलं सुखितान्मुहुः प्रकुर्वन् ॥२६॥

प्रकोष्ट भाग) एवं वड़भी को सम्मार्जनी के द्वारा मार्जित करने लगे थे ॥२३॥

कतिपय भक्त प्रभु के वदन सन्दर्शन से मुग्ध होकर निर्जन में मार्जनी ग्रहण करके भी नयनजल से धौताङ्ग होकर अनेकक्षण मार्जन विस्मृत होकर अवस्थित थे ॥२४॥

कतिपय भक्त—पुलकिताङ्ग होकर प्रभु कर्त्तृक कथित मनोज्ञ श्रवण में निविष्ट होकर अलसाङ्ग से गृह मार्जन ही करने लगे थे, किन्तु मार्जन कितना हुआ, विमुग्ध होकर उसका अनुसन्धान शुन्य हुये थे ॥२५॥

प्रभुवर गौरचन्द्र भी महानन्द मुग्ध होकर "तुम यहाँ मार्जन करो, तुम यहाँ, तुम यहाँ मार्जन करो" इस प्रकार वाणी से भक्तवृन्द को सुखी कर पुनः-पुनः आदेश करने लगे थे ॥२६॥

प्रभुवचनविलासते यदेते–
विदधति कर्म ततस्ततो निकामम् ।
द्विगुणितमलभन्त सौख्यभारं–
न च परितृप्तिसमाप्तिराबभूव ॥२७॥

प्रभुरपि च विलम्बितेन यो यः
पुरत उपैति स तस्यतस्य पृष्ठे ।
प्रणयरसभरेण मार्जनीभि–
र्बहुतरगाढ़मतिक्रुधा जघान ॥२८॥

सतु जननिचयश्च मार्जनीनां
दृढ़तरघातरुजापि सौख्यमायात् ।
परिणतिरियमेव हार्द्दराशे–
र्यदलघु दुःखमपि प्रियं तनोति ॥२९॥

क्षणमपि भगवान् स्वयं विधत्ते
सुललितमार्जनमूर्जितप्रहर्षः ।

भक्तवृन्द—प्रभु के वचन विलास से मार्जन क्रिया को उत्तम रूप से सम्पन्न कर उस कार्य में द्विगुणतर सुख लाभ किये थे, किन्तु उक्त सुखातिशय लाभ विषय में परितृप्ति की समाप्ति नहीं हुई ॥२७॥

अनन्तर विलम्ब में आकर उपस्थित जनगण को गौरचन्द्र प्रणयानन्दभर उन सब के पृष्ठदेश में मार्जना द्वारा आघात करने लगे थे ॥२८॥

किन्तु उक्त समागत सज्जनवृन्द मार्जनी द्वारा सुदृढ़ आघात जनित पीड़ा को भी परम सुखकर माने थे, इसको प्रणयराशि की परिणति कही जाती है, जिसमें प्रचुरतर दुःख भी प्रिय विधान करता है ॥२९॥

क्षणमपि च विलोकतेऽन्यकर्म-
क्षणमपि च कारयति प्रियैर्निदेशैः ॥३०॥

सकलजनसमीपमेव गच्छ-
न्नतिशयहर्षभरं चकार तेषाम् ।
स्मितवचननिरीक्षणाभिमर्शैः
शमितसमस्तशुगोघदत्तहर्षैः ॥३१॥

स्वयमपि कतिभिर्जनैः स सिंहा-
सनमभितोऽभित एकदत्तचित्तः ।
परमसुखभरेण मार्जयित्वा-
सपदि च सेक्तुमथोद्यतो बभूव ॥३२॥

असकृदसकृदापतद्भिरेभि-
र्निरवधिवर्द्धितमार्जनीरजोभिः ।

भगवान् गौरहरि कुछ समय स्वयं महाहर्ष से मनोहर मार्जन क्रिया किये थे, एवं अन्य समय अपर कर्म भी किये थे, तथा प्रियजन को मधुर वाक्य द्वारा कार्य में प्रवृत्त करा रहे थे ॥३०॥

भगवान् गौरचन्द्र—भक्तवृन्द के निकट गमन करतः जिससे समस्त लोक शान्ति एवं आनन्द उत्पन्न हो, तादृश मधुर हास्य, कृपादृष्टि एवं अभिमर्श अर्थात् क्रोध द्वारा उन सब को आनन्दित किये थे ॥३१॥

अनन्तर स्वयं गौरचन्द्र—कतिपय जन के सहित एकचित्त होकर आनन्दभर से सिंहासन का उत्तमरूप से मार्जन कर शीघ्र जल सेचन प्रारम्भ किये थे ॥३२॥

बारम्बार समागत असीम वर्धित मार्जनीरजः अर्थात् मार्जनी धूलि के द्वारा सुवर्णाचल कान्ति श्रीशचीनन्दन आवृताङ्ग होकर

अभिवृतकनकाचलेन्द्रदेहः
क एव बभूव शचीसुतस्तदानीम् ॥३३॥
अपि निरवधि कृष्ण कृष्ण कृष्णे-
त्यनुपमधीरगभीरचारु जल्पन् ।
स्मितमधुरसुमेदुरास्यचन्द्रः
पुरपरिमार्जनमाततान नाथः ॥३४॥
अथ सकलजनैर्घटीघटाभि-
र्घटयितुमस्य पुरस्य धौतमुच्चैः ।
अतिशयदृढ़रज्जुसज्जिताभि-
र्जलहरणार्थमभावि तत्र कूपात् ॥३५॥
क्वचिदथ गृहीतरज्जुकुम्भाः
कटितटपरिनद्धतरोत्तरीयवस्त्राः ।
कतिचिदपि तदन्तिके सुसज्जाः
कति च तथैव तदन्तिकेऽथ तस्थुः ॥३६॥

मानों उस समय आकारान्तर धारण किये थे ॥३३॥

नाथ गौरहरि-निरवधि "कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण" शब्द पुनः-पुनः निरुपम धीर एवं परम गम्भीर स्वर से उच्चारण करतः ईषत् हास्य से मधुर एवं सुस्निग्ध वदन होकर गुण्डिचा मार्जन विस्तार करने लगे थे ॥३४॥

अनन्तर जन निकर गुण्डिचालय धौत करने के निमित्त एवं कूप से जलाहरण निमित्त घटी घटा अर्थात् क्षुद्र-क्षुद्र घट को अतिशय दृढ़ रज्जु द्वारा सज्जित करने लगे थे ॥३५॥

कतिपय भक्तगण—कटि तट में उत्तरीय वसन बन्धन करतः रज्जु एवं कुम्भ को ग्रहण किये थे, एवं कतिपय व्यक्ति उन सब के

अथ जननिचयः स कोऽपि रज्ज्वा
घटघटया हरतिस्म वारिपूरम् ।
अथ कथमभि कस्यचिच्च कोऽपि-
व्यदददथ क्रमतश्च कोऽपि निन्ये ॥३७॥

कतिचिदथ समुन्नयन्ति पूर्णान्-
कतिचिदधुश्च घटान्नयन्त्यपूर्णान् ।
परिणतिरुभयोरियं हि रम्या-
न खलु विपर्ययमेति हि स्वभावः ॥३८॥

सुखभरपरमौल्लसद्भिरेभि-
र्मुहुरितरेतररिक्तिपूर्त्तिभाजाम् ।
घटनविघटनैर्घटीघटानां-
घटमयकन्दुककेलिरन्वघाटि ॥३९॥

निकट में अवस्थित हुये थे ॥३६॥

पश्चात् कतिपय सज्जन रज्जु द्वारा घट समूह से जलाहरण करने लगे थे, कतिपय व्यक्ति—किसी के समीप में उपस्थित कर रहे थे, अपरजन-उनके निकट से अपर को प्रदान कर रहे थे ॥३७॥

अपर कतिपय व्यक्ति पूर्णघट आनयन कर रहे थे, कोई अपूर्णघट ला रहे थे, उभय का परिणाम ईदृश मधुर रमणीय कि किसी का स्वभाव में विपर्यय नहीं हुआ, अर्थात् उस समय किसी के प्रति किसी की जिगीषा अथवा मत्सरता नहीं हुई, "मैंने अधिक लाया, तुमने थोड़ा लाया" इस प्रकार व्यवहार नहीं हुआ ॥३८॥

सुखभर से परम उल्लसित भक्तगण मुहुर्मुहुः परस्पर को शून्य घट एवं पूर्ण घट का आदान प्रदान करने से मानों उस समय घटमय कन्दुक क्रीड़ा का ही संघटन हुआ ॥३९॥

इत इत इत आनयानयेति
ध्वनिरसकौ रसकौतुकात् समुत्थः ।
सपुलकमुदितोच्चहुँकृताढ्यो-
घटभरणस्वनचुम्बितो जगल्भे ॥४०॥

क्वचिदथ पयोघटानलिन्दे-
मुहुरकिरन् क्वचिच्च भित्तिवृन्दे ।
कतिचन बड़भौ कतिच्छदिःषु-
प्रभुवचनेन सुखैकमग्नचित्ताः ॥४१॥

त्वमितइत इतस्त्वमत्र च त्वं-
त्वमित इति प्रतिलोकमुक्तिमाध्व्या ।
प्रभुरपि परिशोधयाञ्चकार-
प्रतिभवनं सकलप्रदेशवृन्दम् ॥४२॥

कतिचिदथ जना घटान् सुपूर्णान्
प्रभुकरपद्मयुगे ददत्यभीक्ष्णम् ।

पुलकाङ्ग भक्तवृन्द "यहाँ लाओ, यहाँ लाओ" इस प्रकार पुनः-पुनः उच्चारित रसकौतुक समुत्थित शब्द, हुङ्कार युक्त घटपूरण "गर्-गर्" रूप अस्फुट शब्द के सहित मिलित हाकर मानों प्रगल्भ हो उठा था ॥४०॥

अनन्तर कतिपय भक्त—प्रभु के मधुर वाक्य सुख में मग्न चित्त होकर जलपूर्ण घटानयन करतः अलिन्द में एवं कोई तो गृह चूड़ा में निक्षेप करने लगे थे ॥४१॥

अतःपर "तुम यहाँ, यहाँ, तुम यहाँ पर, एवं तुम यहाँ" इस प्रकार प्रत्येक लोक की मधुर उक्ति के द्वारा गौरचन्द्र भी प्रति गृह एवं सकल प्रदेश को परिशुद्ध करवाये थे ॥४२॥

कतिचिदपि च तस्य पादभूमी
परिसरतः सिषिचुः पयःप्रपूरम् ॥४३॥

प्रभुरपि च दधाति तत्र पूर्णं-
घटमपरं विजहाति हृष्टचित्तः ।
अवसरमधि पूर्त्तिशून्यताभ्याम-
भवदुदाहरणं द्वयोर्द्वयं तत् ॥४४॥

पुलकपटलपूरिताखिलाङ्गाः
सुखभरतः पृथुवेपथूत्थभङ्गाः ।
प्रभुकरकमले घटप्रदानात्-
कतिचननिर्वृतिमेव तत्र नापुः ॥४५॥

कतिचन दयितस्य पादपद्म-
द्वयमभि निर्भरमुत्सुका जलानि ।

अनन्तर कतिपय भक्त—श्रीप्रभु के करकमल में वारम्बार जलपूर्ण घट समूह का अर्पण करते रहते थे, एवं कतिपय भक्त प्रभु पादपद्म के निकट परिसर भू-भाग में जल सेचन करने लगे थे ॥४३॥

महाप्रभु—हृष्टचित्त होकर वहांपर भक्तजन से पूर्ण घट ग्रहण कर शून्यघट प्रदान करते थे, इस प्रकार यथावसर पूर्णता एवं शून्यता द्वारा उभय का उदाहरण प्रस्तुत हुआ, अर्थात् कभी भक्त पूर्ण होते थे, एवं कभी प्रभु पूर्ण होते थे ॥४४॥

कुछ भक्त पुलक पटल से पुरिताङ्ग एवं अतिहर्षहेतु महाकम्प से भङ्गाङ्ग होकर प्रभु के करकमल में घट प्रदान करतः किसी प्रकार सुस्थता प्राप्त करने में अक्षम हुये थे, अर्थात् महानन्द से बारम्बार अर्पण करने लगे थे ॥४५॥

कतिपय भक्त—प्रियतम गौरचन्द्र के पादपद्म को लक्ष्य कर

रहसि परिकिरन्ति केवलं स्म
क्वच गृहधौतविधिस्थितस्तदैषाम् ॥४६॥
अवकिरति मुहुः स्वलोकवृन्दे
पदसविधे शतधा घटैर्जलानि ।
प्रभुरयमथ जानुदघ्नतिम्यत्-
सदरुणचेलवरो रराज भूयः ॥४७॥
श्रमजलकणिकाविकाशभास्व
द्वदनविधुस्तिमितारुणांशुकान्तः ।
इत इत इत उक्षिताम्बुसार्द्रः-
स्नपनकलोत्थितवत् प्रभु रराज ॥४८॥
स्वयमपि निजभक्तपाणिपद्मा-
द्घटमपि गृह्य जलेन पूर्णपूर्णम् ।

निर्जन में महानन्द से जलसेचन कर रहे थे, गौरचन्द्र मानों भक्तगण के मध्य में गृहक्षालन विषय में साक्षात् विधि हो गये थे, अर्थात् मूर्तिमद् व्यवस्था हो गये थे ॥४६॥

निज भक्तवृन्द पादपद्म समीप में घट के द्वारा शत बार जल सेचन करने पर गौरचन्द्र का जानु परिमित प्रशस्त अरुण वसन सिक्त हो गया, उससे आप अतिशय शोभित हुये थे ॥४७॥

श्रमजल कणिका का विकाश से जिनका मुखचन्द्र विकाशमान हैं, एवं जो इतस्ततः प्रक्षिप्त जल धारा से आर्द्रप्राय हैं, वह प्रभु श्रीगौरहरि मानों स्नानकला अर्थात् सन्तरणादि क्रिया से उत्थित होकर बिराजमान हुये थे ॥४८॥

गौरचन्द्र—निज भक्त के करकमल से समधिक जलपूर्ण घट ग्रहण कर बारम्बार निक्षेप करतः प्रघन अर्थात् बहिर्द्वार प्रकोष्ठ को

सरभसमवकीर्य चावकीर्य-
प्रघणमपूरि घनं घनो यथा सः ॥४६॥

क्वचन जलकणाभिचुम्बिताङ्गः
क्वचन च कर्द्दमखेलया विमुग्धः ।
अभिनवसरसीविलोड़नोत्थः-
सतु जलकुञ्जरवत्तदा रराज ॥५०॥

सलिलपटलसेकतोऽभिताम्यत्
सदरुणचेललसन्नितम्वशोभः ।
दिनकरभयमग्नसान्ध्यमेघा-
वृत इव मेरुरयं तदा रराज ॥५१॥

कति कति न घटास्तदा बभञ्जुः
कति कति नो पुनरराययुश्च तत्र ।

अतिशय पूर्ण किये थे, सुतरां उक्तपूर्ण करण, मेघ के समान हुआ, अर्थात् मेघ वर्षण से जिस प्रकार होता है, उस प्रकार हुआ ॥४६॥

गौरहरि—किसी स्थान में जलकणिका से अभिषिक्ताङ्ग एवं कहीं पर कर्द्दम क्रीड़ा में विमुग्ध होकर मानों अभिनव सरोवर की विलोड़न क्रिया से समुत्थित होकर जलहस्ति के समान उस समय विराजमान हुये थे ॥५०॥

जलराशि का समधिक अभिसेचन हेतु उत्कृष्ट अरुण वसन सिक्त होने पर जिनकी नितम्ब शोभा उल्लसित हो रही थी, एतादृश गौरचन्द्र मानों सूर्यभयाभिभूत निविड़ मेघमाला से आवृत सुमेरु पर्वत के समान शोभित हुये थे ॥५१॥

उस समय कितने घट टूट गये थे ? कितने घट नहीं आये थे,

कति कति न जलानि चाहृतानी
त इत इतः कतिवाभवन्न नद्यः ॥५२॥

निरवधि कलसैश्च लोचनैश्च
प्रसृमरहर्षभरैः किरन्त आपः ।
बभुरतिरहसान्तरान्तरा च-
स्फुटजयनादजुषो घना इवैते ॥५३॥

निरवधि सलिलाभिषेकतिम्यत्-
करनिकरा वरवारणा इवैते ।
उपपुरि विबभुः प्रभोः समीपे
न सुखचयस्तु ममौ जगत्यमीषाम् ॥५४॥

अथ सकलपुरं विशोध्य सिंहा-
सनमपि निर्भरधौतमाविधाय ।
वहिरगमदयं स चत्वरान्तः-
प्रमुरसकौ रसकौतुकी सदैव ॥५५॥

कितना जलाहरण हुआ ? एवं इतस्ततः कितने नद समूह की उत्पत्ति हुई ? ॥५२॥

समस्त भक्तगण—कलस एवं हर्षपूर्ण लोचन के द्वारा जल वर्षण करतः अर्थात् नेत्र से आनन्दाश्रु के सहित जल सेचन करतः अर्थात् समुद्र के मध्य में जयध्वनि की घोषणा करके शोभित हुये थे ॥५३॥

अनन्तर निरवधि सलिलाभिषेक के द्वारा क्लिन्नबाहु होकर पुरी के समीप में प्रभु समक्ष में शोभित हुये थे, किन्तु भक्तवृन्द के सुख समूह का परिमाण नहीं हो सका ॥५४॥

अनन्तर रसकौतुकी गौरसुन्दर समस्त गुण्डिचा गृह विशोधन

अथ सुविहितपङ्क्तिषू पविश्य
प्रभुरधि चत्वरमेकतः क्रमेण ।
अतिशयमृदुलाङ्गुलीभिरङ्गैः–
स इत इतस्तृणशर्करा निरास ॥५६॥

अधिधरणि निपात्य भूरिलीलो
ललितवहिर्वसनं त्वरायुतः सः ।
विहीतपणफलं बलाञ्जिगीषु–
र्नकति तृणाणि शर्कराश्च जह्ने ॥५७॥

क्रमत इत इतः समस्तलोका–
हृततृणलोष्ट्रचयं विलोक्य नाथः ।
इयदियदियदेव यद्भवद्भि–
स्तदिह पराजितमित्यखेलयत् सः ॥५८॥

कर एवं सिंहासन को उत्तम रूप से धौत कर वहिःस्थित अङ्गन में आ गये थे ॥५५॥

अनन्तर गौरहरि अङ्गन के मध्य में सुविहित पङ्क्ति अर्थात् श्रेणीभूत भक्तवृन्द के मध्य में आविष्ट होकर अति मृदुल द्वारा क्रमशः तृण एवं शर्करा समूह निक्षेप करने लगे ॥५६॥

प्रचुर लीलाशाली गौरचन्द्र त्वरायुक्त होकर भी धरणी तल में मनोहर वहिर्वास पातित कर पण कौशल अर्थात् 'बाजी लगाकर' जिगीषु होकर असंख्य तृण शर्करा को सबल से दूर में निक्षेप किये थे ॥५७॥

अनन्तर गौरचन्द्र—क्रमशः इतस्ततः समस्त जन के द्वारा आहृत तृण एवं लोष्ट्रचय को अवलोकन करतः इस परिमाण, इस, परिमाण, इस परिमाण का आहरण जब आप सबने किया तब आप

इति सकलगृहस्य चत्वरान्तः
प्रतिपुरगोपुररथ्यमसौ विशोध्य ।
अतिरभसभरालसान्तरात्मा–
स निजजनैर्निजकीर्त्तनं ततान ॥५६॥

सहजपरमसुस्वरास्त एते–
प्रभुपुरतः प्रभुनर्त्तने तथैते ।
यदथ जगुरुदार चारुधीरं–
तदिह जनः परिवर्णयेदहो कः ॥६०॥

अतिशय ललितातिदीर्घदीर्घ–
स्वरपरिपूरितकिन्नरौघकर्णाः ।
पुलकविकलिताः सुखैकपूर्णाः–
प्रभुनटने जगुरेत एकचित्ताः ॥६१॥

सब का पराजय हो गया है, यह कहकर क्रीड़ा करने लगे थे ॥५८॥

इस रीति से श्रीगौरहरि सकल गृह के अङ्गन प्रान्त एवं पुर के गोपुर वहिर्द्वार, एवं प्रत्येक पथ का संशोधन कर हृष्टान्तःकरण से अलसान्वित होकर निज जनगण के सहित निज नाम सङ्कीर्त्तन विस्तार करने लगे थे ॥५६॥

प्रभु-नृत्य करने पर स्वभावतः ही महासुस्वर भक्तगण श्रीप्रभु के सम्मुख में नृत्यारम्भ किये थे एवं अति सुश्राव्य एवं सुधीर स्वर से जिस प्रकार गान करने लगे थे, अहो! उस गान का वर्णन इस भू-मण्डल में कौन व्यक्ति करने में सक्षम होगा ? ॥६०॥

अतिशय सुन्दर एवं सुदीर्घ स्वरपूरित किन्नरगण के समान जिनके कर्ण एवं जो सब एकमात्र सुखपूर्ण उन एकान्तचित्त भक्तगण पुलकाकुल कलेवर होकर श्रीप्रभु के नृत्यावसान में गान आरम्भ

अतिरभसभरेण जानुहृत्क्षे-
पणपरिजृम्भितदीर्घरोमहर्षः ।
निरवधिगलदश्रुवृन्दधौता-
खिलतनुरुल्लसितो ननर्त्त गौरः ॥६२॥

ललितकलगभीरहुङ्कृतीनां-
शतमतिहर्षभरेण चारु कुर्वन् ।
क्षणमपि च लघु क्षणञ्च शीघ्रं
क्षणमपि मन्थरमाभ्रमन्ननर्त्त ॥६३॥

क्षणमपि निजदेहनिर्विशेषं
जनमविरामरसेन नर्त्तयन् सः ।
करतलकलनादमाधुरीभिः-
प्रमुखरयन् ककुभो जगौ गभीरम् ॥६४॥

किये थे ॥६१॥

अत्यन्त हर्षभर से जिनके जानु एवं वक्षःस्थल विक्षिप्त होने से जिनके अङ्ग समूह में विपुल पुलकोद्गम हो रहा है, निरवधि विगलित अश्रुधारा से जिनके अङ्ग प्रत्यङ्ग विधौत हो रहे हैं, उन श्रीगौरसुन्दर उल्लसित्त होकर नृत्य करने लगे थे ॥६२॥

श्रीगौरहरि मनोहर अस्फुट अथच गभीर शत-शत हुङ्कार का प्रकाश सुललित रूप से करके कभी तो लघु, कभी अति शीघ्र एवं कभी मन्थर भाव से भ्रमण करतः नृत्य करने लगे थे ॥६३॥

गौरचन्द्र—कभी निज देह निर्विशेष अर्थात् निजाङ्ग सदृश भक्तजनगण को धारावाहिक आनन्द रस द्वारा नृत्य करवाकर करतलोत्थित सुमधुर नाद माधुरी से मिलित कर गभीर स्वर से गान करने लगे थे ॥६४॥

क्षणमपि परिपश्यति प्रहृष्टः
क्षणमपि गायति नृत्यति क्षणञ्च ।
श्रमजलनयनाश्रुघर्मपङ्क–
व्यतिकरलब्धरुचिर्बभौ स नाथः ॥६५॥

इति पुरपरिमार्जनावसाने–
नटनकलां च विधाय गौरचन्द्रः ।
अथ सरसि विहर्त्तुकाम एष
श्रमभरनिःसहदेहयष्टिरासीत् ॥६६॥

क्षणमथ मृदुशीतलस्थलान्तः
स्वजनगणेन परिश्रमापनुत्त्यै ।
सरभसमुपविश्य सत्कथाभि–
र्मधुरमुखोविललास गौरचन्द्रः ॥६७॥

जलविहरणवाञ्छया ततोऽसौ–
सह निजभक्तचयैः पुरः सरस्याम् ।

श्रमजल, नेत्रजल एवं घर्मपङ्क समूह के द्वारा गौरचन्द्र एतादृश शोभित हुये थे, जिससे प्रभु कभी प्रहृष्ट होकर अवलोकन करते थे, कभी गान करते थे एवं कभी तो नृत्य करते थे ॥६५॥

इस प्रकार गुण्डिचागृह मार्जन के अनन्तर गौरचन्द्र नृत्य विस्तार करतः तत्पश्चात् सरोवर में जलविहार करने की कामना करतः श्रमणातिशय से अतीव निःसहायाङ्ग हो गये थे ॥६६॥

अनन्तर गौरचन्द्र श्रमापनोदन जन्य स्वजनवृन्द के सहित क्षणकाल मृदु एवं शीतल स्थल में उपविष्ट होकर मधुर मुख से सद्कथा की आलोचना कर अतिशय शोभित हुये थे ॥६७॥

तदनन्तर गौरचन्द्र जलविहार हेतु भक्तवृन्द के सहित सर्वप्रथम

लघु लघु विचलन् श्रमालसाङ्गः-
सुखमतनोत् परिपश्यतां दृशोः सः ॥६८॥

सुचिरमथ विलासवारिखेला-
विधिमभिशीतलशीतलाङ्गयष्टिः ।
सह निजजनसञ्चयेन तीरं-
सरसमुपेत्य सुवाससी दधार ॥६९॥

तदनुच नरसिंहदेवमेत्य-
प्रमुदित एव ननाम गौरचन्द्रः ।
तदनु चलितुमुद्यतस्तथैव-
प्रतिपदमुल्लसिताङ्घ्रिपद्म आसीत् ॥७०॥

अथ सकल जगज्जनस्य नेत्रोत्-
सवकरमाननपद्ममीश्वरस्य ।
असितगिरिविशेषकस्य पक्षा-
न्तरितमदर्शि समं जनैश्च तेन ॥७१॥

सरोवर में जाकर परिश्रम से अलसाङ्ग हो गये थे, एवं सरोवर को देखकर नेत्रयुगल का आनन्द विस्तार करने लगे थे ॥६८॥

श्रीगौरहरि सुचिरकाल विलास करतः जलक्रीड़ा से शीतलाङ्ग होकर एवं निज भक्तवृन्द के सहित सानुराग से तीरभूमि में उपस्थित होकर सुन्दर वस्त्र युगल अर्थात् उत्तरीय एवं परिधेय वसन युगल धारण किये थे ॥६९॥

अनन्तर गौरचन्द्र नरसिंहदेव के निकट उपस्थित होकर प्रमुदितचित्त से प्रणाम किये थे एवं वहाँ से गमनोद्यत होकर प्रतिपद विन्यास से उल्लसित होने लगे थे ॥७०॥

अनन्तर श्रीगौरहरि ने समस्त जनगण नयनानन्दकर नीलाचल

चिरविरहकृतोपवासतृष्णा-
कुलिततमेन विलोचनेन नाथः ।
गतनिमिषमपि प्रलोच्य नासीत्
सपदि तदाननचन्द्रमात्रतृप्तिः ॥७२॥

अभिनवघनरागरम्यमूर्त्ती-
विगतनिमेसतृष्णलोचनाब्जौ ।
असितशिखररत्नगौरचन्द्रौ-
रहसि तदा सदृशौ बभूवतुः स्म ॥७३॥

अखिलजनमुखोद्गतैः समन्ता-
ज्जय जय देव जयेति रम्यशब्दैः ।
मुहुरुदयितहस्तवीचिपूरै-
रपर इवाजनि तत्र वारिराशिः ॥७४॥

तिलकायमान श्रीजगन्नाथदेव का दर्शन भक्तवृन्द के सहित एकपक्ष काल के पश्चात् किया ॥७१॥

श्रीगौरहरि—चिरविरह से कृतोपवास होकर अर्थात् स्वीय दर्शन क्रिया शून्य एवं तृष्णा कुलित लोचन से निर्निमेष होकर श्रीजगन्नाथदेव का दर्शन कर उनका मुखचन्द्र दर्शन से ही परितृप्त नहीं हुये ॥७२॥

असितगिरि शिखररत्न श्रीजगन्नाथदेव एवं गौरचन्द्र उभय ही उस समय निर्जन सदृश हो गये थे, कारण—उभय ही अभिनव घनराग अर्थात् निविड़ रक्तिमा से रमणीय मूर्त्ति एवं निमेष विहीन होने से उभय के ही सतृष्ण लोचनाब्ज हुये थे ॥७३॥

निखिल जनगण के मुखोद्गत सर्वतोभावेन "जय जय—जय देव" सुश्राव्य शब्द के द्वारा एवं पुनः-पुनः उत्तोलित हस्तरूप

सकलजनसमूहमेव जित्वा–
मुहुरतुलोच्छ्रितकाययष्टि शोभः ।
विमलदृशदिभोगमण्डपान्ते–
परिकलयन्नुपतस्थिवान् परेशम् ॥७५॥

नयनजलझरैः पदारविन्द–
द्वयनखचन्द्रमसः पवित्रयन् सः ।
न हि जगति दुरापमेतदन्यत्–
किमिति तदाभिसिषेच सोऽङ्घ्रिपद्मम् ॥७६॥

नयनयुगमुवाह शोणपद्म–
श्रियमति कुट्नलतां ततः शरीरम् ।
असितगिरिसुधांशुवक्त्रचन्द्रं–
रहसि विलोकयतोऽस्य निस्पृहस्य ॥७७॥

वीचिपुर अर्थात् तरङ्गमाला द्वारा उक्त स्थान अपर एक जलराशि समुद्रवत् हुआ था ॥७४॥

निरुपम एवं समुन्नत अङ्ग यष्टि द्वारा जिनकी समधिक शोभा हुई है, वह श्रीगौरचन्द्र—श्रीजगन्नाथदेव दर्शन कर भोग मण्डप के समीपस्थ सुविमल शिलाखण्ड में उपवेशन किये थे ॥७५॥

गौरचन्द्र—नयन निर्गलित जलधारा के द्वारा पादपद्म युगल के नखचन्द्र को पवित्र कर "जगन्मण्डल में इसको छोड़कर और कुछ भी दुर्ल्लभ नहीं है, अर्थात् यह पादपद्म ही सुदुर्ल्लभ है" यह मानकर ही क्या चरणारविन्द को अभिषिक्त करने लगे थे ? ॥७६॥

असितगिरि सुधांशु अर्थात् नीलाचलचन्द्र—जगन्नाथदेव के मुखचन्द्र को दर्शन निर्जन में करके स्पृहाशून्य गौरचन्द्र के लोचनयुगल रक्तपद्म के तुल्य हो गये थे, एवं शरीर कुट्नल अर्थात् मुकुल के सदृश

इति सतु जगदीश्वरोऽसिताद्रौ
मधुरतनुः दशपञ्चवासरान्ते ।
अवसरमवगम्य वासरैकं-
सह रमया रमणेच्छया निनाय ॥७८॥
अपरदिवस एष नीलचन्द्रो
द्विगुणितभोजनहृष्टपुष्टदेहः ।
परमरुचिमनोहरोऽभविष्य-
द्रथविजयोत्सवकौतुकी रराज ॥७९॥
अयमसितमहीध्रनीलरत्नं-
सकलरसास्वादितो महाविलासी ।
अनुकृतसकलावतारलीलः
सततमनुग्रहवान् स्वकीयलोके ॥८०॥
निजजनमभिसत्कृपाभिरार्द्रः
स्वयमनुवत्सरमेव गुण्डिचायाम् ।

हुआ था ॥७७॥

मधुरकान्ति जगदीश्वर जगन्नाथदेव इस रीति से नीलाचल में पञ्चदश दिवस व्यतीत करने के पश्चात् अवसर प्राप्त कर रमा के सहित एकदिवस अति वाहित किये थे ॥७८॥

श्रीनीलाचलचन्द्र—अपरदिन द्विगुण भोजन से हृष्ट होकर पुष्ट देह एवं परमकान्ति के द्वारा मनोहर होकर भविष्यत् रथयात्रा उत्सव में कौतूहलाक्रान्त होकर शोभित हुये थे ॥७९॥

जिन्होंने समस्त अवतारों का अनुकरण किया है, एवं निज भक्तजन के प्रति जिनकी असीम अनुकम्पा सतत है, उन सकलरस विलासी नीलाचल रत्न जगन्नाथदेव—निज जन के प्रति सतत कृपा

व्रजति समनुनीय तत्र लक्ष्मीं
रहसि मिथः दशपञ्चवासरेण ॥८१॥

पथि मृदुसिकतासमूहरम्ये–
यदुभयतो विविधद्रुमादिरम्यः ।
उपवननिचयः स एष वृन्दा–
वन परमस्मृतिकृज्जगन्मनोज्ञः ॥८२॥

इति रथविजयच्छलेन वृन्दा–
वनचलितानुविधानदत्तचित्तः ।
उपवननिचये विहारवाञ्छा–
कुलित उवाच पुरा यदेष गौरः ॥८३॥

विहरति रथयात्रया परेशः
सुखमनुभूय पुनः स गौरचन्द्रः ।
उपवनमधि तत्र तत्र वृन्दा–
वनरमितान्यमितानि सन्तनोति ॥८४॥

रसार्द्र होकर स्वयं प्रति वत्सर गुण्डिचा गृह के निर्जन कक्ष में लक्ष्मी देवी को विशेष अनुनय करतः पारस्परिक प्रीति से पञ्चदश दिवस अतिवाहित किये थे ॥८०-८१॥

सुकोमल बालुका समूह से रमणीय पथ के उभय पार्श्व में अवस्थित विविध द्रुमादि से जगन्मनोज्ञ उपवन समूह "वह यह श्रीवृन्दावन है" वृन्दावनीयस्मृति को उद्भावित कर रहे हैं, यह कह कर उक्त उपवन समूह में गौरचन्द्र पूर्वोक्त रूप रथविजयच्छल में वृन्दावनानुगत अनुकरण विषय में मनोनिवेश करतः विहार वाञ्छा से आकुल हृदय हुये थे ॥८२-८३॥

परमेश्वर गौरचन्द्र महानन्द अनुभव करतः पुनर्बार रथयात्रा

स्थितवति सति नीलशैलरत्ने
नवदिवसेन हि गुण्डिचागृहान्तः ।
उपवन पवनानुपातपूतो–
विलसति गौरशशीरसाम्बुराशिः ॥८५॥

अथ विजयरसोत्सुको निशान्ते
परिहितसन्नहनोचितप्रकाशः ।
अवतरणमिषेण नीलचन्द्रो
रुचिरमहासनतो गिरेः शशीव ॥८६॥

विरचितरुचिरावतारमध्ये–
सहजपदाद्विजयी स गौरचन्द्रम् ।
कनकमयमिव क्षितिक्षिदग्रयं–
निजपुरतः स्थितमेव मन्यते स्म ॥८७॥

में विहार करने लगे थे, तथा उपवन दर्शन कर उक्त स्थान समूह वृन्दावनीय निरुपम रमणीयता का भी विस्तार किये थे ॥८४॥

नीलाचल रत्न जगन्नाथदेव एक ओर नवम दिवस गुण्डिचा मन्दिर में सुस्थिर होने पर रससागर गौरचन्द्र उपवन में प्रवहमान पवन सञ्चालन से पूताङ्ग होकर विलासानन्द का अनुभव करने लगे थे ॥८५॥

अनन्तर नीलाचलचन्द्र श्रीजगन्नाथदेव रात्रि शेष में सन्नहनो चित अर्थात् समरोपयुक्त कवच वर्मादि धारण पूर्वक विजयोत्सव में उत्सुकचित्त होकर पर्वत से अस्ताचल चूड़ावलम्बि शशधर के समान महासन से अवतरण करने का अभिलाषी हुये थे ॥८६॥

विजयी श्रीजगन्नाथदेव निजपुर से मञ्जुल चरण विक्षेप के समय में ही गौरचन्द्र को अवलोकन कर निज अग्रवर्त्ती सुवर्णमय महाशैल का अनुभव किये थे ॥८७॥

अथ धरणिषु क्रमादुपेतः—
कशिपुचयैर्विहिताप्लुतिः समन्तात् ।
प्रतिभमिव शशी व्रजन् विरेजे
द्युतिसमुदायविदूरितान्धकारः ॥८८॥

क्रमत इत इतः पदानि जिष्णुः
कशिपुषु निक्षिपति क्षणादथैषः ।
द्रुतसुरपतिरत्नसागरोर्मि—
प्रचयरुचिं विजिगाय तत् प्रकामम् ॥८९॥

कटितटपरिबद्धपट्टडोर—
द्वितय विजृम्भित सेवकावहृष्टः ।
स जयति किमु नाभिपद्मनाल—
द्वयजविधातृसभा रहः समन्तात् ॥९०॥

अनन्तर प्रति नक्षत्र में विन्यस्त द्युतिमाला से अन्धकार विनाशकारी शशधर के समान श्रीजगन्नाथदेव धरणी मण्डल में उपस्थित होकर कशिपुचय में अर्थात् वसनावृत शय्या परम्परा में लम्फ प्रदान कर अर्थात् कूद-कूद कर शोभित हुये थे ॥८८॥

अनन्तर विजयी श्रीजगन्नाथदेव क्रमशः इतस्ततः पातित शय्या में पादविक्षेप करने लगे थे, एवं तादृश पादविक्षेप कर गलित इन्द्रनीलमणि सागर की उर्मिमाला एवं कान्ति को पराजित किये थे ॥८९॥

कटितट में परिहित पट्टडोरी द्वय के द्वारा जो सेवक वर्ग को प्रफुल्लित कर रहे हैं, उन हृष्टमनाः जगन्नाथदेव के नाभिकमल के मृणालयुगल से सम्भूत विधातृसभा को अर्थात् प्रजापतिगण को क्या निर्जन में पराजित कर रहे हैं ? ॥९०॥

उपरि परिधृतातपत्रवृन्दै-
र्मुखशशिसेवनतत्परेन्दुरूपैः ।
निरवधि सुमनःसमूहवृष्टया-
सितरणभूरपि नीलशैलनाथः ॥६१॥

अनुसरति पुरो यथासितेन्दुः
किमपि तथापसरत्यसौ शचीजः ।
अभिमुखमभिगच्छतोस्तयोस्तत्-
सुललितकन्दुकविभ्रमं बभार ॥६२॥

असितगिरिपतिर्यथा स्वभृत्यैः
परिकलितः स तथैव गौरचन्द्रः ।
सुरपतिमणिहेमरत्नभासौ-
जनचयलक्ष्यतनू बभूवतुस्तौ ॥६३॥

प्रभु के मुखचन्द्र उपासना परायण चन्द्र स्वरूप उपरिधृत छत्रसमूह एवं निरवधि पुष्पवृष्टि से शैलराज नीलाचल भी मानों श्वेतवर्ण रणक्षेत्र हो उठा था ॥६१॥

असितेन्दु जगन्नाथदेव—जिस प्रकार अनुसरण करते रहते हैं, उस प्रकार श्रीशचीनन्दन भी किञ्चित् अपसरण करते रहते हैं, अतः अभिमुख में उभय गमनरत होने से भी तन्मध्य में श्रीगौरचन्द्र ही कन्दुक क्रीड़ा विलास से विभूषित हुये थे ॥६२॥

नीलाचलपति जगन्नाथदेव—जिस प्रकार निज भृत्य द्वारा परिवेष्टित थे, तद्रुप श्रीगौरहरि भी निज भृत्यगण से परिवेष्टित हुये थे, सुतरां प्रभुद्वय ही इन्द्रनीलमणि एवं हेमरत्नकान्ति से लोकलोचन गोचरीभूत हुये थे ॥६३॥

क्वचिदयमपि गौरचन्द्रभासा–
भवति सुवर्णरुचिस्तथैव सोऽपि ।
जगति तदुभयोः सितेतराद्रेः
परिवृढ़ता परितः प्रकाशितासीत ॥९४॥

गजपतिकरदण्डखण्डखण्डी–
कृत सकलारिरशेषविघ्नहर्त्ता ।
नृपतिगणपतिः प्रतापरुद्रो–
रविरिव यः प्रतपत्यसौ सदैव ॥९५॥

सतु लघुतरसेनकायमानः
करकलितामलहैममार्जनीकः ।
किमपि तदुभयोर्विहारलीलां–
परिकलयन् गतसर्वचेष्ट आसीत् ॥९६॥ (युग्मकम्)

सततमुभयतोज्ज्वलन्महोल्का
विविध मरातप विस्मृत क्षपान्तः ।

जगन्नाथदेव—कभी गौरचन्द्र की स्वर्णकान्ति से स्वर्णिम हो हो रहे हैं, एवं गौरचन्द्र भी कभी जगन्नाथदेव की कान्ति नीलवर्ण मण्डित हो रहे हैं, इस प्रकार प्रभुद्वय निज प्रभुत्व का विस्तार नीलाचल से जगन्मण्डल में सम्यक् रूप से किये थे ॥९४॥

जिन्होंने गजराज के शुण्डदण्ड द्वारा शत्रुगण को खण्डविखण्डित करते रहते हैं, एवं जो अशेष बिघ्नाहारी हैं, एवं नृपति वर्ग में प्रधान हैं, तथा सूर्यदेव के समान जो नियत प्रतापशाली हैं, वह राजा प्रतापरुद्र—अतीव क्षुद्र सेवक के समान करकमल में स्वर्ण मार्जनी ग्रहण करतः नीलाचलचन्द्र एवं गौरचन्द्र के अनिर्वचनीय विहारलीला का दर्शन कर निश्चेष्ट हो गये थे ॥९५-९६॥ (युग्मकम्)

पटहपटलमण्डुडिण्डिमाद्यै-
रतिमहिमासमयोऽयमेवमासीत् ॥९७॥

इति रथनिकटं व्रजन् विरेजे
परिकलयन् पुरतः सः गौरचन्द्रः।
इत इत इत एतदेतदेतत्
परिकलनीयमितः स्वभृत्यनादैः ॥९८॥

अथ रथमधिरुह्य नीलशैल-
प्रभुरसकौ रसकौतुकी रराज।
परिणत इव पूर्वपर्वतान्ते
मधुमधुरो जलदात्यये हिमांशुः ९९॥

इति पथि विहितेऽपि सद्विहारे-
रथमधिरोहति नीलशैलनाथे।

उभयपार्श्व में नियत प्रज्वलित महोल्का अर्थात् दीपशिखा के द्वारा रात्रिघटाका विस्मरण होता रहता है, एवं उक्त समय भी पटह पटल अर्थात् ढक्का समूह एवं मण्डुडिण्डिमादि विविध वाद्य से समधिक महिमान्वित हो उठा था ॥९७॥

इस रीति से गौरचन्द्र—सर्वप्रथम रथ के समीप में जाकर प्रभु दर्शन करतः "इस स्थान से देखना ही कर्त्तव्य है" इस प्रकार निज भक्तवृन्द के द्वारा बारम्बार उच्चारित कोलाहल ध्वनि से शोभितहुये थे ॥९८॥

जलधरवृन्द निवृत्त होने पर सुमधुर शारदीय, पूर्ण शशधर जिस प्रकार उदयाचल में शोभित होते हैं, उस प्रकार रस कौतुकी नीलशैलनाथ श्रीजगन्नाथदेव भी रथारूढ़ होकर शोभित हुये थे।९९।

इ प्रकार पथमध्य में प्रशस्त विहार परायण नीलाचलनाथ

निजजननिचयैः स गौरचन्द्रः-
स्नपनविहारचिकीर्षया जगाम ॥१००॥

अथ लघुविहितावगाहरम्या-
प्रभुपुरतो मिलिता बभूवुरेते ।
स्वयमपि विहिताप्लवः प्रकामं
मलयजपङ्कचयैर्लिलेप तांस्तान् ॥१०१॥

प्रथममसकृदद्वितीयभावो-
रसि रसिकः करपल्लवेन हृष्टः ।
मलयरुहरसैर्लिलेप तस्य-
द्विगुणितमुत्सुकयन् सरोमवृन्दम् ॥१०२

तदनुच भुवि नारदस्वरूपं-
द्विजकुलचन्द्रमसं महानुभावम् ।
तदनु तदनुजं ततस्तथान्यान्-
क्रमत इतो मलयोद्भवैर्लिलेप ॥१०३॥

रथारोहण करने पर गौरचन्द्र निज भक्तवृन्द के सहित स्नान विहार करणेच्छु होकर गमन किये थे ॥१००॥

अनन्तर भक्तवृन्द—शीघ्र अवगाहन करतः रम्यमूर्त्ति होकर प्रभु के सम्मुख में आकर मिलित हुये थे, एवं स्वयं प्रभु भी अवगाहन स्नान करतः मलयज चन्दनपङ्क द्वारा उन उन भक्तवृन्द को लेपन करने लगे थे ॥१०१॥

रसिकचूड़ामणि गौरचन्द्र—हृष्ट होकर प्रथमतः अद्वितीय भावयुक्त वक्षःस्थल में रोमावली को द्विगुणतर उत्सुक करतः करपल्लव के द्वारा चन्दनरस लेपन किये थे ॥१०२॥

तत्पश्चात् पृथिवी में नारद स्वरूप में विख्यात द्विजकुल

तदनु सकलगायनान् विशेषं
प्रतिजनमेवमुरःस्थले कृपालुः ।
प्रमदभरभरालसाङ्गयष्टि—
र्नटनकलाकुलितो लिलेप तैस्तैः ॥१०४

ये ते श्रीवासरामौ स्वरविजितपिकौ वासुदेवो मुकुन्दः ।
श्रीमद्दामोदराख्यो यतिरिति जगति ख्यातवान् प्रेमपुञ्जः ।
श्रीमद्वक्रेश्वरश्च प्रथितगुणगणः श्रीलदामोदरोऽसौ
भूमीगीर्वाणमुख्यस्तदनु सुमधुरः कोऽपि नारायणाख्यः ।१०५

श्रीकान्तो मकरध्वज सुमधुरः शुद्धः शुभानन्दकः
काशीनाथक वल्लभौ च हरिदासाख्यो रघुः शुद्धधीः ।
एतांस्तान् सहसैव चन्दनरसैलिप्त्वास स्वयं श्रीमता

चन्द्रमा महानुभाव श्रीवास पण्डित तथा उनका अनुज श्रीराम पण्डितएवं तत्पश्चात् अन्यान्य भक्तवृन्द यथा क्रम से चन्दन लेपन किये थे ॥१०३॥

समधिक आनन्दभर से जिनकी अङ्गयष्टि अलसान्वित है, वह कृपालु गौरहरि—नृत्यकला से आकुलित होकर तत् पश्चात् गायक विशेष रूप में एवं प्रत्येक व्यक्ति के वक्षःस्थल में मलयज रसलिप्त किये थे ॥१०४॥

जिनके स्वीय कण्ठस्वर से कोकिल पराजित हुआ है, उन श्रीवास पण्डित, श्रीराम पण्डित, वासुदेव, मुकुन्द एव यतिरूप में प्रसिद्ध प्रेमपुञ्ज दामोदर विख्यात गुणगरिम श्रीमान् वक्रेश्वर, भूसुर श्रेष्ठ श्रीदामोदर, सुमधुर एक नारायण नामक भक्त, मधुरमूर्त्ति श्रीकान्त, मकरध्वज, पवित्र शुभानन्द, काशीनाथ मिश्र, वल्लभाचार्य हरिदास एवं शुद्ध बुद्धि रघु, यह समस्त भक्तवृन्द को सहसा ही चन्दन

गौराङ्गेन दृढं निबध्य वसनं श्रीमत्कटीरोधसि ।
आजानुद्वयलम्बिपीवरभुजद्वन्द्वेन मन्दोल्लस-
द्रोमाञ्चाश्रितविग्रहेण परमाविष्टेन तैर्निर्ययै ॥१०६

अमन्दकरतालकप्रकररम्यसन्मन्दिरा
स्वलङ्कृतकराम्बुजाः पुलकवृन्दसान्द्राङ्गकाः ।
अमी तदनुसत्वरं प्रतिपदं पदं निर्भरं
स्खलत्पदसरोरुहाः सुखसमुद्रमग्ना ययुः ॥१०७॥

गोविन्दस्त्वरितं समेत्य नितरां नैकट्यमासादितः
पार्श्वस्थः सुखसागरेषु सततं मज्जन् प्रतस्थे ततः ।

रस से संलिप्त कर एवं कटितट में वसन को सुदृढ़ रूप से निबद्ध कर जिनके पीवर बाहु युगल आजानुलम्बित है, एव जो मन्द-मन्द उल्लसित रोमाञ्च से शोभित हैं वह श्रीगौरचन्द्र परम आविष्ट होकर उल्लिखित भक्तवृन्द के सहित निर्गत हुये थे ॥१०५-१०६॥

—१०५श्लोक में स्रग्धराछन्द है, - म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनि यतियुता स्रग्धरा कीर्त्तितेयम् ॥ —१०६ श्लोक में शार्दूलविक्रीड़ित छन्द है, अर्काश्वै र्मसजस तताः स गुरवः शार्दूल विक्रीड़ितम् ॥—

आनन्द करताल द्वारा एवं रम्यमन्दिरा द्वारा जिनके करकमल सुन्दर अलङ्कृत है, पुलकवृन्द से जिनके अङ्ग सान्द्र है, प्रत्येक पाद विन्यास से ही जिनके पादपद्म स्खलित होते रहते हैं, एतादृश अवस्था में भक्तवृन्द आनन्द सागर में भग्न होकर ही गौरचन्द्र के पश्चात्

पश्चात् सत्वर गमन करने लगे थे ॥१०७॥

—यह पृथ्वीछन्द है—जसौ जस जलावसु ग्रहश्च पृथ्वी गुरुः ॥—

एते ये च समागताः प्रतिपदोल्लासाकुलाः श्रीयुजो
नैषां हर्षसुधाम्बुधिर्निरवधिर्ब्रह्माण्डमध्येऽश्चितुम् ॥१०८॥

अथ मदमृगेन्द्रालीलोलाविलासिपदक्रमः
प्रमदविगलद्घर्मस्नानप्रचायकमदक्रमः ।
अनुपमसुखारोहाद्रोमोद्गमाश्चितविग्रहः
पथि लघु ययौ गौरस्तेजोनिरस्त रविग्रहः ॥१०९

रथमभि बलदेवस्याग्रतो गौरचन्द्रः
प्रमदमदमनोज्ञः श्रीविराजत्तनूकः ।

इति मध्य में गोविन्द त्वरित गति से आगमन कर निकटवर्त्ती हो गये, एवं पार्श्वस्थ होकर ही सतत सुख सागर में निमग्न होकर वहाँ पुनः प्रस्थान किये थे, एवं जो सब भक्तवृन्द—प्रतिपदविन्यास से हर्षाकुल होकर समागत हुये थे, किन्तु उन सब के आनन्दाम्बुधि निःसीम हुआ था ॥१०८॥

अनन्तर मदमत्त सिंहगण के समान जिनका लीला विलास युक्त पाद विक्रम है, एवं जो अतिहर्ष से विगलित घर्मजल से सिक्त होकर गमन करते रहते हैं, एवं निरुपम सुखाविर्भाव निबन्धन रोमाञ्च द्वारा जिनका श्रीविग्रह शोभित है, वह गौरचन्द्र निजाङ्ग तेजोराशि से रविग्रह अर्थात् सूर्यमण्डल को निरस्त कर पथ में द्रुत गति से गमन किये थे ॥१०९॥

—यहाँ हरिणी छन्द है, नसमरसलागः षड्वेदै हयै हरिणी मता एवं पादान्तयम कभी हैं—

आनन्द मत्तता से समुद्भूत मनोज्ञ शोभा से जिनका श्रीअङ्ग मण्डित है, उन श्रीगौरचन्द्र प्रथमतः श्रीबलदेव के रथाभिमुख

द्रुतकनकमहीध्रै र्दण्डवद्भूमिपृष्ठं
सह नयनजलेन प्रेमतः प्राप भूयः ॥११०॥



इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये
पञ्चदशः सर्गः ।



में उपस्थित होकर एवं महाप्रेमोद्गत नेत्र जलधारा आप्लुत होकर विगलित कनकाचल के समान भूतल में दण्डवत् निपतित हुये थे ॥११०॥

==यहाँ मालिनीछन्द है, ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः==

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये
पञ्चदशः सर्गः ।



षोड़शः सर्गः

अथ पुलकसमूहभ्राजमानं प्ररोह
न्मुकुलकुलविराजत्काञ्चनद्रुप्रकाशम् ।
मधुरमपठदुच्चैः पीनमुन्नीय बाहुं
कनकगिरिरिवासौ शृङ्गलग्नान्तरीक्षः ॥१॥

जयति जयति देवो देवकीनन्दनोऽसौ
जयति जयति कृष्णो वृष्णिवंशप्रदीपः ।
जयति जयति मेघश्यामलः कोमलाङ्गो
जयति जयति पृथ्वीभारनाशो मुकुन्दः ॥२॥

जयति जननिवासो देवकींजन्मवादो
यदुवरपरिषत् स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् ।
स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितश्रीमुखेन
व्रजपुरवनितानां बर्द्धयन् कामदेवम् ॥३॥

अनन्तर जिसका शिखरदेश गगन मण्डल को भेदन कर अवस्थित हैं, ताहृश कनकाचल सुमेरु के समान श्रीगौरचन्द्र अभिनव मुकुल माला से विराजित काञ्चन वृक्ष के समान प्रकाशमान होकर एवं पुलकावलि से विभूषित समुन्नत स्थूलतम बाहुयुगल को उन्नतकर वक्ष्यमाण श्लोक समूह पाठ करने लगे थे ॥१॥

जो वृष्णिवंश प्रदीप स्वरूप हैं, जिनका वर्ण नवजलधर मेघ के समान श्यामल है एवं जो कोमलाङ्ग है, जिन्होंने पृथिवी का भारापनोदन किया है' उन देवकी नन्दन मुकुन्द पुनः-पुनः जययुक्त हों ॥२॥

जो निखिल जीव निकर के मध्य में अन्तर्यामी रूप में अवस्थित हैं, देवकी से जन्म ग्रहण किये हैं, यह अपवाद जिनका है. जो स्थावर

नाहं विप्रो नच नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो
नाहं वर्णी नच गृहपतिर्नो वनस्थो यति र्वा ।
किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धे
र्गोपीभर्त्तुः पदकमलयोर्द्दासदासानुदासः ॥४॥

इति नटनकलादौ श्रीवृन्दावनेन्दोः
परममहिमवत्त्वं निर्भरार्त्तो निरूप्य ।
अतिशयकरुणार्द्रः प्रेमभक्ति वितन्व-
न्नयमतिमधुराङ्गो हर्षपूर्णो बभूव ॥५॥

आस्फोट्य वामकरकक्षतटीं करेण
रज्यद्वपुर्मधुरकोमलतातिरम्यः ।

जङ्गम का दुःख दलनकारी है, वह श्रीकृष्ण यदुवर पार्षद रूप बाहु के द्वारा पृथिवीस्थ अधर्म नाश करतः एवं सहास्य वदन से व्रजवनिता वृन्द का अनङ्गवर्द्धन करतः जययुक्त हैं ॥३॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णी ब्रह्मचारी, गृहपति, गृहस्थ वनस्थ--बानप्रस्थ अथवा यति--भिक्षु सन्नयासी यह सब जाति आश्रमीओं में—मैं कुछ भी नही हूँ, किन्तु समुच्छलित परमानन्द पूर्ण सुधासागर गोपीभर्त्ता श्रीव्रजेन्द्रनन्दन के पादपद्म के दास के दास का अनुदास हूँ ॥४॥

इस प्रकार प्रभु गौरचन्द्र—अतिशय करुणार्द्र होकर नृत्य कौशल के मध्य में ही श्रील वृन्दावनचन्द्र का महामहिमत्व का निरूपण अतीव मर्म पीड़ित चित्त से करके प्रेम विस्तार पूर्वक अतिशय मधुराङ्ग एव हर्षपूर्ण हुये थे ॥५॥

वाम बाहुमूल को हस्त द्वारा आस्फोटन से जिनका अङ्ग अरुणिम हुआ है, मधुरता एवं कोमलता से जो अतीव रमणीय है, एवं

लीलाविलोलमुखचन्द्रमयूखरोचिः
श्रीमच्छटाझलामलायितदिक्समूहः ॥६॥
उच्चैर्मुहुर्जयजयेति विमुक्तकण्ठ-
मुच्चारयन् सह तनूरुहवृन्दहर्षैः ।
मुष्टिप्रमेयतनुमध्यविलासबद्ध-
रक्ताम्बरद्युतिविड़म्बितबन्धुजीवः ॥७॥
श्रीमद्विलोचनजलाप्लुतगौरदेहः
प्रत्यग्रघर्मकणिकाखचितास्यचन्द्रः ।
उद्दामताण्डवकलाकुलिताङ्गभङ्गः-
श्रीमानथ स्वजनमध्यमलंचकार ॥८॥
(विशेषकम्)

श्रौत्तुङ्गेन नभस्थलं तरलयन्मार्त्तण्डविम्बं मुहु ।
श्चुम्बन् देवसभाजनविधिं संपादयन्निर्भरम् ।

लीलाविलास पूर्ण मुखचन्द्रस्थित, मयूखकान्तिछटा से जो दिक्समूह को उद्भासित कर रहे हैं तथा मुक्त कण्ठ से मुहुर्मुहुः अत्युच्च "जय जय ध्वनि कर रहे हैं, एवं शरीर रोमाञ्च मण्डित हो रहा है, मुष्टि परिमित क्षीणोदर में सविलास परिहित अरुणवसन की कान्ति द्वारा जो बन्धुजीव अर्थात् बाँधुली कुसुम को पराजित कर रहे हैं, सुशोभित लोचन युगल से निपतित जलधारा से जिनका गौरदेह आप्लुत हो रहा है, घर्मविन्दु से जिनका मुखचन्द्र खचित है, एवं अङ्ग प्रत्यङ्ग समूह उद्दण्ड नृत्य से आकुलित प्राय होकर भङ्ग हुये हैं, एतादृश अवस्थाक्रान्त श्रीमान् गौरचन्द्र अनन्तर भक्त मण्डली को अलङ्कृत किये थे ॥६-८॥

ब्रह्माण्डान्तरसंस्थितस्य नयनानन्दोत्सवोत्साहकः ।
साटोपं मुरवैरिणो विजयते लक्ष्मीमयः स्यन्दनः ॥६॥

कैलासं नमयन्नशेषविधिना मेरुं सहन्निर्भरं
सोत्कण्ठं किल विन्ध्यकं विकलयन् गौरीगुरुं ग्लापयन् ।
अन्यः कोऽप्यधुनावनौ शिखरिणां राजेव किं निर्मितो
धात्रा स्यन्दन इत्यसौ मुररिपुश्रीमूर्त्तिपीषूषभृत् ॥१०॥

उत्पक्ष्माक्षिसरोरुहाञ्जलीपुटैर्नीलाद्रिचूड़ामणेः ।
श्रीमूर्त्तिच्छुरितामृतानि पिवतामुल्लासधन्यात्मनाम् ।
निष्पन्दं पुलकावलीविलसतामानन्दमन्दकिनी–
कल्लोलैः किल तत्र तत्र भवतामासीन्महानुत्सवः ॥११॥

समधिक उच्चता हेतु जो गगन मण्डल को चञ्चल कर रहा है, सूर्य मण्डल को मुहुर्मुहुः स्पर्श कर रहा है, एवं देवसभा का सभाजन है, अर्थात् देवसभा का सम्यक् आनन्द विस्तार कर रहा है, तथा— ब्रह्माण्ड भिन्न अन्यत्रस्थित जन निकर को आनन्दोत्सव के निमित्त उत्साहित कर रहा है, तथा—ब्रह्माण्ड भिन्न अन्यत्रस्थित जनगण को नयनानन्दोत्सव में उत्साहित कर रहा है, वह मुरवैरी जगन्नाथदेव का रथ सगर्व से जययुक्त हो ॥६॥

श्रीजगन्नाथदेव का श्रीमूर्त्ति की अमृतधारी इस रथ का विधाता ने भूमण्डल में पर्वत समूह के मध्य में अपर एक अनिर्वचनीय नृपति के समान क्या निर्माण किया है ? कारण—यह रथ कैलास पर्वत को नत कर रहा है, सुमेरु पर्वत को सातिशय उपहास कर रहा है, एवं गौरीगुरु पर्वतराज हिमालय को भी ग्लानियुक्त कर रहा है ॥१०॥

उत्पक्ष्म नेत्र पद्मरूप अञ्जलिपुट के द्वारा नीलाचल चूड़ामणि

भूयो भूयः समन्तात् सरभसमनसामागतानां विशेषं
तत्तत् सीमन्तिनीनामलिकविकलितैः कम्रसिन्दूरपूरैः ।
सैन्दूरीकर्त्तुमासीद्रथपरिसरभूश्चक्रनिष्पीड़नेन
क्षुब्धापि प्रायशः सा प्रमुदितमनसात्मानमुत्कण्ठितेव ॥१२॥

नृत्यन्तं गौरचन्द्रं चरणसरसिजद्वन्द्वविन्यासरम्यं
दृष्ट्वा दृष्ट्वा प्रकामं सरभसमनसो भ्रातरस्ते रथस्थाः ।
भूयोऽहंपूर्विकाभिः प्रसृमरगतयः कौतुकेनाग्रतोऽमी ।
जङ्घालास्तत्र तत्र प्रमदमदभरान्नर्त्तनं कुर्वतेव ॥१३॥

श्रीजगन्नाथदेव की श्रीमूर्त्ति द्वारा रञ्जित अमृत को निमिष शून्य होकर पान करत महानन्द से जो सब धन्य जीवन हुये हैं, एवं आनन्दरूप मन्दाकिनी की महातरङ्ग से जो सब पुलकावली के द्वारा विलसित हैं, उन श्रीक्षेत्रवासि महात्मागण का रथयात्रा समय में महान् उत्सव हुआ ॥११॥

रथ परिसर भूमि अर्थात्—रथ का गमन पथ चक्रनिष्पीड़न से सम्यक् रूप से क्षुब्ध होकर प्रमुदित चित्त से चतुर्दिक से विगलित सुन्दर सिन्दूर समूह द्वारा निजाङ्ग को सविशेष सिन्दूर रञ्जित करने के निमित्त ही मानों उत्कण्ठित हुआ है ॥१२॥

रथस्थ भ्रातृत्रय—अर्थात् जगन्नाथ, बलराम एवं सुभद्रा पादपद्म युगल के विन्यास से रमणीय नृत्यकारी गौरचन्द्र को साभिलास से पुनः-पुनः दर्शन कर हृष्ट चित्त हुये थे, एवं अग्रभाग में जङ्घाल-द्रुतगामी पुरुषगण बारम्बार अहंपूर्विका, मैं पहले जाऊँगा, मैं पहले जाऊँगा, इस प्रकार वासना से कौतुक पूर्वक द्रुतगति हेतु रथ के अग्र भू-भाग में हर्ष एवं निर्भर चित्त से मानों नृत्य कर रहे थे ॥१३॥

आरुन्धन् दिक्करीन्द्रोत्करकरविवरं साम्बु चक्षुःसहस्रं
कुर्वन्नैरावणेशं पलितविलसिता देवतास्तत्र कुर्वन् ।
सेतुभ्रान्ति पयोधे पुनरपि रचयन्नेवमुज्जृम्भतेऽसौ
प्रोन्मीलच्चक्रचक्रोद्दलनविसृमरोद्धूतधूलीप्रवाहः ॥१४॥

कूर्मो मर्मव्यथोभूत् फणिपतिरसकौ शीर्षतः शीर्षमध्यं
भूयोभूयो धरित्रीं नयति नतशिरा जीर्णमण्डं बभूव ।
वेलालोलैः पयोभिश्चिरमिव जलधिः क्षीणमर्याद आसी-
त्तत्रौत्सुक्येन नीलक्षितिधरतिलके प्रस्थिते गुण्डिचायम् ।१५।

राजन्तां तत्र तास्ताः सुरपतिपरिषत्कम्रलक्ष्मीरधोऽधः
कृत्वा कृत्वा मुरारेरथ रथविजये भूतयो रत्नभाजः ।

सविकाश चक्रसमूह के निष्पेषण से बहु दूरोत्थित धूलीप्रवाह जैसे—अष्टदिक् में स्थित दिग्गज समूह के नाशाविबर को अवरुद्ध कर रहा है, ऐरावतपति इन्द्रदेव के सहस्र लोचन को जलविलन्न कर रहा है, देवतागण के केशकलाप को धवलित कर रहा है, एवं बोध होता था कि—जैसे पुनर्बार सेतुबन्धन भ्रान्ति को उत्पादित कर उक्त धूलीपटल वर्द्धित हो रहा है ॥१४॥

नीलाचल तिलक श्रीजगन्नाथदेव–महानन्द से गुण्डिचा मन्दिर में गमन करने पर, पातालस्थ कूर्मदेव भी मर्मव्यथा का अनुभव किये थे, एव फणिपति अनन्तदेव भी नतशिरा होकर भूयोभूयः पृथिवी को मस्तक से मस्तकान्तर में ले रहे थे, एवं उस उस मस्तक भी जीर्ण मण्डल हो गया, तथा तीर में प्रोच्छलित जलराशि के द्वारा जलधि भी मानों मर्यादाहीन हो उठा ॥१५॥

अनन्तर श्रीजगन्नाथदेव की उक्त विविध रत्न समूह इन्द्रसभा की रमणीय शोभा को पुनः-पुनः अतीव हीनप्रभ कर शोभित हों,

तत्तादृग्भूषणाढ्यः स्वयमपि भगवान् सम्यगुज्जृम्भतां सः
श्रीमान् किन्त्वेष नृत्यन्नखिलजनमनोरुद्धगौराङ्गचन्द्रः ।१६।

शचीसुतकलानिधिः किमपि साङ्गभङ्गं मुहु–
विलासचरणक्रमोन्मथितरम्यपङ्केरुहः ।
निरन्तरदिगन्तरच्छुरितमच्छकान्तिच्छटा–
मलज्झलमलायितं मनसि वः समुज्जृम्भताम् ॥१७॥

अमन्दतरमन्दिरानिनदसङ्गिसङ्गीतक–
ध्वनिर्ध्वनितदिग्वधूवदनपङ्कजैः पूजितः ।
विभिद्य मुहुरुच्चवच्चरमखण्डखण्डान्तरं
प्रयाति कति दूरतः स खलु मीयतां कैः पुनः ॥१८॥

मुहुर्मधुरचक्रवद्भ्रमिविलोलयाश्लेषणः
परिस्फुरितधारया परिधिभूषितश्चन्द्रवत् ।

एवं तादृश भूषण भूषित स्वयं भगवान् श्रीजगन्नाथदेव भी सम्यक वृद्धि प्राप्त हों, किन्तु यह श्रीगौरचन्द्र निखिल जनगण के मन में अवरुद्ध होकर भी नृत्य करतः शोभित हैं ॥१६॥

कलानिधि श्रीशचीनन्दन की अङ्ग भङ्गी के सहित मुहुर्मुहुः सविलास पादपद्म विन्यास से शोभनपद्म पराजित हो रहा है, एवं दिगन्त विसारी कान्तिमाला झलमलायित हो रही है, वह दीप्तिमाला मेरा मानस पटल में सदा वृद्धि प्राप्त हो ॥१७॥

दिगङ्गनावृन्द द्वारा पूजित अर्थात् दिग्दिगन्त प्रसृमर अमन्द मन्दिरा मिश्रित सङ्गीत ध्वनि समुन्नत अखण्ड खण्डान्तर अर्थात् कटाह को भेदन कर कहाँ तक जाती है, उसका अनुमान करने में कौन समर्थ होगा ? ॥१८॥

बारम्बार चक्रवत सुमधुर परिभ्रमण से जो अतिचञ्चल हैं, एवं

विलोचनपयोभरैर्वलयितैः समन्ताद्दिशां
मुखानि परिमार्जयन् जयति सोऽत्र नृत्योद्यमे ॥१९॥

जय जय जयत्वित्यत्युच्चैर्निनादपरः शतै-
र्मुखरमुखरीभूताः सर्वा दिशः किमकुर्वत।
निरवधि दृशौ तासु क्षिप्त्वा यदेष विलोहिते
नटनकलया लोलशोणीचकार जगत्तलं ॥२०॥

मुखशशिसमुद्गीर्णैः फेनैर्हसन्निव शारदं
सततविजितं लक्ष्म्या लक्ष्माकुलं हिमदीधितिम्।
पुलकपटलैरत्युद्भिन्नैः सुमेरुमिवोद्गता-
ङ्कुरशतपरिच्छेदातीतः सएष विराजते ॥२१॥

उन्मील्य प्रथमं परिस्रवयता पक्ष्माणि भूयः क्षणात्
श्रीमद्गण्डतटीषु दीर्घमयता धाराभिरुच्चैस्ततः।

परिष्कृत नयन जलधारा से व्याप्त होकर जो परिधि भूषित शशधर के तुल्य प्रतीत होते रहते हैं, वह श्रीगौरहरि—लोचन विगलित मण्डलाकार जल प्रवाह से दिग् मण्डल को परिमार्जित कर नृत्योद्यम में जययुक्त हो रहे हैं ॥१९॥

संख्यातीत अत्युच्च जय-जयध्वनि से दिङ्मण्डल शब्दित होकर कैसा दृश्य उपस्थित हुआ, कारण श्रीगौरहरि—नृत्यकला से चञ्चल होकर समस्त दिक् में लोहित लोचन विक्षेप करतः तदीय प्रभाव से जगन्मण्डल को लोहित कर दिये थे ॥२०॥

मुखचन्द्र समुद्गीर्ण फेणसमूह के द्वारा जो कलङ्क समाकुल एवं शोभित शशधर मण्डल को उपहास करते रहते हैं, एवं पुलक पटल द्वारा जो सुमेरु पर्वत को पराजित कर रहे हैं, वह गौरचन्द्र अभिनवोद्गत पुलकसमूह रूपसीमा को अतिक्रम कर शोभित हैं।२१।

प्राप्योरःपदवीं त्रिधा प्रसरता भूमौ त्रुटन्मौक्तिक-
श्रेणीवत् क्रियतां सदैव जगतां हर्षः प्रभोरश्रुणा ॥२२॥

विश्वं प्लावयतेव तत्र लुठता भूमीषु वक्षःस्थले
गर्भोद्यत्कनकाश्मरम्यतटिनीशोभां तिरस्कुर्वता ।
अक्ष्णोर्मग्नसरोजसुन्दरसरःशोभेन गौरप्रभो-
रानन्दाश्रुझरेण तेन जगतामानन्द आधीयताम् ॥२३॥

गायद्भिर्गायनैस्तैः प्रमथवलयिते मण्डले तद्बहिश्च
श्रीकाशीमिश्रमुख्यैः परमसुमतिभिस्तत्पदाब्जप्रपन्नैः ।
हस्तग्राहं प्रमोदात् सततवलयिते तद्बहिश्च प्रताप-
प्राक् श्रीश्रीरुद्रदेवे निभृतमित इतोवेष्टिते भाति नाथः ॥२४॥

जो जल प्रथम उत्पन्न होकर लोचन लोमराजी को अभिषिक्त कर रहा है, एवं क्षणकाल के मध्य में ही पुनर्बार सुशोभित गण्डस्थल में सुदीर्घ धारा से प्रवाहित हो रहा है, पश्चात् सुविशाल वक्षःस्थल को प्राप्त कर वहाँ से त्रिधा होकर भूतल में निपतित हो रहा है, श्रीप्रभु के नेत्रनिर्गत जल, छिन्न सूत्र मुक्ताहार के समान जगन्मण्डल को आनन्दित करे ॥२२॥

जो भूतल में लुठित होकर मानों विश्व मण्डल को प्लावित कर रहा है, वक्षःस्थल में लुठित होकर मध्यदेश से जिसका सुवर्ण उद्गत हो रहा है, तादृश प्रस्तर द्वारा सुरम्य नदी की शोभा को जो तिरस्कार कर रहा है, एवं जलमग्न पद्मद्वारा सुदृश्य सरोवर के समान जिसकी शोभा है, प्रभु गौरचन्द्र ने नयन युगल का आनन्दाश्रु जगन्मण्डल का आनन्दाश्रु सम्पादन करे ॥२३॥

गायकगण गानः करते करते प्रथमतः वलयाकार जिस मण्डल को रचना किये थे, उसके वहिर्भाग में श्रीकाशीमिश्र प्रभृति गौरपादपद्मानुरक्त सुबुद्धि भक्तवृन्द हस्तधारण पूर्वक प्रमोदभर से

इन्द्रः किं किमथ विधि किमीशदेवो-
नैवेषां भवति तदा ह्यपेक्षणीयः ।
श्रीगौरे नटनविलासवेशरम्ये
नैवासीत् क्षणमपि पक्ष्मणो निवृत्तिः ॥२५॥

आनन्देन जड़ीकृते भुवि चिरं स्तब्धे तथा स्यन्दने
श्रीनीलाद्रिपतेरुपैति च सति व्यग्रीभवद्भिर्भृशम् ।
तैरेतैः करपल्लवैर्निजनिजक्रोड़ेषु कृत्वा किय-
द्दूरे स्वैरमुपार्पितो विजयते श्रीगौरचन्द्रः प्रभुः ॥२६॥

आनन्देन जड़ीभयन्ननुपदं हुङ्कारकोलाहलै-
रद्वैतार्पित पाणिपल्लव रसस्निग्धोरुवक्षःस्थलः ।

मण्डली रचना किये थे एवं उसके वहिर्भाग में श्रीप्रतापरुद्र निर्जन में इतस्ततः वेष्टित होने से श्रीमान् गौरचन्द्र तन्मध्य में शोभित हुये थे ॥२४॥

इन्द्र, ब्रह्मा, महादेव की अपेक्षणीयता सवर्ग में नहीं है, इसमें अधिक कहने का प्रयोजन नहीं है, गौरचन्द्र नृत्यविलास वेश द्वारा रमणीय होने से जड़ पदार्थ नेत्रलोम की भी क्षणकाल निवृत्ति नहीं हुई है, अर्थात् वह भी मानों निमेष शून्य होकर प्रभु को अवलोकन करने लगा ॥२५॥

गौरचन्द्र महानन्दरस से जड़ीभूत होकर अनेकक्षण भूतल में पतित होकर रहे थे, उस समय नीलाचलपति श्रीजगन्नाथ की रथ भी निश्चल हुआ था, तत् पश्चात् पुनर्बार वह रथ श्रीप्रभु के निकट आकर उपस्थित हुआ, यह देखकर भक्तगण अतिशय व्यग्रता से स्वीय करपल्लव के द्वारा निज क्रोड़ में लेकर अति सत्वर जिनको स्वल्प दूर में स्थापना किये थे, उन प्रभुवर श्रीगौरचन्द्र जययुक्त हों ॥२६॥

दण्डाकारमितस्ततो विनिपतद्दोर्दण्डपादद्वयो-
र्नृत्योल्लासमनोहरो विजयते श्रीगौरचन्द्रः प्रभुः ॥२७॥
आनन्दोत्साहमूर्च्छागत भवति स्पन्दनिश्वासमन्दे
रोहद्रोमाश्रुपूरैर्विकलित वपुषानन्दमन्दीकृतेन ।
स्यन्दन्नेत्रारविन्दद्वयसलिलजुषा रुद्रदेवेन भूयः
सानन्दं सेविताङ्घ्रिद्वयसरसिरुहो राजते गौरचन्द्रः ॥२८॥
उन्मीलनेत्रपद्मे पुलकपटलिकालोलसर्वाङ्गयष्टौ
निष्ठीवत्फेणपूरोल्लसितमुखशशिद्योतनिर्द्धूतचन्द्रे ।
सान्द्रानन्दालिमन्दे मधुरिमलहरीसिन्धुसौभाग्यचन्द्रे
नृत्यत्यस्मिन्न केषां प्रभवति जड़िमा श्रीलगौराङ्गचन्द्रे ॥२९॥

जो क्षण-क्षण में आनन्द से जड़ीभूत हो रहे थे, एवं हुङ्कार कोलाहल करत: जो अद्वैत के अङ्ग में करपल्लव अर्पण किये थे, जिनके ऊरु एवं वक्ष स्थल अतीव सुस्निग्ध, तथा दण्ड के समान इतस्तत: जिनके बाहुदण्ड एव पादयुगल पतित हो रहे हैं, एवं जो नृत्योल्लास से मनोहर हैं वह श्रीगौरचन्द्र जययुक्त हों ॥२७॥

शरीर स्पन्दन एवं निश्वास वायु मन्दीभूत होने से नेत्रपद्म विगलित जलधारायुक्त होने से तथा आनन्द से जड़ीभूत एवं रोमाञ्च समूह से विकलित अङ्ग होने से बोध होता था जैसे—आनन्द उत्साह एवं तत्तत्क्षण में मूर्च्छा का आगमन हो रहा है, एवं प्रतापरुद्र कर्त्तृक मानन्द से उस अवस्था में जिनके चरणयुगल सेवित हो रहे हैं, उन प्रभु गौरचन्द्र—अतिशय शोभित हो रहे हैं ॥२८॥

नृत्य के समय जिनका नेत्र उन्मीलित होता है, जिनकी अङ्गलता पुलक पटल से चञ्चल होती है, उद्‌गीर्ण फेनपुञ्ज के द्वारा जिनके मुखचन्द्र की कान्ति सुधाकर को तिरस्कार करती है, एवं जो निविड़ आनन्दरस से जड़ीभूत हैं, जो माधुर्य लहरीयुक्त समुद्र का

आनन्दं नेत्ररन्ध्रैर्निरवधिप रमानन्दसन्दोहधारा-
धौत प्रत्यङ्ग लक्ष्मीमधुरिमविभवो रामणीयोत्कचित्तः ।
पीत्वा पीत्वा यदायं नटनरसधुनीपूरमुल्लासलोलो
निस्पन्दो बोभवीति प्रथयति परमानन्दपूरी सहर्षम् ॥३०॥

दधार कटिसूत्रकं प्रभूरितीह दामोदरः
स्वरूप इव तस्य किं यतिवरोऽयमुद्घुष्यते ।
य एष नटनोत्सवे हृदयकाय वाग्वृत्तिभिः
शचीसूतकलानिधौ प्रवीशतीव सान्द्रोत्सुकः ॥३१॥

सौभाग्य चन्द्र हैं, उन श्रीमान् गौरचन्द्र का नृत्यारम्भ होने पर इस भूमण्डल में किसको जड़िमा नहीं होती है, अर्थात् तादृश अनिर्वचनीय भावमय नृत्य दर्शन से मुग्ध कौन नहीं होता है ? ॥२९॥

निरवधि परमानन्द समूह की धारा से प्रक्षालित प्रत्येक अवयव में जिनकी माधुर्यराशि परिलक्षित होती रहती है, जिनका चित्त नियत ही रमणीयता में समुत्सुक है, उन परमानन्दपुरी हर्षलोल होकर पुनः-पुनः निष्पन्द होते रहते हैं, नृत्यरूप रसमयी नदी प्रवाह का पान बारम्बार करतः मानन्द से उसका विस्तार नेत्ररन्ध्र से करते रहते हैं, अर्थात्—जिनके नेत्ररन्ध्र से अविरल जलधारा निर्गलित होती रहती है ॥३०॥

"प्रभुवर गौरचन्द्र—कटिसूत्र धारण किये हैं, तज्जन्य श्रीक्षेत्र मध्य में यतिवर दामोदर ही प्रभु स्वरूप रूप में उद्घोषित हुये हैं, कारण—दामोदर नृत्योत्सव में उत्सुक होकर कायवाक्य मन से कलानिधि गौरचन्द्र में मानों प्रवेश करते हैं, अर्थात् नृत्यकाल में प्रभु के सहित मानों एकात्मा हो जाते हैं, ॥३१॥

उन्मीलन्मकरन्दसुन्दरपदद्वन्द्वारविन्दोल्लस–
द्विन्यासः क्षितिषु प्रकाममनुना दामोदरेण प्रभुः ।
आमुग्धैः करकुट्नलैरित इतो हर्षादधोधो गुरु–
स्नेहार्द्रेण दृढ़ोपगूहितपदो नृत्यन्नसौ दृश्यताम् ॥३२॥

काशीश्वरप्रभृतयो रभसेन काशी–
मिश्रश्च हर्षभरविश्रमणैकपात्रम् ।
गोविन्दएष च परस्परमुत्कचित्ता
दृग्भिस्तदीयनटमामृतमाधयन्ति ॥३३॥

नृत्यन् क्षितौ समुपदिश्य निजाङ्घ्रि पद्मं
दोर्भ्यां सुखेन परिरभ्य विलोलमौलिः ।
चुम्बन् जनं जनमभिप्रकटानुरागो
मूर्द्ध्नि क्षिपन् विजयते कनकाद्रिगौरः ॥३४॥

उन्मीलित मकरन्द के द्वारा जिनका पादपद्म विन्यास मनोहर हुआ है, अर्थात् नृत्यकाल में चरण से निर्गत घर्मसमूह होने से मकरन्द क्षरणकारि पद्मतुल्य हुआ हैं, उन गौरचन्द्र दामोदर कर्त्तृक हर्ष एवं गुरुतर स्नेह से आर्द्रचित्त होकर कुट्नल द्वारा इतस्ततः अधोऽधः प्रदेश में सुदृढ़ आलिङ्गित होकर नृत्य कर रहे हैं, हे भक्तवृन्द ! आप सब सन्दर्शन करें ॥३२॥

हर्षातिशय एवं विश्राम का एकमात्र भाजन काशी मिश्र, गोविन्द, काशीश्वर प्रभृति भक्तगण परस्पर अति हर्ष से उत्सुक चित्त होकर नेत्रद्वारा गौरचन्द्र का नटनामृत पान करने लगे थे ॥३३॥

नृत्य करते-करते भूतल में निज पादपद्म निक्षेप करतः बाहु युगल के द्वारा भक्तगण को शिरः कम्पन पूर्वक आलिङ्गन एव मस्तकोपरि निज चरण स्थापन कर जो अनुराग प्रकट करते रहते हैं, वह सुवर्ण शैलाकृति गौरहरि जययुक्त हो ॥३४॥

एतद्विना जगति नान्यदिहास्ति रम्यं
श्रीमत्सुगन्धिगुरुकारुणिकं दुरापम् ।
इत्याकलय्य नटने निजपादपद्मं
हृद्यर्पयन् विजयते सततञ्च चुम्वन् ॥३५॥

स्निह्यन्निव प्रतिपदं हृदयान्तरेषु
कुर्वन्निवाक्षियुगलेन पिवन्निवासौ ।
आस्वादयन्निव मुहुर्निजपादपद्मं
नृत्ये जयत्यविरतं कमनीयगौरः ॥३६॥

पदाम्भोरुहद्वन्द्वविन्यासनेऽभि-
स्फुरन्माधुरीधौतशोनाब्जशोभः ।
ललद्रामरम्भाविलासावलम्व-
स्थलोरुर्निपीनोल्लसत्श्रोणिविम्वः ॥३७॥

इस जगन्मण्डल में इससे अधिक रमणीय अपर कुछ भी नहीं है, एवं यह सुश्रीक, सुगन्धि, अतिशय कारुणिक एवं दुर्लभ है, गौरचन्द्र इसका प्रकाश कर नृत्यकाल में निज पादपद्म हृदय में अर्पण कर रहते हैं, उक्त भावमय महाप्रभु जययुक्त हों ॥३५॥

जिन्होंने निज पादपद्म को स्नेह किया है, क्षण-क्षण में वक्षःस्थल में धारण किया है, नेत्रयुगल से पान एवं आस्वादन किया है, उन कमनीयकान्ति गौरचन्द्र निरन्तर जययुक्त हों ॥३६॥

पादपद्म विन्यास से जिनका माधुर्य प्रक्षालित रक्तपद्म की शोभा विस्फुरित हो रही है, एवं जिनके ऊरुस्थल सुशोभित रामरम्भा विलास स्वरूप हैं,, जिनके नितम्ब मण्डल स्थूल अथच मनोहर हैं ॥३७॥ इतः सप्तचत्वारिंश श्लोक पर्यन्त भुजङ्ग प्रयातछन्दः । भुजङ्ग प्रयातं चतुर्भिर्यकारैः ॥

समुद्यज्जवाजालकोद्दामरक्तां–
शुकं स्वच्छशोभारुणिम्नानुरक्ताम् ।
त्रिलोकीं विधायोद्गतानन्दखेल:
स्फुरत्ताण्डवोद्दण्डदोर्दण्डलील: ॥३८॥

स्फुरन्मुष्टिमेयावलग्ने नितान्त–
श्रितश्रीकटीसूत्रकान्त्यातिकान्त: ।
गुरुस्वेदवारिप्रवाहाप्लुतोर
स्थलीक: सदुद्दामरोमाञ्चपूर: ॥३९॥

तदानन्दधारां वहन् क्षीरवारां
निधे: सानुकारां विकारिप्रचाराम् ।
विलोलालिखेलाविलासाक्षिलीला–
रसै: साधु कुर्वन् जनस्याब्जगर्भम् ॥४०॥

अभिनव जवापुष्प दल के तुल्य उत्कृष्ट वसन की सुनिर्मल शोभायुक्त रक्तिमा के द्वारा जो त्रिलोक को अनुरक्त करत: आनन्द से क्रीड़ा करते रहते हैं, एवं स्फुरित उद्दण्ड नृत्यकाल में जिनके उत्तोलित बाहुयुगल लीलाविलास से शोभित हैं ॥३८॥

प्रस्फुरित एवं मुष्टिमेय क्षीणोदर में समधिक परिहित श्रीमत् कटिसूत्र की कान्ति से जो कान्तिमान् हैं, अतिशय घर्मवारि का प्रवाह से जिनका वक्ष:स्थल आप्लावित है, एवं जिनके रोमाञ्चसमूह प्रशस्त एवं वृहत् हैं ॥३९॥

क्षीरसमुद्र की अनुकारिणी एवं प्रेमविकार की प्रस्तावकारिणी आनन्दधारा को जिन्होंने धारण किया है, चञ्चल सखीवृन्द की क्रीड़ा कौतूहल सम्पादक नेत्र युगल के लीलारस के द्वारा भक्तगण के निकट जो अब्जगर्भ का सम्पादन कर रहे हैं, अर्थात् जो नेत्र पूर्वकाल में

अलंकुर्बदानन्दमूर्च्छाप्रकाश-
श्रितस्तम्भरोमाञ्चकम्पप्रकाशः ।
अनिर्वार्य भावप्रकाशातिरेक-
स्फुरद्देहकान्तिच्छटाच्छन्नलोकः ॥४१॥

त्रिलोकीस्फुरत्कीर्त्तिपीयूषधारः
प्रकाशीकृतप्रेमभक्तिप्रचारः ।
लसत्तप्तकार्त्तस्वरश्रीमदङ्ग-
च्छटाच्छन्नलावण्यतारुण्यभङ्गः ॥४२॥

नदन्मन्दिरावृन्दरिङ्गन्मृदङ्गैः
समुद्यन्महोल्लासपाथोधिभङ्गैः ।
मुहुर्गायनैर्मुग्धसङ्गीतभङ्गी-
समुत्कण्ठकण्ठैः सदानन्दसङ्गी ॥४३॥

व्रजङ्गनावृन्द के विविध विलास सम्पादन करता था, वह नेत्र विविध विलास का विस्तार कर रहा है, सुतरां भक्तवृन्द उक्त नेत्र को पद्मगर्भरूप में सन्दर्शन कर रहे हैं ॥४०॥

सामर्थ्यवर्द्धक आनन्द, मूर्च्छा, प्रकाश, चेतन, तदाश्रित स्तम्भ रोमाञ्च एवं कम्प जिनमें समधिक प्रकटित है, एवं अनिवार्य भाव प्रकाशातिशय्य से प्रस्फुरित अङ्गकान्ति छटा से जिन्होंने गमस्त लोक को आच्छन्न किया है ॥४१॥

जिनकी देदीप्यमान् कीर्त्तिरूप अमृतधारा त्रिभुवन में विस्तृत है, जिन्होंने प्रेमभक्ति का प्रचार कार्य किया है, जिनमें तप्तकाञ्चन तुल्य सुश्रीक अङ्गछटाछन्न लावण्य एवं तारुण्य तरङ्ग विद्यमान है, अर्थात् जो नित्ययौवन सम्पन्न हैं ॥४२॥

शब्दायमान मन्दिरा समूह के एवं मृदङ्ग समूह के वाद्य द्वारा

जगन्नाथदेवं विमुग्धं स्वलास्यै-
र्त्रिलोक्यातिहर्षाश्रुघर्माम्बुहासैः ।
रसोत्कर्षतो निःसहश्रीमदङ्गः
सदारज्यदाकुञ्चितापाङ्गभङ्गैः ॥४४॥

पुरस्थेन नीलाद्रिमौलीश्वरेण
स्वलास्यावलोकास्थिरात्यस्थिरेण ।
निमेषं दृशोः कर्त्तुमप्यक्षमेण
प्रमत्तीकृतो भूरिहर्षोद्गमेन ॥४५॥

विलोलाननाम्भोजलीलाविलासः
स्फुरच्छीत्कृतोद्भासिरोमप्रकाशः ।
अपूर्वं त्रिलोकीं प्रति प्रेमपाथः
प्रदो गुण्डिचायां नरीनर्त्ति नाथः ॥४६॥ (कुलकम्)

एवं वर्द्धनशील महानन्दरूप समुद्र तरङ्ग के सहित अर्थात् अतिआनन्द के सहित जो सब गान कर रहे हैं, उन सब गायकों की मनोहर सङ्गीत तरङ्ग से जो सर्वदा आनन्दित हो रहे है ॥४३॥

नृत्य करते-करते परम सुन्दर श्रीजगन्नाथदेव का दर्शन करतः अतिहर्ष से विगलित आनन्दाश्रु एवं घर्मजलयुक्त कण्ठहेतु सर्वदा आरक्त एवं आकुञ्चित अपाङ्ग तरङ्ग हेतु एवं भावोत्कर्ष वशतः जिनके श्रीअङ्ग समूह निःसङ्ग हुये हैं ॥४४॥

नृत्यदर्शनाभिलास से अतिशय अस्थिर पुरीस्थित श्रीजगन्नाथ देव के नेत्रयुगल निमेष त्याग करने में अक्षम हुये हैं, अर्थात् निमेष काल भी जिनका विराम नहीं है, तादृश हर्षोद्गम कर्त्तृक जो अत्यन्त प्रमत्त हैं ॥४५॥

जिनके मुखपद्म की लीला अतिशय चञ्चल है, एवं प्रस्फुरित

विलोक्यास्य लास्यं ललन्माधुरीकं
क्षमो नैष कर्त्तुं निमेषौ दृशोः किम् ।
यदुत्फुल्लपाथोरुहाक्षोऽयमासीत्
समस्तात्मना तत्र मग्नः प्रकामम् ॥४७॥

अङ्गुल्यग्रैः स्रजमनुपमां चक्रवद्भ्रामयित्वा
हर्षोत्कर्षात् क्षिपति स तथा मण्डले तत्र नृत्यन् ।
इच्छापूर्वं यमनु चकमे चेतसा तस्य कण्ठे
दूरस्थस्याऽपि च वत तथा राजते चित्रमेतत् ॥४८॥

इत्येवं बहुधा विधाय नटनं रम्यं शचीनन्दनः
श्रीनीलाचलमौलिनीलतिलकस्याग्रे पथि प्रेमवान् ।

शीत्कार शब्द से जिनकी रोमशोभा उद्भासित है, एतादृश भावमय गौरचन्द्र त्रिलोक के प्रति अपूर्व प्रेमवारि वितरण कर गुण्डिचा मन्दिर में पुनः-पुनः नृत्य कर रहे हैं ॥४६॥ (कुलकम्)

श्रीजगन्नाथदेव—श्रीगौरचन्द्र के अभिलषित नृत्य को देखकर ही क्या नेत्र का निमेष विक्षेप करने में असमर्थ हुये हैं, कारण—उत्फुल्ल कमल लोचन श्रीजगन्नाथदेव समस्त आत्मा के सहित ही गौरभाव में यथेष्ट मग्न हुये हैं ॥४७॥

श्रीगौरहरि—अङ्गुली के अग्रभाग में निरुपम माला को चक्र के समान घूर्णित कर अतिशय हर्ष हेतु उस प्रकार ही पुनर्बार नृत्य करतः भूमि में निक्षेप करते हैं, एवं इच्छा पूर्वक चित्त में जिनकी कामना किये थे, दूरस्थ होने पर भी उनकी ही अर्थात् श्रीजगन्नाथदेव के कण्ठ में ही उक्त माला शोभित है, यह अतीव आश्चर्य है ॥४८॥

शचीनन्दन गौरहरि—श्रीनीलाचल मौलितिलक श्रीजगन्नाथ

दृष्ट्वा तन्मुखचन्द्रसुन्दररुचिं पीयूषवच्छीतल
मानन्दाम्बुनिधौ ममज्ज सुभृशं सार्द्धं निजाङ्घ्रि प्रियैः ॥४६॥



इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये गुण्डिचानृत्यादि वर्णनं षोड़शः सर्गः ।



देव के अग्रपथ में अतीव प्रेमाविष्ट होकर बहुविध रमणीय नृत्य करतः एवं अमृतवत् सुशीतल नीलाचलनाथ की सुन्दर कान्ति सन्दर्शन करतः निज पादपद्मानुरक्त भक्तवृन्द के सहित ही आनन्द सागर में सातिशय मग्न हुये थे ॥४६॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये गुण्डिचानृत्यादि वर्णनं षोड़शः सर्गः ॥



सप्तदशः सर्गः

नटनान्तरेऽथ घनघर्मवारिणा
विलसत्तनुर्वरविलोहितांशुकः ।
पुरतोऽसिताचलपतेर्मुहुर्बभौ
कनकाचलो रुचिरधातुनिर्झरः ॥१॥

अभितोऽभितः पथिरथान्तरान्तरे–
प्रतिमास्तथास्य जगतांपतेर्मुहुः ।
अवलोक्य तेन कनकाद्रिकान्तिना
किमिवेशितृत्वमिह ताभ्य आदधे ॥६॥

सुचिरं विलस्य पुरतो रथस्य स
प्रविवेश शीतलतलद्रुमावहम् ।
असिताद्रिमौलितिलकस्य वल्लभं
श्रमशान्तये ह्युपवनं मनोरमम् ॥३॥

अनन्तर नृत्य समापनपूर्वक घन-घन घर्मवारि से विलसिताङ्ग होकर एवं उत्कृष्ट अरुण वसन परिधान करतः नीलाचलपति के अग्र भाग में मानों–मनोहर धातु निर्झरयुक्त कनकाचल के तुल्य गौरहरि शोभित हुये थे ॥१॥ त्रयोविंश श्लोक पर्यन्त मञ्जुभाषिणी छन्द है—''सजसा जगौ यदि मञ्जुभाषिणी''

कनकाचल कान्ति गौरसुन्दर रथमार्ग के मध्य में इतस्ततः श्रीजगन्नाथदेव की प्रतिमूर्त्ति को बारम्बार सन्दर्शन करके ही क्या उक्त मूर्त्ति समूह में ईश्वरत्व का आधान किये थे ? ॥२॥

अभिनव जाति, कुन्द, करवीर, यूथिका, नवमालिका, मनोहर माधवी समूह, वकुल, रसाल, (आम्र शिशु तथा चम्पक वृक्ष के

नवजाति कुन्द करवीर यूथिका–
नवमालिका ललितमाधवीचयैः ।
वकुलै रसालशिशुभिश्च चम्पकैः
परितः समावृतममन्दविभ्रमम् ।।४।। (युग्मकम्)

परितः प्रसूनभरमाश्लिषंस्तथा–
सरसां वहन् सरसशीकरोत्करम् ।
तदनुसङ्गि घर्मकणिकाः समाहर–
न्नभजत् प्रभुं लघु लघु क्षणं मरुत् ।।५।।

वनदेवताभिरनिशं मनोरमै–
र्नवपल्लवैर्नवशिरीषचामरैः ।
लघुवीज्यमानतनुरुत्सुकात्मभिः
सदृशं बभौ विहितगौरविग्रहः ।।६।।

द्वारा आवृत एवं गुरुतर शोभायुक्त तथा जिसके तलदेश सुशीतल, उस प्रकार वृक्षराजी द्वारा वेष्टित एवं नीलाचलपति का जो अतीव प्रिय, उस-उस बन के मध्य में श्रीगौराङ्गसुन्दर सुदीर्घकाल रथाग्र में विलास करतः श्रमशान्ति के निमित्त प्रवेश किये थे ।।३-४।।

उस समय सुशीतल जलबिन्दुवाही समीरण इतस्ततः पुष्प समूह को आलिङ्गन करतः प्रभु के अङ्गसङ्गि घर्मकणा अपहरण करतः मन्द-मन्द सञ्चालन के द्वारा श्रीगौरचन्द्र का भजन करने लगा ।।५।।

वनदेवतावृन्द नूतन पल्लव एवं नूतन शिरीशपुष्प रूप चामर के द्वारा नियत जिनके अङ्ग की वीजन समुत्सुक चित्त से मन्द-मन्द भाव से कर रहे हैं, उस प्रकार गौरवपुः गौरचन्द्र निरतिशय शोभित हुये थे ।।६।।

मधुरोल्लसद्वनदीधितिच्छटा-
मृतधारया स्नपयतीव किं जगत् ।
त्रिविधैश्च तापतपनैर्दुरासदै-
र्नहि बाध्यतामिति स गौरचन्द्रमाः ॥७॥

अथ केचनास्य जगतां पतेः प्रियाः
परमप्रभावभरभूरिभूषिताः ।
रससारसिन्धव इव ययुः प्रभो
पदपङ्कजद्वयमवेक्षितुं तदा ॥८॥

ससनातनानुपमरूपरूपिणः
स्वपदाब्जभक्तिरससागरत्रयान् ।
प्रददर्श विस्फुरितभाववीचिभि-
र्जगदाप्लुतं विदधतः कृपानिधिः ॥९॥

आध्यात्मिक—अधिदैविक आधिभौतिक भेद से त्रिविध सन्तापरूप तपन इसको बाधा प्रदान न करे, तज्जन्य ही गौरचन्द्र मधुरोल्लास विशिष्ट वदन दीधिति की छटामृत धारा से क्या जगत् को प्लावित कर रहे थे ॥७॥

अनन्तर रासरससागर स्वरूप अर्थात् महारसिक चूड़ामणि श्रीजगन्नाथदेव के कतिपय प्रियभक्त, महाप्रभावातिशय से विभूषित होकर श्रीगौरचन्द्र चरणकमल सन्दर्शनार्थ समागत हुये थे ॥८॥

उनसब के मध्य में श्रीसनातन, श्रीरूप एवं अनुपम नामक व्यक्तित्रय को श्रीगौरहरि देखे थे, वे सब विस्फुरित भावतरङ्ग के द्वारा जगत् को आप्लुत कर रहे थे, एवं श्रीचैतन्य चरणारविन्द भक्तिरसाप्लुत थे, एवं श्रीजगन्नाथदेव के अनुपम रूपशाली थे ॥९॥

अथ ते समेत्य निकटं महाप्रभो-
रनुभावसोदरतमा इव त्रयः ।
प्रियसोदरा विहितकाकुभाषित
भृशमस्तुवन् जलजजन्मनस्तवैः ॥१०॥

अथ भूयशो गलितनेत्रवारिभिः
पुलकोत्करैर्मृदुतया च चेतसः ।
विवशा महाप्रभुसमीपमास्थिताः
स्तवनं प्रचक्रुरथ वीतसाध्वसा ॥११॥

स निशम्य तत्तदवहित्थया प्रभु-
र्निजगाद भूयश इदं कृपानिधिः ।
अयमेष नीलगिरिमौलिचन्द्रमाः
पुरतः समेत्य कुरुत स्तवं न किम् ॥१२॥

निविड़ानुरागपटलीबलत्तर-
द्रढ़िमान एत इति यान्तु वा कथम् ।

अनन्तर अनुभाव सोदरतम सहोदरत्रय महाप्रभु के समीप में समागत होकर अतीव विनय वाक्य से ब्रह्मस्तव के द्वारा अतिशय स्तव करने लगे थे ॥१०॥

पश्चात् भ्रातृत्रय महाप्रभु के निकट में विगतभय होकर भी बिगलित नेत्रजल एवं पुलकसञ्चय से परिव्याप्त शरीर होकर मृदुचित्त विवश अवस्था में पुनर्बार स्तव करने लगे थे ॥११॥

उस समय कृपानिधि गौरचन्द्र स्तव समूह को सुनकर कहे थे—"नीलाचलमौलि जगन्नाथदेव ही क्या आकार गोपन पूर्वक मदीय सम्मुख में स्तव कर रहे हैं?" ॥१२॥

यह सुनकर भ्रातृत्रय ततोधिक यत्न से स्तव करने लगे थे,

श्लथतां ततोऽधिकमभिप्रयत्नतः
स्तवनं प्रचक्रुरपि वीतसाध्वसाः ॥१३॥

विविधप्रकारमपनीय साहसं
न शशाक वारयितुमेष तान् यदा ।
अतिहर्षवारिनिधिपूरसञ्चयै-
रवगाहिता विदधिरे तदैव ते ॥१४॥

न मे भक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः स्वपचः प्रियः ।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं सच पूज्यो यथा ह्यहं ॥१५॥

इति संनिपठ्य मधुरं महाप्रभुः
प्रणनाम भूमिषु निपत्य दण्डवत् ।
तदतिप्रगल्भमनसो न ते ततो
भयमययुः प्रबलभक्तिमत्तया ॥१६॥

कारण—निविड़तम अनुराग समूह के द्वारा वर्द्धमान सुदृढ़ता अर्थात् अनुराग कभी भी शिथिल होता है ? ॥१३॥

जब श्रीगौरहरि विविध प्रकार साहस को अपनीत करके भी उनसब को निवारण करने में असमर्थ हुये, तब समधिक आनन्द सागर की प्रवाह राशि में उनसब को अवगाहत कराये थे ॥१४॥

चतुर्वेदाध्यायी ब्राह्मण मेरा भक्त नहीं है, किन्तु यदि श्पच भक्त होता है तो वह मेरा अतिशय प्रिय है, मैं उसको प्रदान करता हूँ, एवं उससे ग्रहण करता हूँ, मैं जिस प्रकार पूजनीय हूँ, उस प्रकार ही वे भी पूजनीय है ॥१५॥

श्रीमन्महाप्रभु—उक्त श्लोक मधुर स्वर से पाठ कर भूतल में दण्डवत् निपतित होकर प्रणाम करने से भ्रातृत्रय प्रबल भक्तिमत्त हेतु उससे भीत नहीं हुये थे ॥१६॥

मधुरोल्लसद्वद वदेति भूयशो
वचनं यदाविरभवन्महाप्रभोः ।
ददृशुस्तदाभिमतरूपमुत्तमं-
शतचन्द्रसान्द्रकिरणप्रकाशवत् ॥१७॥

सतु गौरचन्द्र इति निर्भरोत्सुको
द्विगुणप्रकाशमधुमाधुरीमयः ।
अवदन्मुहुर्वदवदेति निर्भरं-
स्मितदीधितिस्नपितभूमिमण्डलः ॥१८॥

अथ ते विहाय जलजोद्भवस्तमं
तृणसञ्चयं च परिगृह्य दन्तकैः ।
अधिकण्ठमभिनिबध्य वाससोऽञ्चल-
मुत्सुका विदधिरेतरां स्तुतिम् ॥१९॥

स्वमनोनुऽकूलमभिवाञ्छितप्रदं
विनिपठ्य गोपरमणीजनोदितम् ।

"बारम्बार कहो" इस प्रकार मधुर उल्लास युक्त वाक्य जब श्रीमन्महाप्रभु से निर्गत हुआ तब भ्रातृत्रय शत-शत चन्द्र का निविड़ किरण प्रकाश के समान उत्तम अभिमत रूप गौरचन्द्र को सन्दर्शन किये थे ॥१७॥

उस समय द्विगुण प्रकाश रूप मधुर माधुर्यमय गौरचन्द्र सातिशय उत्सुक होकर "कहो-कहो" जब कहने लगे, तब उनकी सुमधुर हास्यकान्ति के द्वारा भू-मण्डलसिक्त होने लगा ॥१८॥
अनन्तर भ्रातृत्रय—ब्रह्मस्तव परित्याग पूर्वक दन्त द्वारा तृणगुच्छ धारण करतः गललग्न कृत वासा होकर अतिशय उत्सुक चित्त से अत्यन्त स्तव करने लगे थे ॥१९॥

विदधुस्तवं नयननीरभूषिताः
सुखसागरे परिममज्जुरप्यमी ॥२०॥

इति निर्भरं परमकाकुभाषितै-
र्मधुरं सुधामयमिवाकलय्य स ।
भृशमानयानय विधीयतां द्रुतं-
सुमहाप्रसाद इति सस्पृहोऽभवत् ॥२१॥

अथ ते पदाम्बुजयुगस्य सन्निधौ
क्षितिमूलमध्यतिशयप्रवेपिताः ।
निपतन्त एव नयनाम्बुनिर्भरैः-
परिधौतसर्वतनवः समासत ॥२२॥

अथ सम्प्रसादितमहाप्रसादको
ललितैर्घसाभिधघटैस्त्रिभिस्ततः ।
मधुरोल्लसद्वदनचन्द्रसुन्दरो-
रुरुचे विभुर्निजजनप्रियङ्करः ॥२३॥

भ्रातृत्रय नेत्रजल से भूषित हो निज मन में अनुकूल एवं अभिलषिदप्रद गोपरमणीगण के कथित वाक्य पाठ करतः स्तव किये थे ॥२०॥

श्रीगौरहरि—इस प्रकार परम काकु वाक्य से सुमधुर एवं सुधामय वाक्य श्रवण करतः "शीघ्र आनयन करो-शीघ्र आनयन कर" यह कहकर अतीव पृहायुक्त हुये थे ॥२१॥

अनन्तर भ्रातृवृन्द—श्रीप्रभुपादपद्म के निकट क्षितितल में कम्पिताङ्ग होकर एवं नयनाम्बु निर्भर से समस्ताङ्ग विधौत करतः पतित होते-होते ही उपविष्ट हुये थे ॥२२॥

अनन्तर निजजन प्रियकारी प्रभु गौरचन्द्र घस नामक तीन

अथ तेऽपि निवृतहृदो मनोरथा-
नुमतप्रकाशरुचिदर्शनोत्सुकाः ।
विगलद्विलोचनझराप्लुताङ्गका-
श्चलिता बभूवुरतिभाग्यराशयः ॥२४॥

उपवनमधि हर्षवारांनिधि-
र्नटनरभसलोलचित्तस्तदा ।
अथ मधुमधुरं चकारोद्भटं
नटनमभिरसं समं तद्विधैः ॥२५॥

सरभसमपि तत्र वक्रेश्वर-
द्विजकुलशशिना समं प्रेमवान् ।
मधुमधुररुचिच्छटासुन्दरः
सततमिह ततान लीलायितम् ॥२६॥

घटपूर्ण महाप्रसाद भोजन करतः मधुर एवं उल्लसित मुखचन्द्र से शोभित हुये थे २३॥

तत् पश्चात् मनोरथ के अनुमत प्रकाशित कान्ति युक्त श्रीगौरहरि का सन्दर्शन कर जिनकी उत्सुकता एवं लोचन विगलित जल धारा से जिनके अङ्ग आप्लुत थे, उन महाभाग्यशाली भ्रातृवय सुस्थमन से गमन किये थे ॥२४॥

आनन्दनिधि गौरहरि-नृत्य हर्ष से चञ्चलचित्त होकर उपवन के मध्य में भक्तगण के सहित सुमधुर एवं रस बहुल उद्दण्ड नृत्य प्रारम्भ किये थे ॥२५॥

सुमधुर कान्ति अर्थात् अति विस्तीर्ण दीप्तिच्छटा से सुन्दराङ्ग गौराङ्ग द्विजकुलचन्द्र वक्रेश्वर के सहित प्रेमाविष्ट होकर सानन्द से नियत विविध लीला विस्तार करने लगे थे। इतश्चत्वारिंश श्लोक पर्यन्त चन्द्रवर्त्मछन्दः-तल्लक्षणं चन्द्रवर्त्मनिगदन्तिरनभसैः ॥२६॥

क्षणमपि परिरभ्य वक्रेश्वरं
सरभसमनुचुम्बति श्रीयुतः ।
क्षणमपि लघु विन्यसन् राजते
समधुरुचिरपादपद्मद्वयम् ॥२७॥

क्षणमपि परितो मुहुर्विभ्रमं
सच परिरभतेऽथ तं भूयशः ।
लघु लघु मधुरं कलं गायति
स्मितरुचिररुचा क्षणं दीपयन् ॥२८॥

इति निभृतमनेन वक्रेश्वर–
द्विजकुलशशिनाथ सम्पादयन् ।
नटनमभिरसं रसाम्भोनिधि–
र्न्यधित स परितः पदाम्भोरुहम् ॥२९॥

तत्तथैव रभसादुपवनतो–
वासुदेव इति निर्भरमधुरः ।

श्रीयुक्तगौरचन्द्र—सहर्ष से कभी वक्रेश्वर को आलिङ्गन कर कौतुक वशतः मुखस्पर्श करते थे, कभी तो सुमधुर चरण नलिन युगल का विन्यास अवनी में शीघ्र-शीघ्र करतः शोभित हुये थे ॥२७॥

गौरहरि—कभी मुहुर्मुहुः विविध विलास विस्तार करतः पुनः पुनः वक्रेश्वर को दृढ़ परिरम्मण करते थे, एवं सुमधुर स्मितहास्य रुचि से दिङ्मण्डल को उद्दीप्त कर लघु-लघु सुमधुर अस्फुट स्वर से हरिनामगान करते थे ॥२८॥

रसाम्भोनिधि गौरहरि इस प्रकार द्विजकुल शशिनाथ वक्रेश्वर के सहित अतीव निर्जन में रसयुक्त नृत्य सम्पादन पूर्वक तत् पश्चात् स्वयं इतस्ततः चरण सञ्चालन करने लगे थे ॥२९॥

गान कौतुकरसैर्निजदयितं–
रञ्जयन् कलपदं रहसि जगौ ॥३०॥

एककः सुमधुरं कलनिनदो
गीतमुत्तमतमं मधुमधुरं ।
यज्जगौ कथमयं तमतिरसो
नो विकारमिह जात्वहह किमु ॥३१॥

गायतीह मधुरं भिषगृषभे–
वासुदेव इति निर्भरमधुरे ।
आननर्त्त रभसादवशतनु–
र्भावर्भावितनुद्युतिमधुरः ॥३२॥

अश्रुभिः सुबहलैः पुलकघटा–
पूरितैरवयवैरतिमधुरैः ।

मधुरभाषी वासुदेव आवेग से समागत होकर मधुरचित्त से समयानुरूप एवं भावोचित्त गान कौतुकरस के द्वारा प्रभु को सन्तुष्ट कर निर्जन में सुमधुर पदगान करने लगे थे ॥३०॥

सुमधुरभाषी एकाकी जिस प्रकार उत्तम मधुर स्वर से गान किये थे, आहा ! अत्यन्त अनुरागी गौरचन्द्र उस गान से विकार प्राप्त नहीं होंगे ? इतः पञ्चसु मन्दाकिनी छन्दः, लक्षण—न-न र-र घटितातु मन्दाकिनी ॥३१॥

वैद्यराज वासुदेव—इस प्रकार गान करने पर भावान्वित तनु कान्ति से सुमधुर गौरसुन्दर अतिहर्ष से अवसाङ्ग होकर नृत्यारम्भ किये थे ॥३२॥

बहुल परिमाण नयनधारा पुलकाचित अतएव अतिमधुर

स्तम्भ घर्म हसितादिभिरनिशं-
ताण्डवाकुलिततनुः स विजयते ॥३३॥

चन्द्रवर्त्मपिहितं वदनरुचा-
मेरुरेष विजितोऽपघनरुचा ।
निन्दितं नु कमलं पदकमलै
र्नृत्यतोऽस्य मधुरं मधुररुचः ॥३४॥

यत्तु गायति महारसबलितं
तत्र यद्यदिह नास्त्यतिललितम् ।
भावभावितमसौ निजदयिते
तत्ततो द्विगुणितं समकलयत् ॥३५॥

अष्टभाववलितं सतु युगपत्
श्रीमदङ्गतलतः परिकलयन् ।
आननर्त्त रभसादवशतनु-
र्गायतोऽस्य मधुरं बहु रचयन् ॥३६॥

अवयव, स्तम्भ, घर्म एवं हास्यादि द्वारा अनियत नृत्य कौशल से आकुलित तनु श्रीगौरहरि जययुक्त हों ॥३३॥

नृत्यकारि मधुर कान्तियुक्त गौरचन्द्र की वदन कान्ति से चन्द्रवर्त्म अर्थात् आकाशपथ आच्छादित, अङ्गकान्ति से सुमेरु पर्वत पराजित एवं चरण कमल के द्वारा कमल भी निन्दित हो रहे थे। पूर्व श्लोक चतुष्टयात् चन्द्रवर्त्मछन्दः ॥३६॥

वासुदेव महारसयुक्त जो-जो पद गान करते थे, उसमें अति लालित्य न होने से भी गौरहरि निज प्रियजन के गान से द्विगुणतर भावराशि को अवलोकन किये थे ॥३५॥

गौरहरि—महाहर्ष से अवशाङ्ग होकर युगपत् अष्टसात्त्विक

तत्तथोपवनमध्यतिमधुरः
श्रीशचीजठरवारिधिशशभृत् ।
रम्यताण्डवरसस्फुरिततनुः
सर्वतोऽतनुत निर्भरललितम् ॥३७॥

यो विलोकयति तस्य तु हृदयं
तत्क्षणेन चुलुकीकृतमभवत् ।
किन्तु तस्य नयनं गतनिमिषं-
तत्र तत्र सुभृशं परिमिलति ॥३८॥

एवमेष भगवानतिललितं
वासुदेवसहितो नटनरसम् ।
आविधाय परितो लघुविलसं-
स्तत्र तत्र सरसस्तटमगमत् ॥३९॥

भावविभूषित श्रीअङ्ग का दर्शन कर विविध माधुर्य विस्तार करतः गायक वासुदेव के निकट नृत्य करने लगे थे ॥३६॥

श्रीशचीगर्भसिन्धु हरीन्दु—उपवन के मध्य में रमणीय नृत्यरस से स्फुरिताङ्ग होकर विविध लालित्य विस्तार किये थे ॥३७॥

गौरहरि को जो व्यक्ति एकबार देखते थे तो उनका हृदय चुलुकित हो जाता था, अर्थात् वे परिपूर्ण दर्शन करने पर भी हृदय अतृप्त ही रहता था, किन्तु उनके नेत्र द्वय अपलक होने से उस-उस समय अत्यन्त विस्फारित हुए थे ॥३८॥

भगवान् गौरहरि—इस प्रकार वासुदेव के सहित अति मधुर नृत्यरस विधान करतः इतस्ततः द्रुतगति से विलास पूर्वक सरोवर के तीर में उपस्थित हुये थे ॥३९॥

फुल्लपङ्कजरज:पटलीकया-
कुर्वतासितरुचिभ्रमरकुलम् ।
दीर्घिकारुचिरशीकरनिकरै-
र्वायुना परिधुतं प्रभुमभजत ४०॥

तत्र शीतलतटे प्रसृमरया
च्छायया सुमधुरे मधुरमुखः ।
आदधे सपदि विश्रमणाविधि-
कं न हर्षति वस्त्वत्यतिललितम् ॥४१॥

सूपविष्टवति कारुणिकतरे
सङ्गताः समभवन्नथ कतरे ।
भाग्यसिन्धुनिविड़ाप्लुततनव
स्तत्पदाब्जपरिलोकनकुतुकात् ॥४२॥

प्रफुल्लित पराग पटली एवं मनोहर जलकणिका द्वारा जो वायू, भ्रमरनिकर को शुभ बनाता है, वह शैत्य, सौगन्ध्य एवं मान्द्य गुणविशिष्ट वायु कर्त्तृक कम्पिताङ्ग दीर्घिका गौरचन्द्र का भजन करने लगी, अर्थात् गौरचन्द्र दीर्घिका में अवगाहन किये थे ॥४०॥

अनन्तर सुमधुर मुख श्रीगौरहरि—सुविस्तृत छाया द्वारा सुशीतल तीरभूमि में विश्राम कार्य सम्पन्न किये थे, कारण—अति ललित वस्तु सेवन से कौन आनन्दित नहीं होता ? इसमें अर्थान्तर न्यास अलङ्कार है ॥४१॥

कारुणिकोत्तम श्रीगौरहरि सुख पूर्वक उपवेशन करने पर श्रीगौराङ्गदेव के चरण दर्शन कौतुहल हेतु भाग्यसागर में निविड़ तट आप्लुताङ्ग कतिपय भक्तगण श्रीप्रभु के समीप में उपस्थित हुये थे ॥४२॥

श्रीमन्नित्यानन्दपदाब्जप्रतिपन्न-
स्तत्तन्मध्ये कोऽपि महात्मा बहुभाग्यः ।
कृष्णाद्यो दासः स धरित्रीषु रम्यः
श्रीगौराङ्गं तं तत्र विलोक्याभिननन्द —४३॥

तमथ मधुरमुखचन्द्रमवेक्ष्य-
क्षितिसुरवर इह गौरसुधांशोः ।
नटनरभसभरघर्मजलाक्तं-
स्नपयितुमतनुत चेतसि चेष्टाम् ॥४४॥

स कुतश्चिदात्तघटएव महात्मा
लघुदीर्घिकाजलचयेन सतृष्णम् ।
प्रभुमूर्द्धनि नेत्रसलिलाप्लुतदेहः
पुलकावलीविलसितोऽथ सिषेच ॥४५॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु के पादपद्मानुरक्त भाग्यवान् एक महात्मा एवं धरणीतल में रमणीय कृष्णदास नामक भक्त—वहाँ आकर श्रीगौराङ्गदेव को दर्शन कर अतिशय आनन्दित हुये थे ॥४३॥

अनन्तर ब्राह्मणश्रेष्ठ श्रीकृष्णदास—श्रीगौरहरि के सुमधुर नृत्य एवं हर्षजनित घर्मजलाभिषिक्त मुखचन्द्र को अवलोकन कर स्नान करवाने के निमित्त मन में अभिलाष किये थे। मत्तमयूर छन्दः—वेदैरन्ध्रैर्मतौयसगा मत्तमयूरम् ॥४४॥

अनन्तर महात्मा कृष्णदास--किसी स्थान से घट संग्रह पूर्वक लोचनसलिल से आप्लुताङ्ग एवं पुलकिताङ्ग होकर घटपूर्ण दीर्घिका के जल के द्वारा अतीव साभिलाष चित्त से शीघ्र-शीघ्र श्रीप्रभु के मस्तकोपरि जलसेचन करने लगे थे। कलहंसछन्द--सजसाः सगौच कथितः कलहंसः ॥४५॥

इत्यानीय द्रुतमथ सलिलं
चक्रे सेकं कलसशतहृतम् ।
अद्वैतोऽयं तदवसरगतः
श्रीमान् रेजे प्रभुमुखपुरतः ॥४६॥

तं परिलोच्य मनोरमदेहो
गौरशशी करमस्य विधृत्य ।
पाणिदलेन तदात्मसमीपं-
स्नानरसाय निनाय कृपालुः ॥४७॥

अद्वैतोऽयं तत्तथैवोपविष्टः
स्नानार्थं श्रीगौरचन्द्रस्य सङ्गे ।
सोप्येवं तं गौरचन्द्रं च भूयः
स्वच्छस्वच्छैर्वारिभिः सिञ्चति स्म ॥४८॥

भूयोभूयस्तैः पयोभिः सुशीतै-
रत्योत्कण्ठात् सेचयामास विप्रः ।

इस प्रकार द्रुतगति से शत-शत कलस जलानयन पूर्वक प्रभु का अभिषेक कृष्णदास किये थे, तदवसर में अद्वैत समागत होकर श्रीप्रभु के सम्मुख में शोभित हुये थे। भ्रमरविलसितछन्द— मोगोनौगो भ्रमरविलसिता ॥४६॥

सुन्दराङ्ग गौरचन्द्र—अद्वैत को देखकर तदीय कर धारण पूर्वक निज करपल्लव के द्वारा स्नान विलास के निमित्त ले गये थे। दोघकछन्द—दोघकमिच्छति भत्रितयाद्गौ ॥४७॥

अद्वैत प्रभु--श्रीगौराङ्गदेव के सहित स्नानार्थ उपविष्ट हुये थे, एवं पुनः-पुनः सुनिर्मल जल धारा से गौरचन्द्र को अभिषिक्त करने लगे थे ॥४८॥

नेत्राम्भोभिः सोऽपि तत्राभिषिक्त-
श्चित्रं चित्रं गौरचन्द्रानुभावः ॥४६॥

ततः समात्तोद्गमनायवस्त्रो
गोविन्द आनन्दमयौ महात्मा ।
समाययौ तत्पुरतस्ततोऽसौ
जग्राह वासः सकटीरसूत्रम् ॥५०॥

एवमात्तवसनः प्रभुस्तदा
तत्र तत्र च महाप्रसादकम् ।
स्वैर्जनैः सममुपास्य निर्भरं
रम्यहासपरिहासवत्तया ॥५१॥

तत्तथोपवनविभ्रमेक्षणे
सस्पृहः प्रतिलतं प्रतिद्रुमम् ।
कौतुकानि मनसा समावह-
न्नाबभौ परमरम्यचेष्टितः ॥५२॥

विप्रवर्य्य अद्वैत अतीव उत्कण्ठा से सुशीतल जलधारा द्वारा प्रभु को सेचन किये थे, एवं स्वयं स्वीय नेत्रजल से अभिषिक्त हुये थे, अहो ! कैसा आश्चर्यकर श्रीगौरहरि का अनुभाव ? शालिनीछन्द मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः ॥४६॥

अनन्तर महात्मा गोविन्द आनन्दित होकर उद्गमनीय अर्थात् उत्तरीय वस्त्र ग्रहण करतः महाप्रभु के सम्मुख में उपस्थित हुये थे, एवं गौरचन्द्र भी कटि सूत्र के सहित वसन ग्रहण किये थे ॥५०॥

श्रीगौराङ्गसुन्दर—वसन परिधान पूर्वक स्वीय भक्तवृन्द परिवेष्टित होकर रमणीयहास्य परिहास करतः महाप्रसादान्न भोजन किये थे, पश्चात् उपवन की शोभा सन्दर्शन से आनन्दित होकर लता

भूयोऽपि तत्र रथसन्निकटं समेत्य
दृष्ट्वा जगत्पतिममन्दविलासरम्यम् ।
हर्षात् समं निजजनैः समुपेत्य पश्चात्
क्षिप्यन्नृथं विजयते परमप्रकाशः ॥५३॥

क्षणमपि करकमलजयुगकलित-
ध्वनि जय जय जय जय जय जय भोः ।
इति निरवधि रथपरिसर पृथिवी-
मभि कलपदमयमतिरहसि जगौ ॥५४॥

धृत्वा धृत्वा स्यन्दनरश्मीन्
श्रीगौराङ्गः पाणिसरोजैः ।
हर्षोत्कर्षैः साङ्गविभङ्गं
रेजे राजीवायतनेत्रः ॥५५॥

एवं वृक्षसमूह का साभिलाष कौतुक का अनुभव किये थे ॥५१-५२॥

पुनर्बार गौरहरि रथ के निकट उपस्थित होकर अमन्दविलास से रमणीय जगत्पति जगन्नाथदेव का दर्शन करतः हर्षातिशय्य से निज जनगण के सहित गमन कर पश्चात् दिक् से रथक्षेपण पूर्वक परम प्रकाश से जययुक्त हुये थे ॥५३॥

गौरचन्द्र—रथमार्ग के मध्य में कभी तो करपद्म युगल में आघात कर अर्थात् करताली प्रदान कर अति निर्जन में सुमधुर स्वर से बारम्बार जयध्वनि करना प्रारम्भ किये थे। शशिकलाछन्द---

गुरुनिधनमनु लरिह शशिकला ॥५४॥

राजीवायतनेत्र श्रीगौराङ्गदेव—करकमल द्वारा बारम्बार रथरज्जु को धारण करतः परमानन्द से अङ्गभङ्गी के सहित शोभित हुये थे ॥५५॥

उल्लासैर्हर्षोत्कर्षै रोमाञ्चालीराजद्देहो
गायद्भिस्तैस्तैः स्वीयैः स्वीयां लीलागाथामेव ।
उन्मीलद्विद्युन्मालाकान्तिप्रायश्रीमत्कान्ति-
र्बभ्राज श्रीगौराङ्गो धृत्वा धृत्वा तत्तद्रश्मीन् ॥५६॥
उच्चै रुच्छ्रितचूड़ाकुम्भग्रस्तपताका-
चुम्ववद्भास्करविम्वः श्रीमान् स्यन्दनमुख्यः ।
सोऽयं नीलमहीध्रश्रीमन्मौलिसुधांशो-
र्लोकेऽस्मिन्न हि केषामानन्दं तनुते वा ॥५७॥
इत्येवं पथि दृष्ट्वा दृष्ट्वा कौतुकचेष्टा-
मात्रविलासो लास्योद्दामसुमूर्त्तिः ।
श्रीमत्स्यन्दनयात्रां त्रैलोक्याद्भुतरूपां
गौराङ्गोतिकृपालुर्नेत्राभ्यामपिवत् सः ॥५८॥

उल्लास एवं हर्षोत्कर्ष हेतु एवं गौरचरित्र का कीर्त्तन जो सब करते रहते हैं, वे सब गायकवृन्द के सहित रोमाञ्चाङ्ग होकर उन्मीलित विन्दुन्माला अर्थात् सौदामिनी के तुल्य कान्तिशाली श्रीमान्गौरचन्द्र रथरज्जु को धारण बारम्बार करतः शोभित हुये थे । लीलाखेलछन्द-एकन्यूनौ विद्युन्मालापादौचेल्लीलाखेलः ॥५६॥

जिसकी समुन्नत चूड़ा में अवस्थित सकुम्भ पताका सूर्यविम्व को स्पर्श कर रही है, नीलाचलचन्द्र श्रीजगन्नाथ के शोभमान मुख्य रथ किसका आनन्द विस्तार नहीं करता है ? इतः षटषु लीलाछन्द द्विःसप्तच्छिदि लीलामसौम्भौ गौ-चरणेचेत् ॥५७॥

कौतुकचेष्टा ही जिनका विलास है, एवं जिनकी श्रीमूर्त्ति नृत्य विलास में कौतुकी है, अति कृपालु वह श्रीगौरचन्द्र इस प्रकार पथ मध्य में त्रैलोक्य से भी आश्चर्यरूप रथयात्रा का दर्शन स्वीय नेत्र से

अस्ताद्रिस्थवनालीं विश्रामार्थमुपैति
त्रैलोक्यस्थितमिश्रं भूयोभूय उदस्य ।
अर्के स्यन्दनमुख्यः श्रीनीलाद्रिसुधांशो-
स्तर्के तत्र निषण्णो नोत्साहो मनुजानाम् ॥५९॥
आगत्यानय कच्छे तत्रत्यान् सुखसिन्धौ
क्षिप्यन् सायमकार्षीच्छ्रीनीलाद्रिसुधांशुः ।
वर्त्मन्येव समन्तात् सञ्चार्यैः कशिपुना
क्रामन् पादविहारैरुद्धैस्तत्र निवेशम् ॥६०॥
प्रासादं स निवेश्य स्वस्थाने कृतवासो
नानाविभ्रमरम्यश्चेष्टामात्रविहारः ।
भोगान् भूरिरसाढ्यांस्तत्रोपास्य कृपालु-
र्बभ्राजासितशैलश्रीमच्छीतमयूखः ॥६१॥

किये थे ॥५८॥

सूर्यदेव—त्रिभुवन की अन्धकार राशि को विदूरित करतः विश्रामार्थ अस्ताचलस्थित वनराजि के मध्य में उपस्थित होने पर अर्थात् सन्ध्याकाल उपस्थित होने पर नीलाचलचन्द्र का मुख्य रथ भी गमन निवृत्त होकर सुस्थिर हुआ, किन्तु जनगण की उत्साह निवृत्ति नहीं हुई ॥५९॥

नीलाचलचन्द्र जगन्नाथदेव--आलय समीप में समागत होकर एवं पथ के मध्य में इतस्ततः सञ्चालित पादविहार अर्थात् प्रभु के मन्द-मन्द गमन से अवरुद्ध तत्रत्य भक्तवृन्द को सुखसिन्धु में निमग्न करके कशिपु अर्थात् तूलिका को आक्रमण पूर्वक गमन करते-करते प्रवेश समय में ही सन्ध्याकाल को उपस्थित किये थे ॥६०॥

जो निजस्थान में निवास करते हैं, एवं चेष्टामात्र ही जिनकी

अत्रान्ते स निशाया आगत्याम्बुजनेत्रो
दृष्ट्वा तन्मुखचन्द्रं निर्यल्लोचनवाष्पः ।
भूयो गौरसुधांशुर्गोविन्देन समेतो
रोमाञ्चाञ्चितदेहो बभ्राजामितचेष्टः ॥६२॥

इत्येवं सतु गुण्डिचोत्सवरसं दृष्ट्वा समासाद्य च
प्रायः कीर्त्तननर्त्तनेन दिवसं नीत्वा महोल्लासवान् ।
हर्षोत्कर्षमनोहरोऽतिमधुरः श्रीश्रीशचीनन्दनः
सर्वेषां हृदयं जहार परमानन्दैर्विमुग्धीकृतम् ॥६३॥

तत्तादृग्वरभूषणोत्करलसद्वेशेन सद्विभ्रमं
तत्तदृग्वरमाल्यसञ्चयलसत्सर्वाङ्गभङ्गीशतम् ।
तत्तादृग्वरवैभवप्रसृमरानन्दोत्सवश्रीमयं
द्रागदृष्ट्वैव जगत्पतिं जनचयास्तत्रैव चेतो दधुः ॥६४॥

लीला है, उन कृपालु श्रीमान् नीलाचलचन्द्र मन्दिर मध्य में प्रविष्ट होकर एवं प्रचुर रसपूरित भोग्यवस्तु ग्रहण करतः विविध विलास से शोभित हुये थे ॥६१॥

इत्यवसर में अम्बुजाक्ष श्रीगौरहरि रात्रि होने के पहले ही समागत होकर विगलित नेत्रवाष्प से नीलाचलचन्द्र के मुखचन्द्र को देखकर भी अपरिमितचेष्ट प्रभु—गोविन्द के सहित रोमाञ्चित शरीर होकर शोभित हुये थे ॥६२॥

अतिशय उल्लासी गौरचन्द्र – इस प्रकार गुण्डिचा यात्रा का उत्सवरस दर्शन एवं आस्वादन करतः नृत्य कीर्त्तन से ही दिन यापन किये थे, एवं हर्षोत्कर्ष से मनोहर एवं अतिमधुर श्रीशचीनन्दन गौरहरि विमुग्धीकृत जननिकर के हृदयापहरण किये थे ॥६३॥

उत्कृष्ट वसन भूषण से विभूषित निरुपम माल्य समूह से

शक्या चेन्नयनं नयत्यतितरां नीलाद्रिरत्ने जन–
स्तत्स्वान्तं पुनरत्र चित्रलिखितप्रायं शचीनन्दने ।
चेत्तत्रैव मदाति लोचनयुगं चित्रं चरित्रं ततो–
ऽकस्माद्वा जड़िमा विमोहनकरोऽकस्मान्मुहुर्जायते ॥६५॥

इत्येवं रथयात्रया सरभसं स्वैः स्वैः स्वकीयैर्गुणं
सङ्कीर्त्त्य स्वमवेक्ष्य तत्र मुदितः प्रत्यब्दमाक्रीड़ति ।
तत्तल्लास्यविलासकौतुककथा कैर्वा समुद्गीयतां
ब्रह्मादेरपि नास्ति नास्ति नितरां शक्तिकथा तादृशी ॥६६॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये श्रीपुरुषोत्तम विहारवर्णनमुपवनविलासश्च सप्तदशः सर्गः ॥

समलङ्कृत विविध विलासोत्सव कौतुकी श्रीजगन्नाथदेव को देखकर जनगण उनको आत्मसमर्पण किये थे ॥६४॥

जिस समय नीलाचलचन्द्र में नेत्रार्पण जनगण कर रहे थे उस समय उनके मन स्वाभाविक रूप से गौरहरि में लीन हो गया था, एवं जब शचीनन्दन में ही मनोनयन स्थापन करते थे, तब हठात् विमोहनकारिणी जड़ता आकर उनसब को निश्चल कर देती थी ।६५।

श्रीमान् गौरचन्द्र – रथयात्रा महोत्सव में स्वीय भक्तवृन्द के सहित स्वीय गुणग्राम अर्थात् श्रीकृष्ण गुणकीर्त्तन करके प्रतिवत्सर अतीव आनन्द से जो लीला करते हैं, उक्त नृत्य विलास की कौतूहल वार्त्ता का वर्णन करने में कौन समर्थ होगा ? ॥६६॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये श्रीपुरुषोत्तम विहार वर्णन मुपवन विलासश्च सप्तदशः सर्गः ॥



अष्टादशः सर्गः

अथ तत्र रथोत्सवे प्रभुः स्वजनेनैव विलस्य भूयशः ।
मुहुरष्टसु वासरेषु च प्रमुमोदोपवने स कौतुकी ॥१॥
इह रम्यसरःसु सस्पृहं विहितस्नानविधिर्यथायथम् ।
अवलोक्य सितेतराचलद्युमणिं राजति तत्र तत्र सः ॥२॥
प्रतिभूरुहमुलमुल्लसन् प्रतिवल्लि प्रतिकुञ्जमञ्जसा
प्रतिसैकतरञ्जितस्थलं विलसन् भ्राजति तत्र तत्र सः ॥३॥
विलसत्कलकण्ठकाकलीं कलयन् कोमलचित्तवृत्तिकः ।
मधुरं मधुपोत्करध्वनिं श्रवणेनैव पिवन् विराजते ॥४॥
इह तत्तददभ्रविभ्रमैर्भ्रममाणः स इतस्ततो मुहुः ।
विजहौ हृदयस्य कर्षणं चिरवृन्दावनविप्रयोगजम् ॥५॥

अनन्तर गौरहरि—रथयात्रा महोत्सव में स्वजनवृन्द के सहित पुनः-पुनः आनन्द विभोर होकर अष्टदिन उपवन के मध्य में कौतुक आनन्दानुभव किये थे ॥१॥

रमणीय सरोवर में यथाविधि स्नान क्रिया समापन पूर्वक श्रीनीलाचल नाथ का दर्शन कर उक्त स्थान में शोभा प्रकाश किये थे ॥२॥

गौरचन्द्र उक्त स्थान में प्रति कुञ्ज में, प्रति वृक्ष प्रति लता के प्रति सहसा उल्लसित होकर एवं बालुकारञ्जित प्रत्येक स्थल-स्थल में शोभित हुये थे ॥३॥

गौरचन्द्र अतीव कोमलचित्त होकर सविलास कलकण्ठ की काकली अर्थात् कोकिल की मधुर ध्वनि एवं मधुपवृन्द के सुमधुर शब्द कर्ण द्वारा श्रवण करतः विराजित हुये थे ॥४॥

गौरचन्द्र इस प्रकार विपुलतर विलास से बारम्बार इतस्ततः

अथ तस्य वहिर्विहारतो विजये नीलगिरौ जगत्पतेः ।
स तथैव परिच्छदोत्करैरभवन् सर्वजनप्रमोदकृत् ॥६॥
नववासरमध्यतः प्रभुः स नरेन्द्राख्यसरोवरे ततः ।
स्वजनैः सह तोयखेलनं सममद्वैतमहात्मनाकरोत् ॥७॥
उपगम्य नरेन्द्रसंज्ञकां सरसीं तां सरसीरुहेक्षणः ।
कुतुकेन निदाघशान्तये स ललम्बे निजभक्तवत्सलः ॥८॥
अरुणारुणपादपङ्कजो द्रुतचामीकरगौरविग्रहः ।
करुणारुणलोचनद्वयस्त्रिविधोत्तापविरामकृत् सदा ॥९॥
अवलम्ब्य स इत्थमञ्जसा सरसीं सारससालसेक्षणः ।
क्षणवान् जलकेलिकौतुके सह तैस्तैरमृतांशुवद्बभौ ॥१०॥
(युग्मकम्)

भ्रमण करतः चिरकाल वृन्दावन वियोग हेतु हृदयाकर्षण चित्तोत् कण्ठाको परित्याग किये थे ॥५॥

अनन्तर गौरचन्द्र—उक्त उपवन के वहिर्भाग में नीलाचल विहारी जगत्पति जगन्नाथदेव की रथयात्रा के पश्चात् उस प्रकार विविध परिच्छद द्वारा समस्त भक्तवृन्द को आनन्दित किये थे ॥६॥

तदनन्तर महाप्रभु महात्मा अद्वैत प्रमुख भक्तवृन्द के सहित नरेन्द्र नामक सरोवर में नवम दिवस पर्यन्त जलक्रीड़ा का अनुष्ठान किये थे ॥७॥

भक्तवत्सल राजीवलोचन गौरहरि—अति कुतूहल से नरेन्द्र सरोवर में उपस्थित होकर ग्रीष्मशान्ति के निमित्त अवगाहन किये थे ॥८॥

जिनके पादपद्म समधिक अरुणवर्ण अङ्ग विगलित काञ्चन तुल्य गौरवर्ण, लोचनयुगल कारुण्यपूर्ण एवं रक्ताभ है, एवं जो आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक भेद से त्रिविध तापापनोदन

कतरे दलसञ्चयाः परे नवकिञ्चल्कचया इव स्थिता ।
स्वयमेव वराटकाकृतिः स बभौ गौरशशी च पद्मवत् ॥११॥
करवारिभिरस्य केच ते सिषिचुस्तत्पदपङ्कजं मृदु ।
कतरे नयनाब्जरन्ध्रकैरिह तद्रूपसुधाः समापिवन् ॥१२॥
स तु भूरिविलासकौतुकं रचयन्निन्दुमुखः कृपानिधिः ।
शयितं कुतुकेन संश्रितः सुखमद्वैततनुं व्यरोचत ॥१३॥
सुनिपात्य कृपानिधिस्तदा प्रभुमद्वैत मधोजलान्तरे ।
तदुपर्यपि सालसः स्वयं परिसुप्तः स ययौ सनिद्रताम् ॥१४॥
इति भूय इहैव विभ्रमं रचयित्वा तटमुद्ययौ प्रभुः ।

कारी हैं उन पद्मवत् सालसनयन गौरचन्द्र क्षणवान् अर्थात् उत्सवाभिलासी होकर सहसा सरोवर में अवतरण पूर्वक भक्तवृन्द के सहित जलकेली कौतुक में अमृतांशु के समान दीप्तिमान् हुये थे ॥९-१०॥

एव उस सरोवर के मध्य में कतिपय भक्त—पद्मादि दल के समान अभिनव किञ्जल्क के तुल्य एवं कतिपय भक्त स्वयं पद्मबीज के सदृश हुये थे, एवं गौरहरि कमल के तुल्य शोभित हुये थे ॥११॥

कतिपय भक्तवृन्द—हस्त प्रक्षिप्त जलधारा द्वारा गौरचन्द्र के पादपद्म को अभिषिक्त किये थे, एवं कतिपय भक्त नेत्रपद्म रूप छिद्र के द्वारा गौरचन्द्र की सौन्दर्यसुधा पान करने लगे थे ॥१२॥

चन्द्रवदन कृपानिधि गोरसुन्दर— विविध विलास कौतुक विस्तार करतः शयन हेतु अति हर्ष से अद्वैताङ्ग आश्रय कर आनन्द विस्तार किये थे ॥१३॥

कृपानिधि गौरहरि—उस समय श्रीअद्वैत को अर्द्ध पातित करके भी स्वयं तदुपरि सालस होकर शयन करतः सुख निद्रानुभव किये थे ॥१४॥

विगलज्जलविन्दुसुन्दरं वसनं विभ्रदुपात्तकौतुकः ॥१५॥
अथ नीलगिरीन्द्रचन्द्रमा विदधेन्तर्विजयं तथैव सः ।
स तथैव शचीतनूभवः परिलोच्य भ्रमदं ययौ मुहुः ॥१६॥
प्रथमावसरं जगत्पतेः प्रयतो द्रष्टुमसौ शचीसुतः ।
शयनात् प्रहरे समुद्ययौ क्षणदायाश्चरमे कृपानिधिः ॥१७॥
शयनात् स तथा शचीसुतः प्रभुरुत्थाय विभोर्दिदृक्षया ।
विविधं विदधे विधानतः सतु दैनन्दिनकर्म निर्मलम् ॥१८॥
विमलैः सलिलैः परिष्कृतैर्विहितस्नानविधिर्महाप्रभुः ।
कटिसूत्रसमेतमञ्जसा वरवासः स दधार लोहितम् ॥१९॥
मदवारणराजविभ्रमो निजनामग्रहणे कृतक्षणः ।

श्रीमन्महाप्रभु—इस प्रकार सरोबर के मध्य में बारम्बार विलास विस्तार करतः तटदेश में उपस्थित हुये थे, एव विगलित जलविन्दु द्वारा सुन्दर वसन धारण करतः अतिशय कौतूहलाक्रान्त हुये थे ॥१५॥

अनन्तर नीलाचलचन्द्र उस रीति से ही विजय किये थे, एवंश्रीशचीनन्दन भी उक्त विजय दर्शन करतः बारम्बार प्रमुदित हुये थे ॥१६॥

कृपानिधि शचीनन्दन जगन्नाथदेव की प्रथम यात्रा सन्दर्शनार्थ अतीव सयत होकर निशावसान में शय्या से उत्थित होकर गमन किये थे ॥१७॥

प्रभु श्रीशचीनन्दन—श्रीजगन्नाथदेव की दर्शनेच्छा से शय्या त्याग पूर्वक यथा विधि दैनन्दिन निर्मल कर्मानुष्ठान किये थे ॥१८॥

महाप्रभु परिष्कृत विमल सलिल में स्नान कृत्य सम्पन्न करके सहसा कटिसूत्र के सहित उत्तम लोहित वसन धारण किये थे ॥१९॥

मदमत्त गजराज के समान जिनका विलास एवं स्वयं श्रीहरि

अरुणाम्बरसंवृताङ्गको वहिरेषोऽतिसुखेन निर्ययौ ॥२०॥
करकं परिगृह्य पाणिना सतु गोविन्दमहामतिस्ततः ।
सततं प्रभुसङ्गसङ्गतः सतु दामोदर इत्यसौ यतिः ॥२१॥
निजनामसुधापयोनिधेः सततास्वादलसन्मनोरथः ।
समुपेत्य ततः प्रभोः पुरं प्रविवेश प्रणतिं विधाय सः ॥२२॥
असिताचलमौलिचन्द्रमोवदनेन्दुः परिलोक्य निर्भरम् ।
विगलन्नयनाम्बुधारया परिधौताङ्गलतो विराजते ॥२३॥
ननु नीलगिरीन्द्रचन्द्रमाः परिलोक्यैनमदभ्रविभ्रमम् ।
अभिषिञ्चति तद्विलोचनद्वयनीरैरतिहर्षधर्षितः ॥२४॥
निमिषेण दुनोति मानसं बहुधेत्यस्य विलोकने प्रभुः ।

नाम ग्रहण में सर्वदा उत्सवमय हैं, उन गौरहरि अरुण वसनावृत होकर वहिर्भाग में निर्गत हुये थे ॥२०॥

पश्चात् महामति गोविन्द एवं यतिवर दामोदर कमण्डलु ग्रहण करतः नियत प्रभु के समीप में उपस्थित हुये थे ॥२१॥

अनन्तर यतिवर दामोदर हरिनामरूप सुधास्वाद मनोरथ से उल्लसित होकर श्रीप्रभु के सम्मुख में उपस्थित होकर प्रणति पूर्वक प्रविष्ट हुये थे ॥२२॥

यतिवर दामोदर नीलाचलचन्द्र वदनचन्द्र का दर्शन अनवरत करके विगलित नेत्रधारा से अङ्गलता को विधौत करतः शोभित हुये थे ॥२३॥

नीलाचलचन्द्र—ही क्या अत्यन्त हर्षाकृष्ट होकर अतिशय शोभाशाली यतिवर को दर्शन करतः उनके नयन सलिल से अभिषिक्त कर रहे हैं ? ॥२४॥

'दर्शन विषय में निमेष यतिवर के मानस को सन्तप्त कर

असिताचलरत्नमञ्जसा नयने निर्निमिषे चकार किम् ॥२५॥

स शचीतनुजो निजां तनूमभिषिच्याक्षिपयोभरैर्मुहुः ।
पुलकैर्द्विगुणीभवत्तनुर्मुमुदे हर्षवशस्तथा तथा ॥२६॥

प्रथमावसरं प्रभृत्यथो सतु धूपावधि तत्र सुस्थितः ।
बहुधा प्रणति प्रदक्षिणान्यपि कृत्वा निजमालयं ययौ ॥२७॥

समुपेत्य निजालयं ततो निजनामानि मुहुर्मुहुर्जपन् ।
उपविश्य रराज चन्द्रवत् जगदाह्लादकरः प्रकाशवत ॥२८॥

अथ तत्र सुखं गृहान्तरे स्थितवन्तं करुणालयं प्रभुम् ।
परिलोकितुमञ्जसा मुहुः परितः स्वैर्मुदिताः समाययुः ॥२९॥

रहा है" तज्जन्य ही क्या प्रभु नीलाचलरत्न इनके नयन युगल को निमेष शुन्य किये हैं ? ॥२५॥

शचीनन्दन गौरहरि लोचनपतित जलधारा से बारम्बार निज तनु को अभिषिक्त करतः पुलकावली से द्विगुणिताङ्ग होकर भी हर्ष से महाहृष्ट हुये थे ॥२६॥

अथच महाप्रभु—श्रीजगन्नाथ का प्रथमावसर अर्थात् प्रथमावकाश से धूपावधि उक्त स्थान मे ही सुस्थित होकर एव बहुधाप्रणति एवं प्रदक्षिणादि करके निजालय में गमन किये थे ॥२७॥

तत् पश्चात् प्रभु—निजालय में उपस्थित होकर मुहुर्मुहु निज नामजप कर उपवेशन करतः जगदाह्लाद कर गौरचन्द्र चन्द्र के तुल्य प्रकाशमान होकर शोभित हुये थे ॥२८॥

अनन्तर गृह मध्य में सुख पूर्वक अवस्थित करुणालय प्रभु श्रीगौरहरि को अनायास से दर्शन करने के निमित्त भक्तगण स्वजन वेष्टित होकर बारम्बार हर्षभर से आने लगे थे ॥२९॥

प्रथमं परिगृह्य सादरं प्रभुपूजार्थमुपायनं बहु ।
पुलकाश्रुभराकुलः सुखं प्रभुरद्वैत इहागमत्तदा ॥३०॥
पदयोर्विनिवेद्य भक्तितः सलिलं शुद्धतमं सुवासितम् ।
मलयोद्भवपङ्कसञ्चयैरथ भालस्थलमालिलेप सः ॥३१॥
कुसुमानि मनोहराण्यथो शुचिदुर्वाक्षतसञ्चयं ततः ।
विलिलेप कृपानिधिस्तदा प्रभुरद्वैतविभुं विशेषतः ॥३२॥
अथ भूसुरवंशचन्द्रमाः प्रथितो नारद इत्यसौ भुवि ः
विहितप्रणिपातसंहतिर्नयनाब्जेन तथा समर्च्चयत ॥३३॥
अथ ये प्रभुपादपल्लवप्रियभृत्याः सुनिवारिताश्च ते ।
समयात् समुपेत्य सस्पृहं नयनैस्तद्वदनं पपुर्मुहुः ॥३४॥

उस समय प्रथमतः अद्वैतप्रभु—महाप्रभु की पूजा के निमित्त विविध उपहार सादर से ग्रहण करतः पुलक एवं अश्रुभर से समाकुल होकर सहर्ष महाप्रभु के भवन में उपस्थित हुये थे ॥३०॥

एवं भक्ति पूर्वक पादयुगल में शुद्धतम एव सुवासित जल अर्पण करतः पश्चात् मलयज चन्दनपङ्क समूह ललाटस्थल में लेपन किये थे ॥३१॥

तदनन्तर कृपानिधि गौरहरि भी मनोहर पुष्प, पवित्र दुर्बा, अक्षत (आतप तण्डुल) प्रभृति माङ्गल्यद्रव्य के द्वारा श्रीअद्वैतप्रभु के अङ्ग में लेपन किये थे ॥३२॥

पश्चात् पृथिवी में नारदरूप में विख्यात द्विजकुल चन्द्रमा श्रीवास पण्डित—बारम्बार प्रणति विधान करतः नयनपद्म द्वारा अर्च्चना अर्थात् दर्शन करने लगे ॥३३॥

तत् पश्चात् जो सब प्रभु पादपद्म के प्रियभृत्य हैं, एवं जो सब सर्वथा निवारित हैं, वे सब ही समय प्राप्त कर उपस्थित होकर अनिमेष नयन के द्वारा प्रभु के वदनचन्द्र को सन्दर्शन किये थे ॥३४॥

इतरे बहवोऽपि सर्वतः समुपेताः प्रभुदर्शनोत्सुकाः ।
सभयस्पृहकौतुकत्रयं सततोऽधिकण्ठितचित्तवृत्तयः ॥३५॥
वहिरेव चिरं सुखोत्करैः स्थितवन्तः सुमहाकृपालयम् ।
ददृशुः क्रमशोऽतिसाध्वसादपि गोविन्दनिवेदनान्तरे ॥३६॥
(युग्मकम्)

इति ते प्रहरद्वयावधि प्रथिता भावशतेन भूयसा ।
ददृशु प्रभुमात्तकौतुकं वरकल्पद्रुमवन्मनोरमम् ॥३७॥
हसितैरपि कांश्चिदञ्जसा वचनेनापि तथेतरान् प्रभुः ।
कृपयाच कयाच नेतरानकरोदात्तमनोरथोत्सुकान् ॥३८॥
हृदयेषु पुनर्मनोरथानिह यो यो विदधे यथाविधान् ।
सकलान् स्वयमात्तकौतुकः सफलानेव चकार तांस्तथा ॥३९॥

यह छोड़कर बहुसंख्यक लोक भी प्रभु दर्शन समुत्सुक होकर समागत हुये थे, एवं भय, सस्पृह एवं कौतूहलाक्रान्त के द्वारा सतत उत्कण्ठित चित्त होने पर भी महानन्द से वहिर्देश में अवस्थान किये थे, एवं अति सङ्कोच से गोविन्द को निवेदन कर सुमहान् कृपामय गौरहरि का दर्शन क्रमशः किये थे ॥३५-३६॥ (युग्मकम्)

इस प्रकार प्रहर द्वयकाल भक्तवृन्द उत्कृष्ट कल्पवृक्ष तुल्य मनोरम कौतूहलाक्रान्त गौरचन्द्र का दर्शन बारम्बार किये थे ॥३७॥

महाप्रभु समागत भक्तवृन्द के मध्य में किसी को सरस मधुर वाक्य द्वारा, किसी को सम्भाषण द्वारा, तथा अन्यान्य कतिपय व्यक्ति को एक अनिर्वचनीय कृपा द्वारा आनन्दित किये थे ॥३८॥

पुनश्च जो-जो व्यक्ति मनोमध्य में जो-जो मनोरथ किये थे, श्रीगौरहरि महा कौतुकपुर्वक एक समय में ही उनसब को मनोरथपूर्ण किये थे ॥३९॥

नच निर्ववृते विलोक्य तं नच दृष्टीरहिताश्रुवाहिता ।
प्रपदान्तगमश्रुनोज्झितं मनुजेनास्य समीपतस्तदा ॥४०॥
स विधाय समस्तदेहिनां सुखमालोकनभाषणादिभिः ।
विदधे मधुराननः सुखादथ माध्यन्दिनकर्म शुद्धिमत् ॥४१॥
शुचिभिः सलिलैः कृताप्लवो धृतकौपीनवहिःसदंशुकः ।
मलयोद्भवपङ्कभूषितो निजनामानि गृणन् बभौ प्रभुः ॥४२॥
उपयुज्य च शुद्धमोदनं कृतशुद्धाचमनादिकक्रियाः ।
परिधाय च भिन्नमंशुकं शुचिकान्तिर्ववृधे श्रिया प्रभुः ॥४३॥
पुनरप्युपगम्य ते च ते प्रभुपादाम्बुजसीधुलम्पटाः ।

उस समय भक्त अवरुद्ध नेत्र से अजस्र अश्रुवारि परिपूर्ण होकर अर्थात् आनन्दाश्रु से समाच्छन्न होकर भी प्रभु का सुस्थ करने में सक्षम नहीं थे, एव जनगण प्रभु के समीप में पादाग्र निपतित अश्रु को परित्याग करने में असमर्थ थे, तात्पर्य यह है कि—नेत्र से पादाग्र पर्यन्त नयनजलधारा प्रवाहित हुई थी ॥४०॥

मधुरानन श्रीगौरहरि—कृपादृष्टि एवं वाक्य कथनादि के द्वारा समस्त लोक को सुखी करत: तत् पश्चात् महानन्द से विशुद्ध मध्याह्न कालीन क्रिया सम्पन्न किये थे ॥४१॥

तदनन्तर महाप्रभु पवित्र सलिल द्वारा स्नानक्रिया सम्पन्न करके कौपीन एवं उत्कृष्ट बहिर्वास परिधान पूर्वक एवं मलयपर्वत-जात चन्दन पङ्कद्वारा विभूषित होकर हरिनाम उच्चारण करतः शोभित हुये थे ॥४२॥

अपिच पवित्रकान्ति गौरहरि—विशुद्ध अन्नभोजन पूर्वक शुद्ध आचमन क्रिया समापनान्तर वसनान्तर परिधान पूर्वक स्वीय अङ्ग कान्ति द्वारा वृद्धिशील हुये थे ॥४३॥

श्रीमन्महाप्रभु के चरण नलिन सीधुलम्पटअर्थात् श्रीचरणों

नयनाञ्जलिभिर्निरन्तरं बहु तद्रूपसुधां पपुस्तदा ॥४४॥

स यथातथमुक्तिमाधुरीमधुरस्मेरमुखेन्दुसुन्दरः ।
मुदितानथ तान् स पूर्ववत् परिसंभाष्य चकार निर्भरम् ।४५।

निजनामसुधां मुहुः पिवन्निति दैनन्दिनकर्म भूषयन् ।
शरदि प्रतियात्रमुत्सुकः सुखसिन्धौ परिगाहते स्म सः ॥४६॥

बहुकौतुकवीक्षणाक्षणान्मुदितो द्वादशयात्रकेण सः ।
असिताचलमौलिमण्डनं नयनाभ्यामकरोदिवात्मनि ॥४७॥

मकरोत्सवमध्यतः प्रभुर्विहिताभीररुचिर्यथारुचि ।
घृतदुग्धदधीनि भारतो निदधत् कण्ठतटे विराजते ॥४८॥

में अत्यासक्त भक्तवृन्द पुनर्बार उपस्थित होकर नयनाञ्जलि द्वारा निरन्तर श्रीगौराङ्ग रूपामृत पान करने लगे थे ॥४४॥

वाक्यमाधुरी एवं सुमधुर हास्य द्वारा जिनका मुखचन्द्र सुन्दर है, वह गौरचन्द्र पूर्ववत् यथाक्रम से भक्तवृन्द को सम्भाषण करतः निरतिशय आनन्दित किये थे ॥४५॥

श्रीगौराङ्गसुन्दर–श्रीहरिनाम सुधापान नियत करके दैनन्दिन कृत्य सम्पन्न करतः शरत्काल में प्रत्येक यात्रा में ही समुत्सुक चित्त से आनन्दसिन्धु में अवगाहन किये थे ॥४६॥

गौरचन्द्र—द्वादशबार यात्रा करतः विविध कौतुक दर्शन हेतु उत्सव में आनन्दित होकर स्वीय लोचन द्वारा ही मानों आत्मा में नीलाचलरत्न की भूषण रचना किये थे ॥४७॥

मकरोत्सव यात्रा में श्रीमन्महाप्रभु निज अभिलाषानुसार आभीरशोभा विधान करतः निजस्कन्ध मे घृत, दुग्ध एवं दधिसार अर्पण कर शोभित हुये थे ॥४८॥

क्षणमप्यतिसौख्यचञ्चलो लगुड़ोत्क्षेपणकौतुकी मुहुः ।
वरगोप इवेह हर्षदो जयति श्रीयुतगौरविग्रह- ॥४९॥

क्षणमुतक्षिपति क्षणं पदा क्षिपति भ्रामयति क्षणन्तु तम् ।
भुजकक्षतटोरुजानुपत्कमलाधोऽध इतस्ततः प्रभुः ॥५०॥

अतिकौतुकचेष्टया नृणां नयनानन्दमतीव सान्द्रकम् ।
विदधत् सकलोत्सवेषु सप्रभुरानन्दममन्दमाययौ ॥५१॥

अथ दोल इतीरितो हरेः सुमहानुत्सव एक उत्तमः ।
विविधः खलु कौतुकेहितैः पुरतो नृत्यकि गौरविग्रहः ॥५२॥

अरुणैश्च सितैश्च कोमलैरथ हारिद्ररजोभिरुत्तमैः ।
मलयोद्भवरेणुभिश्च तैर्भगवांश्चित्रितविग्रहो बभौ ॥५३॥

श्रीयुत गौरहरि कभी तो अतीव आनन्द से चञ्चल होकर भी लगुड़क्षेपणार्थ कौतुकी होकर महानन्द प्रद गोपराज के समान जययुक्त हुये थे ॥४९॥

एव प्रभु—कभी उस लगुड़ को उत्क्षेपण, कभी पादपद्म में क्षेपण, कभी घूर्णित कर, कभी भुज, कक्षतट, ऊरु, जानु तथा पादपद्म के अधोऽधः प्रदेश में क्षेपण किये थे ॥५०॥

गौरविग्रह प्रभु इस प्रकार समस्त उत्सव में ही विविध कौतुक विनोद के द्वारा मानवों का अतीव निविड़ानन्द विधान करतः स्वयं महानन्द लाभ किये थे ॥५१॥

अनन्तर गौरहरि—दोलयात्रा नामक श्रीहरि का सुमहान् उत्कृष्ट उत्सव में उपस्थित होने पर विविध कौतुकचेष्टा से अग्रभाग में नृत्य आरम्भ किये थे ॥५२॥

तत् पश्चात् अरुणवर्ण, शुक्लवर्ण, उत्तम कोमल हरिद्रारजो

सफलक्रमुकद्रुमोच्चयैः फलनम्रैः कदलीद्रुमैरपि ।
सुमनोभरनिष्पतच्छिखैस्तरुभिश्चाधिकमण्डलीकृते ॥५४॥
वरमञ्चविभूषिते लसद्वरपर्यङ्कतटोपरि प्रभौ ।
निजभक्तगणेन दोलिते सति गौराङ्गशशी च नृत्यति ॥५५॥
(युग्मकम्)

कनकाचलकान्तविग्रहौ मुहुरन्योन्यविलोकनोत्सुकौ ।
अभिदोलननृत्यचञ्चलावथ गोविन्दशचीसुतौ प्रभू ॥५६॥
निजचेष्टितवैभवश्रिया जनतानां निविड़ं सुखोत्करम् ।
अविरामरसादकुर्वतामधिदोलोत्सवमुत्सुकात्मना ॥५७॥
)युग्मकम्)

इतरेषु महोत्सवेषु स प्रथितो दोल इतीह यः सदा ।

द्वारा एवं मलयज चन्दनरेणु से भगवान् श्रीगौराङ्गसुन्दर चित्रिताङ्ग होकर शोभित हुये थे ॥५३॥

एवं फलवान् क्रमुकद्रुमोच्चय अर्थात् सुपारी वृक्षसमुह एवं पुष्पभर से नतशिरा अन्यान्य तरुगण जो मण्डलीकृत हैं, एवं उत्कृष्ट मञ्चविभूषित शोभमान पर्यङ्क में अर्थात् दोला के उपरिभाग में प्रभु श्रीजगन्नाथदेव स्वीय भक्तगण कर्त्तृक दोलित होने पर प्रभु गौरचन्द्र भी नृत्य आरम्भ किये थे ॥५४-५५॥ (युग्मकम्)

जिनके विग्रह कनकाचल के समान कमनीय एवं परस्पर के दर्शन से ही परस्पर उत्सुक हैं, एवं सम्यक्रूप दोल नृत्य में चञ्चल हैं, उन प्रभु गोविन्द एवं शचीनन्दन परस्पर स्वीय चेष्टावैभव अर्थात् निरतिशय विलास शोभित दोलयात्रार्थ उत्सुकचित्त से अविराम विलासरस से जननिकर की सुखराशि को वर्द्धित किये थे ॥५६-५७॥ (युग्मकम्)

समएव रथस्य कीर्त्तितो मधुमासप्रथमे स राजते ॥५८॥
ननु तत् किमिदं जगत्पतेरिह दोलोत्सवकौतुकं जनैः ।
कथनीयममुं महाप्रभुः पुरतः पश्यति निर्भरैः सुखैः ॥५९॥
पुनरप्यथ तैः समागतै रथयात्रासमये महाप्रभुः ।
विलसत्यनिशं तथा तथा निजसङ्कीर्त्तननर्त्तनादिभिः ॥६०॥
इति विंशतिहायनैः प्रभुर्बलदेवस्य रथाग्रतो मुहुः ।
नटनानि विधाय कीर्त्तनैरिदमेतद्व्यकिरज्जगत्तले ॥६१॥
स तु सर्वजनान्तरस्थितो जगदाधार इति प्रकीर्त्तितः ।
इति तस्य पुरो मुहुर्मुहुर्नटनं कीर्त्तनमाततान सः ॥६२॥

नीलाचल क्षेत्र में अन्यान्य महोत्सव के मध्य में रथयात्रा के तुल्य रूप में कीर्त्तन एवं "दोल" नाम से प्रथित उत्सव दोलयात्रा चैत्रमास के प्रथम भाग में अनुष्ठित होती है ॥५८॥

जगत्पति जगन्नाथदेव की दोल यात्रा कौतुक का वर्णन करने में कौन समर्थ होगा ? श्रीमन्महाप्रभु जिसका दर्शन अतीव आनन्द से करते हैं, उसका वर्णन करने में अक्षम हूँ ॥५९॥

अनन्तर महाप्रभु—पुनर्बार समागत भक्तवृन्द के सहित उस प्रकार निज कीर्त्तनादि द्वारा निरन्तर विलास करने लगे थे ॥६०॥

इस प्रकार श्रीमहाप्रभु—विंशति वत्सर बलदेव के रथाग्र में मुहुर्मुहुः नृत्य करतः जगन्मण्डल में कीर्त्तन द्वारा उसको विस्तीर्ण किये थे ॥६१॥

श्रीजगन्नाथदेव—समस्तजन के मध्य में अवस्थित हैं, अथच आप जगदाधाररूप में कीर्त्तित हैं, महाप्रभु श्रीजगन्नाथदेव के सम्मुख में उसको प्रकट करने के निमित्त ही बारम्बार नृत्य एवं कीर्त्तन विस्तार किये थे ॥६२॥

इत्थं श्रीपुरुषोत्तमे विहरणं कृत्वा शचीनन्दनो
हर्षाद्विंशतिवत्सरेण विहितक्रीड़ो बभौ निर्भरम् ।
एतन्मध्यमधिमयाणकुतुकादागत्य भागीरथी–
तीरे श्रीमथुरामलङ्कृतिमति कर्त्तुं स विक्रीड़ति ॥६३॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये श्रीपुरुषोत्तम
विहार रथयात्रासमाप्तिरष्टादशः सर्गः ।



श्रीशचीनन्दन श्रीगौरहरि— इस प्रकार श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र में विहार करतः अतिहर्ष से विंशति वत्सरकाल यावत् विविध क्रीड़ा विधान पूर्वक निरतिशय शोभित हुये थे । एवं विंशति वत्सर के मध्य में ही प्रयाण कौतूहल से भागीरथी तीर में उपस्थित होकर श्रीमथुरा को शोभित करने के निमित्त विविध क्रीड़ा से कालातिपात किये थे ॥६३॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये श्रीपुरुषोत्तम विहार
रथयात्रा समाप्ति रष्टादशः सर्गः ॥



ऊनविंशःसर्गः

द्रुतचामीकराकारो मथुरां चलितुं ततः ।
लसत्करिकराकारोद्दामदोर्द्वितयो बभौ ॥१॥

{ प्रयातुं यमुनातीरं गङ्गातीरे मनो दधे ।
यत्तटे सोऽवतीर्णोऽस्ति तस्यां प्रीतिर्महीयसी ॥२॥
दक्षिणादागतो यावत्तावत्तत्र महाप्रभुः ।
मथुरायां चलत्येव रामानन्दोऽत्र बाधते ॥३॥ }**

चातुर्मास्यान्तरे नाथं कर्हिचिद्गमनोद्यतम् ।
उवाच बहुदुःखेन श्रीरामानन्दरायकः ॥४॥
दशम्यां विजयायां तु गमनं भविता प्रभोः ।
दशम्यां विजयायां तु दशायामहमग्रतः ॥५॥

जिनके श्रीअङ्ग गलित काञ्चनतुल्य गौरवर्ण हैं, एवं जिनके बाहु युगल करिशुण्ड के सदृश मनोहर हैं, उन गौरहरि मथुरायात्रार्थ शोभित हुये थे ॥१॥

यमुनातीर में गमन करते समय गौरहरि गङ्गातीर में मनोनिवेश किये थे, जिस गङ्गा में आप स्वयं अवतीर्ण हुये थे, सुतरां उसके प्रति प्रभु की महीयसी प्रीति थी ॥२॥

महाप्रभु—दक्षिणदेश से प्रत्यावर्त्तन कर जब मथुरा गमन करने लगे थे, तब रामानन्द राय उनके विरह दुःख से व्यथित हुये थे ॥३॥

चातुर्मास्य का अवसान होने पर किसी एक समय महाप्रभु को गमनोद्यत देखकर रामानन्दराय बहु दुःख प्रकाश कर कहे थे ॥४॥

विजयादशमी के पश्चात् प्रभु का गमन होगा, इससे मैं विजय कारिणी दशमीदशा में वर्त्तमान हो गया हूँ ॥५॥ =दशम्यामिति विजयायां शारदीयो विजयोत्सवतिथौ प्रभोर्गमनंभविता अतः करणात्

** ग्रन्थेऽस्मिन् मुद्रणदोषतः श्लोकद्वयमस्पष्टम् । अतः ग्रन्थान्तरं दृष्ट्वा सङ्गणकसाहाय्येन उट्टङ्कितम्।

गोविन्दो जगदानन्दः श्रीदामोदरपण्डितः ।
परमानन्दपुरी च तत्सङ्गे मिलिता ययुः ॥६॥
गङ्गातीरे समागत्य वैष्णवेभ्यो विसर्जितुम् ।
महाप्रसादान् विविधान्नेतुं तत्रादिशत् प्रभुः ॥७॥
एते नाथनिदेशेन मुदिता भूय आददुः ।
महाप्रसादान् विपुलान् डोरचन्दनमुख्यकान् ॥८॥
मात्रे निर्म्माल्यवसनमात्मेच्छाभिर्महाप्रभुः ।
परमानन्दपुर्य्यूढ़ां परमां युक्तिमादधे ॥९॥

अहम् । विशेषेण जयतीति विजया । विजयतेः कर्त्तरि पचाद्यन् स्त्रियामाप् तस्यां । विशेषजयकारिण्यां प्रभुगमनेन मद्दुःख दायिन्यां दशम्यां चक्षुरागादिदशविधदशान्तिमां दशायां मरणा वस्थायाम् अहं अग्रतः भविता भवनशील इत्यर्थः । दशदशाः—यथा चक्षुरागस्तदनु मनसः सङ्गतिर्भावनाच व्यावृत्तिः स्यात्तदनुविषय ग्रामतश्चेतसोऽपि । निद्राच्छेदस्तदनु तनुता निस्त्रपात्वं ततोऽनून्मादो मूर्च्छा तदनु मरणं स्युर्दशाः प्रक्रमेण (इति) ॥५॥

गोविन्द, जगदानन्द, श्रीदामोदर पण्डित एवं परमानन्दपुरी ये सब श्रीमन्महाप्रभु के सहित गमन किये थे ॥६॥

महाप्रभु गङ्गातीर में समागत होकर तत्रत्य वैष्णववृन्द को प्रदान करने के निमित्त विविध प्रकार महाप्रसाद आनयन करने का आदेश प्रदान किये थे ॥७॥

भक्तगण श्रीप्रभु की आज्ञा से हृष्ट होकर पुनर्बार डोर, चन्दन प्रभृति विपुल महाप्रसाद समूह ग्रहण किये थे ॥८॥

महाप्रभु निजेच्छा से प्रसादि वसन "जननी को प्रदान किया जा सकता है अथवा नहीं ?" इस विषय में परमानन्दपुरी से महती युक्ति अवलम्बन किये थे ॥९॥

इदं श्रीमज्जगन्नाथनिर्म्माल्यं परमांशुकम् ।
प्रतापरुद्रेण च मे दत्तं परमदुर्लभम् ॥१०॥
कस्मै दास्यामि तन्न्यूनं गदितुं त्वमिहार्हसि ।
मया सन्दिग्धमनसा स्थीयते साम्प्रतं खलु ॥११॥
इत्युक्तोऽसौ पुरी स्वामी बभाषेऽथ महाप्रभुम् ।
जनन्यै देयमेतत्तुममैतन्मतमुत्तमम् ॥१२॥
ऊचे पूर्वेद्युरसकौ रसकौतुकविभ्रमः ।
विभ्रमच्छेदकृद्दृष्टिर्हृद्दृष्टिसुखदः प्रभुः ॥१३॥
गायं गायं गमिष्यामि जगन्नाथं विलोकितुम् ।
दामोदरोऽसौ मत्सङ्गे गायन् स्थास्यति निश्चितम् ॥१४॥
इत्यसौ रजनीशेषे प्रथमावसरं विभोः ।
निजकीर्त्तनसंहर्षैर्गच्छन् पथि बभौ प्रभुः ॥१५॥

यह उत्कृष्ट वसन श्रीजगन्नाथदेव का निर्म्माल्य, प्रतापरुद्र ने मुझको दिया है. यह अति दुर्ल्लभ वस्तु है ॥१०॥

हे स्वामिन् ! यह सब वस्तु किसको देना है ? आप आदेश करें, मैं सम्प्रति सन्दिग्धमना: हूँ ॥११॥

श्रीपरमानन्दपुरी—महाप्रभु कर्त्तृक इस प्रकार जिज्ञासित होकर प्रत्युत्तर में कहे थे—यह उत्तम वसन जननी को देना कर्त्तव्य है, मेरा यह उत्कृष्ट अभिमत है ॥१२॥

जिनकी दृष्टि भ्रान्तिच्छेदिका एवं आनन्ददायिनी है, उन रस कौतुकशाली महाप्रभु पूर्वदिन कहे थे— ॥१३॥

मैं श्रीहरिनाम गान करते-करते श्रीजगन्नाथदेव दर्शनार्थ जाऊँगा, श्रीदामोदर मेरे साथ रहेगा, मैंने यह ही निश्चय किया है ॥१४॥

यह कहकर प्रभु श्रीजगन्नाथदेव के प्रथमोत्थान के समय ही

दैवाद्दामोदरः सोऽयं मिलितो नाभवत्तदा ।
सिंहद्वारे क्षणं तस्थौ तमपेक्ष्य स्वयं प्रभुः ॥१६॥
भावाभावाभिभावाभिभवभावे बभौ भवः ।
विभावेवम्भावभावे बभूव भुवि वैभवम् ॥१७॥
(द्व्यक्षरः)

निशावसान में निज कीर्त्तनानन्द से विभोर होकर पथ में गमन करतः शोभित हुये थे ॥१५॥

दैववशतः श्रीदामोदर पण्डित उस समय उपस्थित होने असमर्थ थे, तन्निमित्त श्रीमहाप्रभु उनकी अपेक्षा से कियत्काल सिंह द्वार में अवस्थान किये थे ॥१६॥

पदच्छेदः :— भाव अभाव अभिभाव अभिभव भावे बभौ भवः ।
विभौ एवम्भावभावे बभूव भुवि वैभवम् ॥

अन्वयः :— भाव अभाव अविभाव अविभव भावे भवः बभौ,
विभौ एवम्भाव भावे सति भुवि वैभवं बभूव ।

दामोदरागमनेन प्रभो र्व्याकुलतामाह भावेत्यादिद्व्यक्षरश्लोकेन । भावः सत्ता तस्य अभावः असत्ता अविद्यमानता सच श्रीदामोदरस्येति ज्ञेयम् । तेन भावाभावेन अभि समन्तात् यो भावः वियोगदशा तेन योऽभिभवः तस्यभावे सति, भुवि पृथिव्यां, वैभवं गौरवं बभूव आसीत् । इदमत्र तात्पर्य्यं, एवं पूर्वोक्तप्रकारेण श्रीदामोदराभाव जनित दुःखेन, प्रभौ व्याकुले सति श्रीदामोदरस्य जन्मैव बभौ । यद्विरहे प्रभो र्व्याकुलता तस्यैव जन्म सफलं, तस्यैव गौरवञ्चेति फलितम् । इत आरभ्य एकद्वित्र्यादि श्लोकानन्तरमेकैकं विद्यते ॥१७॥

उक्त प्रकार दामोदर का अभावजनित वियोग दुःख से महाप्रभु होने पर दामोदर की जन्म शोभा वर्द्धित हुई थी, एवं भू-मण्डल में उनका महागौरव भी हुआ था । अर्थात् जिनका विरह से महाप्रभु व्याकुल हैं, उनका ही जन्म-सफल है, एवं गौरव है ॥१७॥

ततः किञ्चिद्विलम्बेन मिलितोऽभूत् स भूसुरः ।
प्रभुराविष्टचित्तोऽसौ तं दृष्ट्वा कुपितोऽभवत् ॥१८॥
तं तु गीतापुस्तिकया पृष्ठे भूयो जघान सः ।
निष्पिपेष पदाघातैः प्रणयात् प्रणयाम्बुधिः ॥१९॥
इत्थं प्रविश्य प्रासादं दृष्ट्वा श्रीपुरुषोत्तमम् ।
नत्वा स्तुत्वा च चलितुं मनश्चक्रे कृपानिधिः ॥२०॥

की र्त्त नं च क्रि रे के च स मू त् सु क म नो ल याः ।
× × × × × × × × × × × × × × × ×
न र्त्त नं च क्रि रे के च स मू त् सुक म नो ल याः ॥२१॥

(गोमूत्रिका बन्धः)

तत्पश्चात् किञ्चित् विलम्ब में द्विजवर दामोदर उपस्थित हुये थे एवं महाप्रभु भी आविष्टचित्त होकर उनको देखकर कोपान्वित हुये थे ॥१८॥

प्रणयाम्बुधि गौरहरि एक गीता पुस्तिका के द्वारा दामोदर के पृष्ठदेश में प्रणयपूर्वक आघात एवं पदाघात से निष्पेषित किये थे ॥१९॥

कृपानिधि गौरहरि प्रासाद में उपविष्ट होकर श्रीपुरुषोत्तमदेव को नमस्कार एवं स्तव करतः प्रस्थान करने की इच्छा किये थे ॥२०॥

अतःपर कतिपय भक्त—अतीव उत्सुक होकर सङ्कीर्त्तन किये थे, एव कतिपय भक्त—विशेष औत्सुक्य से नृत्य भी किये थे ॥२१॥

यह श्लोक गोमूत्रिकाबन्ध से रचित है। इसका पाठक्रम यह है-ऊपर की 'की' से निम्नस्थ 'र्त्त' एवं ऊपर के 'नं' तथा निम्नस्थ 'च' तथा ऊपर की 'क्रि' से निम्नस्थ 'रे' रूप है। एवं निम्नस्थ 'न' से ऊपर का 'र्त्तं' तथा निम्नस्थ 'नं' इत्यादि ॥२१॥

टीका-कीर्त्तनमिति । अस्य पाठक्रमः गवां मूत्रपतनधाराक्रमेण ।

काशीमिश्रमुखाः सर्वे पश्चात् समाययुः ।
समनुव्रजतस्तान् विससर्ज कृपानिधिः ॥२२॥
निशावसाने तैरेतैः कीर्त्तयद्भिर्मुहुर्मुहुः ।
प्रतस्थे गानकलया लोलः श्रीगौरसुन्दरः ॥२३॥
गोविन्दो जगदानन्दः श्रीदामोदरपण्डितः ।
यतिश्रेष्ठपुरीस्वामी कीर्त्तयन्तः समाययुः ॥२४॥
ललल्लीलो ललल्लीलो लोलो लोलो ललल्ललः ।

तन्तूत्रधारा यथा वामाद्दक्षिणतो दक्षिणाद्वामतः घूर्णनभङ्गया पतति। अयमपि श्लोकस्तथैव पटनीयः। अत्र ऊद्धर्वे अधश्च वक्रगत्या पुनस्तृतीयचरणस्यादिवर्णमादाय ऊद्धर्वाधःक्रमगत्या च शमं पठनम् ।२१।

काशीमिश्र प्रभृति भक्तवृन्द—पश्चात्-पश्चात् समागत होने लगे थे, कृपानिधि गौरहरि उन-उन अनुगामी भक्तवृन्द को परित्याग किये थे ॥२२॥

श्रीमान् गौरसुन्दर—चञ्चलमनाः होकर भक्तवृन्द सङ्कीर्त्तन करने पर स्वयं श्रीहरिनाम कीर्त्तन करते-करते प्रस्थान किये थे ।२३॥

अनन्तर गोविन्द, जगदानन्द, दामोदर पण्डित एवं यतिवर परमानन्दपुरी कीर्त्तन करते-करते गमन किये थे ॥२४॥

=टीका=

ललन्ती शोभमाना व्रजगमनरूपा लीला यस्य स ललल्लीलः। ललन्ती लड़योरैक्यात् लड़न्ती क्षिपन्ती लीलाचलवासरूपा लीला यस्य स ललल्लीलः। लोलश्चञ्चलः पुनर्लोलः सतृष्णः व्रजगमनार्थं इत्यर्थात्। लोलश्चलसतृष्णयो रित्यमरः। ललल् ईप्सन् ललः लड़ः समस्तजनप्रेरणरूपः क्षेपो यस्य सः। नीलाचलं त्यक्त्वा व्रजगमनार्थमेताद्दगवस्थोऽपि महाप्रभुः लीलालोलः लीलया विलासेन

लीलालोलो ऽलिलीलालीं लोललां ललुः ॥२५॥
(एकाक्षरः)

ततोऽनु दोलामारुह्य श्रीरामानन्दरायकः ।
एतदीयाश्च ये चान्ये समेतास्ते त आययुः ॥२६॥

लोलश्चञ्चल आसीत् । तदर्थमेव भक्तोत्कण्ठामाह अलीति । अलीनां भ्रमराणां लीलालीव लीला तामित्युपमितसमासः । अत्र लीलां चेष्टां भ्रमरचेष्टामिवेत्यर्थः । लोललां लोलस्य चञ्चलचित्तस्य ला ग्रहणं यया सा तां । यथा प्रभुर्ध्रियेत तथेत्यर्थः । लीलालीं चेष्टाकुलं ललुः प्रापुश्चक्रुरित्यर्थः । अत्र भक्ता इति योज्यं । चञ्चलदलमपि पुनस्तदवरोहणायैव यतते तथा प्रभुसङ्गसुखिनो गोविन्ददामोदरादयोऽपि त्यजन्तमपि शचीनन्दनं न तत्यजुः किन्तु स्थापयितुमेव ययतीरे । प्रथमावधि द्वितीयार्द्धस्य लीलालोल एतत्पर्यंन्त प्रभु विशेषणं । ललुरिति ला ल ग्रहणे इत्यदादिकात् लिटि (ध्यां) रूपामितिविवेकः ॥२५॥

पश्चात् नीलाचल लीला को विदूरित करके वृन्दावन लीला ही जिनका अभिप्रेत है, सुतरां तन्निमित्त ही महाप्रभु सतृष्ण एवं चञ्चल होकर समस्त भक्तजन को त्याग करत: विलास हेतु चञ्चल मनाः हुये थे, तथा अनुगामी भक्तगण भी जिससे गौरहरि पकड़ने आ जायें, तादृश भ्रमर निकर की लीलासमूह के समान विविध लीला करने लगे थे। कहने का तात्पर्य यह है कि—समीरण से कुसुम परिचालित होने से मधुलुब्ध भ्रमर जिस प्रकार उसको परित्याग नहीं करता है, बरं वैठने के निमित्त चेष्टित होता है, तद्रूप प्रभुपादानुरक्त भक्तवृन्द—वृन्दावन गमनार्थ चञ्चलचित्त प्रभु को न करके पकड़ने में तत्पर हुये थे ॥२५॥

पश्चात् श्रीरामानन्दराय— दोलारुढ़ होकर एवं अन्यान्य भक्तगण आगमन किये थे ॥२६॥

श्रुत्वा सर्वे जनास्तत्र स्त्रीपुमांसः समन्ततः ।
हरिं वदेति सोत्कण्ठं वदन्तो भूय आययुः ॥२७॥

ततः समुदिते भानौ भानुकोटिसमप्रभः ।
प्रातःकृत्यं चकारासौ तैरेतैर्निजभक्तकैः ॥२८॥

स तत्र गमनारम्भे नतत्रात्रा न नाबबौ ।
पवित्राङ्घ्रिजनानन्दं भवित्रागमनाननम् ॥२९॥
(मुरजबन्धः)

वहाँपर स्त्री-पुरुष समस्त जन ही श्रीमहाप्रभु के वाक्य को सुनकर "हरि बोल" उत्कण्ठा के सहित भूयोभूयः उच्चारण पूर्वक सब प्रकार से आकर उपस्थित हुये थे ॥२७॥

अनन्तर भानुकोटि समप्रभ गौरसुन्दर सूर्योदय के बाद समस्त भक्तवृन्द के सहित प्रातःकृत्य निर्वाह किये थे ॥२८॥

टीका—स तत्रेति । "नतत्रात्राः न न आबबौ" इति दुरूहांशस्य पदच्छेदः । तत्र तस्मिन् गमनारम्भे यात्राप्रारम्भे सति नतत्रात्राः नतत्राणां प्रणतपालकानामपि त्राः पालकः सः श्रीगौराङ्गः पवित्राङ्घ्रिजनानन्दं अङ्घ्रिसेविनो जनाः अङ्घ्रिजनाः । मध्यपद-लोपी कर्मधारयः । पवित्रः अङ्घ्रिजनानां पादसेविभक्तानां आनन्दः सुखं यस्मिन् तत् । तथा भवित्रे शुभदे आगमने आननं मुखं यस्मिन् तादृशं यथा तथा । न आबवौ न सम्यक् जगाम इति न, किन्तु जगामैवेत्यर्थः । यदैव गमनोद्यमस्तदैव भक्तेभ्यः सुखं दत्त्वा पुनरा-गमने तेषामाशाश्च वर्द्धयित्वा द्रुतं जगामेति फलितं ॥२९॥

प्रणत परिपालकगण का भी परिपालक श्रीमन्महाप्रभु—गमनोद्यत होने से ही गमन किये थे, यह देखकर भक्तवृन्द—विशेष आनन्दित होकर पुनरागमन प्रत्याशा में उन्मुख होकर थे ॥२९॥

प्रभाते पृष्ठतो दृष्ट्वा प्रहारस्य च लक्षणम् ।
दामोदरस्य पिदधे वस्त्रेणैव पुरीप्रभुः ॥३०॥
कियद्दूरं ततो गत्वा विरराम महाप्रभुः ।
श्रीरामानन्दरायेण प्रणयद्वन्द्ववान्मिथः ॥३१॥
स त्यक्त्वा गच्छतां तेन प्रभुनानुनयैर्बहु ।
तर्पितोऽपि न वै तृप्तिं जगाम क्षणमप्युत ॥३२॥
मनोज्ञदृङ्नामनोज्ञविभ्रमभ्रमणाकुलः ।
मनोज्ञदृङ्नामनोज्ञविभ्रमभ्रमणाकुलः ॥३३॥

प्रभु परमानन्दपुरी--प्रभात समय में दामोदर के पृष्ठ में प्रहार चिह्न को देखकर वस्त्र द्वारा आच्छादन किये थे ॥३०॥

अनन्तर महाप्रभु–कियद्दूर गमन करत: श्रीरामानन्दराय के सहित प्रणयद्वन्द्व करने की वासना से गमन से विरत हुये थे ॥३१॥

उनको परित्याग कर महाप्रभु—गमन करने पर रामानन्द—विविध प्रकार अनुनय विनय से प्रभु कर्त्तृक प्रबोधित होकर भी क्षणकाल भी परितृप्त नहीं हुये ॥३२॥

(टीका)—मनोज्ञेति । "मनोज्ञदृक् नाम नो ज्ञ विभ्रम भ्रमणाकुल" इति परार्द्धस्य पदच्छेदः । पूर्वार्द्धस्यार्थमाह । मनोज्ञदृक् मनोज्ञे मनोहरे दृशौ यस्य सः । न अमनोज्ञः विभ्रमः शोभा यत्र तादृशेन भ्रमणेन आकुलः उत्कण्ठितः । अपि तु प्रभोर्मनोज्ञविभ्रमयुक्तभ्रमणे नाकुल एव । तथा परार्द्धस्यार्थमाह । मनोज्ञा अन्तरङ्गा दृक् दृष्टिर्यस्य सः । नामेति प्राकाश्ये । तथाचामरः । नाम प्राकाश्यसम्भाव्य क्रोधोपगम कुत्सने । इति–जानन्ति वस्तुतत्त्वमिति ज्ञाः तत्त्वदर्शिनः जानातेः कर्त्तरि कः । तेषां विशिष्टः भ्रमः भ्रान्तिर्यत्र तादृशेन भ्रमणेन आकुलः इति नो न । निषेधे न ह्य नो नापि । इत्यमरः । ईदृशः

स तु प्रेमास्पदस्यास्य रामानन्दो महानिधिः ।
तदलोकनदुःखेन कथङ्कारं भविष्यति
('करिष्यति' पाठान्तरं) ॥३४॥

ततो महाप्रसादौघः सद्यस्तत्र चतुर्विधः ।
वाणीनाथेन प्रहितो मिलितोऽभूदनेकशः ॥३५॥

नीलाचलात् समायान्तं सद्यः श्रीमदनूत्तमं ।
महाप्रसादं दृष्ट्वासौ मुमुदे परमप्रभुः ॥३६॥

नानाना नुनि नानेने नाना नूननू ननु ।
नाना नूने नाननान्नोने नो नान ननुन्ननु ॥३७॥
(पुनरेकाक्षरः)

रामानन्दः तृप्तिं न जगामेति पूर्वेणान्वयः । प्रभुमनुगच्छन् रामानन्दो बुधैर्नाशोचीति तात्पर्यं । अस्य पुर्वपरार्द्धयोराकृत्या साम्यम् ॥३३॥

अनन्तर मनोज्ञलोचन रामानन्दराय-महाप्रभु के मनोहर विभ्रम युक्त भ्रमण द्वारा आकुल हुये थे, किन्तु अन्तर्दृष्टिशील रामानन्द को ज्ञानिव्यक्तिगण किसी विशेष भ्रमपूर्ण रूप में नहीं देखे थे ॥३३॥

किन्तु महानिधि रामानन्द प्रेमास्पद गौरचन्द्र के अदर्शन दुःख से किस प्रकार हुये थे—उसका वर्णन करने में मैं अक्षम हूँ ॥३४॥

तत्पश्चात् वाणीनाथ कर्त्तृक प्रेरित चर्व्य, चूष्य, लेह्य, पेय, भेद से चतुर्विध महाप्रसादराशि विपुल परिमाण में तत्क्षणात् वहाँ पर उपस्थित हुये थे ॥३५॥

तब प्रभु गौरचन्द्र—नीलाचल से सद्य ही समागत सुदृश्य उत्तम महाप्रसाद सन्दर्शन करतः आनन्दित हुये थे ॥३६॥

पदच्छेदः :—नानाना नुनि नाना इनेनान् आ-अणून् अनणून् अनु ।
नाना अणूने न आनन अन्नऊने नो नाना न नुत् ननु ॥

अन्वयः :—ननु नानाना नुनि अणून् नाना इनेनान् अनणून् अनु
नानानूने न आननान्नोने नो नाना नुत् न ननु ॥

(टीका)—अथ श्रीमन्महाप्रसादवैभवं वर्णयति नानेत्याद्येकाक्षर श्लोकेन। ननु भो नानाना नानापुरुषः कोऽपि इत्यर्थः। नुनि सानुनयं यथा तथा आणून् आ सम्यक् प्रकारेण अणून् अल्पान् अनु लक्षीकृत्य प्रचुरतया मत्वेत्यर्थः। नानानुने नानाप्रकारबहुतरे अतएव नाननान्नोने आननस्य मुखस्य यदन्नं तस्मात् ऊनं हीनं न तादृगिति तत्तस्मिन् अधरामृतस्याल्पतरत्वविषये इत्यर्थः। नो (न) नाना न बहुतर इति नुत् प्रेरकः एतद्वादी न आसीदिति शेषः। इदमाकूतं यत, कोऽपि महात्मा अल्पानपि प्रभुसदृशप्रभुप्रसादान् सविनयं अनल्पान् दृष्ट्वा तेषां च विविधप्रकारत्वे बहुपरिमितत्वे अधरामृतस्याल्पतरत्वे च विषये "न प्रचुराः" इति न अवादीत् किन्तु प्रचुरान् एव अवादीदिति। प्रभु प्रसादान् अनल्पान् अपि बहुतया सम्मानित इति संक्षेपः। अयमभिप्रायः। श्रीमन्महाप्रभुप्रभावात् यः कोऽपि पुरुष एवं सिद्धान्तसारं निश्चि ाय यत् प्रभुतुल्यत्वं महाप्रसादस्य। तथाच श्रीमद्वृहद्भागवतामृते नवेद्यं जगदीशस्य अन्नपानादिकञ्च यत्। ब्रह्मवन्निर्विकारेदं यथा विष्णुस्तथैव तत् इत्यादि। नु वितर्कापमानयोः। विकल्पानुनयेत्यादि। मेदिनी। विरुद्धधर्म समवाये भूयसां स्यात् सधर्मकत्वमिति न्यायेन। अनेकदन्त्यनकारससर्गात् "अणून् आनणुन् इत्यत्राणोर्णकारस्य दन्त्यत्वं। इनः प्रभुः। अजहत्स्वार्थलक्षणया तत्प्रसादो ज्ञेयः। इनेन तुल्यः इनतुल्यस्तादृशः इनः। इति मध्यपदलोपी समासः। इनः पत्यौनृपार्कयोरिति मेदिनी। कृतमिति विस्तरतः परं सुगमं ॥३७॥

अनन्तर किसी एक महात्मा ने भी विविध प्रकार महाप्रभु के सदृश महाप्रसाद को अत्यल्प देखकर "यह तत्यल्प है, प्रचुर नहीं है" इस प्रकार नहीं कहा—अर्थात् अल्पतर प्रसाद को भी सकल व्यक्ति प्रचुर रूप में अनुभव किये थे ॥३७॥

महाप्रसादोपयोगं कृत्वा तत्र कृपानिधिः ।
विश्रम्य च क्षणं हर्षात् प्रतस्थे तैः समं पुनः ॥३८॥

कश्चिद्देशं समासाद्य स्थितं तं सर्व एव हि ।
द्रष्टुं समन्तादौत्सुक्यादाययौ चित्रमेव तत् ॥३९॥

विरमत्येव ये वास्मिन् कृष्टा आसन् समन्ततः ।
तत्रत्या वायुना सार्द्धं धैर्यसौहित्य सौरभैः ॥४०॥

लीला लोलालिललना ललन्नलिन लालनैः ।
नलाल ललनालीनं लीलां लाननिलो ललन् ॥४१॥
(द्व्यक्षरः)

कृपानिधि महाप्रभु वहाँ पर महाप्रसाद भोजन करतः क्षणकाल विश्राम पूर्वक पुनर्बार भक्तवृन्द के सहित प्रस्थान किये थे ॥३८॥

एक स्थान में उपस्थित होकर महाप्रभु विश्राम करने पर तत्रत्य समस्त लोक दर्शनार्थ उत्सुक चित्त से समागत हुये थे, यह अतीव आश्चर्य है ॥३९॥

एवं गौरचन्द्र—गमन से विरत होने पर तद्देशीय जननिकर समीरण के सहित प्रभु की धीरता एवं मनोरम हितकारिता रूप सौरभ से आकृष्ट हुये थे, भावार्थ है कि—सुशीतल समीरण के तुल्य प्रभुचरण के उक्तविध गुणसमूह से सकल लोक सन्तुष्ट हुये थे ॥४०॥

टीका—अनलः पवनः नलिनलालनैः कमलचालनैः लीला-लोलालिललनाः लीलयाविलासेन लोलानां अलीनां भ्रमराणां ललनाः कामिनीः भ्रमरीरित्यर्थः । ललन् ईप्सन् ललनालीनां ललनास्थितां लीलां केलीं लान् गृह्णन् ललन् ईप्सन् सुखितः सन्नित्यर्थः । नलाल

पथि प्रेमाविष्कृतिभिः कृतिभिस्तैः समं व्रजन् ।
मज्जति स्मैष परमामानन्दामृतदीर्घिकाम् ॥४२॥

अथ वीक्ष्य द्रुमं श्रेष्ठं धावन्नारादवारितः ।
स्कन्धमुत्प्लुत्य धृत्वा च लम्बमानः श्रियं दधे ॥४३॥

आलिलिङ्ग तरुं भूयो लोचनाम्बुभिराप्लुतः ।
कं वा केन प्रकारेण नोद्दधार महाप्रभुः ॥४४॥

चचाल। लड़ कु भ्रंशे अत्र ड़लयोरैक्यं स्वीकार्यं। प्रथमत्र ललत् केप्से इति निर्विरोधः। लीला केलिविलासयोरिति मेदिनी। लाल ग्रहणे इत्यदादिकात् शतृप्रत्ययः। अन्योऽपि पतिर्यथा विलासिनीं वनितां करेणाह्वयति। तथा वायुरपि पद्मकरचालनैर्विलासशालिनीः भ्रमरवनिताः अभिलसन् चचालेति भावः ॥४१॥

अनुवाद = उस समय पवनदेव भी पद्मसञ्चालन के द्वारा विलास शालिनी अलिमाला का अभिलाष करतः ललनाविलासेच्छा से प्रवाहित हुये थे ॥४१॥

गौरसुन्दर पथ में प्रेमवितरण करते-करते बुद्धिमान् भक्तवृन्द के सहित गमन करतः आनन्दामृतरूप महती दीर्घिका में निमग्न हुये थे ॥४२॥

अनन्तर एक वृक्ष को देखकर निर्बाध से धावित होकर लम्फ प्रदान पूर्वक एक वृक्षशाखा को अवलम्बन कर अवस्थित हुये थे, उससे विशेष शोभा का विस्तार हुआ था ॥४३॥

महाप्रभु पुनर्बार नयनाश्रुवारि से आप्लुत होकर वनमध्यस्थ वृक्ष समूह को आलिङ्गन किये थे, सुतरां किस रीति से किसको उद्धार नहीं किये हैं, यह कहना असम्भव है ॥४४॥

का के ने व व ने के का
ला व के न न के व ला।
शु द्धा सा र र सा द्धा शु
नु ति र सु सु रा ति नु ॥४५॥
(प्रतिलोमानुलोमपादः)

वृन्दावनद्रुमानित्थमालिङ्गयति विह्वलः।
तथालिलिङ्ग स तरुं यथा चूर्णायते मुहुः ॥४६॥

टीका—काकेनेति। "शुद्ध आसार रसा अद्धा आशु नूति रा सुसुरा अतिनु।" इति परार्द्धस्य पदच्छेदः। वने कानने काकेन वायसेन इव लावकेन तदाख्यपक्षिणा न केवला पूर्णेत्यर्थः। शुद्धः आसारः धारासम्पातः यत्र सः शुद्धासारः वर्षर्त्तुः तत्र रस अनुरागः यस्याः तादृशी केका मयूरवाणी। केका वाणी मयूरस्येत्यमरः। नु-धातो र्भावे क्तिः नुतिः स्तवः तां राति ददातीति रा धातोः कर्त्तरि डः स्त्रियामाप्। तादृशी या सु-सुखदा सुरा तामपि अतिक्रम्य नुः स्तवनं यत्र तादृशं यथा तथा दिदीपे इति शेषः। अस्य पादचतुष्टये अनुलोमविलोमपाठे अर्थात् वामाद्दक्षिणतो दक्षिणाद् वामतस्तुल्यः पाठः ॥४५॥

अनुवाद=कानन के मध्य में काक के सदृश लाबक नामक पक्षिसमूह की ध्वनि के सहित मयूर की उच्चध्वनि पूर्ण हुई थी, एवं वास्तविक रूप में मयूर ध्वनि, विशुद्ध वर्षाऋतु सम्बन्धान्वित होने से उत्कृष्ट होकर मानों मदमत्त व्यक्ति को भी अतिक्रम करतः उच्च स्तवपाठ के समान शोभित हुई थी ॥४५॥

इस प्रकार गौरचन्द्र विह्वल होकर वृन्दावन के वृक्षसमूह को आलिङ्गन करने लगे थे एवं प्रभु इस प्रकार आलिङ्गन किये थे जिससे मुहुर्मुहु वृक्षगण विचूर्ण हो सकते थे ॥४६॥

अधः कण्ठकसंकीर्णे निपतिष्यन्तमञ्जसा ।
भिया पुरिप्रभृतयो जगृहुर्वरबाहुभिः ॥४७॥
ऊचेऽथ पम्य पश्यायं कृष्णचन्द्रोऽभितोऽभितः ।
प्रतिद्रुमं विलसति जगत्येतन्मयीक्ष्यते ॥४८॥
अवपथोऽतिविमलमनन्तमसकृद्बभौ ।
निष्पङ्कं भूतलं चाथ चित्रचित्रा प्रभोर्गतिः ॥४९॥
(श्लोकावृत्तिः)
अधिकं शुशुभे तत्र विजयेन प्रभोरसौ ।
विकसत्काशकुसुमसुस्मिता सुरसा शरत् ॥५०॥
भुवनेश्वर आगत्य ददर्श भुवनेश्वरम् ।
महाप्रसादं प्रोपास्य तत्रैव विरराम सः ॥५१॥

कण्टकसमाकीर्ण अधःप्रदेश में प्रभु निपतित हो जायेंगे, इस समय श्रीपरमानन्दपुरी प्रभृति भक्तगण सभय से शीघ्र स्वीय विशाल बाहुद्वय के द्वारा धारण किये थे ॥४७॥

अनन्तर गौरहरि प्रेम विह्वल होकर कहे थे—"देखो-देखो कृष्णचन्द्र इतस्ततः प्रत्येक वृक्ष में विलसित हैं, मैं जगत् को कृष्णमय देख रहा हूँ" ॥४८॥

जलराशि समाकीर्ण, अति निर्मल, पङ्कविहीन अनन्त भूतल नियत शोभित थे, एवं ततपश्चात् अर्थात् वर्षाऋतु के अनन्तर शरत् काल में विचित्र गति से प्रभु का गमन हुआ था ॥४९॥

प्रभु के विजय समय में सुरसशाली शरत् में विकशित काश-कुसुम, सुमधुर हास्य विस्तार करतः समधिक शोभित हुआ ॥५०॥

महाप्रभु—भुवनेश्वर में आगमन कर श्रीभुवनेश्वर के दर्शन एवं महाप्रसाद भोजन करतः वहाँ पर विश्राम किये थे ॥५१॥

अन्येद्यू रजनीशेषे प्रतस्थे तैः समं प्रभुः ।
हरिदासं पुरः प्राप्याविशद्ग्रामं महाप्रभुः ॥५२॥

सा र सा स र सा रं
र सा नू त न नू त ना
ना त नू न त नू सा र
रं सा सा र स सा र सा ॥५३॥

(प्रतिलोमानुलोमश्लोकः)

तत्र नूतनगेहादि कारयित्वा निदेशतः ।
पुरा रामानन्दरायो निनाय प्रभुमञ्जसा ॥५४॥

महाप्रभु अपर दिवस रजनी अवसान होने पर भक्तगण सह प्रस्थान किये थे, एवं हरिदास को सम्मुख में प्राप्त कर ग्राम के मध्य में प्रविष्ट हुये थे ॥५२॥

जो शरत्‌रसा—अर्थात् पृथिवी की सरसा उत्कृष्ट वस्तु है, जो आसार—अर्थात् वर्षण विहीन होकर एवं रस—अर्थात् जल द्वारा सम्यक् रूप से उत्कृष्ट है, एवं बहुतर सारस-अर्थात् तन्नामक जलचर पक्षि विशिष्ट होकर "नातनू एवं नतनू"-"शरीरी एवं अशरीरी" समस्त वस्तु की सार तेजः प्रदान करतः प्रसिद्ध शरत्‌काल शोभित हुआ, शरीरी—वृक्षलतादि, अशरीरी—समय दिक् प्रभृति हैं, शरत् काल में वृक्षलतादि का विशेष विकाश होता है, एवं शीतऋतु अंश विद्यमान होने से समय भी उत्तम होता है, एवं दिक् समूह प्रसन्न होते हैं ॥५३॥

रामानन्दराय—अनुमति के अनुसार पहले ही उस स्थान में नूतन आवास स्थल की व्यवस्था कर शीघ्र प्रभु को वहाँ पर ले गये थे ॥५४॥

लेपितं शुद्धमालोक्य गृहं तत्र कृपानिधिः ।
उवास परमप्रीत्या परमानन्दपूरिणा ॥५५॥
ततो नीलाचलादाशु समायातोऽभवन्मुहुः ।
महाप्रसादनिचयः स्वन्नपानकपिष्टकः ॥५६॥
यदाज्ञा ब्रह्मरुद्राद्यैराधाय शिरसीड्यते ।
किं तस्य विभवो लोकैर्ज्ञायते विभवो नु कैः ॥५७॥
तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रेम्नोपास्य च तैः समम् ।
श्रीरामानन्दरायेण कथया रजनीं ययौ ॥५८॥
एतेनैव समं नानाकथाकथनतत्परः ।
निनाय रजनीं नाथो रजनीनाथसुन्दरः ॥५९॥

कृपानिधि गौरचन्द्र—उक्त गृह को शुद्ध एवं आलेपन युक्त देखकर परम प्रीत होकर परमानन्दपुरी के सहित वहाँ अवस्थान किये थे ॥५५॥

तत्पश्चात् नीलाचल से मुहुर्मुहुः सुन्दर अन्न, पाना एवं पिठा प्रभृति अनेक महाप्रसाद आशु आकर उपस्थित हुये थे ॥५६॥

ब्रह्मा रुद्र प्रभृति देवगण जिनकी आज्ञा को शिरोधारण पूर्वक स्तव करते हैं, विभवशाली लोक जो उनका विभव को जान गये हैं, यह आश्चर्य क्या है, कुछ भी नहीं है, अथवा उनका वैभव को लोकों ने जाना है, यह और भी आश्चर्य वैभव है ॥५७॥

महाप्रभु—प्रसादान्न को देखकर परम प्रीत हुये थे, एवं अत्यन्त प्रेम से भोजन करतः श्रीरामानन्दराय के सहित विविध वार्त्तालाप से रजनी यापन किये थे ॥५८॥

रजनीनाथ—शशधर के समान सुन्दर गौरचन्द्र—रामानन्दराय के सहित नाना कथालाप से रजनी अतिवाहित किये थे ॥५९॥

प्रभुश्च परमानन्दपुरी चापि पुरो ययौ ।
रामानन्दस्तु मतिमान् पश्चात् पश्चात् समाययौ ॥६०॥
एवमेवं पथि चलन्मधुराधररोचिषा ।
जजाप निजनामानि करुणारससागरः ॥६१॥ (असंयोगः)
एवं व्रजन्नुपनदि वीक्ष्यावासं मनोरमम् ।
ऊचेऽनुगायन्मधुरं मधुराधरसुन्दरः ॥६२॥
अग्रे गच्छत यूयं तु कटके तत्र नीवृति ।
दर्शनं मम गोपीशप्रासादेषु भविष्यति ॥६३॥
इत्युक्तास्ते महात्मानः पुरीप्रभृतयस्तदा ।
प्रययुस्तत्र गौराङ्गो विशश्रामाथ केनचित् ॥६४॥
आयाति करुणासिन्धुरिति श्रुत्वा गजेश्वरः ।

अनन्तर महाप्रभु एवं परमानन्दपुरी सम्मुख में गमन करने लगे थे, किन्तु मतिमान् रामानन्दराय उन सब के पश्चात्-पश्चात् गमन किये थे ॥६०॥

करुणासागर गौरहरि—इस प्रकार सुमधुर अधररुचि के सहित पथ में गमन करतः निजनाम अर्थात् हरिनाम जप कर रहे थे, यह पद्य असंयुक्त वर्ण द्वारा रचिता है ॥६१॥

मधुराधर सुन्दर गौरसुन्दर गमन करते-करते नदीतीर में मनोरम वासस्थान का सन्दर्शन करतः मधुर स्वर से हरिनाम करते करते कहे थे ॥६२॥

प्रथम आप सब कटक गमन करें, श्रीगोपीनाथ मन्दिर में मेरे साथ साक्षात्कार होगा ॥६३॥

उस समय परमानन्दपुरी प्रभृति महात्मागण गमन करने से गौरहरि कोई एक भक्त के सहित वहांपर विश्राम किये थे ॥६४॥

आज्ञया सकलं तीर्थं चकार करलालितम् ॥६५॥
(निरोष्ठ्यः)

सर्वाङ्गीनैरलङ्कारैर्माधुर्य्योजःप्रसादवान् ।
गोपीनाथो रराजासौ वाग्विलासः कवेरिव ॥६६॥

उत्कण्ठां तरुणीं प्राप्य निरन्तरनवां नवां ।
रराज राजा मधुरः सश्रीक इव चैत्रिकः ॥६७॥

"करुणासिन्धु गौरहरि का आगमन हो रहा है" गजपति प्रतापरुद्र यह सुनकर आज्ञानुसार हस्त द्वारा समस्त तीर्थघाट पवित्र किये थे। यह पद्य ओष्ठ्य वर्ण रहित है, श्रुत्वा एवं गजेश्वर पद में संयुक्त 'व' द्वय अन्त्यस्थ है, सुतरां दन्त्य है ॥६५॥

सर्वाङ्ग सुन्दर अलङ्कार के द्वारा गोपीनाथ—ओजः (तेजः) एवं प्रसन्नतायुक्त होकर कवि का वाक्य विन्यास के समान शोभित हुये थे। तात्पर्य—सर्वाङ्गसुन्दर दोषादिविहीन, उपमा, निदर्शना एवं दृष्टान्तादि अलङ्कार से शोभित होकर काव्य श्रवणमात्र से चित्त को द्रवीभूत करता है, माधुर्य—चित्तद्रवीभावमयो ह्लादो माधुर्य मुच्यते। ओजः—ओजश्चित्तस्य विस्ताररूप दीप्तत्व मुच्यते। वीर बीभत्स रौद्रेषु क्रमेणाधिक्य मुच्यते। प्रसाद —चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च। 'ट' कारादि कठोर वर्ण विहीन एवं समास रहित अर्थात् अल्पसमास युक्त को माधुर्य कहते हैं, समास बहुल दीर्घपदयुक्त वाक्य जो वीर, बीभत्स रौद्ररसोपयोगी है, वह ही ओजः है, अग्नि जिस प्रकार शुष्क काष्ठ को आशु अधिकृत करता है, उस प्रकार जो वाक्य सहसा चित्त को अभिव्याप्त करता है, वह प्रसाद है, अर्थात् प्रसिद्ध पदयुक्त तादृश गुणत्रययुक्त कवि वाक्य जिस प्रकार शोभामण्डित है, उस प्रकार श्रीगोपीनाथ शोभित हैं ॥६६॥

मधुराङ्ग राजा प्रतापरुद्र क्षण-क्षण में नूतन-नूतन उत्कण्ठा

तत एते महात्मानो गोपीनाथमहाप्रभोः ।
प्रासादं विविशुर्हृष्टाः प्रसादोल्लसिताननाः ॥६८॥
तत्र तान् परया प्रीत्या वेत्रवेल्लितपाणयः ।
अनयन्नन्तरं वेश्म विस्मृतान्यमनोरथान् ॥६९॥
ते विलोक्याथ तं प्रेम्ना प्रीतिमापुर्महत्तराम् ।
अथ कश्चिन समागत्य तत्रत्यः पृथिवीसुरः ।
भिक्षार्थमवृणोत्तत्र परमानन्दपूरिणम् ॥७०॥
अत्रान्तरे गौरचन्द्रश्चन्द्रकोटिसमुज्ज्वलः ।
ज्वलत्काञ्चनशैलाभो लाभोदय इवागमत् ॥७१॥
दृष्ट्वा चिरं कृपासिन्धुर्गोपीनाथं मनोरमम् ।
मनोरथं मूर्त्तिमन्तमिव तत्र मुदं ययौ ॥७२॥

रूप तरुणी को प्राप्त कर सश्रीक (शोभमान) वसन्तकाल के समान शोभित हुये थे ॥६७॥

अनन्तर महात्मा भक्तगण—हृष्ट एवं प्रसन्नता से उल्लसित वदन होकर गोपीनाथरूपी महाप्रभु के प्रासाद में प्रविष्ट हुये थे ॥६८॥

तत्रत्य सेवकगण—वेत्रधारण करत: करकम्पन करते-करते परमप्रीति के सहित अन्य मनोरथशून्य होकर अर्थात् दर्शनार्थ एकाग्र चित्त होकर भक्तगण को मन्दिर में आनयन किये थे ॥६९॥

भक्तगण—महाप्रेम से गोपीनाथरूपी महाप्रभु का दर्शन कर सुमहती प्रीति प्राप्त किये थे, पश्चात् तत्रत्य एक ब्राह्मण समागत होकर श्रीपरमानन्दपुरी को भिक्षा के निमित्त निवेदन किये थे ॥७०॥

इतिमध्य में कोटिचन्द्र समुज्ज्वल गौरचन्द्र तप्तकाञ्चन शैलसदृश उदित होकर ही मानों समागत हुये थे ॥७१॥

कृपानिधि गौरहरि—वहाँपर मूर्त्तिमान् मनोरथ के तुल्य

अथ स्वप्नेश्वरो नाम सोऽयं धरणिदैवतम् ।
भिक्षार्थमवृणोत्तत्र गृहेऽपि च समानयत् ॥७३॥
अन्यांस्तु जगदानन्दमुख्यान् सुखपरायणान् ।
श्रीरामानन्दरायोऽसौ निनाय निजमन्दिरम् ॥७४॥
आगाराहित्यसुखदे मनोरामे स तानथ ।
आगाराहित्यसुखदे सदारामे तदानयत् ॥७५॥
आरामारामललितान् कृत्वा तानथ सत्वरम् ।
रामानन्दो जनानन्दोल्लासकृद्भूपमासदत् ॥७६॥

श्रीगोपीनाथ का दर्शन कर अतिशय आनन्दित हुये थे ॥७२॥

अनन्तर स्वप्नेश्वर नामक एकजन धरणिदैवत (ब्राह्मण) भिक्षा के निमित्त श्रीप्रभु को वरण किये थे एवं निज भवन में ले गये थे ॥७३॥

किन्तु जगदानन्द प्रभृति अन्यान्य आनन्द परायण भक्तवृन्द को श्रीरामानन्दराय निज मन्दिर में ले गये थे ॥७४॥

टीका—आगारेति। अथानन्तरं सः रामानन्दरायः तदा तस्मिन् काले। तान् भक्तजनान्। हितं करोतीति हित्यं भावे ष्यः। संताऽगितश्चेति नियमात् न दीर्घत्वं। आगरस्य आ सम्यक् हित्यं हितजनकं। सुखं ददातीति तस्मिन्। मनोरामे मनोहरे। तथा न गच्छन्तीति अगाः पर्वताः ते एव इति स्वार्थे ष्णे आगाः तेषां अराहित्यसुखं अर्थात् पार्वत्यसुखं ददातीति तस्मिन् सदारामे गृह समीपवर्त्ति प्रशस्तकानने अनयत् नीतवान् प्रापयामास इत्यर्थः ॥७५॥

अतःपर रामानन्दराय—भवन हितकर एवं सुखद पार्वतीय वनविहारजनित आह्लाददायक मनोहर एवं प्रशस्त उपवन में भक्त वृन्द को ले गये थे ॥७५॥

अनन्तर रामानन्दराय समस्त भक्तगण को सुखप्रद उपवन में सत्वर

ते तत्र रन्धोनोद्योगं चक्रुर्विश्रमणान्तरम् ।
कृतभिक्षः पुरीस्वामी प्रभुना तत्र चागमत् ॥७७॥
तत्रोपवनमध्येऽस्ति सूच्छ्रितो वकुलद्रुमः ।
विसारी निविड़च्छायः कुलानां वकुलद्रुमः ॥७८॥
परमानेन ललिता परमानेन सर्वतः ।
राजीवनस्य साजीवराजीवयुगथाभवत् ॥७९॥
वकुलद्रुममूलेऽसौ वसत् भाति स्म सुस्मितः ।
अनेन हेमरूपेण जम्बुवृक्षं जिगाय सः ॥८०॥

सुखित कर जननिकर के आनन्दोल्लासकारी नृपति प्रतापरुद्र के निकट आगमन किये थे ॥७६॥

पश्चात् समस्त भक्तगण विश्रामानन्तर रन्धन का उद्योग किये थे, अन्य ओर परमानन्दपुरी स्वामी भिक्षा कार्य सम्पादन पूर्वक उपवन में उपस्थित हुये थे ॥७७॥

उस उपवन में एक अत्युन्नत वकुलवृक्ष था, जिसकी शाखा प्रशाखा सुविस्तृत रहीं, छाया निविड़तर थी, एवं स्वजातीय वृक्ष समूह के मध्य में वकुलरूपी द्रुम कुवेर के तुल्य प्रचुर धनशाली था, अर्थात् यह वृक्ष कल्पतरु के सदृश था ॥७८॥

सुवृहत् परिमाणशाली परमान अर्थात् अन्यान्य वृक्ष के परिमाण में जो समधिक सुन्दर था, वह वनराजी जीव अर्थात् जीवित राजीव गण युक्त हुई थी । "परमानेन ललिता परमानेन सर्वतः" के स्थान में "पवमानेन ललिता पवमानेन सर्वतः" पाठ है, तथात्वे-पवमानेन मन्द-मन्द सञ्चारिणा पवमानेन वायुना ललिता चित्तहारिणी । इत्यर्थः ॥७९॥

गौरचन्द्र—उक्त वकुलवृक्ष के तलदेश में उपविष्ट होकर सहास्य वदन से शोभित हुये थे, एवं दृश्यमान सुवर्ण विजयिनी कान्तिमाला से

अत्रान्तरे गुरुश्रीको भूपचक्रशिरोमणिः ।
विजयं गौरचन्द्राङ्घ्रि दृष्टचै तत्र चकार सः ॥८१॥
रामानन्दसहायः स सवसन्त इव स्मरः ।
चतुरङ्गबलैर्युक्तः समयात् समयात्ततः ॥८२॥
अवतीर्य गजस्कन्धात् गजस्कन्धातिसुन्दरः ।
तदारामं प्रति प्रीत्या भूमौ गच्छन् बभौ भृशम् ॥८३॥
सदा सदानैर्गुरुभिर्नागैर्नागैर्हयैर्वृतः ।
पत्तिसंपत्तिसञ्चायैर्भूयो भूयो रराज सः ॥८४॥
नास्त्येवास्य समो राजा किं स्वर्गे किं महीतले ।
इतीव तच्च तच्चोच्चैः क्षुरैरक्षोभि घोटकैः ॥८५॥

जम्बु वृक्ष को भी पराजित किये थे ॥८०॥

इत्यवसर में विपुल शोभाशाली भूपति शिरोमणि प्रतापरुद्र गौरचन्द्र पादपद्म दर्शनार्थ यात्रा किये थे ॥८१॥

वसन्त के सहित कन्दर्प के समान प्रतापरुद्र—रामानन्दराय के सहित "हस्ती, अश्व, रथ, पदाति" चतुरङ्ग बल समन्वित होकर यथा समय में समागत हुये थे ॥८२॥

गजस्कन्ध से भी सुन्दर स्कन्ध गजपति प्रतापरुद्र—गजस्कन्ध से अवतीर्ण होकर प्रीति पूर्वक उपवन में पुनः पुनः गमन करतः अतीव शोभित हुये थे ॥८३॥

निरन्तर मदवारिस्रावि सुवृहत् स्वैरी करिवर्ग द्वारा तथा अश्व एवं पदातिकरूप सम्पत्ति समूह से परिवृत होकर प्रतापरुद्र शोभित हुये थे ॥८४॥

"प्रतापरुद्र के समान राजा स्वर्ग में अथवा भू-मण्डल में दृष्ट नहीं होता है" उच्च घोटकगण मानों उसको सूचित करने के निमित्त

रामानन्दभुजं धृत्वा नियोज्यामात्यसञ्चयम् ।
अभितोऽभिययौ राजा पूर्णचन्द्रोऽर्कयुग्यथा ॥८६॥
अमात्यैरमरप्रायैरन्तर्बलनिवेशिभिः ।
प्रथमं वलयीभूतो भूप्रदेशो रराज सः ॥८७॥
तद्वहिः पत्तयोऽतिष्टंस्तद्वहिर्हयसञ्चयः ।
तद्वहिश्च गजाः सर्वे व्यूहएवाभवत्तदा ॥८८॥
पादारविन्दयुगलं वीक्ष्य तत्र द्रवन्मनाः ।
भूपतिर्भूतलं भूयः प्राप हर्षाश्रुणा सह ॥८९॥

(असन्ध्यक्षरः)

ही क्षुर के द्वारा भूतल को आलेखन करने लगे थे ॥८५॥

सूर्य सम्मिलित पूर्णचन्द्र के समान राजा प्रतापरुद्र-रामानन्दराय के बाहु धारण पूर्वक मन्त्रिगण को नियोजित करतः इतस्ततः गमन करने लगे थे ॥८६॥

मध्यवन में प्रविष्ट देवसदृश अमात्यवर्ग प्रथमतः कानन के भू-भाग में गोलाकार होकर शोभित हुये थे। "अन्तर्बलनिवेशिभिः" के स्थान में "अन्तर्वननिवासिभिः" पाठ है। यह पाठ साधु नहीं है ॥८७॥

मन्त्रिगण के वहिर्देश में पदातिकगण तद्वहिर्भाग मे घोटकगण एवं उसके वहिर्भाग में हस्तिगण अवस्थित होने पर उस समय सुमहान् एक सेनानिवेण (शिविर) हुआ था ॥८८॥

भूतति प्रतापरुद्र वहाँपर प्रभु पादपद्म युगल दर्शन कर द्रवीभूत चित्त से आनन्दाश्रु के सहित भूतल प्राप्त हुये थे, अर्थात् राजा का नेत्रजल भी भूतल में पतित हुआ था, राजा भी भूतल में लुठित हुये थे ॥८९॥

प्रणम्य बहुधा दृग्भ्यामपिवद्वदनाम्बुजम् ।
नच तृप्तिमगाद्भूपश्चित्रं गौराङ्गचेष्टितम् ॥६०॥
बहुधा गौरचन्द्रोऽपि प्रेम्नाभाष्य वचोऽमृतैः ।
सिषेच तस्य सर्वाङ्गं सर्वाङ्गीनमिवाश्लिषन् ॥६१॥
आज्ञायाज्ञां प्रसादं च कृतकृत्यः सः निर्ययौ ।
अमात्यनिचयाः सर्वे ततो द्रष्टुं ययुर्द्रुतम् ॥६२॥
पारेचित्रोत्पलं सोऽकूपारे चित्रोत्पलं यथा ।
यियासोः स्वमतं ज्ञात्वा भूपः सत्पात्रमब्रवीत् ॥६३॥
(पद्यभेदः)

भूपति—विविध प्रकार से प्रणति अर्पण करतः नेत्रद्वय द्वारा मुखपद्म दर्शन किये थे, किन्तु अतृप्त ही हो गये थे, आहा ! गौरसुन्दर की कैसी अत्याश्चर्यचेष्टा है ? "नच तृप्तिमगाद्भूपः" के स्थान में "न तृप्तिमगमद्भूपः" पाठ हैं ॥६०॥

गौरचन्द्र भी प्रीति पूर्वक सम्भाषण एवं सर्वाङ्गीन आलिङ्गन करतः वाक्यामृत द्वारा भूपति को अभिषिक्त किये थे ॥६१॥

प्रतापरुद्र कार्य सम्पन्न कर प्रभु की आज्ञा से परिवारवर्ग के प्रति आज्ञा एवं प्रसन्नता प्रकट करतः निर्गत हुये थे, पश्चात् अमात्य वर्ग सत्वर प्रभु दर्शनार्थ गमन किये थे ॥६२॥

टीका—पारे इति । सः भूपः प्रतापरुद्रः चित्रोत्पलानाम नदी तस्याः पारे इति पारेचित्रोत्पलं "पारे मध्ये षष्ठ्या वा" इति पारे शब्देनाव्ययीभावः । सप्तमी स्थाने "वात् क्तेर्मोऽतोऽप्याः" इति मकारः । तस्मिन् चित्रोत्पलानदीपारे अकूपारे समुद्रे । समुद्रोऽब्धि रकूपारः । इत्यमरः । चित्रोत्पलं यथा चित्रोत्पलामिव यियासोः प्राप्तुमिच्छोः प्रभोः स्वमतंनिजाभिप्रायं ज्ञात्वा चित्रोत्पलान्याहर्त्तुमिव प्रभुर्जगामेति निश्चितेत्यर्थः । सत्पात्रं अन्तरङ्गभृत्यमेकमङ्गराज-

मङ्गराज भवानेन हरिचन्दनसंगतः ।
पारेमहानदि महाप्रभुमन्वेतु सत्वरम् ॥९४॥
तदाशयाथ ते सोऽपि श्रीरामानन्दरायकः ।
नौकाः सुमहतीश्चक्रे प्रभुं चाथ समानयन् ॥९५॥
उदियाय तदा पूर्णो भगवान् मृगलाञ्छनः ।
करैः सम्मार्जयामास पन्थानमखिलं ततः ॥९६॥
ततो गच्छति गौराङ्गे राजकीयस्तदागतः ।
तत्रत्यांस्तत्र निर्णीय तदाज्ञां निजगाद सः ॥९७॥
आज्ञापयति देवो यच्छ्रूयतां तन्महोत्तमाः ।
आरोप्योऽत्र स्तम्भ एको येन तीर्थं भवेदिदम् ॥९८॥

नामानमब्रवीत् प्रभुमानेतुमकथयत् ॥९३॥

अनुवाद—चित्रोत्पला नाम्नी नदी के पार में समुद्र के मध्य में प्रभु चित्रोत्पल आहरणार्थ सम्भवतः गये होंगे" गौरचन्द्र के इस प्रकार मत को जानकर ही मानों भूपति मङ्गराज नामक एक भृत्य के प्रति आज्ञा किये थे ॥९३॥

हे मङ्गराज ! आप हरिचन्दन के सहित सम्मिलित होकर सत्वर महानदी के पार में स्थित महाप्रभु के निकट गमन करें ॥९४॥

अनन्तर नरपति की आज्ञा से मङ्गराज, हरिचन्दन एवं रामानन्दराय सुमहती नौका में आरोहण कर प्रभु को ले गये थे ॥९५॥

उस समय भगवान् मृगलाञ्छन शशधर उदित होकर स्वीय किरणमाला से पथ को सम्मार्जित करने लगे थे ॥९६॥

तदनन्तर गौराङ्गदेव गमन करने के बाद राजकीय भृत्यगण गमन किये थे, एवं वे सब राजाज्ञा के अनुसार तत्रत्य लोकसमूह को कहे थे ॥९७॥

अहे महत्तमगण ! महाराज का आदेश श्रवण आप सब

इति श्रुत्वा नृपाज्ञां ते स्तम्भमारोप्य तत्र च ।
नौकामारोप्यो मुदिताः प्रभुं हर्षादुपासत ॥९९॥
इत्थं पारेनदि सतु चतुर्द्वारमागत्य तैस्तै–
रात्रौ चन्द्रातपमधुरिमव्यावृतायां समन्तात् ।
स्वापं चक्रे प्रभुरथ जगुन्नाथसन्मण्डपान्त–
र्लोकैर्लक्षावधिभिरपितु स्थानमेवात्र नापे ॥१००॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये श्रीवृन्दावन यात्रायामूनविंशः सर्गः ॥



करें, महाराज की आज्ञा यह है—यहाँ पर एक स्तम्भारोपण करना होगा, जिससे यह स्थान तीर्थ रूप में विख्यात हो ॥९८॥

जननिकर राजाज्ञा के अनुसार उस स्थान में स्तम्भ निर्माण पूर्वक प्रभु को नौकारोहण करवाकर प्रमुदित चित्त से उपासना किये थे ॥९९॥

अनन्तर महाप्रभु–भक्तवृन्द के सहित नदीपार होकर चतुर्द्वार में समागत हुये थे एवं चन्द्रातप की माधुर्यावृत रात्रि में जगन्नाथदेव के उत्कृष्ट मण्डप में शयन किये थे, अन्यान्य लक्ष-लक्ष लोकों का स्थान वहाँ पर नहीं हुआ । श्लोक में मन्दाक्रान्तावृत्त है, "मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगै र्मोभनौ गौ ययुग्मम्" ॥१००॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये वृन्दावनीय श्रीहरिदासशास्त्रिणानुदिते श्रीवृन्दावन यात्रायामूनविंशः सर्गः ॥



विंशः सर्गः

रात्रिर्याता नाथ तल्पं जहीही-
त्याकर्ण्य पक्षिरणां कूजितानि ।
नेत्रे निद्रामुद्रिते जागृहीति
द्रागाक्षिप्यन् पारिणनाथोदियाय ॥१॥

(शालिनी ३६ पर्यन्त)

निर्माल्यान्नं तत्र सद्यः समेतं
दृष्ट्वा हर्षादाह्निकान्यारभेत ।
अन्नं पानं पिष्टकादि प्रकामं
तैस्तैर्भुक्त्वा प्रीतिमांश्च प्रतस्थे ॥२॥

तत्रामात्यौ तेन सम्यग्विसृष्टौ
ताभ्यां भूयो नेत्रपाथोजपाथः ।
तेने क्षामे तत्तनू हन्त ताभ्या-
मुत्साहोऽयं कः प्रकारो विधातुः ॥३॥

"हे नाथ ! रात्रि प्रभात हुआ है शय्या त्याग करें" गौरचन्द्र पक्षियों का कूजन श्रवण करतः "जागो" यह कहकर निद्रा मुदित नेत्रद्वय को झटिति आक्षेपण कर तत् पश्चात् शय्या से गात्रोत्थान किये थे, अस्मिन् सर्गे ३६ श्लोक पर्यन्त शालिनी वृत्तमस्ति । "मात्तौ गौचेच्छालिनी वेद लोकैः" ॥१॥

श्रीमन्महाप्रभु शीघ्र आनीत निर्माल्यान्न दर्शन करतः सहर्ष से आह्निककृत्य प्रारम्भ किये थे, अनन्तर अन्न पानीय से तृप्त होकर प्रस्थान किये थे ॥२॥

वहाँ पर अमात्यद्वय श्रीगौरचन्द्र कर्त्तृक विसृष्ट होकर नेत्रवारि विसर्ज्जन किये थे, एवं तत्कारण से स्वीय कलेवर क्षीण करतः

देशं देशं प्रत्युपेयुः समन्ता–
दाज्ञा राज्ञो लेखपूर्वाः समन्ताः ।
स्थाने स्थाने नव्यनव्यं निशान्तं
सामग्रीभिः कर्त्तुमग्रे पवित्रम् ॥४॥

उद्यन्नासीद्यत्र तैरेष नाथो
हर्षोत्कर्षाल्लक्षसंख्यैर्मनुष्यैः ।
निष्प्रत्यूहं तत्र तत्रेक्षणाब्जैः–
काकुप्रोक्तैः पूजितः संस्तुतश्च ॥५॥

अद्य श्वो वा नूनमत्रैष्यतीति
प्रोच्चै रासीदग्रतोहर्षनादः ।
पश्चादायातीति तस्मादुपेतो
भो भोः पश्चादेव सर्वत्र भूयः ॥६॥

उत्साह विस्तार किये थे, विधाता की गति कैसी आश्चर्यवती है ॥३॥

स्थान-स्थान पर नूतन गृह समूह विविध सामग्री द्वारा पवित्र करने के निमित्त पत्र प्रेषित राजाज्ञा समस्त देश में उपस्थित हुई थी ॥४॥

गौरचन्द्र जिस देश में उपस्थित हुये थे, वहाँ पर लक्ष-लक्ष मनुष्य हर्षातिशय से नेत्रपद्म एवं काकु वाक्य द्वारा प्रभु को पूजा एवं स्तव करने लगे थे ॥५॥

"गौरचन्द्र अद्य अथवा परदिन आयेंगे" पश्चात् "आ रहे हैं" "महात्मागण आकर उपस्थित हुये हैं" इस प्रकार श्रीगौरहरि का आगमन के पूर्व में ही गन्तव्यदेश में उच्चैःस्वर से महान् आनन्दनाद उपस्थित होने लगा ॥६॥

केचित् केचित्तत्र पप्रच्छुरार्य्याः
क्वासौ क्वासौ कृष्णचैतन्यचन्द्रः ।
इत्थं नाथं पूरिणं तं प्रभुं तं-
तावन्योन्यं दर्शयामासतुस्तान् ॥७॥

वासं वासं प्रत्युपेते प्रभाते
राज्ञामाज्ञा यन्त्रिताः सर्वएव ।
देशे देशे शुद्धगेहानि कृत्वा
सामग्रीश्च प्रोन्मदा आनयन्ति ॥८॥

रामानन्दो भद्रपर्यन्तमेत्य-
प्रत्यावृत्तस्तेन सम्यग्विसृष्टः ।
विच्छेदार्त्तः क्षेत्रमेव प्रतस्थे-
गौराङ्गोऽयं सोऽप्युपेयादुदीचीम् ॥९॥

ओड्रं यावद्भूपतेर्लेखयुक्ता
आसंस्तावत्तावदेवं धुरीणैः ।

तत्रत्य कतिपय आर्यगण—"कृष्णचैतन्य कहाँ ?" इस प्रकार पुनः-पुनः जिज्ञासा करने पर गौरचन्द्र एवं परमानन्दपुरी उभय जन ही दर्शनार्थी जनगन को निज परिचय प्रदान किये थे ॥७॥

पश्चात् रजनी प्रभात होने से राजाज्ञा से नियमित लोकसमूह देश-देश में विशुद्ध भवन निर्माण कर अतिहर्ष से विविध सामग्री आनयन किये थे ॥८॥

रामानन्दराय—भद्रेश्वर पर्यन्त आकर श्रीमहाप्रभु कर्त्तृक सम्यक्रूप से वियुक्त एवं विच्छेदान्त होकर प्रत्यावर्त्तन कर श्रीक्षेत्र प्रस्थान किये थे, श्रीगौराङ्गदेव भी उत्तर की ओर यात्रा किये थे ।९।

भूपति प्रतापरुद्र के आदेशानुसार समस्त लोक नियुक्त हुये थे,

प्रातर्धूपान्तर्गतं राजयोग्यं-
निर्माल्यं चानीतमेव प्रकामम् ॥१०॥

श्रीमान् गौड़ं देशमासाद्य गङ्गा
द्रष्टव्येति प्रेमवैह्वल्यनुन्नः ।
तत्संसृष्टिस्निग्धमुग्धान्तरात्मा
तत्तत्स्थानाप्यायिताङ्गः सः रेजे ॥११॥

आगत्य श्रीराघवस्याश्रमान्तः
श्रीगौराश्चन्द्रवत् पूर्वशैलम् ।
गन्धैर्माल्यैः पुष्पधूपोपहारैः
प्रेमाविष्टः कौतुकी संममाद ॥१२॥

तत्र स्थित्वा राघवस्याश्रमेऽसौ
नीत्वा नाथः पञ्चषान् वासरान् सः ।
ज्येष्ठं तावच्छ्रीनवद्वीपभूमा-
वग्रे प्रीत्या प्रेषयामास हृष्टः ॥१३॥

एवं अग्रगन्य लोकसमूह प्रातःकालीन उपयुक्त धूपान्तर्गत राजयोग्य विविध निर्माल्य वस्तु का आहरण यथेष्टरूप से किये थे ॥१०॥

अनन्तर श्रीमान् गौरचन्द्र "गौड़देश में जाकर श्रीजननी का दर्शन करना होगा" इस प्रकार प्रेमविह्वलता से प्रेरित होकर भक्तवृन्द के संसर्ग से स्निग्ध एवं मुग्धान्तः करण होकर भी भक्तवृन्द कर्त्तृक आप्यायित होकर शोभित हुये थे ॥११॥

श्रीगौरचन्द्र—पूर्वदिग्वर्त्ति उदयशैल में चन्द्र के समान श्रीराघव के आश्रम में उपस्थित होकर प्रेमाविष्ट एवं कौतुकी होकर गन्ध, माल्य, धूप एवं उपहार द्वारा सम्यक्रूप से आमोदित हुये थे ॥१२॥

गौरचन्द्र—उक्त राघवाश्रम में पाँच-छै दिन अवस्थान करने

तस्मिन् याते गौरचन्द्रः समेतः
श्रीवासस्य प्रेमपात्रस्य गेहम् ।
स्थित्वा तत्र प्राणिमात्रे दयालुः
सर्वत्रासौ संव्यधत्तानुकम्पाम् ।१४।।

द्वित्रैरस्मिन् वासरैर्लक्षसंख्या
भूयो भूयो हर्षपाथोधिमग्नाः ।
यातायातं सर्वतश्चक्रुरत्र-
च्छिद्रं नासीच्चैवमस्यानुभावः ।।१५।।

रथ्यास्वोकःद्वारि केचिद्द्रुमेषु
प्राचीरेषु प्रायशोऽन्ये मनुष्याः ।
आसन् लीलाभित्तिचित्रप्रतीका
नोत्कण्ठानां पारमीयुः कदाचित् ।।१६।।

के बाद महाहृष्ट होकर श्रीनवद्वीप भूमि में प्रीति पूर्वक ज्येष्ठ को प्रेरण किये थे ।।१३।।

ज्येष्ट गमन करने पर गौरचन्द्र—भक्तवृन्द के सहित प्रेमास्पद श्रीवास के गृह में अवस्थान करतः प्राणी मात्र के प्रति होकर दयालु सर्वत्र अनुकम्पा विधान किये थे ।।१४।।

महाप्रभु—दो-तीन दिन श्रीवास गृह में अवस्थान करने पर लक्ष-लक्ष लोक हर्ष समुद्र में निमग्न होकर समस्त दिक् से यातायात करने पर भी श्रीमन्महाप्रभु की महिमा का अवकाश नहीं हुआ ।।१५।।

तत् पश्चात् गौरचन्द्र के दर्शनार्थ कतिपय लोक पथ में द्वारदेश में, वृक्ष में, प्राचीर में दण्डायमान होकर विलास गृह स्थित भित्ति में चित्राङ्कित पुत्तलिका के सदृश शोभित हुये थे, किन्तु उन सब में कभी भी उत्कण्ठा का अवसान नहीं हुआ ।।१६।।

रात्रावेकोऽपह्नुतो नौकायासौ
तत्तद्ग्रामस्योत्तरेणान्यदेशम् ।
आयातः श्रीवासुदेवस्य गेहं
गत्वा पायात् श्रीशिवानन्दगेहम् ॥१७॥

अस्मिन् गेहे रात्रिमेकान्तु नीत्वा
भिक्षां चक्रे देश एवोत्तरे सः ।
तत्तल्लोकैर्लक्षसंख्यैः समेतो
नौकारूढ़ः शान्तिपुर्यां जगाम ॥१८॥

श्रीवासाद्यैस्तैरथालोक्य नैनं
प्रत्युद्विग्नैः सर्वतोऽन्विष्य भूयः ।
यावन्नैषोऽदर्शि तावत् सुदुःखै-
र्गाढ़ं गाढ़मर्द्दयमानैरभावि ॥१९॥

नावा गच्छन् स्वर्धुनीमध्यभूमौ
नाम्नां गाथां लोलचित्तः प्रकाश्य ।

निशीथ में एक चोर अन्यस्थान से नाव से आकर प्रद्युम्न के गृह मानकर श्रीशिवानन्द सेन के घर में उपस्थित हुआ था ॥१७॥

यहांपर एक रात्रि निवास कर ग्राम के उत्तर भाग में भिक्षा किया था, एवं उक्त ग्राम के असंख्य लोकों के सहित नौकारूढ़ होकर शान्तिपुर में उपस्थित हुआ ॥१८॥

अनन्तर श्रीवासादि भक्तगण उक्त व्यक्ति को बारम्बार सब दिक् में अन्वेषण करके भी देख नहीं पाये, उससे उन सब दुःखित हुये थे ॥१९॥

गौरचन्द्रचञ्चलचित्त–होकर स्वर्गनदी गङ्गाके मध्य स्थानमें गमन

अद्वैतस्य ग्राममासाद्य नाथः-
प्रेम्नोत्तस्थौ गन्तुमत्यन्तमुत्कः ॥२०॥

मध्येद्वारं तेन सार्द्धं महार्हैः
सङ्गस्तस्याश्लेषकोलाहलेन ।
आसीन्नैषां प्राणिनां भाग्यभाजां
चक्षुःश्रोत्रद्वन्द्वतृप्त्यै बभूव ॥२१॥

भूयो भूयो गाढ़माश्लेषपीड़ौ
प्रेमाविष्टौ स्तस्तथाद्वैतगौरौ ।
तत्रान्तेऽसौ तं तथा योगमेनं
पूजाचर्यावाग् विलासैरुपासीत् ॥२२॥

आगत्याथो श्रीशचीनाम देवी
त्रैलोक्यनामेव माता तमेनम् ।
दृष्ट्वा मेने हर्षपाथोधिमग्नं-
तत्रात्मानं सप्रमोदार्त्तिलज्जम् ॥२३॥

पूर्वक नामगाथा प्रकाश कर अद्वैत का ग्राम शान्तिपुर के सन्निकटवर्त्ती होकर गमनार्थ अत्यन्त उत्सुकचित्त से उत्थित हुये थे ॥२०॥

तत् पश्चात् द्वार के मध्य में अद्वैत के सहित प्रीति सम्भाषण कर गौराङ्गदेव शान्तिपुरवासि भाग्यवान् जनगण के श्रवण युगल की महती तृप्ति विधान किये थे ॥२१॥

अद्वैत एवं गौरचन्द्र उभय ही पुनः-पुनः निविड़ आलिङ्गन पाश में आबद्ध होकर प्रेमाविष्ट हुये थे, तत्पश्चात् अद्वैत पूजाविधि एवं वाक्यविन्यास द्वारा सहसा उपस्थित गौरचन्द्र की उपासना करने लगे थे ॥२२॥

अनन्तर त्रैलोक्य की जननी श्रीशचीदेवी का आगमन हुआ,

तत्रैवासीत् षड् दिनानि क्रमेण
श्रीगौराङ्गो मातृदत्तानुतृप्तः ।
आचार्य्येण प्रीत्युपानीतचर्यो-
नेत्रानन्दं प्राणिनामेव कुर्वन् ॥२४॥

तेषां तेषां वासराणां समूहे
यामो लोका लक्षकोट्यः समीयुः ।
आचार्योऽसौ प्रत्यहं तास्तथैव-
द्रव्यैर्भूयोः प्रीणयामास हर्षात् ॥२५॥

अन्येद्युः स श्रीनवद्वीपभूमेः-
पारेगङ्गं पश्चिमे क्वापि देशे ।
श्रीमान् सर्वप्राणिनां तत्तदङ्गै-
र्नेत्रानन्दं सम्यगागत्य तेने ॥२६॥

उन्होंने आनन्द, पीड़ा एवं लज्जायुक्त होकर गौराङ्गदेव को देखकर आनन्द प्राप्त किया ॥२३॥

गौरचन्द्र-अद्वैत कर्त्तृक प्रीति पूर्वक समानीत विविध परिचर्या ग्रहण करतः प्राणि समूह का नेत्रानन्द सम्पादन किये थे, एवं शान्तिपुर में पाँच-छै दिन रहकर मातृ प्रदत्त अन्न भोजन से परितृप्त हुये थे ॥२४॥

लक्ष-लक्ष लोक उस समय समागत हुये थे, एवं अद्वैतप्रभु प्रत्यह समस्त लोकों को विविध द्रव्य द्वारा सन्तुष्ट करते थे ॥२५॥

श्रीमान् गौरचन्द्र—अपर एकदिन नवद्वीप भूमि के पश्चिम दिक्स्थ गङ्गापार के एक ग्राम में समागत होकर स्वीय कोमल अङ्ग के द्वारा प्राणिवृन्द का नेत्रानन्द विस्तार किये थे ॥२६॥

किम्वा मूकः किन्तु पङ्गु किमन्धः
किम्वा वृद्धः किं शिशुः किं स्त्रियो वा ।
ये ये सर्वे श्रीनवद्वीपभूस्थाः –
प्रीत्युद्रेकात्ते तएवाथ जग्मुः ॥२७॥

यावत्तस्थौ तत्र गौराङ्गचन्द्र–
स्तावत् सर्वे सर्वतो लक्षकोट्यः ।
गाढ़ोत्कण्ठानिर्भरार्त्ताः समीयु
र्द्रष्टुं तं ते किं स्त्रियः किं पुमांसः ॥२८॥

मध्ये मध्ये तत्र लोकप्रचार्यै–
रत्युद्विग्नो भूयसोऽन्तर्द्दधाति ।
किन्तूत्कण्ठा वर्द्धते गाढ़गाढ़–
तेषां तेषां क्रन्दतां मुक्तकण्ठम् ॥२९॥

एवं नीत्वा तत्र नाथो दिनानि
प्रीत्युद्रेकात् पञ्चषाणि क्रमेण ।

मूक, पङ्गु, मूढ़, वृद्ध, शिशु स्त्री प्रभृति नवद्वीपस्थ समस्त लोक ही समधिक प्रीति का उद्रेकवशतः वहाँपर समागत हुये थे ।२७।

गौरचन्द्र—यावत्काल वहाँपर अवस्थित थे, तावत्काल लक्ष लक्ष स्त्री-पुरुष प्रभृति जनगण प्रगाढ़ उत्कण्ठा से अतीव कातर होकर उपस्थित हुये थे ।।२८।।

मध्य-मध्य में गौरचन्द्र—जन समागम हेतु उद्विग्न होकर बारम्बार अन्तर्द्धान करते थे, किन्तु समस्त जन के मुक्तकण्ठ से क्रन्दन पर उनसब की उत्कण्ठा प्रगाढ़रूप से वर्द्धित हुई थी ।।२९।।

इस प्रकार गौरचन्द्र–उक्त ग्राम में पाँच-छै दिन क्रमशः प्रीति से

नेत्रानन्दं सर्वलोकस्य तन्वं-
स्तैस्तैर्दिव्यं देशमेव प्रतस्थे ॥३०॥

कश्चिद्‌गोपीनाथ शीतिप्रसिद्धं
गोपीनाथे शेत इत्यन्वयेन ।
तस्मिन् देशे क्वापि गौराङ्गचन्द्रः
प्रेमाविष्टो वीक्ष्य शश्वन्ननन्द ॥३१॥

कालिन्दीये तीर एव प्रयातु
गाढ़ोत्‌कण्ठः पश्चिमे क्वापि गत्वा ।
प्रत्यावृत्तो भूय एष स्वचित्ते-
किम्वालोक्य स्वर्धुनीतीरमायात् ॥३२॥

तत्तद्देशे भूय एव प्रकामं
स्थित्वा कृत्वा दीर्घदीर्घानुकम्पाम् ।
श्रीनीलाद्रौ भूयएव प्रतस्थे-
चित्रं चित्रं तस्य तत्तच्चरित्रम् ॥३३॥

अतिवाहित कर जनगण का नेत्रानन्द विस्तार कर भक्तवृन्द के सहित स्वीय देश में प्रत्यावर्त्तन किये थे ॥३०॥

"गोपीनाथ शेते" इस सम्बन्ध से "गोपीनाथ" नामक प्रसिद्ध स्थान में एक व्यक्ति को देखकर गौरचन्द्र प्रेमाविष्ट होकर निरन्तर आनन्दित हुये थे ॥३१॥

गौरचन्द्र—कालिन्दीतीर में उपस्थित होने के निमित्त पश्चिम दिक्‌स्थ किसी स्थान में जाकर पुनर्बार वहाँ से प्रत्यावृत्त होकर मन में कुछ सोचकर पुनर्बार गङ्गातीर में उपस्थित हुये थे ॥३२॥

एवं महाप्रभु—उस देश में पुनर्बार यथेष्ट अवस्थान करतः साधिक अनुकम्पा विधानपूर्वक पुनर्बार नीलाचल में प्रस्थान किये थे,

तत्तद्व्याजात् स्वर्धुनीतीरमायात्
यत्र श्रीमांश्चित्रमेवावतीर्णः ।
नेत्रानन्दं सर्वलोकस्य कृत्वा-
नीलाद्रिस्थप्रीतये भूय आसीत् ॥३४॥

स्थित्वा तत्र श्रीमयो गौरचन्द्रः
कञ्चित् कालं भूयोऽध्वनैव ।
कालिन्दीयं तीरमेव प्रतस्थे
विच्छेदार्त्तांस्तत्र तांस्तान् विधाय ॥३५॥

रामानन्दस्तद्वियोगाधिपीड़ा-
क्षीणक्षीणस्तत्यजेऽसून् महात्मा ।
विच्छेदे स्याद्युयोग्यमेतच्चरित्रं
प्रेम्नस्तावत्तादृशस्यास्य नूनम् ॥३६॥

अहो ! आश्चर्यमय प्रभु का चरित्र है ॥३३॥

महाप्रभु—छलपूर्वक श्रीमान् के आविर्भाव स्थान में उपस्थित हुये थे, एवं समस्त जन नयनानन्द विधान पूर्वक पुनर्बार नीलाचल प्रीति के निमित्त वहाँपर अवतीर्ण हुये थे ॥३४॥

शोभामय गौरचन्द्र—वहाँपर कुछ काल अवस्थित होकर पुनर्बार तत्रत्य लोकसमूह को विच्छेदार्त्त कर उस पथ से ही कालिन्दी तीर में प्रस्थान किये थे ॥३५॥

अनन्तर महात्मा रामानन्दराय गौराङ्ग वियोग जनित मनः पीड़ा से अत्यन्त क्षीणाङ्ग होकर प्राण त्याग किये थे, अहो ! तादृश अलौकिक प्रेम विच्छेद का यह ही चरित्र है, निश्चय ही यह उपयुक्त है ॥३६॥

स्थिता तत्र दिनानि हन्त कतिचिद्भूयोऽसिताद्रौ प्रभुः ।
श्रीमानेत्य ननन्द नन्दयति च स्मैतानजस्रं जनान् ।
एवं विंशतिहायनान्तरभवां यात्रां विलोक्याखिलां
स्वं धामाथ जगाम कैश्चिदपि तैः सार्द्धं कृपासागरः ॥३७॥

प्रेमाम्भोधौ जगदतिशये मज्जयित्वा स भूयो
विच्छेदाग्नावपि च विदधे मग्नमत्यन्तदुर्गे ।
चित्रं चित्रं तदपि सततं प्रेमसिन्धुर्बलीया-
नासीत् कोऽयं शिवशिव महान् गौरचन्द्रानुभावः ॥३८॥

नानादेशान्निजनिजजनानेवमेकत्र कृत्वा
तानन्योन्यं प्रणयनिविड़ान् कारयित्वा प्रकामम् ।
तैस्तैः सार्द्धं वत विलसितो हन्त गौड़ोत्कलेषु
स्वं धामास्मिन् गतवति गता भूर्वियोगाग्निसिन्धौ ॥३९॥

श्रीमन्महाप्रभु-वहाँपर कतिपय दिन अवस्थित होकर पुनर्बार नीलाचल में आकर आनन्दित हुये थे, एवं अजस्रजनगण को आनन्दित किये थे, इस प्रकार श्रीजगन्नाथदेव के विंशति वत्सर सम्भूत उत्सव समूह दर्शन कर कृपानिधि गौरचन्द्र कतिपय भक्तवृन्द के सहित निजधाम गमन किये थे। अत्र शार्दूल विक्रीड़ितं छन्दः लक्षणं— "सूर्य्याश्वै र्मसजस्तताः सगुरव शार्दूल विक्रीड़ितम्" ॥३७॥

गौरचन्द्र-जगत् को अतिशय प्रेमाम्बुधि में निमग्न कर पुनर्बार अत्यन्त दुर्गम विच्छेदाग्नि मे निमग्न किये थे, किन्तु यह अतीव आश्चर्य है कि—उसमें किसी एक अनिर्वचनीय प्रेमसिन्धु बलीयान् हुआ था। इसमें मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥३८॥

गौरचन्द्र नानादेश से समागत भक्तवृन्द को एकत्र कर उनसब को परस्पर यथेष्ट प्रणय पूर्ण कर उक्त भक्तवृन्द के सहित गौड़ एवं

चतुर्विंशे तावत् प्रकटितनिजप्रेमविवशः ।
प्रकामं सन्न्यासं समकृत नवद्वीपतलतः ।
त्रिवर्षञ्च क्षेत्रादपि तत इतो यन्नगमय-
त्तथा दृष्ट्वा यात्रा व्यनयदखिला विंशतिसमाः ॥४०॥

इत्थं चत्वारिंशता सप्तभाजा
श्रीगौराङ्गो हायनानां क्रमेण ।
नानालीलालास्यमासाद्य भूमौ-
क्रीड़न् धाम स्वं स्वं ततोऽसौ जगाम ॥४१॥

आशैशवं प्रभुचरित्रविलासविज्ञैः
केचिन्मुरारिरितिमङ्गलनामधेयैः ।
यद् यद्विलासललितं समलेखि तज्ज्ञै-
स्तत्तद्विलोक्य विलिलेख शिशुः स एषः ॥४२॥

उत्कल देश में विलास किये थे, एवं प्रभु—स्वधाम गमन करने पर पृथिवी वियोगाग्नि सागर में निमज्जिता हुई थी ॥३९॥

महाप्रभु—चतुर्विंश वत्सर यावत् निज प्रेम प्रकट कर यथेष्ट विवश होकर नवद्वीप से ही सन्न्यास ग्रहण किये थे, एव उक्त क्षेत्र से ही इतस्ततः गमनागमन में तीन वत्सर अतिवाहित किये थे, एवं यात्रा उत्सव दर्शन करतः अखिल विंशति वत्सर यापन किये थे। शिखरिणीछन्द। लक्षण-रसैरुद्रैश्छिन्नायमनसभलागः शिखरिणी ।४०।

इस प्रकार श्रीगौराङ्गदेव—सप्तचत्वारिंश वत्सर क्रमशः नानाविध लीलानृत्य विधान करतः भू-मण्डल में क्रीड़ा करतः स्वधाम गमन किये थे। यहाँ शालिनी वृत्त है ॥४१॥

शैशवावधि श्रीप्रभु के चरित्र विलास विषय में जो अभिज्ञ हैं, वह तत्त्वज्ञ मुरारि नामक मङ्गलनामा महात्मा जो-जो विलास

बद्धाञ्जलिः शिरसि निर्भरकाकुवादै-
र्भुयो नमाम्यहमसौ स मुरारिसंज्ञम् ।
तं मुग्धकोमलधियं ननु यत्प्रसादा-
च्चैतन्यचन्द्रचरितामृतमक्षिपीतम् ॥४३॥

चैतन्यचन्द्रचरितामृतमत्युदारं
सर्वे दृशा च मनसा मुदा वहन्तु ।
यद्दृष्टमात्रमपहन्ति दुरापपारं-
संसारसागरमजस्रमुदग्रहिंस्रम् ॥४४॥

नाहं स्तुतौ वत नतौ विनतौ च शक्तो
यत्तैश्च तैर्जनचयं स्ववशे करिष्ये ।
आश्रित्य किन्तु निजकारुणिकत्वमेव
यद्योग्यमत्र तदहो रचयन्तु धीराः ॥४५॥

लालित्य का सम्यक् अङ्कन किये हैं, मैं शिशु होकर उसको देखकर ग्रन्थन किया हूँ। इतश्चतुर्षु वसन्ततिलकं नाम छन्दः। लक्षणं— यथा "ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजा जगौगः" ॥४२॥

मैं स्वीय मस्तक में अञ्जलिबद्ध कर निरतिशय काकुवाक्य से पुनः-पुनः मनोहर कोमल बुद्धि सम्पन्न मुरारि नामक महात्मा को प्रणाम कर रहा हूँ, जिनकी अनुकम्पा से श्रीचैतन्यचन्द्र चरितरूप अमृत मदीय नयन गोचर हुआ है ॥४३॥

श्रीचैतन्यचन्द्र का अत्युदार चरित्ररूप अमृत का वहन सब व्यक्ति नेत्र एवं मन के द्वारा सानन्द से करें, जिस चैतन्यचरितामृत दर्शन मात्र से ही हिंस्र जन्तु समाकुल दुष्पार भवपारावार नियत विनष्ट हो जाता है ॥४४॥

मैं स्तुति, नति, विनति में सक्षम नहीं हूँ, जिससे जनगण

इह परमकृपालोर्गौरचन्द्रस्य कोऽपि
प्रणयरसशरीरः श्रीशिवानन्दसेनः ।
भुवि निवसति तस्यापत्यमेकं कनीय-
स्त्वकृत परममोग्ध्याच्चित्रमेतं प्रबन्धम् ॥४६॥

धीरोदात्तमहत्तमो गुणनिधिर्यस्मिन्नसौ नायको
यत्रामूर्लिपयो निरन्तरबलत्प्रेमप्रकाशाक्षराः ।
यत्रानेकमहामहोत्तमधियां चारित्रमन्तर्गतं
तच्चैतन्यचरित्रवर्णनमिदं जीयादजस्रं भुवि ॥४७॥

एतत्तापत्रयनिरसनं प्रेममात्रैकवीजं
श्रीगौराङ्गप्रणयवलितोत्कीर्त्तिमात्रस्वरूपम् ।

को निजायत्त में कर सकूँ। किन्तु निज कारुण्य अर्थात् दीनता अवलम्बन से ही यदि अनुकूल कर सकूँ तो, हे धीरगण ! मुझको उस निज कारुणिकता प्रदान करें ॥४५॥

इस धरणी मण्डल में परम कृपालु गौरचन्द्र का प्रणयरस शरीर श्रीशिवानन्द सेन नामक एक महात्मा थे, उनका सर्व कनिष्ठ पुत्र-मैं अत्यन्त सौन्दर्य से आकृष्ट होकर इस चित्र-प्रबन्ध का प्रणयन किया हूँ ॥४६॥

प्रस्तुत श्रीचैतन्यचरितामृत महाकाव्य का नायक—धीरोदात्त महागुणनिधि श्रीगौरचन्द्र हैं, जिसके लिपिस्थ अक्षर समूह निरन्तर वर्द्धमान प्रेम प्रकाश से शोभित हैं, जिसमें अनेक महामहत्तम सुधी वृन्द के बुद्धिचरित्र विन्यस्त हैं, वह चैतन्यचरित्र वर्णनयुक्त प्रस्तुत पुस्तक भू-मण्डल में नियतकाल देदीप्यमान हो। इसमें शार्दूल विक्रीड़ित छन्द है ॥४७॥

प्रस्तुत श्रीचैतन्यचरितामृत—आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक त्रिविधताप को विदूरित करने में सक्षम है, एवं प्रेम

दृष्ट्वा स्वान्तःकरणपदवीं मामनालोच्य धीराः
शश्वत् कण्ठे दधतु मुदिता रम्यमेनं प्रबन्धम् ॥४८॥

वेदा रसाः श्रुतय इन्दुरिति प्रसिद्धे
शाके तथा खलु शुचौ शुभगे च मासि ।
वारे सुधाकिरणनाम्न्यसितद्वितीया–
तिथ्यन्तरे परिसमाप्तिरभूदमुष्य ॥४९॥

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये श्रील कर्णपूरकृतौ विंशतितमः सर्गः ॥

सर्वस्व श्रीगौरहरि के प्रणय सम्बलित उत्कृष्ट कीर्त्तिकलाप द्वारा सुमण्डित है, अतएव धीरगण मेरीआलोचना न करके स्वीय अन्तःकरण पदवी को देखकर अतिहृष्ट होकर प्रस्तुत रमणीय प्रबन्ध का परिधान हाररूप में निज कण्ठदेश में करें। मन्दाक्रान्ता छन्द है ।४८।

वेद ४, रस ६, श्रुति ४, इन्दु १, प्रसिद्ध १४६४ शकाब्दा में सुन्दर शुचि आषाढ़ मास में सुधाकिरण सोमवार में असित अर्थात् कृष्णपक्षीया द्वितीया तिथि में प्रस्तुत ग्रन्थ रचना की परिसमाप्ति हुई है। यह वसन्ततिलक वृत्त है ॥४९॥

श्रीमन्महाप्रभु का आविर्भावकाल १४०७ शकाब्दा है, ४७ वत्सर यावत् प्रभु प्रकट थे, श्रीमन्महाप्रभु के तिरोभाव के ९ वत्सर के पश्चात् इस ग्रन्थ की रचना हुई है, वर्त्तमान शकाब्दा १९०५ है, अतः ४९८ वत्सर का यह ग्रन्थ है इसमें (१९११) एक सहस्र नवशत एकादश श्लोक है, ।

इति श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृते महाकाव्ये श्रील कर्णपूरकृतौ विंशतितमः सर्गः ॥

समाप्तमिदं श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृतं महाकाव्यम् ।श्लोक संख्याः १९११ ।



✻✻✻ श्रीचैतन्यो जयति ✻✻✻

—ग्रन्थकर्त्तुः परिचयः—

गङ्गायाः पश्चिमे राढ़े ग्रामे काञ्चन पल्लितः।
उवास श्रीशिवानन्दो वैद्यवंश प्रदीपकः॥
नीलाचलमसौ पत्न्या सहकाले तु कुत्रचित्।
जगाम जातस्तत्रास्मात् कर्णपूरो महाकविः॥
ततः पुरीदास इति कृतं नाम प्रभोर्मतम्।
परमानन्ददासोऽयं कैश्चिदेतत् प्रकोर्त्त्यते॥
बाल्य कवित्वशक्तया हि कविकर्णपूरोऽभवत्।
अनेन रचिता ग्रन्था उत्तमाः सन्ति भूरिशः॥

यथा—आनन्द वृन्दावन नामचम्पू काव्यं तथा गौरगस्यदीपिका।
अलङ्कृते धामसु कौस्तुभाख्यं काव्यञ्च चैतन्य चरित्रसंज्ञम्॥
चैतन्य चन्द्रोदय नाम नाटकं चैतन्य चन्द्रस्य सदा मनोहरम्।
अन्येचग्रन्थाः विहरन्ति भूतले दिङ्मात्रमेतन्मयका प्रदर्शितम्॥

शास्त्रिणा हरिदासेन वृन्दारण्य निवासिना।
रचिता विमला भाषा सज्जनानन्दवर्द्धिनी॥
वाणाकाशे ग्रहेचन्द्रे एकादश्यां रवेर्दिने।
आश्वयुजिसितेपक्षे भाषेयं पूर्णता गता॥

श्रीगुर्वार्पणमस्तु

श्रीगुर्वर्पणमस्तु



१। वेदान्तदर्शनम् "भागवतभाष्योपेतम्" महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासदेव प्रणीत, ब्रह्मसूत्रों के अकृत्रिम अर्थस्वरूप श्रीमद्भागवत के पद्यों के द्वारा सूत्रार्थों का समन्वय इसमें मनोरमरूप में विद्यमान है।

२। श्रीनृसिंह चतुर्दशी भक्ताह्लादकारी श्रीनृसिंहदेव की महिमा, व्रतविधानात्मक अपूर्व ग्रन्थ।

३। श्रीसाधनामृतचन्द्रिका गोवर्धन निवासी सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबा विरचित रागानुगीय वैष्णव पद्धति।

४। श्रीसाधनामृतचन्द्रिका (वङ्गला पयार) गोवर्धन निवासी सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबा के द्वारा रचित सुललित छन्दोबद्ध ग्रन्थ।

५। श्रीगौरगोविन्दार्चन पद्धति गोवर्धन निवासी सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबा विरचित सपरिकर श्रीनन्दनन्दन श्रीभानुनन्दिनी के स्वरूप निर्णयात्मक ग्रन्थ।

६। श्रीराधाकृष्णार्चन द्वीपिका श्रीजीवगोस्वामिपाद कृत श्रीराधासम्बलित श्रीकृष्ण पूजन प्रतिपादन का सर्वादि ग्रन्थ।

७। श्रीगोविन्दलीलामृतम् (मूल, टीका, अनुवाद सह १-४ सर्ग) "श्रीकृष्णदास कविराज प्रणीतम्" स्वारसिकी उपासना के अनुसार अष्टकालीय लीला स्मरणात्मक प्रमुख ग्रन्थ।

८। श्रीगोविन्दलीलामृतम् ५ सर्ग से ११ सर्ग पर्यन्त (टीका सानुवाद)

९। श्रीगोविन्दलीलामृतम् १२ सर्ग से २३ सर्ग पर्यन्त ,, ,,

१०। ऐश्वर्यकादम्बिनी (मूल अनुवाद) श्रीबलदेवविद्याभूषणकृत भागवतीय श्रीकृष्णलीला का क्रमबद्ध ऐश्वर्य मण्डित वर्णन, श्रीवृषभानु महाराज एवं भानुनन्दिनी का मनोरम वर्णन इसमें है।

११। संकल्पकल्पद्रुम (सटीक, सानुवाद) श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ति पाद कृत स्वारसिकी उपासना का प्रमुख ग्रन्थ।

१२। चतुःश्लोकी भाष्यम् (सानुवाद) श्रीनिवासाचार्य प्रभु कृत चतुःश्लोकी भागवत की स्वारसिकी व्याख्या।

१३। श्रीकृष्णभजनामृत (सानुवाद) श्रीनरहरिसरकार ठक्कुरकृत अपूर्व धर्मीय संविधानात्मक ग्रन्थ।

१४। श्रीप्रेमसम्पुट (मूल, टीका, अनुवाद सह) श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्तीकृत भागवतीय रासरहस्य वर्णनात्मक हृदयग्राही ग्रन्थ।

१५। भगवद्भक्तिसार समुच्चय (सानुवाद) श्रीलोकानन्दाचार्य प्रणीत भक्तिरहस्य परिवेषक अनुपम ग्रन्थ।

१६। भगवद्भक्तिसार समुच्चय (सानुवाद वङ्गला) श्रीलोकानन्दाचार्य प्रणीत, भक्तिरहस्य प्रकाशक मनोहर ग्रन्थ।

१७। व्रजरीति चिन्तामणि (मूल, टीका, अनुवाद) श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठक्कुर कृत व्रजसंस्कृति वर्णनात्मक अत्युत्कृष्ट ग्रन्थ।

१८। श्रीगोविन्दवृन्दावनम् (सानुवाद) बृहद्‌गौतमीय तन्त्रान्तर्गत श्रीराधारहस्य परिवेषक सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ।

१९। श्रीराधारससुधानिधि (मूल, वङ्गला) श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीपाद रचित माधुर्यभक्तिमयी श्रीराधा महिमा प्रतिपादक अनुपमेय ग्रन्थ।

२०। श्रीराधारससुधानिधि (वङ्गला, मूल, सानुवाद)

२१। श्रीराधारससुधानिधि (मूल, हिन्दी)

२२। श्रीराधारससुधानिधि (हिन्दी मूल, सानुवाद)

२३। श्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाश (सानुवाद) श्रीराघवपण्डित रचित श्रीकृष्णभक्ति प्रकाशक अनुपम ग्रन्थ।

२४। हरिभक्तिसारसंग्रह (सानुवाद) श्रीपुरुषोत्तमशर्म प्रणीत श्रीभागवतीय क्रमबद्ध भक्तिसिद्धान्त संग्रहात्मक ग्रन्थ।

२५। श्रुतिस्तुति व्याख्या (अन्वय, अनुवाद) श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वतीकृत वेदस्तुति की व्रजलीलात्मक व्याख्या।

२६। श्रीहरेकृष्णमहामन्त्र 'अष्टोत्तरशतसंख्यक'

२७। धर्मसंग्रह (सानुवाद) श्रीवेदव्यासकृत धर्मसंग्रह श्रीमद्भागवतीय ७म स्कन्ध के अन्तिम ११,१२,१३,१४,१५ अध्यायों का वर्णन।

२८। श्रीचैतन्य सूक्तिसुधाकर श्रीचैतन्यचरितामृत तथा श्रीचैतन्य-भागवतीय सूक्तियों का संग्रह।

२९। सनत्कुमार संहिता (सानुवाद) व्रजीय रागानुगीय उपासना प्रतिपादक सुप्राचीन ग्रन्थ।

३०। श्रीनामामृतसमुद्र श्रीनरहरि चक्रवर्त्ति प्रणीत श्रीमन्महाप्रभु के परिकरों का नामसंग्रह।

३१। रासप्रवन्ध (सानुवाद) श्रीपाद प्रबोधानन्दसरस्वतीकृत।

३२। दिनचन्द्रिका (सानुवाद) सार्वदेशिक दिनकृत्य पद्धति।

३३। भक्तिसर्व्वस्व (वङ्गला) प्रेमभक्तिचन्द्रिका, प्रार्थना प्रभृति सम्बलित।

३४। स्वकीयात्वनिरास परकीयात्वप्रतिपादन, श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्तीकृत

३५। श्रीसाधनदीपिका श्रीराधाकृष्णगोस्वामिपाद विरचिता, मन्त्रमयी स्वारसिकी उपासना का समन्वयात्मक ग्रन्थ। इसमें ऐतिहासिक गवेषकों के लिए पर्य्याप्त सामग्री सन्निविष्ट है।

३६। मनःशिक्षा (वङ्गला) (अष्टोत्तरशत पदावली) प्राचीन कवि श्रील प्रेमानन्ददास विरचित।

३७। चैतन्यचन्द्रामृतम् श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीपाद रचितम्, भक्ति, भक्त, भगवान्, धाम, उपासना तत्त्वात्मक ग्रन्थ।

३८। श्रीगौराङ्गचन्द्रोदयः, महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास प्रणीत वायुपुराणस्थ शेषकाण्ड के चतुर्दश अध्याय। इसमें श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यदेव के सपरिकर आविर्भाव वृत्तान्त—श्रीमद्भागवत के टीकाकार श्रीमद् रामनारायण गोस्वामीकृत टीका सम्बलित है। "अनर्पितचरी" श्लोक व्याख्या—श्रीजीवगोस्वामिपादकृत।

३९। श्रीब्रह्मसंहिता श्रीचैतन्यदेव द्वारा आनीत चतुर्मुख श्रीब्रह्मा विरचित शताध्याय के पञ्चम अध्यायात्मकसशक्तिकपरतत्त्वप्रतिपादक ग्रन्थ।

४०। प्रमेयरत्नावली श्रीबलदेवविद्याभूषणकृत श्रीकृष्णदेव सार्वभौम कृत टीकोपेता वेदान्तदर्शन के प्रमेयसमूह का विश्लेषणात्मक ग्रन्थ।

४१। नवरत्न अनन्यरसिक शिरोमणि श्रीहरिराम व्यास महोदय रचित प्रमेयरत्नावलीवत् निज सम्प्रदाय का वर्णनात्मक ग्रन्थ।

४२। भक्तिचन्द्रिका श्रीलोकानन्दाचार्य प्रणीत, श्रीचैतन्यदेव की सुप्राचीन उपासना पद्धति।